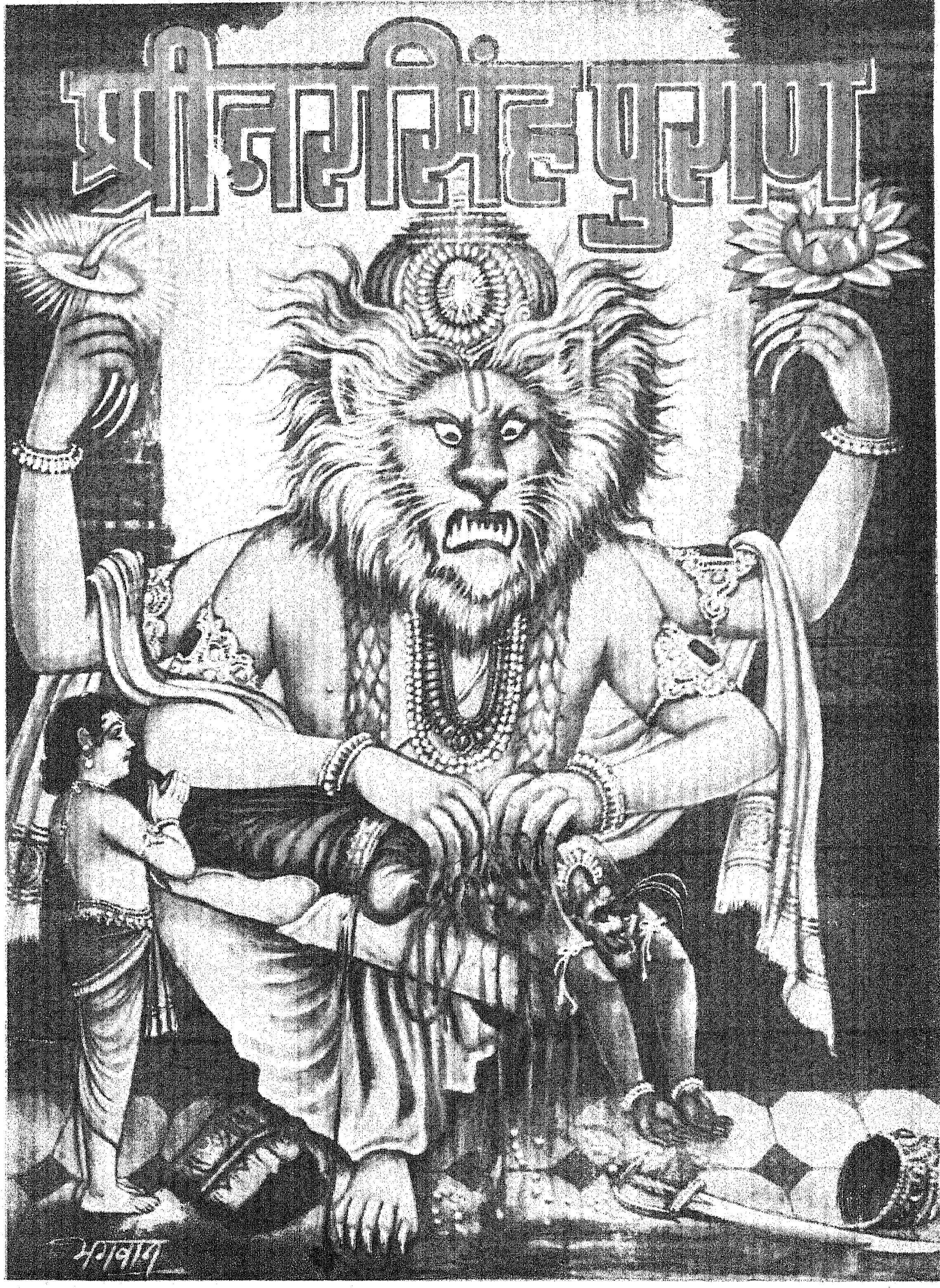
श्रीनरसिंहपुराण
भगवान

भगवान् नरसिंहकी भक्त प्रह्लादपर कृपा

श्रीहरिः

# श्रीनरसिंहपुराणकी विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१–प्रयागमें ऋषियोंका समागम; सूतजीके प्रति भरद्वाजजीका प्रश्न; सूतजीद्वारा कथारम्भ और सृष्टिक्रमका वर्णन ... ... ३
२–ब्रह्मा आदिकी आयु और कालका स्वरूप ... ८
३–ब्रह्माजीद्वारा लोकरचना और नौ प्रकारकी सृष्टियोंका निरूपण ... ... १०
४–अनुसर्गके स्रष्टा ... ... १२
५–रुद्र आदि सर्गों और अनुसर्गोंका वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंकी संततिका विस्तार ... १३
६–अगस्त्य तथा वसिष्ठजीके मित्रावरुणके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेका प्रसङ्ग ... ... १७
७–मार्कण्डेयजीके द्वारा तपस्यापूर्वक श्रीहरिकी आराधना; 'मृत्युंजय स्तोत्र'का पाठ और मृत्युपर विजय प्राप्त करना ... ... २१
८–मृत्यु और दूतोंको समझाते हुए यमका उन्हें वैष्णवोंके पास जानेसे रोकना; उनके मुँहसे श्रीहरिके नामकी महिमा सुनकर नरकस्थ जीवोंका भगवान्‌को नमस्कार करके श्रीविष्णुके धाममें जाना ... ... २७
९–यमाष्टक—यमराजका अपने दूतके प्रति उपदेश ३०
१०–मार्कण्डेयका विवाह कर, वेदशिराको उत्पन्न करके प्रयागमें अक्षयवटके नीचे तप एवं भगवान्‌की स्तुति करना; फिर आकाशवाणीके अनुसार स्तुति करनेपर भगवान्‌का उन्हें आशीर्वाद एवं वरदान देना तथा मार्कण्डेयजीका क्षीरसागरमें जाकर पुनः उनका दर्शन करना ... ३१
११–मार्कण्डेयजीद्वारा शेषशायी भगवान्‌का स्तवन ... ३६
१२–यम और यमीका संवाद ... ... ४१
१३–पतिव्रताकी शक्ति; उसके साथ एक ब्रह्मचारीका संवाद; माताकी रक्षा परम धर्म है, इसका उपदेश ४५
१४–तीर्थसेवन और आराधनसे भगवान्‌की प्रसन्नता; 'अनाश्रमी' रहनेसे दोष तथा आश्रमधर्मके पालनसे भगवत्प्राप्तिका कथन ... ४९
१५–संसारवृक्षका वर्णन तथा इसे नष्ट करनेवाले ज्ञानकी महिमा ... ... ५१
१६–भगवान् विष्णुके ध्यानसे मोक्षकी प्राप्तिका प्रतिपादन ... ... ५२
१७–अष्टाक्षर मन्त्र और उसका माहात्म्य ... ५५
१८–भगवान् सूर्यद्वारा संज्ञाके गर्भसे मनु, यम और यमीकी, छायाके गर्भसे मनु, शनैश्चर एवं तपतीकी उत्पत्ति तथा अश्वारूपधारिणी संज्ञासे अश्विनीकुमारोंका प्रादुर्भाव ... ५८
१९–विश्वकर्माद्वारा १०८ नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तवन ... ... ६०
२०–मारुतोंकी उत्पत्ति ... ... ६३
२१–सूर्यवंशका वर्णन ... ... ६४
२२–चन्द्रवंशका वर्णन ... ... ६५
२३–चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन ... ... ६६
२४–सूर्यवंश—राजा इक्ष्वाकुका भगवत्प्रेम; उनका भगवद्दर्शनके हेतु तपस्याके लिये प्रस्थान ... ६९
२५–इक्ष्वाकुकी तपस्या और ब्रह्माजीद्वारा विष्णु-प्रतिमाकी प्राप्ति ... ... ७२
२६–इक्ष्वाकुकी संततिका वर्णन ... ७८
२७–चन्द्रवंशका वर्णन ... ... ८०
२८–शांतनुका चरित्र ... ... ८१
२९–शांतनुकी संततिका वर्णन ... ... ८४
३०–भूगोल तथा स्वर्गलोकका वर्णन ... ८६
३१–ध्रुव-चरित्र तथा ग्रह, नक्षत्र एवं पातालका संक्षिप्त वर्णन ... ... ९०
३२–सहस्रानीक-चरित्र;श्रीनृसिंह-पूजनका माहात्म्य ... १०१
३३–भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ू देने और उसको लीपनेका महान् फल—राजा जयध्वजकी कथा ... १०३
३४–भगवान् विष्णुके पूजनका फल ... १०९

न० पु० अं० १

३५—लक्षहोम और कोटिहोमकी विधि तथा फल ... ११३
३६—अवतार-कथाका उपक्रम ... ... ११५
३७—मत्स्यावतार तथा मधु-कैटभ-वध ... ... ११६
३८—कूर्मावतार; समुद्रमन्थन और मोहिनी-अवतार ... ११९
३९—वाराह-अवतार; हिरण्याक्ष-वध ... ... १२२
४०—नृसिंहावतार; हिरण्यकशिपुकी वरदान-प्राप्ति और उससे सताये हुए देवोंद्वारा भगवान्की स्तुति ... १२३
४१—प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरि-भक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्विग्नता ... ... १२७
४२—प्रह्लादपर हिरण्यकशिपुका कोप और प्रह्लादका वध करनेके लिये उसके द्वारा किये गये अनेक प्रयत्न ... ... १३३
४३—प्रह्लादजीका दैत्यपुत्रोंको उपदेश देना; हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे प्रह्लादका समुद्रमें डाला जाना तथा वहीं उन्हें भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन होना १३६
४४—नृसिंहका प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिपुका वध १४४
४५—वामन-अवतारकी कथा ... ... १४७
४६—परशुरामावतारकी कथा ... ... १५१
४७—श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे लेकर विवाहतकके चरित्र ... ... १५४
४८—श्रीराम-वनवास; राजा दशरथका निधन तथा वनमें राम-भरतकी भेंट ... ... १६५
४९—श्रीरामका जयन्तको दण्ड देना; शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना; शूर्पणखाका अनादर; सीताहरण; जटायुवध और शबरीको दर्शन देना १७७
५०—सुग्रीवसे मैत्री; वालिवध; सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भर्त्सना; सीताकी खोज और हनुमान्का लङ्कागमन ... ... १८७
५१—हनुमान्जीका समुद्र पार करके लङ्कामें जाना, सीतासे भेंट और लङ्काका दहन करके श्रीरामको समाचार देना ... ... १९८
५२—श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लङ्काके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलद्वारा समुद्र पार करके वानरसेनासहित श्रीरामका सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके वीरोचित उद्गार और दौत्य-कर्म; वानर वीरोंद्वारा राक्षसोंका संहार; रावणका श्रीरामके द्वारा युद्धमें पराजित होना; कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस वीरोंका मारा जाना; मेघनादका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मूर्च्छित लक्ष्मणका हनुमान्जीके द्वारा पुनर्जीवन; राम-रावण-युद्ध; रावण-वध; देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अन्तमें पुरवासियोंसहित उनका परमधाम-गमन ... ... २०२
क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन ... ७०७

* * *

## चित्र-सूची

### बहुरंगा चित्र

१—भगवान् नरसिंहकी भक्त प्रह्लादपर कृपा ... ... ... मुखपृष्ठ

ॐ श्रीलक्ष्मीनृसिंहाभ्यां नमः

महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

# श्रीनरसिंहपुराणम्

( श्रीभरद्वाजमुनि और लोमहर्षण सूतजीके संवादरूपमें )

मूल संस्कृत हिंदी-अनुवादसहित

संशोधक और अनुवादक

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, पाण्डेय 'राम'

( वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी )

# श्रीनरसिंहपुराणका संक्षिप्त परिचय और निवेदन

अन्यान्य पुराणोंकी भाँति श्रीनरसिंहपुराण भी भगवान् श्रीवेदव्यासरचित ही माना जाता है। इसमें भी पुराणोंके लक्षणके अनुसार ही सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरितका सुन्दर वर्णन है। भगवान्के अवतारोंकी लीला-कथा है, उसमें भगवान् श्रीरामका लीलाचरित प्रधानरूपसे वर्णित है।

श्रीमार्कण्डेय मुनिकी मृत्युपर विजय प्राप्त करनेकी सुन्दर कथा है, उसमें 'यमगीता' है। कलियुगके मनुष्योंके लिये बड़ी ही आशाप्रद बातें हैं। इसमें कई ऐसे स्तोत्र-मन्त्रोंका विधान बताया गया है, जिनके अनुष्ठानसे भोग-मोक्षकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। भक्तिके स्वरूप, भक्तोंके लक्षण तथा ध्रुव आदि भक्तोंके सुन्दर चरित्रोंका वर्णन है।

इस छोटे-से पुराणमें बहुत ही उपयोगी तथा जाननेयोग्य सामग्री है। यह पुराण इस समय अप्राप्य है—कहीं मिलता नहीं। इसीलिये इसे मूल संस्कृतसहित इस विशेषाङ्कमें प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, पाठक-पाठिका इसका पठन-मनन करेंगे तथा इसमें उल्लिखित कल्याणकारी विषयोंको यथारुचि यथावश्यक अपने जीवनमें उतारकर लाभ उठावेंगे।

पठतां शृण्वतां नृणां नरसिंहः प्रसीदति।
प्रसन्ने देवदेवेशे सर्वपापक्षयो भवेत्।
प्रक्षीणपापबन्धास्ते मुक्तिं यान्ति नरा इति॥

# श्रीनरसिंह-पुराण

## पहला अध्याय

### प्रयागमें ऋषियोंका समागम; सूतजीके प्रति भरद्वाजजीका प्रश्न; सूतजीद्वारा कथारम्भ और सृष्टिक्रमका वर्णन

श्रीलक्ष्मीनृसिंहाय नमः ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

अन्तर्यामी भगवान् नारायण (श्रीकृष्ण) उनके सखा नरश्रेष्ठ नर! (अर्जुन) तथा इनकी लीला प्रकट करनेवाली सरस्वती देवीको नमस्कार करनेके पश्चात् 'जय' (इतिहास-पुराण) का पाठ करे ॥ १ ॥

तप्तहाटककेशान्तज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
पान्तु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गलकोटयः ।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः ॥ ३ ॥

दिव्य सिंह! तपाये हुए सुवर्णके समान पीले केशोंके भीतर प्रज्वलित अग्निकी भाँति आपके नेत्र देदीप्यमान हो रहे हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक कठोर है, इस प्रकार अमित प्रभावशाली आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है। भगवान् नृसिंहके नखरूपी हलके अग्रभाग, जो हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके वक्षःस्थलरूपी खेतकी रक्तमयी कीचड़के लगनेसे लाल हो गये हैं, आपलोगोंकी रक्षा करें ॥ २-३ ॥

हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ।
त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः ॥ ४ ॥
येऽर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः ।
महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ५ ॥
धर्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ६ ॥
कौमारपर्वते ये च ये च पम्पानिवासिनः ।
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽमलाः ॥ ७ ॥
माघमासे प्रयागं तु स्नातुं तीर्थं समागताः ।

एक समय हिमालयकी घाटियोंमें रहनेवाले, वेदोंके पारगामी एवं त्रिकालवेत्ता समस्त महात्मा मुनिगण नैमिषारण्य, अर्बुदारण्य और पुष्करारण्यके निवासी मुनि, महेन्द्र पर्वत और विन्ध्यगिरिके निवासी ऋषि, धर्मारण्य, दण्डकारण्य, श्रीशैल और कुरुक्षेत्रमें वास करनेवाले मुनि तथा कुमार पर्वत एवं पम्पासरके निवासी ऋषि—ये तथा अन्य भी बहुत-से शुद्ध हृदयवाले महर्षिगण अपने शिष्योंके साथ माघके महीनेमें स्नान करनेके लिये प्रयाग तीर्थमें आये ॥ ४–७½ ॥

तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ८ ॥
नत्वा तु माधवं देवं कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
दृष्ट्वा तत्र भरद्वाजं पुण्यतीर्थनिवासिनम् ॥ ९ ॥
तं पूजयित्वा विधिवत्तेनैव च सुपूजिताः ।
आसनेषु विचित्रेषु बृष्यादिषु यथाक्रमम् ॥१०॥
भरद्वाजेन दत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः ।
कृष्णाश्रिताः कथाः सर्वे परस्परमथाब्रुवन् ॥११॥
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः ॥१२॥
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो लोमहर्षणसंज्ञकः ।
तान् प्रणम्य यथान्यायं स च तैश्चाभिपूजितः ॥१३॥
उपविष्टो यथायोग्यं भरद्वाजमतेन सः ।
व्यासशिष्यं सुखासीनं ततस्तं लोमहर्षणम् ।
स पप्रच्छ भरद्वाजो मुनीनामग्रतस्तदा ॥१४॥

वहाँपर यथोचित रीतिसे स्नान और जप आदि करके उन्होंने भगवान् वेणीमाधवको नमस्कार किया; फिर पितरोंका तर्पण करके उस पावन तीर्थके निवासी भरद्वाज मुनिका दर्शन किया। वहाँ उन ऋषियोंने भरद्वाजजीका भलीभाँति पूजन किया और स्वयं भी भरद्वाजजीके द्वारा पूजित हुए। तत्पश्चात् वे सभी तपोधन भरद्वाज मुनिके दिये हुए बृषी[1] आदि

---

[1] व्रतपरायण पुरुषके लिये कुशका बना हुआ एक विशेष प्रकारका आसन।

विचित्र आसनोंपर विराजमान हुए और परस्पर भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ कहने लगे। उन शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंकी कथा हो ही रही थी कि व्यासजीके शिष्य लोमहर्षण नामक सूतजी वहाँ आ पहुँचे। वे अत्यन्त तेजस्वी, परम बुद्धिमान् और पुराणोंके विद्वान् थे। सूतजीने वहाँ बैठे हुए सभी ऋषियोंको यथोचित विधिसे प्रणाम किया और स्वयं भी उनके द्वारा सम्मानित हुए। फिर भरद्वाजजीकी अनुमतिसे वे यथायोग्य आसनपर बैठे। इस प्रकार जब वे सुखपूर्वक विराजमान हुए, तब उस समय उन व्यासशिष्य लोमहर्षणजीसे भरद्वाजजीने सभी मुनियोंके समक्ष यह प्रश्न किया ॥ ८—१४ ॥

भरद्वाज उवाच

**शौनकस्य महासत्रे वाराहाख्या तु संहिता ।**
**त्वत्तः श्रुता पुरा सूत एतैरस्माभिरेव च ॥१५॥**
**साम्प्रतं नारसिंहाख्यां त्वत्तः पौराणसंहिताम् ।**
**श्रोतुमिच्छाम्यहं सूत श्रोतुकामा इमे स्थिताः ॥१६॥**
**अतस्त्वां परिपृच्छामि प्रश्नमेतं महामुने ।**
**ऋषीणामग्रतः सूत प्रातर्होषां महात्मनाम् ॥१७॥**
**कुत एतत् समुत्पन्नं केन वा परिपाल्यते ।**
**कस्मिन् वा लयमभ्येति जगदेतच्चराचरम् ॥१८॥**
**किं प्रमाणं च वै भूमेर्नृसिंहः केन तुष्यति ।**
**कर्मणा तु महाभाग तन्मे ब्रूहि महामते ॥१९॥**
**कथं च सृष्टेरादिः स्यादवसानं कथं भवेत् ।**
**कथं युगस्य गणना किं वा स्यात्तु चतुर्युगम् ॥२०॥**
**को वा विशेषस्तेष्वत्र का वावस्था कलौ युगे ।**
**कथमाराध्यते देवो नरसिंहोऽप्यमानुषैः ॥२१॥**
**क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पुण्याः शिलोच्चयाः ।**
**नद्यश्च काः पराः पुण्या नृणां पापहराः शुभाः ॥२२॥**
**देवादीनां कथं सृष्टिः मनोर्मन्वन्तरस्य तु ।**
**तथा विद्याधरादीनां सृष्टिरादौ कथं भवेत् ॥२३॥**
**यज्वानः के च राजानः के च सिद्धिं परां गताः ।**
**एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम् ॥२४॥**

**भरद्वाजजी बोले**—सूतजी ! पूर्वकालमें शौनकजीके महान् यज्ञमें हम सभी लोगोंने आपसे 'वाराह-संहिता' सुनी थी। अब हम 'नरसिंहपुराण'की संहिता सुनना चाहते हैं तथा ये ऋषि लोग भी उसे ही सुननेके लिये यहाँ उपस्थित हैं। अतः महामुने सूतजी ! आज प्रातःकाल इन महात्मा मुनियोंके समक्ष हम आपसे ये प्रश्न पूछते हैं—'यह चराचर जगत् कहाँसे उत्पन्न हुआ है ? कौन इसकी रक्षा करता है ? अथवा किसमें इसका लय होता है ? महाभाग ! इस भूमिका प्रमाण क्या है तथा महामते ! भगवान् नृसिंह किस कर्मसे संतुष्ट होते हैं—यह हमें बताइये। सृष्टिका आरम्भ कैसे हुआ ? उसका अवसान ( अन्त ) किस प्रकार होता है ? युगोंकी गणना कैसे होती है ? चतुर्युगका स्वरूप क्या है ? उन चारों युगोंमें क्या अन्तर होता है ? कलियुगमें लोगोंकी क्या अवस्था होती है ? तथा देवतालोग भगवान् नरसिंहकी किस प्रकार आराधना करते हैं ? पुण्यक्षेत्र कौन-कौन हैं ? पावन पर्वत कौन-से हैं ? और मनुष्योंके पापोंको हर लेनेवाली परम पावन एवं उत्तम नदियाँ कौन-कौन-सी हैं ? देवताओंकी सृष्टि कैसे हुई ? मनु, मन्वन्तर एवं विद्याधर आदिकी सृष्टि किस प्रकार होती है ? कौन-कौन राजा यज्ञ करनेवाले हुए हैं और किस-किसने परम उत्तम सिद्धि प्राप्त की है ?' महाभाग ! ये सारी बातें आप क्रमशः बताइये ॥ १५—२४ ॥

सूत उवाच

**व्यासप्रसादाज्जानामि पुराणानि तपोधनाः ।**
**तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं नारसिंहकम् ॥२५॥**
**पाराशर्यं परमपुरुषं विश्वदेवैकयोनिं**
**विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यम् ।**
**शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धतेजो विशालं**
**वेदव्यासं विगतशमलं सर्वदाहं नमामि ॥२६॥**
**नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ।**
**यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि वासुदेवकथामिमाम् ॥२७॥**
**सुनिर्णीतो महान् प्रश्नस्त्वया यः परिकीर्तितः ।**
**विष्णुप्रसादेन विना वक्तुं केनापि शक्यते ॥२८॥**
**तथापि नरसिंहस्य प्रसादादेव तेऽधुना ।**
**प्रवक्ष्यामि महापुण्यं भारद्वाज शृणुष्व मे ॥२९॥**
**शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सशिष्यास्त्वत्र ये स्थिताः ।**
**पुराणं नरसिंहस्य प्रवक्ष्यामि यथातथा ॥३०॥**

**सूतजी बोले**—तपोधनो ! मैं जिन गुरुदेव व्यासजीके

प्रसादसे पुराणोंका ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ, उनकी भक्तिपूर्वक वन्दना करके आपलोगोंसे नरसिंह-पुराणकी कथा कहना आरम्भ करता हूँ। जो समस्त देवताओंके एकमात्र कारण और वेदों तथा उनके छहों अङ्गोंद्वारा जाननेयोग्य परम पुरुष विष्णुके स्वरूप हैं; जो विद्यावान्, विमल बुद्धिदाता, नित्य शान्त, विषयकामनाशून्य और पापरहित हैं, उन विशुद्ध तेजोमय महात्मा पराशरनन्दन वेदव्यासजीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। उन अमित तेजस्वी भगवान् व्यासजीको नमस्कार है, जिनकी कृपासे मैं भगवान् वासुदेवकी इस कथाको कह सकूँगा। मुनिगण! आपलोगोंने भलीभाँति विचार करके मुझसे जो महान् प्रश्न पूछे हैं, उनका उत्तर भगवान् विष्णुकी कृपा हुए बिना कौन बतला सकता है? तथापि भरद्वाजजी! भगवान् नरसिंहकी कृपाके बलसे ही आपके प्रश्नोंके उत्तरमें अत्यन्त पवित्र नरसिंहपुराणकी कथा आरम्भ करता हूँ। आप ध्यानसे सुनें। अपने शिष्योंके साथ जो-जो मुनि यहाँ उपस्थित हैं, वे सब लोग भी सावधान होकर सुनें। मैं सभीको यथावत् रूपसे नरसिंहपुराणकी कथा सुनाता हूँ ॥ २५–३० ॥

**नारायणादिदं सर्वं समुत्पन्नं चराचरम् ।**
**तेनैव पाल्यते सर्वं नरसिंहादिमूर्तिभिः ॥३१॥**
**तथैव लीयते चान्ते हरौ ज्योतिःस्वरूपिणि ।**
**यथैव देवः सृजति तथा वक्ष्यामि तच्छृणु ॥३२॥**
**पुराणानां हि सर्वेषामयं साधारणः स्मृतः ।**
**श्लोको यस्तं मुने श्रुत्वा निःशेषं त्वं ततः शृणु ॥३३॥**
**सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।**
**वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥३४॥**
**आदिसर्गोऽनुसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।**
**वंशानुचरितं चैव वक्ष्याम्यनुसमासतः ॥३५॥**

यह समस्त चराचर जगत् भगवान् नारायणसे ही उत्पन्न हुआ और वे ही नरसिंहादि रूपोंसे सबका पालन करते हैं। इसी प्रकार अन्तमें यह जगत् उन्हीं ज्योतिःस्वरूप भगवान् विष्णुमें लीन हो जाता है। भगवान् जिस प्रकार सृष्टि करते हैं, उसे मैं बतलाता हूँ, आप सुनें। सृष्टिकी कथा पुराणोंमें ही विस्तारके साथ वर्णित है, अतः पुराणोंका लक्षण बतानेके लिये यह एक श्लोक साधारणतया सभी पुराणोंमें कहा गया है। मुने! इस श्लोकको पहले सुनकर फिर सारी बातें सुनियेगा। यह श्लोक इस प्रकार है—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन्हीं पाँच लक्षणोंसे युक्त 'पुराण' होता है। आदिसर्ग, अनुसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन सबका मैं क्रमशः संक्षिप्तरूपसे वर्णन करता हूँ ॥ ३१–३५ ॥

**आदिसर्गो महांस्तावत् कथयिष्यामि वै द्विजाः ।**
**यस्मादारभ्य देवानां राज्ञां चरितमेव च ॥३६॥**
**ज्ञायते सरहस्यं च परमात्मा सनातनः ।**
**प्राक्सृष्टेः प्रलयादूर्ध्वं नासीत् किंचिद्द्विजोत्तम ॥३७॥**
**ब्रह्मसंज्ञमभूदेकं ज्योतिष्मत्सर्वकारणम् ।**
**नित्यं निरञ्जनं शान्तं निर्गुणं नित्यनिर्मलम् ॥३८॥**
**आनन्दसागरं स्वच्छं यं काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ।**
**सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम् ॥३९॥**
**सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वाऽसौ ज्ञातृनायकः ।**
**अन्तर्लीनं विकारं च तत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥४०॥**

द्विजगण! आदिसर्ग महान् है, अतः पहले मैं उसीका वर्णन करता हूँ। वहाँसे सृष्टिका वर्णन आरम्भ करनेपर देवताओं और राजाओंके चरित्रोंका तथा सनातन परमात्माके तत्त्वका भी रहस्यसहित ज्ञान हो जाता है। द्विजोत्तम! सृष्टिके पहले महाप्रलय होनेके बाद ( परब्रह्मके सिवा ) कुछ भी शेष नहीं था। उस समय एकमात्र 'ब्रह्म'नामक तत्त्व ही विद्यमान था, जो परम प्रकाशमय और सबका कारण है। वह नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्गुण एवं सदा ही दोषरहित है। मुमुक्षु पुरुष विशुद्ध आनन्द-महासागर परमेश्वरकी अभिलाषा किया करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा और अव्यय ( अविकारी ) है। सृष्टि-रचनाका समय आनेपर उसी ज्ञानीश्वर परब्रह्मने जगत्को अपनेमें लीन जानकर पुनः उसकी सृष्टि आरम्भ की ॥ ३६–४० ॥

**तस्मात् प्रधानमुद्भूतं ततश्चापि महानभूत् ।**
**सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥४१॥**
**वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।**
**त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत ॥४२॥**
**यथा प्रधानं हि महान् महता स तथाऽऽवृतः ।**
**भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ॥४३॥**

ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं भूतादिः स समावृणोत् ॥४४॥
आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥४५॥
आकाशं शब्दतन्मात्रं स्पर्शमात्रं तथाऽऽवृणोत् ।
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ॥४६॥
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।
स्पर्शमात्रं तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् ॥४७॥
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि तु ॥४८॥
रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ।
विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥४९॥
तस्माज्जाता मही चेयं सर्वभूतगुणाधिका ।
संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धगुणो मतः ॥५०॥
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
तन्मात्राण्यविशेषाणि विशेषाः क्रमशो पराः ॥५१॥
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहंकारात्तु तामसात् ।
कीर्तितस्ते समासेन भरद्वाज मया तव ॥५२॥

उस ब्रह्मसे प्रधान ( मूलप्रकृति ) का आविर्भाव हुआ । प्रधानसे महत्तत्त्व प्रकट हुआ । सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे महत्तत्त्व तीन प्रकारका है । महत्तत्त्वसे वैकारिक ( सात्त्विक ), तैजस ( राजस ) और भूतादिरूप ( तामस )—इन तीन भेदोंसे युक्त अहंकार उत्पन्न हुआ । जिस प्रकार प्रधानसे महत्तत्त्व आवृत है, उसी प्रकार महत्तत्त्वसे अहंकार भी व्याप्त है । तदनन्तर 'भूतादि' नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्दतन्मात्राकी सृष्टि की और उससे 'शब्द' गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ । तब उस भूतादिने शब्द गुणवाले आकाशको आवृत किया । आकाशने भी विकृत होकर स्पर्शतन्मात्राकी सृष्टि की । उससे बलवान् वायुकी उत्पत्ति हुई । वायुका गुण स्पर्श माना गया है । फिर शब्द गुणवाले आकाशने 'स्पर्श' गुणवाले वायुको आवृत किया । तत्पश्चात् वायुने विकृत होकर रूपतन्मात्राकी सृष्टि की । उससे ज्योतिर्मय अग्निका प्रादुर्भाव हुआ । ज्योतिका गुण 'रूप' कहा गया है । फिर स्पर्शतन्मात्रारूप वायुने रूपतन्मात्रावाले तेजको आवृत किया । तब तेजने विकृत होकर रस-तन्मात्राकी सृष्टि की । उससे रस गुणवाला जल प्रकट हुआ । रूप गुणवाले तेजने रस गुणवाले जलको आवृत किया । तब जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की । उससे यह पृथिवी उत्पन्न हुई जो आकाशादि सभी भूतोंके गुणोंसे युक्त होनेके कारण उनसे अधिक गुणवाली है । गन्धतन्मात्रारूप पार्थिवतत्त्वसे ही स्थूल पिण्डकी उत्पत्ति होती है । पृथिवीका गुण 'गन्ध' है । उन-उन आकाशादि भूतोंमें तन्मात्राएँ हैं अर्थात् केवल उनके गुण शब्द आदि ही हैं । इसलिये वे तन्मात्रा ( गुण ) रूप ही कहे गये हैं । तन्मात्राएँ अविशेष कही गयी हैं; क्योंकि उनमें 'अमुक तन्मात्रा आकाशकी है और अमुक वायुकी' इसका ज्ञान करानेवाला कोई विशेष भेद ( अन्तर ) नहीं होता । किंतु उन तन्मात्राओंसे प्रकट हुए आकाशादि भूत क्रमशः विशेष ( भेद- )युक्त होते हैं । इसलिये उनकी 'विशेष' संज्ञा है । भरद्वाजजी ! तामस अहंकारसे होनेवाली यह पञ्चभूतों और तन्मात्राओंकी सृष्टि मैंने आपसे थोड़ेमें कह दी ॥ ४१—५२ ॥

तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनश्चात्र कीर्तितं तत्र चिन्तकैः ॥५३॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चात्र पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ।
तानि वक्ष्यामि तेषां च कर्माणि कुलपावन ॥५४॥
श्रवणे च दृशौ जिह्वा नासिका त्वक् च पञ्चमी ।
शब्दादिज्ञानसिद्ध्यर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै ॥५५॥
पायूपस्थे हस्तपादौ वाग्भरद्वाज पञ्चमी ।
विसर्गानन्दशिल्पी च गत्युक्ती कर्म तत्स्मृतम् ॥५६॥

सृष्टि-तत्त्वपर विचार करनेवाले विद्वानोंने इन्द्रियोंको तैजस अहंकारसे उत्पन्न बतलाया है और उनके अभिमानी दस देवताओं तथा ग्यारहवें मनको वैकारिक अहंकारसे उत्पन्न कहा है । कुलको पवित्र करनेवाले भरद्वाजजी ! इन इन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । अब मैं उन सम्पूर्ण इन्द्रियों तथा उनके कर्मोंका वर्णन कर रहा हूँ । कान, नेत्र, जिह्वा, नाक और पाँचवीं त्वचा—ये पाँच 'ज्ञानेन्द्रियाँ' कही गयी हैं, जो शब्द आदि विषयोंका ज्ञान करानेके लिये हैं । तथा पायु ( गुदा ), उपस्थ ( लिङ्ग ), हाथ, पाँव और वाक्-इन्द्रिय—ये 'कर्मेन्द्रियाँ' कहलाती हैं । विसर्ग ( मल-त्याग ), आनन्द ( मैथुनजनित सुख ),

शिल्प ( हाथकी कला ), गमन और बोलना—ये ही क्रमशः इन कर्मेन्द्रियोंके पाँच कर्म कहे गये हैं ॥ ५३—५६ ॥

आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ।
शब्दादिभिर्गुणैर्विप्र संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥५७॥
नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना ।
नाशक्नुवन् प्रजां स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥५८॥
समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयात् ।
एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥५९॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्तास्त्वण्डमुत्पादयन्ति ते ॥६०॥
तत्क्रमेण विवृद्धं तु जलबुद्बुदवत् स्थितम् ।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम् ॥६१॥
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः ॥६२॥
ब्रह्मस्वरूपमास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः ।
मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याभूवन् महात्मनः ॥६३॥

विप्र ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँच भूत क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन गुणोंसे उत्तरोत्तर युक्त हैं, अर्थात् आकाशमें एकमात्र शब्द गुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं, तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण हैं, इसी प्रकार जलमें चार और पृथिवीमें पाँच गुण हैं। ये पञ्चभूत अलग-अलग भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त हैं, अतः परस्पर पूर्णतया मिले बिना ये सृष्टि-रचना नहीं कर सके। तब एक ही संघातको उत्पन्न करना जिनका लक्ष्य है, उन महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूत-पर्यन्त सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर एक-दूसरेका आश्रय ले, सर्वथा एकरूपताको प्राप्त हो, प्रधानतत्त्वके अनुग्रहसे एक अण्डकी उत्पत्ति की। वह अण्ड क्रमशः बड़ा होकर जलके ऊपर बुलबुलेके समान स्थित हुआ। महाबुद्धे ! समस्त भूतोंसे प्रकट हो जलपर स्थित हुआ। वह महान् प्राकृत अण्ड ब्रह्मा ( हिरण्यगर्भ ) रूप भगवान् विष्णुका अत्यन्त उत्तम आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही हिरण्यगर्भ-रूपसे विराजमान हुए। उस समय सुमेरु पर्वत उन महात्मा भगवान् हिरण्यगर्भका उल्ब ( गर्भको ढँकनेवाली झिल्ली ) था। अन्यान्य पर्वत जरायुज ( गर्भाशय ) थे और समुद्र ही गर्भाशयके जल थे ॥ ५७—६३ ॥

अद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥६४॥
रजोगुणयुतो देवः स्वयमेव हरिः परः ।
ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्सृष्टौ प्रवर्तते ॥६५॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
नरसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत् ॥६६॥
ब्राह्मेण रूपेण सृजत्यनन्तो
जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन् ।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति
भूत्वाथ रुद्रः प्रकरोति नाशम् ॥६७॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे 'सर्गनिरूपणं' नाम प्रथमोऽध्यायः ।*

पर्वत, द्वीप, समुद्र और ग्रह-ताराओंसहित समस्त लोक तथा देवता, असुर और मनुष्यादि प्राणी सभी उस अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। परमेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही रजोगुणसे युक्त ब्रह्माका स्वरूप धारणकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। जबतक कल्पकी स्थिति रहती है, तबतक वे ही नरसिंहादि-रूपसे प्रत्येक युगमें अपने रचे हुए इस जगत्की रक्षा करते हैं और कल्पान्तमें रुद्ररूपसे इसका संहार कर लेते हैं। भगवान् अनन्त स्वयं ही ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं, फिर इसके पालनकी इच्छासे रामादि अवतार धारणकर इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें रुद्ररूप होकर समस्त जगत्का नाश कर देते हैं ॥ ६४—६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंह-पुराणमें 'सर्गका निरूपण' विषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

# दूसरा अध्याय

## ब्रह्मा आदिकी आयु और कालका स्वरूप

सूत उवाच

ब्रह्मा भूत्वा जगत्सृष्टौ नरसिंहः प्रवर्तते ।
यथा ते कथयिष्यामि भरद्वाज निबोध मे ॥ १ ॥
नारायणाख्यो भगवान् ब्रह्मलोकपितामहः ।
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन् नित्योऽसावुपचारतः॥ २ ॥
निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ।
तत्पराख्यं तदर्धं च परार्धमभिधीयते ॥ ३ ॥
कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ ।
तेन तस्य निबोध त्वं परिमाणोपपादनम् ॥ ४ ॥
अन्येषां चैव भूतानां चराणामचराश्च ये ।
भूभूभृत्सागरादीनामशेषाणां च सत्तम ॥ ५ ॥
संख्याज्ञानं च ते वच्मि मनुष्याणां निबोध मे ।

**सूतजी कहते हैं**—भरद्वाज ! भगवान् नरसिंह जिस प्रकार ब्रह्मा होकर जगत्की सृष्टिके कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसका मैं आपसे वर्णन करता हूँ, सुनिये । विद्वन् ! 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा नित्य—सनातन पुरुष हैं, तथापि वे 'उत्पन्न हुए हैं'—ऐसा उपचारसे कहा जाता है । उनके अपने परिमाणसे उनकी आयु सौ वर्षकी बतायी जाती है । उस सौ वर्षका नाम 'पर' है । उसका आधा 'परार्ध' कहलाता है । निष्पाप महर्षे ! साधुशिरोमणे ! मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके जिस कालस्वरूपका वर्णन किया था, उसीके द्वारा उस ब्रह्माकी तथा दूसरे भी जो पृथ्वी, पर्वत और समुद्र आदि पदार्थ एवं चराचर जीव हैं, उनकी आयुका परिमाण नियत किया जाता है । अब मैं आपसे मनुष्योंकी 'काल-गणना'का ज्ञान बता रहा हूँ, सुनिये ॥ १—५½ ॥

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठैका परिकीर्तिता ॥ ६ ॥
काष्ठास्त्रिंशत्कला ज्ञेया कलास्त्रिंशन्मुहूर्तकम् ।
त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम् ॥ ७ ॥
अहोरात्राणि तावन्ति मासपक्षद्वयात्मकः ।
तैः षड्भिरयनं मासैर्द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ ८ ॥
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ।
अयनद्वितयं वर्षं मर्त्यानामिह कीर्तितम् ॥ ९ ॥
नृणां मासः पितॄणां तु अहोरात्रमुदाहृतम् ।
वस्वादीनामहोरात्रं मानुषो वत्सरः स्मृतः ॥१०॥
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु युगं त्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे ॥११॥

अठारह निमेषोंकी एक 'काष्ठा' कही गयी है, तीस काष्ठाओंकी एक 'कला' समझनी चाहिये तथा तीस कलाओंका एक 'मुहूर्त' होता है । तीस मुहूर्तोंका एक मानव 'दिन-रात' माना गया है । उतने ही ( तीस ही ) दिन-रात मिलकर एक 'मास' होता है । इसमें दो पक्ष होते हैं । छः महीनोंका एक 'अयन' होता है । अयन दो हैं—'दक्षिणायन' और 'उत्तरायण' । दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन । दो अयन मिलकर मनुष्योंका एक 'वर्ष' कहा गया है । मनुष्योंका एक मास पितरोंका एक दिन-रात बताया गया है और मनुष्योंका एक वर्ष वसु आदि देवताओंका एक दिन-रात कहा गया है । देवताओंके बारह हजार वर्षोंका त्रेता आदि नामक चतुर्युग होता है । उसका विभाग आपलोग मुझसे समझ लें ॥ ६—११ ॥

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः ॥१२॥
तत्प्रमाणैः शतैः संध्या पूर्वा तत्र विधीयते ।
संध्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः ॥१३॥
संध्यासंध्यांशयोर्मध्ये यः कालो वर्तते द्विज ।
युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञकः ॥१४॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
प्रोच्यते तत्सहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसं द्विज ॥१५॥
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश ।
भवन्ति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु ॥१६॥
सप्तर्षयस्तु शक्रोऽथ मनुस्तत्सूनवोऽपि ये ।
एककालं हि सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत् ॥१७॥

**चतुर्युगाणां संख्या च साधिका ह्येकसप्ततिः ।**
**मन्वन्तरं मनोः कालः शक्रादीनामपि द्विज ॥१८॥**
**अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतः ।**
**द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥१९॥**
**त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज ।**
**सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥२०॥**
**विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना ।**
**मन्वन्तरस्य संख्येयं मानुषैर्वत्सरैर्द्विज ॥२१॥**

पुराण-तत्त्ववेत्ताओंने कृत आदि युगोंका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष बतलाया है । ब्रह्मन् ! प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सौ वर्षोंकी 'संध्या' कही गयी है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले 'संध्यांश' होते हैं । विप्र ! संध्या और संध्यांशके बीचका जो काल है, उसे सत्ययुग और त्रेता आदि नामोंसे प्रसिद्ध युग समझना चाहिये । 'सत्ययुग', 'त्रेता', 'द्वापर' और 'कलि'—ये चार युग मिलकर 'चतुर्युग' कहलाते हैं । द्विज ! एक हजार चतुर्युग मिलकर 'ब्रह्माका एक दिन' होता है । ब्रह्मन् ! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं । उनका कालकृत परिमाण सुनिये । सप्तर्षि, इन्द्र, मनु और मनु-पुत्र—ये पूर्व कल्पानुसार एक ही समय उत्पन्न किये जाते हैं तथा इनका संहार भी एक ही साथ होता है । ब्रह्मन् ! इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक काल एक 'मन्वन्तर' कहलाता है । यही मनु तथा इन्द्रादि देवोंका काल है । इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनाके अनुसार यह मन्वन्तर आठ लाख बावन हजार वर्षोंका समय कहा गया है । महामुने ! द्विजवर ! मानवीय वर्ष-गणनाके अनुसार पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्षोंका काल एक मन्वन्तरका परिमाण है । इससे अधिक नहीं ॥ १२—२१ ॥

**चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् ।**
**विश्वसादौ सुमनसा सृष्ट्वा देवांस्तथा पितॄन् ॥२२॥**
**गन्धर्वान् राक्षसान् यक्षान् पिशाचान् गुह्यकांस्तथा ।**
**ऋषीन् विद्याधरांश्चैव मनुष्यांश्च पशूंस्तथा ॥२३॥**
**पक्षिणः स्थावरांश्चैव पिपीलिकभुजङ्गमान् ।**
**चातुर्वर्ण्यं तथा सृष्ट्वा नियुक्त्वाध्वरकर्मणि ॥२४॥**
**पुनर्दिनान्ते त्रैलोक्यमुपसंहृत्य स प्रभुः ।**
**शेते चानन्तशयने तावतीं रात्रिमव्ययः ॥२५॥**
**तस्यान्तेऽभून्महान्कल्पो ब्राह्म इत्यभिविश्रुतः ।**
**यस्मिन् मत्स्यावतारोऽभून्मन्थनं च महोदधेः ॥२६॥**
**तद्वद्वाराहकल्पश्च तृतीयः परिकल्पितः ।**
**यत्र विष्णुः स्वयं भूत्वा वाराहं वपुराश्रितः ।**
**उद्धर्तुं वसुधां देवीं स्तूयमानो महर्षिभिः ॥२७॥**
**सृष्ट्वा जगद्व्योमचराप्रमेयः**
**प्रजाश्च सृष्ट्वा सकलास्तथेशः ।**
**नैमित्तिकाख्ये प्रलये समस्तं**
**संहृत्य शेते हरिरादिदेवः ॥२८॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सर्गरचनायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥*

इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका एक दिन होता है । ब्रह्माजीने विश्व-सृष्टिके आदिकालमें प्रसन्न मनसे देवताओं तथा पितरोंकी सृष्टि करके गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, पिशाच, गुह्यक, ऋषि, विद्याधर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर ( वृक्ष-पर्वत आदि ), पिपीलिका ( चींटी ) और साँपोंकी रचना की है । फिर चारों वर्णोंकी सृष्टि करके वे उन्हें यज्ञकर्ममें नियुक्त करते हैं । तत्पश्चात् दिन बीतनेपर वे अविनाशी प्रभु त्रिभुवनका उपसंहार करके दिनके ही बराबर परिमाणवाली रात्रिमें शेषनागकी शय्यापर सोते हैं । उस रात्रिके बीतनेपर 'ब्राह्म'-नामक विख्यात महाकल्प हुआ, जिसमें भगवान्‌का मत्स्यावतार और समुद्र-मन्थन हुआ । इस ब्राह्म-कल्पके ही समान तीसरा 'वाराह-कल्प' हुआ, जिसमें कि भगवती वसुंधरा ( पृथ्वी ) का उद्धार करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णुने प्रसन्नतापूर्वक वाराहरूप धारण किया । उस समय महर्षिगण उनकी स्तुति करते थे । स्थलचर और आकाशचारी जीवोंके द्वारा जिनकी इयत्ताको जान लेना नितान्त असम्भव है, वे आदिदेव भगवान् विष्णु समस्त प्रजाओंकी सृष्टि कर नैमित्तिक प्रलयमें सबका संहार करके शयन करते हैं ॥ २२—२८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सृष्टिवर्णनविषयक' दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

# तीसरा अध्याय

## ब्रह्माजीद्वारा लोकरचना और नौ प्रकारकी सृष्टियोंका निरूपण

सूत उवाच

तत्र सुप्तस्य देवस्य नाभौ पद्ममभून्महत् ।
तस्मिन् पद्मे महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १ ॥
ब्रह्मोत्पन्नः स तेनोक्तः प्रजाः सृज महामते ।
एवमुक्त्वा तिरोभावं गतो नारायणः प्रभुः ॥ २ ॥
तथेत्युक्त्वा स तं देवं विष्णुं ब्रह्मापि चिन्तयन् ।
आस्ते किंचिज्जगद्बीजं नाभ्यगच्छत किंचन ॥ ३ ॥
तावत्तस्य महान् रोषो ब्रह्मणोऽभून्महात्मनः ।
ततो बालः समुत्पन्नस्तस्याङ्के रोषसम्भवः ॥ ४ ॥
स रुदन्वारितस्तेन ब्रह्मणा व्यक्तमूर्तिना ।
नाम मे देहि चेत्युक्तस्तस्य रुद्रेत्यसौ ददौ ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—महाभाग ! नैमित्तिक प्रलयकालमें सोये हुए भगवान् नारायणकी नाभिमें एक महान् कमल उत्पन्न हुआ । उसीसे वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ । तब उनसे भगवान् नारायणने कहा—'महामते ! तुम प्रजाकी सृष्टि करो' और यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये । उन भगवान् विष्णुसे 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी सोचने लगे—'क्या जगत्की सृष्टिका कोई बीज है ?' परंतु बहुत सोचनेपर भी उन्हें किसी बीजका पता न लगा । तब महात्मा ब्रह्माजीको महान् रोष हुआ । रोष होते ही उनकी गोदमें एक बालक प्रकट हो गया, जो उनके रोषसे ही प्रादुर्भूत हुआ था । उस बालकको रोते देख स्थूल शरीरधारी ब्रह्माजीने उसे रोनेसे मना किया । फिर उसके यह कहनेपर कि 'मेरा नाम रख दीजिये', उन्होंने उसका 'रुद्र' नाम रख दिया ॥ १—५ ॥

तेनासौ विसृजस्वेति प्रोक्तो लोकमिमं पुनः ।
अशक्तस्तत्र सलिले ममज्ज तपसाऽऽदृतः ॥ ६ ॥
तस्मिन् सलिलमग्ने तु पुनरन्यं प्रजापतिः ।
ब्रह्मा ससर्ज भूतेशो दक्षिणाङ्गुष्ठतोऽपरम् ॥ ७ ॥
दक्षं वामे ततोऽङ्गुष्ठे तस्य पत्नी व्यजायत ।
स तस्यां जनयामास मनुं स्वायम्भुवं प्रभुः ॥ ८ ॥
तस्मात् सम्भाविता सृष्टिः प्रजानां ब्रह्मणा तदा ।
इत्येवं कथिता सृष्टिर्मया ते मुनिसत्तम ।
सृजतो जगतीं तस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९ ॥

इसके बाद ब्रह्माजीने उससे कहा कि 'तुम इस लोककी सृष्टि करो'—यह कहनेपर उस कार्यमें असमर्थ होनेके कारण वह सादर तपस्याके लिये जलमें निमग्न हो गया । उसके जलमें निमग्न हो जानेपर भूतनाथ प्रजापति ब्रह्माजीने फिर अपने दाहिने अँगूठेसे 'दक्ष' नामक एक दूसरे पुत्रको उत्पन्न किया, तत्पश्चात् बायें अँगूठेसे उसकी पत्नी प्रकट हुई । प्रभु दक्षने उस स्त्रीसे स्वायम्भुव मनुको जन्म दिया । तब ब्रह्माजीने उसी मनुसे प्रजाओंकी सृष्टि बढ़ायी । मुनिवर ! वसुधाकी सृष्टि करनेवाले उस विधाताकी सृष्टि-रचनाका यह क्रम मैंने आपसे वर्णन किया । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ ६—९ ॥

भरद्वाज उवाच

संक्षेपेण तदाऽऽख्यातं त्वया मे लोमहर्षण ।
विस्तरेण पुनर्ब्रूहि आदिसर्गं महामते ॥ १० ॥

भरद्वाजजी बोले—लोमहर्षणजी ! आपने यह सब वृत्तान्त मुझसे पहले संक्षेपसे कहा है । महामते ! अब आप विस्तारके साथ आदिसर्गका वर्णन कीजिये ॥ १० ॥

सूत उवाच

तथैव कल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः प्रभुः ।
सत्त्वोद्रिक्तस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥ ११ ॥
नारायणः परोऽचिन्त्यः पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः ॥ १२ ॥
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवात्मकम् ॥ १३ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १४ ॥
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्वकं तस्य प्रादुर्भूतं तमस्तदा ॥ १५ ॥

सूतजी बोले—पिछले कल्पका अन्त होनेपर रात्रिमें

सोकर उठनेके बाद सत्त्वगुणके उद्रेकसे युक्त ( नारायणस्वरूप ) भगवान् ब्रह्माजीने उस समय सम्पूर्ण लोकको शून्यमय देखा । वे ब्रह्मरूपी भगवान् नारायण कहे गये हैं, अचिन्त्य हैं, पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके कारण हैं । इस जगत्‌की उत्पत्तिके कारणभूत उन ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवके विषयमें पुराणवेत्ता विद्वान् यह श्लोक कहते हैं—"जल भगवान् नर—पुरुषोत्तमसे उत्पन्न है, इसलिये 'नार' कहलाता है । नार ( जल ) ही उनका प्रथम अयन ( आदि शयन-स्थान ) है, इसलिये वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं ।" इस प्रकार कल्पके आदिमें पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करते समय ब्रह्माजीके बिना जाने ही असावधानता हो जानेके कारण तमोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ११–१५ ॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥१६॥
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ।
मुख्यसर्गः स विज्ञेयः सर्गसिद्धिविचक्षणैः ॥१७॥
पुनर्ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः समपद्यत ।
तिर्यक्स्रोतस्ततस्तस्मात् तिर्यग्योनिस्ततः स्मृतः ॥१८॥
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणश्च ये ।
तमप्यसाधकं मत्वा तिर्यग्योनिं चतुर्मुखः ॥१९॥
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्त्विकः समवर्तत ।
तदा तुष्टोऽन्यसर्गं च चिन्तयामास वै प्रभुः ॥२०॥
ततश्चिन्तयतस्तस्य सर्गवृद्धिं प्रजापतेः ।
अर्वाक्स्रोताः समुत्पन्ना मनुष्याः साधका मताः ॥२१॥
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥२२॥

उस समय उन महात्मासे तम ( अज्ञान ), मोह, महामोह ( भोगेच्छा ), तामिस्र ( क्रोध ) और अन्धतामिस्र ( अभिनिवेश ) नामक पञ्चपर्वा ( पाँच प्रकारकी ) अविद्या उत्पन्न हुई । फिर सृष्टिके लिये ध्यान करते हुए ब्रह्माजीसे वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुध् एवं तृणरूप पाँच प्रकारका स्थावरात्मक सर्ग हुआ, जो बाहर-भीतरसे प्रकाशरहित, अविद्यासे आवृत एवं ज्ञानशून्य था । सर्गसिद्धिके ज्ञाता विद्वान् इसे 'मुख्य सर्ग' समझें; ( क्योंकि अचल वस्तुओंको मुख्य कहा गया है । ) फिर सृष्टिके लिये ध्यान करनेपर उन ब्रह्माजीसे तिर्यक्-स्रोत नामक सृष्टि हुई । तिरछा चलनेके कारण उसकी 'तिर्यक्' संज्ञा है । उससे उत्पन्न हुआ सर्ग 'तिर्यग्योनि' कहा जाता है । वे विख्यात पशु आदि जो कुमार्गसे चलनेवाले हैं, तिर्यग्योनि कहलाते हैं । चतुर्मुख ब्रह्माजीने उस तिर्यक्स्रोता सर्गको पुरुषार्थका असाधक मानकर जब पुनः सृष्टिके लिये चिन्तन किया, तब उनसे तृतीय 'ऊर्ध्वस्रोता' नामक सर्ग हुआ । यह सत्त्वगुणसे युक्त था ( यही 'देवसर्ग' है ) । तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर पुनः अन्य सृष्टिके लिये चिन्तन किया । तदनन्तर सर्गकी वृद्धिके विषयमें चिन्तन करते हुए उन प्रजापतिसे 'अर्वाक्स्रोता' नामक सर्गकी उत्पत्ति हुई । इसीके अन्तर्गत मनुष्य हैं, जो पुरुषार्थके साधक माने गये हैं । इनमें प्रकाश ( सत्त्वगुण ), और रज—इन दो गुणोंकी अधिकता है और तमोगुण भी है । इसलिये ये अधिकतर दुःखी और अत्यधिक क्रियाशील होते हैं ॥ १६–२२ ॥

एते ते कथिताः सर्गा बहवो मुनिसत्तम ।
प्रथमो महतः सर्गस्तन्मात्राणां द्वितीयकः ॥२३॥
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥२४॥
तिर्यक्स्रोताश्च यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स उच्यते ।
ततोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥२५॥
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमो मानुषः स्मृतः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विको य उदाहृतः ॥२६॥
नवमो रुद्रसर्गस्तु नव सर्गाः प्रजापतेः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥२७॥
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ।
सृजतो ब्रह्मणः सृष्टिमुत्पन्ना ये मयेरिताः ॥२८॥
तं तं चिन्त्यं च परं परेशो
मायाविदूरश्च सुखस्त्वनन्तः ।
अव्यक्तरूपी परमात्मसंज्ञः
सम्प्रेक्ष्यमाणो निखिलात्मकेशः ॥२९॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे [illegible] नाम*
*तृतीयोऽध्यायः ॥३॥*

मुनिश्रेष्ठ ! इन बहुत-से सर्गोंका मैंने आपसे वर्णन किया है । इनमें 'महत्तत्त्व'को पहला सर्ग कहा गया है । दूसरा सर्ग

तन्मात्राओंका है । तीसरा वैकारिक सर्ग है, जो 'ऐन्द्रियक' ( इन्द्रियसम्बन्धी ) कहलाता है । चौथा 'मुख्य' सर्ग है । स्थावर ( वृक्ष, गुल्म, लता आदि ) ही मुख्य कहे गये हैं । तिर्यक्स्रोता नामक जो पाँचवाँ सर्ग कहा गया है, वह 'तिर्यग्योनि' कहलाता है । इसके बाद छठा 'ऊर्ध्वस्रोताओं'का सर्ग है । उसे 'देवसर्ग' कहा जाता है । फिर सातवाँ अर्वाक्स्रोताओंका सर्ग है, उसे 'मानव-सर्ग' कहते हैं । आठवाँ 'अनुग्रह-सर्ग' है, जिसे 'सात्त्विक' कहा गया है । नवाँ 'कौमार' सर्ग है—ये ही नौ सर्ग प्रजापतिसे उत्पन्न हुए हैं । इनमें पहलेके तीन 'प्राकृत सर्ग' कहे गये हैं । उसके बादवाले पाँच 'वैकृत सर्ग' हैं और नवाँ जो 'कौमार सर्ग' है, वह प्राकृत और वैकृत भी है । इस प्रकार सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त हुए ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए, जो जगत्‌की उत्पत्तिके मूलकारण प्राकृत और वैकृत सर्ग हैं, उनका मैंने वर्णन किया । सबके आत्मरूपसे जाननेयोग्य अव्यक्तस्वरूप परमात्मा परमेश्वर भगवान् अनन्त देव अपनी मायाका आश्रय लेकर प्रेरित होते हुए-से उन-उन विकारोंकी सृष्टि करते हैं ॥ २३—२९

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सृष्टि-रचनाका प्रकार' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

## चौथा अध्याय

### अनुसर्गके स्रष्टा

भरद्वाज उवाच

**नवधा सृष्टिरुत्पन्ना ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।**
**कथं सा ववृधे सूत एतत्कथय मेऽधुना ॥ १ ॥**

भरद्वाजजी बोले—सूतजी ! अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजीसे जो नौ प्रकारकी सृष्टि हुई, उसका विस्तार किस प्रकार हुआ ? यही इस समय आप हमें बतलाइये ॥ १ ॥

सूत उवाच

**प्रथमं ब्रह्मणा सृष्टा मरीच्यादय एव च ।**
**मरीचिरत्रिश्च तथा अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ॥ २ ॥**
**पुलस्त्यश्च महातेजाः प्रचेता भृगुरेव च ।**
**नारदो दशमश्चैव वसिष्ठश्च महामतिः ॥ ३ ॥**
**सनकाद्या निवृत्ताख्ये ते च धर्मे नियोजिताः ।**
**प्रवृत्ताख्ये मरीच्याद्या मुक्त्वैकं नारदं मुनिम् ॥ ४ ॥**

सूतजी बोले—ब्रह्माजीने पहले जिन मरीचि आदि ऋषियोंको उत्पन्न किया, उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, महातेजस्वी पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, नारद और दसवें महाबुद्धिमान् वसिष्ठ हैं । सनक आदि ऋषि निवृत्तिधर्ममें तत्पर हुए और एकमात्र नारद मुनिको छोड़कर शेष सभी मरीचि आदि मुनि प्रवृत्ति-धर्ममें नियुक्त हुए ॥ २—४ ॥

**योऽसौ प्रजापतिस्त्वन्यो दक्षनामाङ्गसम्भवः ।**
**तस्य दौहित्रवंशेन जगदेतच्चराचरम् ॥ ५ ॥**
**देवाश्च दानवाश्चैव गन्धर्वोरगपक्षिणः ।**
**सर्वे दक्षस्य कन्यासु जाताः परमधार्मिकाः ॥ ६ ॥**
**चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।**
**वृद्धिं गतानि तान्येवमनुसर्गोद्भवानि तु ॥ ७ ॥**
**अनुसर्गस्य कर्तारो मरीच्याद्या महर्षयः ।**
**वसिष्ठान्ता महाभागा ब्रह्मणो मानसोद्भवाः ॥ ८ ॥**
**सर्गे तु भूतानि धियश्च खानि**
**ख्यातानि सर्वं सृजते महात्मा ।**
**स एव पश्चाच्चतुराननात्मा**
**मुनिस्वरूपी च सृजत्यनन्तः ॥ ९ ॥**

इति श्रीनरसिंहपुराणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न जो 'दक्ष' नामक दूसरे प्रजापति कहे गये हैं, उनके दौहित्रोंके वंशसे यह चराचर जगत् व्याप्त है । देव, दानव, गन्धर्व, उरग ( सर्प ) और पक्षी—ये सभी, जो सब-के-सब बड़े धर्मात्मा थे, दक्षकी कन्याओंसे उत्पन्न हुए । चार प्रकारके चराचर प्राणी अनुसर्गमें उत्पन्न होकर वृद्धिको प्राप्त हुए । महाभाग ! पूर्वोक्त मरीचिसे लेकर वसिष्ठतक सभी श्रीब्रह्माजीकी मानस संतान हैं । ये सब अनुसर्गके कर्ता हैं । सर्ग अर्थात् आदिसृष्टिमें महात्मा भगवान् नारायण पाँच महाभूत, बुद्धि तथा पूर्वोक्त इन्द्रियवर्ग—इन सबको उत्पन्न करते हैं । इसके पश्चात् ( अनुसर्गकालमें ) वे अनन्तदेव स्वयं ही चतुर्मुख ब्रह्मा और मरीचि आदि मुनियोंके रूपमें प्रकट हो जगत्‌की सृष्टि करते हैं ॥ ५—९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

# पाँचवाँ अध्याय

## रुद्र आदि सर्गों और अनुसर्गोंका वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंकी संततिका विस्तार

भरद्वाज उवाच

रुद्रसर्गं तु मे ब्रूहि विस्तरेण महामते ।
पुनः सर्वे मरीच्याद्याः ससृजुस्ते कथं पुनः ॥ १ ॥
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं भवेत् ।
ब्रह्मणो मनसः पूर्वमुत्पन्नस्य महामते ॥ २ ॥

भरद्वाजजी बोले—महामते ! अब मुझसे रुद्रसर्गका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा यह भी बताइये कि मरीचि आदि महर्षियोंने पहले किस प्रकार सृष्टि की ? महाबुद्धिमान् सूत ! वसिष्ठजी तो पहले ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए थे, फिर वे मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये ? ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

रुद्रसृष्टिं प्रवक्ष्यामि तत्सर्गांश्चैव सत्तम ।
प्रतिसर्गं मुनीनां तु विस्तराद्वदतः शृणु ॥ ३ ॥
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः ।
प्रादुरासीत् प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ॥ ४ ॥
अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।
तेजसा भासयन् सर्वा दिशश्च प्रदिशश्च सः ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा तेजसा दीप्तं प्रत्युवाच प्रजापतिः ।
विभजात्मानमद्य त्वं मम वाक्यान्महामते ॥ ६ ॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा विप्र रुद्रस्तेन प्रतापवान् ।
स्त्रीभावं पुरुषत्वं च पृथक् पृथगथाकरोत् ॥ ७ ॥
बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा च सः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे द्विजसत्तम ॥ ८ ॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यः कपाली रुद्र एव च ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ ९ ॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ १० ॥
स्त्रीत्वं चैव तथा रुद्रो बिभेद दशधैकधा ।
उमैव बहुरूपेण पत्नी सैव व्यवस्थिता ॥ ११ ॥

**सूतजी बोले**—ऋषिशिरोमणे ! आपके प्रश्नानुसार मैं अब रुद्र-सृष्टिका तथा उसमें होनेवाले सर्गोंका वर्णन करूँगा; साथ ही मुनियोंद्वारा सम्पादित प्रतिसर्ग ( अनुसर्ग ) को भी मैं विस्तारके साथ बताऊँगा; आपलोग ध्यानसे सुनें । कल्पके आदिमें प्रभु ब्रह्माजी अपने ही समान शक्तिशाली पुत्र होनेका चिन्तन कर रहे थे । उस समय उनकी गोदमें एक नीललोहित वर्णका बालक प्रकट हुआ । उसका आधा शरीर स्त्रीका और आधा पुरुषका था । वह प्रचण्ड एवं विशालकाय था और अपने तेजसे दिशाओं तथा अवान्तर दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था । उसे तेजसे देदीप्यमान देख प्रजापतिने कहा—'महामते ! तुम अब मेरे कहनेसे तुम अपने शरीरके दो भाग कर लो ।' विप्र ! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर प्रतापी रुद्रने अपने स्त्रीरूप और पुरुषरूपको अलग-अलग कर लिया । द्विजश्रेष्ठ ! फिर पुरुषरूपको उन्होंने ग्यारह रूपोंमें विभक्त किया; मैं उन सबके नाम बतलाता हूँ, सुनें । अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, कपाली, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी और रैवत—ये 'ग्यारह रुद्र' कहे गये हैं, जो तीनों भुवनोंके स्वामी हैं । पुरुषकी भाँति स्त्रीरूपके भी रुद्रने ग्यारह विभाग किये । भगवती उमा ही अनेक रूप धारणकर इन सबकी पत्नी हैं ॥ ३-११ ॥

तपः कृत्वा जले घोरमुत्तीर्णः स यदा पुरा ।
तदा स सृष्टवान् देवो रुद्रस्तत्र प्रतापवान् ॥ १२ ॥
तपोबलेन विप्रेन्द्र भूतानि विविधानि च ।
पिशाचान् राक्षसांश्चैव सिंहोष्ट्रमकराननान् ॥ १३ ॥
वेतालप्रमुखान् भूतानन्यांश्चैव सहस्रशः ।
विनायकानामुग्राणां त्रिंशत्कोटिश्च तेन च ॥ १४ ॥
अन्यकार्यं समुद्दिश्य सृष्टवान् स्कन्दमेव च ।
एवंप्रकारो रुद्रोऽसौ मया ते कीर्तितः प्रभुः ॥ १५ ॥

विप्रेन्द्र ! पूर्वकालमें प्रतापी रुद्रदेव जलमें घोर तपस्या करके जब बाहर निकले, तब अपने तपोबलसे उन्होंने वहाँ नाना प्रकारके भूतोंकी सृष्टि की । सिंह, ऊँट और मगरके समान मुँहवाले पिशाचों, राक्षसों तथा वेताल आदि अन्य सहस्रों भूतोंको उत्पन्न किया । बादमें तीस करोड़ उग्र

प्रभाववाले विनायकगणोंकी सृष्टि की तथा दूसरे कार्यके उद्देश्यसे रुद्रको उत्पन्न किया। इस प्रकार कुमारादि सर्ग तथा उनके सर्गोंका मैंने आपसे वर्णन किया ॥ १२—१५ ॥

अनुसर्गं मरीच्यादेः कथयामि निबोध मे ।
देवादिस्थावरान्ताश्च प्रजाः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥१६॥
यदास्य च प्रजाः सर्वा न व्यवर्धन्त धीमतः ।
तदा मानसपुत्रान् स सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥१७॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं चैव महामतिम् ॥१८॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
अग्निश्च पितरश्चैव ब्रह्मपुत्रौ तु मानसौ ॥१९॥
सृष्टिकाले महाभागौ ब्रह्मन् स्वायम्भुवोद्भवौ ।
शतरूपां च सृष्ट्वा तु कन्यां स मनवे ददौ ॥२०॥

अब मरीचि आदि ऋषियोंके अनुसर्गका वर्णन करता हूँ, आप सुनें। स्वयम्भू ब्रह्माजीने देवताओंसे लेकर स्थावरों तक सारी प्रजाओंकी सृष्टि की। किंतु इन बुद्धिमान् ब्रह्माजीकी ये सब प्रजाएँ जब वृद्धिको प्राप्त नहीं हुईं, तब इन्होंने अपने ही समान मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ और महाबुद्धिमान् भृगुको उत्पन्न किया। ये लोग पुराणमें नौ ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। ब्रह्मन्! अग्नि और पितर भी ब्रह्माके ही मानस-पुत्र हैं। इन दोनों महाभागोंको सृष्टिकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने उत्पन्न किया। फिर उन्होंने 'शतरूपा' नामक कन्याकी सृष्टि करके उसे मनुको दे दिया ॥१६—२०॥

तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूतिं चैव कन्यकाम् ॥२१॥
ददौ प्रसूतिं दक्षाय मनुः स्वायम्भुवः सुताम् ।
प्रसूत्यां च तदा दक्षश्चतुर्विंशतिकं तथा ॥२२॥
ससर्ज कन्यकास्तासां शृणु नामानि मेऽधुना ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा तथा क्रिया ॥२३॥
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ।
अपत्यार्थं प्रजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥२४॥
श्रद्धादीनां तु पत्नीनां जाताः कामादयः सुताः ।
धर्मस्य पुत्रपौत्राद्यैर्धर्मवंशो विवर्धितः ॥२५॥

इन स्वायम्भुव मनुसे देवी शतरूपाने 'प्रियव्रत' और 'उत्तानपाद' नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और 'प्रसूति' नामवाली एक कन्याको जन्म दिया। स्वायम्भुव मनुने अपनी कन्या प्रसूति दक्षको ब्याह दी। दक्षने प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। अब मुझसे उन कन्याओंके नाम सुनें—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा और क्रिया; बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति थी। भगवान् धर्मने संतानोत्पत्तिके लिये इन तेरह कन्याओंका पाणिग्रहण किया। धर्मकी इन श्रद्धा आदि पत्नियोंके गर्भसे काम आदि पुत्र उत्पन्न हुए। उनके पुत्र और पौत्र आदिसे धर्मका वंश खूब बढ़ा ॥ २१—२५ ॥

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्यस्तासां नामानि कीर्तये ।
सम्भूतिश्चानसूया च स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥२६॥
संनतिश्चापि सत्या च ऊर्जा ख्यातिर्द्विजोत्तम ।
तद्वत्पुत्रौ महाभागौ मातरिश्वाथ सत्यवान् ॥२७॥
स्वाहाथ दशमी ज्ञेया स्वधा चैकादशी स्मृता ।
एताश्च दत्ता दक्षेण ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥२८॥

द्विजश्रेष्ठ! श्रद्धा आदिसे छोटी अवस्थावाली जो उनकी शेष बहनें थीं, उनके नाम बता रहा हूँ—सम्भूति, अनसूया, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, सत्या, ऊर्जा, ख्याति, दसवीं स्वाहा और ग्यारहवीं स्वधा है। दक्षके 'मातरिश्वा' और 'सत्यवान्' नामक दो महाभाग पुत्र भी हुए। उपर्युक्त ग्यारह कन्याओंको दक्षने पुण्यात्मा ऋषियोंको दिया ॥ २६—२८ ॥

मरीच्यादीनां तु ये पुत्रास्तानहं कथयामि ते ।
पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्जज्ञे सा कश्यपं मुनिम् ॥२९॥
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥३०॥
अनसूया तथा चात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।
सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥३१॥
योऽसावग्निरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ।
तस्मात् स्वाहा सुतॉल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ॥३२॥
पावकं पवमानं च शुचिं चापि जलाशिनम् ।
तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥३३॥

कथ्यन्ते वह्नयश्चैते पिता पुत्रत्रयं च यत् ।
एवमेकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः ॥३४॥
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया तव ।
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा ॥३५॥

मरीचि आदि मुनियोंके जो पुत्र हुए, उन्हें मैं आपसे बतलाता हूँ। मरीचिकी पत्नी सम्भूति थी। उसने कश्यप मुनिको जन्म दिया। अङ्गिराकी भार्या स्मृति थी। उसने सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति—इन चार कन्याओंको उत्पन्न किया। इसी प्रकार अत्रि मुनिकी पत्नी अनसूयाने सोम, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय—इन तीन पापरहित पुत्रोंको जन्म दिया। द्विज! ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र, जो अग्निका अभिमानी देवता है, उससे उसकी पत्नी स्वाहाने पावक, पवमान और जलका भक्षण करनेवाले शुचि—इन अत्यन्त तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया। इन तीनोंके (प्रत्येकके पंद्रह-पंद्रहके क्रमसे) अन्य पैंतालीस अग्निस्वरूप संतानें हुईं। पिता अग्नि, उसके तीनों पुत्र तथा उनके भी ये पूर्वोक्त पैंतालीस पुत्र सब मिलकर 'अग्नि' ही कहलाते हैं। इस प्रकार उनचास अग्नि कहे गये हैं। ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये जिन पितरोंका मैंने आपके समक्ष वर्णन किया था, उनसे उनकी पत्नी स्वधाने मेना और धारिणी—इन दो कन्याओंको जन्म दिया ॥ २९–३५ ॥

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा मे शृणु सत्तम ॥३६॥
मनसैव हि भूतानि पूर्वं दक्षोऽसृजन्मुनिः ।
देवानृषींश्च गन्धर्वानसुरान् पन्नगांस्तथा ॥३७॥
यदास्य मनसा जाता नाभ्यवर्धन्त ते द्विज ।
तदा संचिन्त्य स मुनिः सृष्टिहेतोः प्रजापतिः ॥३८॥
मैथुनेनैव धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
असिक्नीमुद्वहन् कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः ॥३९॥
षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥४०॥
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥४१॥
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तदपत्यानि मे शृणु ।

साधुशिरोमणे! पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीके द्वारा 'तुम प्रजाकी सृष्टि करो' यह आज्ञा पाकर दक्षने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की थी, उसे सुनिये। विप्रवर! दक्षमुनिने पहले देवता, ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प—इन सभी भूतोंको मनसे ही उत्पन्न किया। परंतु जब मनसे उत्पन्न किये हुए ये देवादि सर्ग वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए, तब उन दक्ष प्रजापति ऋषिने सृष्टिके लिये पूर्णतः विचार करके मैथुनधर्मके द्वारा ही नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छा मनमें लिये वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नीके साथ विवाह किया। हमने सुना है कि दक्ष प्रजापतिने वीरण-कन्या असिक्नीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दस कन्याएँ उन्होंने धर्मको और तेरह कश्यपमुनिको ब्याह दीं।* फिर सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो अङ्गिराको और दो कन्याएँ विद्वान् कृशाश्वको समर्पित कर दीं। अब इन सबकी संतानोंका वर्णन सुनिये ॥ ३६–४१½ ॥

विश्वेदेवांस्तु विश्वा या साध्या साध्यानसूयत ॥४२॥
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः ।
भानोस्तु भानवो देवा मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ॥४३॥

---

* पाँचवें अध्यायके श्लोक बाईसमें यह चर्चा आयी है कि स्वायम्भुव मनुने प्रजापतिको अपनी पुत्री प्रसूति ब्याह दी थी। उसके गर्भसे दक्षने चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह उन्होंने धर्मके साथ कर दिया था। फिर इसी अध्यायके उन्तालीस-चालीस श्लोकोंमें यह बात आयी है कि दक्षने वीरण प्रजापतिकी पुत्री असिक्नीके साथ विवाह किया, जिसके गर्भसे उन्होंने साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमेंसे दसका विवाह उन्होंने धर्मके साथ किया था। एक ही दक्षके विषयमें ये दो प्रकारकी बातें आपाततः संदेह उत्पन्न करती हैं। विष्णुपुराणमें भी यह प्रसङ्ग आया है। अध्याय सातके उन्नीससे चौबीसवें श्लोकतक तथा अध्याय पंद्रहके उक्त दोनों प्रसङ्गोंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वहाँ भी तीसवें श्लोकमें उन प्रसङ्गोंके पर्यालोचनसे यह प्रतीत होता है कि उक्त दोनों दक्ष दो व्यक्ति थे और दोनों दो कालमें उत्पन्न हुए थे पहले दक्ष ब्रह्माजीके मानस-पुत्र थे और दूसरे प्रचेताओंके पुत्र। इतनेपर भी मैत्रेयजीने यह प्रश्न उठाया है कि 'ब्रह्माजीके पुत्र दक्ष प्रचेताओंके पुत्र कैसे हो गये?' वहाँ पराशरजीने यह समाधान किया है कि 'युगे युगे भवन्त्येते दक्षाद्या मुनिसत्तम।' इस प्रकार युगभेदसे दोनों प्रसङ्गोंकी सङ्गति बैठायी गयी है। वही समाधान यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

कन्यायाश्चैव घोषश्च नागवीथिश्च जामिजा ।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत ॥४४॥
संकल्पायाश्च संकल्पः पुत्रो जज्ञे महामते ।
ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥४५॥
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु ।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धर्मश्चैवानिलोऽनलः ॥४६॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥४७॥

जो विश्वा नामकी कन्या थी, उसने विश्वेदेवोंको और साध्याने साध्योंको जन्म दिया । मरुत्वतीके मरुत्वान् ( वायु ), वसुके वसुगण, भानुके भानुदेवता और मुहूर्ताके मुहूर्ताभिमानी देवगण हुए । कन्यासे घोष नामक पुत्र हुआ, जामिसे नागवीथि नामवाली कन्या हुई और अरुन्धतीसे[1] पृथिवीके समस्त प्राणी उत्पन्न हुए । महाबुद्धे ! संकल्पा नामक कन्यासे संकल्पका जन्म हुआ, अनेक प्रकारके वसु ( तेज अथवा धन ) ही जिनके प्राण हैं, ऐसे जो आठ ज्योतिर्मय वसु देवता कहे गये हैं, उनके नाम सुनिये—आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये 'आठ वसु' कहलाते हैं । इनके पुत्रों और पौत्रोंकी संख्या सैकड़ों और हजारोंतक पहुँच गयी है ॥ ४२—४७ ॥

साध्याश्च बहवः प्रोक्तास्तत्पुत्राश्च सहस्रशः ।
कश्यपस्य तु भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥४८॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रूर्मुनिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु ॥४९॥
अदित्यां कश्यपाज्जाताः पुत्रा द्वादश शोभनाः ।
तानहं नामतो वक्ष्ये शृणुष्व गदतो मम ॥५०॥
भगोंऽशुश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ।
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महामते ॥५१॥
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
दितेः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥५२॥
हिरण्याक्षो महाकायो वाराहेण तु यो हतः ।
हिरण्यकशिपुश्चैव नरसिंहेन यो हतः ॥५३॥
अन्ये च बहवो दैत्या दनुपुत्राश्च दानवाः ।
अरिष्टायां तु गन्धर्वा जज्ञिरे कश्यपात्तथा ॥५४॥
सुरसायामथोत्पन्ना विद्याधरगणा बहु ।
गा वै स जनयामास सुरभ्यां कश्यपो मुनिः ॥५५॥

इसी प्रकार साध्यगणोंकी भी संख्या बहुत है और उनके भी हजारों पुत्र हैं । जो ( दक्ष-कन्याएँ ) कश्यपमुनिकी पत्नियाँ हुईं, उनके नाम सुनिये—वे अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि थीं । धर्मज्ञ ! अब आप मुझसे उनकी संतानोंका विवरण सुनिये । महामते ! अदितिके कश्यपजीसे बारह सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए । उनके नाम बता रहा हूँ; सुनिये—महामते ! भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवें विष्णु कहे जाते हैं । दितिके कश्यपजीसे दो पुत्र हुए थे, ऐसा हमने सुना है । पहला महाकाय हिरण्याक्ष हुआ, जिसे भगवान् वाराहने मारा और दूसरा हिरण्यकशिपु हुआ, जो नृसिंहजीके द्वारा मारा गया । इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से दैत्य दितिसे उत्पन्न हुए । दनुके पुत्र दानव हुए और अरिष्टाके कश्यपजीसे गन्धर्वगण उत्पन्न हुए । सुरसासे अनेक विद्याधरगण हुए और सुरभिसे कश्यप मुनिने गौओंको जन्म दिया ॥ ४८—५५ ॥

विनतायां तु द्वौ पुत्रौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ ।
गरुडो देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥५६॥
वाहनत्वमियात्प्रीत्या अरुणः सूर्यसारथिः ।
ताम्रायां कश्यपाज्जाताः षट्पुत्रास्तान्निबोध मे ॥५७॥
अश्वा उष्ट्रा गर्दभाश्च हस्तिनो गवया मृगाः ।
क्रोधायां जज्ञिरे तद्वद् भूम्यां दुष्टजातयः ॥५८॥
इरा वृक्षलतावल्लीतृणजातीश्च जज्ञिरे ।
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥५९॥
कद्रूपुत्रा महानागा दंदशूका विषोल्बणाः ।
सप्तविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ॥६०॥

---

[1] यहाँ 'अरुन्धती' की जगह 'मरुत्वती' पाठ भी मिलता है, परंतु वह असंगत है । 'मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः' कहकर मरुत्वतीकी संततिका वर्णन आ चुका है । अतः यहाँ 'अरुन्धती' पाठ ही ठीक है; अन्यथा धर्मकी नवीं पत्नीका नाम नहीं मिलेगा । विष्णुपुराण १५ । १०९ वें श्लोकमें भी 'अरुन्धत्याम्' ही पाठ है ।

तासां पुत्रा महासत्त्वा बुधाद्यास्त्वभवन् द्विज ।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥६१॥

विनताके ‘गरुड’ और ‘अरुण’ नामक दो विख्यात पुत्र हुए । गरुडजी प्रेमवश अमित-तेजस्वी देवदेव भगवान् विष्णुके वाहन हो गये और अरुण सूर्यके सारथि बने । ताम्राके कश्यपजीसे छः पुत्र हुए, उन्हें आप मुझसे सुनिये—घोड़ा, ऊँट, गदहा, हाथी, गवय और मृग । पृथ्वीपर जितने दुष्ट जीव हैं, वे क्रोधासे उत्पन्न हुए हैं । इराने वृक्ष, लता, वल्ली और ‘सन’ जातिके तृणवर्गको जन्म दिया । खसाने यक्ष और राक्षसों तथा मुनिने अप्सराओंको प्रकट किया । कद्रूके पुत्र प्रचण्ड विषवाले ‘दंदशूक’ नामक महासर्प हुए, विप्रवर ! चन्द्रमाकी सुन्दर व्रतवाली जिन सत्ताईस स्त्रियोंकी चर्चा की गयी है, उनसे बुध आदि महान् पराक्रमी पुत्र हुए । अरिष्टनेमिकी स्त्रियोंके गर्भसे सोलह संतानें हुईं ॥ ५६—६१ ॥

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।
प्रत्यङ्गिरस्सुताः श्रेष्ठा ऋषयश्चर्षिसत्कृताः ॥६२॥
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवाश्च ऋषयः सुताः ।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥६३॥
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजंगमाः ।
स्थितौ स्थितस्य देवस्य नरसिंहस्य धर्मतः ॥६४॥
एता विभूतयो विप्र मया ते परिकीर्तिताः ।
कथिता दक्षकन्यानां मया तेऽपत्यसंततिः ॥६५॥
श्रद्धावान् संस्मरेदेतां स सुसंतानवान् भवेत् ॥६६॥
सर्गानुसर्गौ कथितौ मया ते
समासतः सृष्टिविवृद्धिहेतोः ।
पठन्ति ये विष्णुपराः सदा नरा
इदं द्विजास्ते विमला भवन्ति ॥६७॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सृष्टिकथने पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥*

विद्वान् बहुपुत्रकी संतानें कपिला, अतिलोहिता, पीता और सिता—इन चार वर्णोंवाली चार बिजलियाँ कही गयी हैं । प्रत्यङ्गिराके पुत्रगण ऋषियोंद्वारा सम्मानित उत्तम ऋषि हुए । देवर्षि कृशाश्वके पुत्र देवर्षि ही हुए । ये एक-एक हजार युग ( अर्थात् एक कल्प ) के बीतनेपर पुनः-पुनः उत्पन्न होते रहते हैं । इस प्रकार कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए चर-अचर प्राणियोंका वर्णन किया गया । विप्रवर ! धर्मपूर्वक पालनकर्ममें लगे हुए भगवान् नरसिंहकी इन विभूतियोंका यहाँ मैंने आपके समक्ष वर्णन किया है । साथ ही दक्ष-कन्याओंकी वंश-परम्परा भी बतलायी है । जो श्रद्धापूर्वक इन सबका स्मरण करता है, वह सुन्दर संतानसे युक्त होता है । ब्रह्मन् ! सृष्टि-विस्तारके लिये ब्रह्मा तथा अन्य प्रजापतियोंद्वारा जो सर्ग और अनुसर्ग सम्पादित हुए, उन सबको मैंने संक्षेपसे आपको बता दिया । जो द्विजाति मानव भगवान् विष्णुमें मन लगाकर इन प्रसङ्गोंको सदा पढ़ेंगे वे निर्मल हो जायँगे ॥ ६२—६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके सृष्टिवर्णनमें पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

## छठा अध्याय

### अगस्त्य तथा वसिष्ठजीके मित्रावरुणके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेका प्रसङ्ग

सूत उवाच

सृष्टिस्ते कथिता विष्णोर्मयास्य जगतो द्विज ।
देवदानवयक्षाद्या यथोत्पन्ना महात्मनः ॥ १ ॥
यमुद्दिश्य त्वया पृष्टः पुराहमृषिसंनिधौ ।
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं त्विति ॥ २ ॥
तदिदं कथयिष्यामि पुण्याख्यानं पुरातनम् ।
शृणुष्वैकाग्रमनसा भरद्वाज विशेषतः ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—ब्रह्मन् ! परमात्मा भगवान् विष्णुसे जिस प्रकार देव, दानव और यक्ष आदि उत्पन्न हुए, वह जगत्‌की सृष्टिका वृत्तान्त मैंने आपसे कह दिया । अब ऋषियोंके निकट जिस उद्देश्यको लेकर पहले आपने मुझसे प्रश्न किया था कि ‘वसिष्ठजी मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये ?’ उसी पुरातन पवित्र कथाको कहूँगा । भरद्वाजजी ! आप एकाग्रचित्त हो, विशेष सावधानीके साथ उसे सुनिये ॥१—३॥

सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदां वरः ।
पारगः सर्वविद्यानां दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ४ ॥
तेन दत्ताः शुभाः कन्याः सर्वाः कमललोचनाः।
सर्वलक्षणसम्पूर्णाः कश्यपाय त्रयोदश ॥ ५ ॥

तासां नामानि वक्ष्यामि निबोधत समाधुना ।
अदितिर्दितिर्दनुः काला मुहूर्ता सिंहिका मुनिः ॥ ६ ॥
इरा क्रोधा च सुरभिर्विनता सुरसा खसा ।
कद्रू सरमा चैव या तु देवशुनी स्मृता ॥ ७ ॥
दक्षस्यैता दुहितरस्ताः प्रादात् कश्यपाय सः ।
तासां ज्येष्ठा वरिष्ठा च अदितिर्नामतो द्विज ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण धर्म और अर्थोंके तत्त्वको जाननेवाले, समस्त वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा समग्र विद्याओंके पारदर्शी 'दक्ष' नामक प्रजापतिने अपनी तेरह सुन्दरी कन्याओंको, जो सभी कमलके समान नेत्रोंवाली और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं, कश्यपमुनिको दिया था। उनके नाम बतलाता हूँ, आप लोग इस समय मुझसे उनके नाम जान लें—अदिति, दिति, दनु, काला, मुहूर्ता, सिंहिका, मुनि, इरा, क्रोधा, सुरभि, विनता, सुरसा, खसा, कद्रू और सरमा, जो देवताओंकी कुतिया कही गयी हैं—ये सभी दक्ष-प्रजापतिकी कन्याएँ हैं[*]। इनको दक्षने कश्यपजीको समर्पित किया था। विप्रवर! अदिति नामकी जो कन्या थी, वही इन सबमें श्रेष्ठ और बड़ी थी ॥ ४–८ ॥

अदितिः सुषुवे पुत्रान् द्वादशाग्निसमप्रभान् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥ ९ ॥
यैरिदं वासरं नक्तं वर्तते क्रमशः सदा ।
भगोंऽशुस्त्वर्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ॥१०॥
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महामते ।
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो विष्णुर्द्वादशमः स्मृतः ॥११॥
एते च द्वादशादित्यास्तपन्ते वर्षयन्ति च ।

अदितिने बारह पुत्रोंको उत्पन्न किया[†], जो अग्निके समान कान्तिमान् एवं तेजस्वी थे। उन सबके नाम बतला रहा हूँ, आप मुझसे उन्हें सुनें। उन्हींके द्वारा सर्वदा क्रमशः दिन और रात होते रहते हैं। भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवें विष्णु हैं। ये बारह आदित्य तपते और वर्षा करते हैं ॥ ९–११½ ॥

तस्याश्च मध्यमः पुत्रो वरुणो नाम नामतः ॥१२॥
लोकपाल इति ख्यातो वारुण्यां दिशि शब्द्यते ।
पश्चिमस्य समुद्रस्य प्रतीच्यां दिशि राजते ॥१३॥
जातरूपमयः श्रीमानास्ते नाम शिलोच्चयः ।
सर्वरत्नमयैः शृङ्गैर्धातुप्रस्रवणान्वितैः ॥१४॥
संयुक्तो भाति शैलेशो नानारत्नमयः शुभः ।
महादरीगुहाभिश्च सिंहशार्दूलनादितः ॥१५॥
नानाविविक्तभूमीषु सिद्धगन्धर्वसेवितः ।
यस्मिन् गते दिनकरे तमसाऽऽपूर्यते जगत् ॥१६॥
तस्य शृङ्गे महादिव्या जाम्बूनदमयी शुभा ।
रम्या मणिमयैः स्तम्भैर्विहिता विश्वकर्मणा ॥१७॥
पुरी विश्वावती नाम समृद्धा भोगसाधनैः ।
तस्यां वरुण आदित्यो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥१८॥
पाति सर्वानिमाँल्लोकान्नियुक्तो ब्रह्मणा स्वयम् ।
उपास्यमानो गन्धर्वैस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥१९॥

अदितिके मध्यम पुत्र वरुण 'लोकपाल' कहे गये हैं; इनकी स्थिति वरुण-दिशा ( पश्चिम ) में बतलायी जाती है। ये पश्चिम दिशामें पश्चिम समुद्रके तटपर सुशोभित होते हैं। वहाँ एक सुन्दर सुवर्णमय पर्वत है। उसके शिखर सब रत्नमय हैं। उनपर नाना प्रकारकी धातुएँ और झरने हैं। इनसे युक्त और नाना प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण वह सुन्दर पर्वत बड़ी शोभा पाता है। उसमें बड़े-बड़े दर्रे और गुहाएँ हैं, जहाँ बाघ और सिंह दहाड़ते रहते हैं। वहाँके अनेकानेक एकान्त स्थलोंपर सिद्ध और गन्धर्व

---

[*] अध्याय पाँचके ४८-४९ श्लोकोंमें कश्यपकी तेरह पत्नियोंके नाम आये हैं। यहाँ पंद्रह नाम आये हैं; इनमें 'मुहूर्ता' और 'सरमा'—ये दो नाम अधिक हैं। 'मुहूर्ता' तो धर्मकी पत्नी थीं। 'सरमा' कश्यपकी पत्नी होनेपर भी दक्षकन्या नहीं थी। इसके अतिरिक्त अरिष्टा एवं ताम्राके स्थानपर यहाँ काला और सिंहिका नाम आये हैं। ये नाम अन्यत्र पुराणोंमें भी आते हैं।

[†] यद्यपि पाँचवें अध्यायके ५१-५२ श्लोकोंमें अदितिकी सन्तानोंका वर्णन आ गया है; अतः यहाँ इस प्रसङ्गकी पुनरुक्ति जान पड़ती है; तथापि इसका समाधान यह है कि वहाँ सृष्टि-वर्णनके प्रसङ्गमें वह बात कही गयी है और यहाँ 'वसिष्ठ तथा अगस्त्यजीकी मित्रावरुणके पुत्ररूपमें पुनरुत्पत्ति कैसे हुई?' इस प्रश्नके समाधानके प्रसङ्गमें मित्र और वरुण देवताका परिचय देना आवश्यक हुआ। वे दोनों बारह आदित्योंमें परिगणित हैं; अतः अदितिके इन बारहों पुत्रोंका पुनः वर्णन प्रसङ्गवशात् आ गया है; अतः पुनरुक्ति-दोष नहीं मानना चाहिये।

वास करते हैं। जब सूर्य वहाँ पहुँचते हैं, तब समस्त संसार अन्धकारसे पूर्ण हो जाता है। उसी पर्वतके शिखरपर विश्वकर्माकी बनायी हुई एक 'विश्वावती' नामकी शोभन पुरी है, जो बड़ी, दिव्य तथा सुवर्णसे बनी हुई है और उसमें मणियोंके खंभे लगे हैं। इस प्रकार वह पुरी रमणीय एवं सम्पूर्ण भोग-साधनोंसे सम्पन्न है। उसीमें अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए 'वरुण' नामक आदित्य ब्रह्माजीकी प्रेरणासे इन सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं। वहाँ उनकी सेवामें गन्धर्व और अप्सराएँ रहा करती हैं ॥ १२–१९ ॥

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गो दिव्याभरणभूषितः ।
कदाचिद्वरुणो यातो मित्रेण सहितो वनम् ॥२०॥
कुरुक्षेत्रे शुभे रम्ये सदा ब्रह्मर्षिसेविते ।
नानापुष्पफलोपेते नानातीर्थसमाकुले ॥२१॥
आश्रमा यत्र दृश्यन्ते मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
तस्मिंस्तीर्थे समाश्रित्य बहुपुष्पफलोदके ॥२२॥
चीरकृष्णाजिनधरौ चरन्तौ तप उत्तमम् ।
तत्रैकस्मिन्वनोद्देशे विमलोदो ह्रदः शुभः ॥२३॥
बहुगुल्मलताकीर्णो नानापक्षिनिषेवितः ।
नानातरुवनच्छन्नो नलिन्या चोपशोभितः ॥२४॥
पौण्डरीक इति ख्यातो मीनकच्छपसेवितः ।
ततस्तु मित्रावरुणौ भ्रातरौ वनचारिणौ ।
तं तु देशं गतौ देवौ विचरन्तौ यदृच्छया ॥२५॥

एक दिन वरुण अपने अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगाये, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो 'मित्र'के साथ वनको गये। ब्रह्मर्षिगण सदा जिसका सेवन करते हैं, जो नाना प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त तथा अनेक तीर्थोंसे व्याप्त है; जहाँ ऊर्ध्वरेता मुनियोंके आश्रम दृष्टिगोचर होते हैं तथा जो प्रचुर फल-फूल और जलसे पूर्ण है, उस सुन्दर सुरम्य कुरुक्षेत्र तीर्थमें पहुँचकर वे दोनों देवता चीर और कृष्ण मृगचर्म धारण करके तपस्या करने लगे। वहाँपर वनके एक भागमें निर्मल जलसे भरा हुआ एक सुन्दर सरोवर है, जो बहुत-सी झाड़ियों और बेलोंसे आवृत है; अनेकानेक पक्षी उसका सेवन करते हैं। वह भाँति-भाँतिके वृक्षसमूहोंसे आच्छन्न और कमलोंसे सुशोभित है। उस सरोवरकी 'पौण्डरीक' नामसे प्रसिद्धि है। उसमें बहुत-सी मछलियाँ और कछुए निवास करते हैं। तप आरम्भ करनेके पश्चात् वे दोनों भाई मित्र और वरुण देवता एक दिन वनमें विचरण करते और स्वेच्छानुसार घूमते हुए उस सरोवरकी ओर गये ॥ २०–२५ ॥

ताभ्यां तत्र तदा दृष्टा उर्वशी तु वराप्सराः ।
स्नायन्ती सहितान्याभिः सखीभिः सा वरानना ।
गायन्ती च हसन्ती च विश्वस्ता निर्जने वने ॥२६॥
गौरी कमलगर्भाभा स्निग्धकृष्णशिरोरुहा ।
पद्मपत्रविशालाक्षी रक्तोष्ठी मृदुभाषिणी ॥२७॥
शङ्खकुन्देन्दुधवलैर्दन्तैरविरलैः समैः ।
सुभ्रूः सुनासा सुमुखी सुललाटा मनस्विनी ॥२८॥
सिंहवत्सूक्ष्ममध्याङ्गी पीनोरुजघनस्तनी ।
मधुरालापचतुरा सुमध्या चारुहासिनी ॥२९॥
रक्तोत्पलकरा तन्वी सुपदी विनयान्विता ।
पूर्णचन्द्रनिभा बाला मत्तद्विरदगामिनी ॥३०॥
दृष्ट्वा तस्यास्तु तद्रूपं तौ देवौ विस्मयं गतौ ।
तस्या हास्येन लास्येन स्मितेन ललितेन च ॥३१॥
मृदुना वायुना चैव शीतानिलसुगन्धिना ।
मत्तभ्रमरगीतेन पुंस्कोकिलरुतेन च ॥३२॥
सुस्वरेण हि गीतेन उर्वश्या मधुरेण च ।
ईक्षितौ च कटाक्षेण स्कन्दतुस्तावुभावपि ।
निमेः शापादथोत्क्रम्य स्वदेहान्मुनिसत्तम ॥३३॥

वहाँ उन दोनोंने उस समय श्रेष्ठ एवं सुन्दरी अप्सरा उर्वशीको देखा, जो अपनी अन्य सहेलियोंके साथ स्नान कर रही थी। वह सुमुखी अप्सरा उस निर्जन वनमें विश्वस्त होकर हँसती और गाती थी। उसका वर्ण गोरा था। कमलके भीतरी भागके समान उसकी कान्ति थी। उसकी अलकें काली-काली और चिकनी थीं, आँखें कमल-दलके समान बड़ी-बड़ी थीं, होठ लाल थे, उसका भाषण बहुत ही मधुर था। उसके दाँत शङ्ख, कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत, परस्पर मिले हुए और बराबर थे। उस मनस्विनीकी भौंहें, नासिका, मुख और ललाट—सभी सुन्दर थे। कटिभाग सिंहके कटिप्रदेशकी भाँति पतला था। उरोज, ऊरु और जघन—ये मोटे और घने थे। वह मधुर भाषण करनेमें

चतुर थी। उसका मध्यभाग सुन्दर और मुस्कान मनोहर थी। दोनों हाथ लाल कमलके समान सुन्दर एवं कोमल थे। शरीर पतला और पैर सुन्दर थे। वह बाला बड़ी ही विनीता थी। उसका मुख पूर्णचन्द्रके समान आह्लादजनक और गति मत्त गजराजके समान मन्द थी। उर्वशीके उस दिव्य रूपको देखकर वे दोनों देवता विस्मयमें पड़ गये। उसके लास्य ( नृत्य ), हास्य, ललितभाव-मिश्रित मन्द मुसकान और मधुर सुरीले गानसे तथा शीतल-मन्द-सुगन्धित मलयानिलके स्पर्शसे एवं मतवाले भौंरोंके संगीत और कोकिलोंके कलरवसे उन दोनोंका मन और भी मुग्ध हो गया। साथ ही उर्वशीकी तिरछी चितवनके शिकार होकर वे दोनों ही वहाँ स्खलित हो गये ( उनके वीर्यका पतन हो गया ) मुनिसत्तम ! इसके बाद निमिके शापवश* वसिष्ठजीका जीवात्मा अपने शरीरसे पृथक् होकर मित्रावरुणके वीर्यमें आविष्ट हुआ ॥ २६—३३ ॥

वसिष्ठ मित्रावरुणात्मजोऽसी-
त्यथोचुरागत्य हि विश्वदेवाः।
रेतस्त्रिभागं कमलेऽपतत्तद्
वसिष्ठ एवं तु पितामहोक्तेः ॥३४॥
त्रिधा समभवद्रेतः कमलेऽथ स्थले जले।
अरविन्दे वसिष्ठस्तु जातः स मुनिसत्तमः।
स्थले त्वगस्त्यः सम्भूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः॥३५॥
स तत्र जातो मतिमान् वसिष्ठः
कुम्भे त्वगस्त्यः सलिलेऽथ मत्स्यः।
स्थानत्रये तत्पतितं समानं
मित्रस्य यस्माद्वरुणस्य रेतः ॥३६॥
एतस्मिन्नेव काले तु गता सा उर्वशी दिवम्।
उपेत्य तावृषीन् देवौ गतौ भूयः स्वमाश्रमम्।
यत्रावपि तु तप्येते पुनरुग्रं परं तपः ॥३७॥

'वसिष्ठ ! तुम मित्रावरुणके पुत्र होओगे'—इस प्रकार विश्वेदेवोंने ( निमिके यज्ञमें ) आकर कहा था तथा ब्रह्माजीका भी यही कथन था; अतएव मित्रावरुणके तीन स्थानोंपर गिरे हुए वीर्यमेंसे जो भाग कमलपर गिरा था, उसीसे वसिष्ठजी हुए। उन दोनों देवताओंका वीर्य तीन भागोंमें विभक्त होकर कमल, जल और स्थलपर ( घड़ेमें ) गिरा। कमलपर गिरे हुए वीर्यसे मुनिवर वसिष्ठ उत्पन्न हुए, स्थलपर गिरे हुए रेतस्से अगस्त्य और जलमें गिरे हुए शुक्रसे अत्यन्त कान्तिमान् मत्स्यकी उत्पत्ति हुई। इस तरह उस कमलपर बुद्धिमान् वसिष्ठ, कुम्भमें अगस्त्य और जलमें मत्स्यका आविर्भाव हुआ; क्योंकि मित्रावरुणका वीर्य तीनों स्थानोंपर बराबर गिरा था। इसी समय उर्वशी स्वर्गलोकमें चली गयी। वसिष्ठ और अगस्त्य—इन दोनों ऋषियोंको साथ लेकर वे दोनों देवता पुनः अपने आश्रममें लौट आये और पुनः उन दोनोंने अत्यन्त उग्र तप आरम्भ किया ॥ ३४—३७ ॥

तपसा प्राप्तुकामौ तौ परं ज्योतिः सनातनम्।
तपस्यन्तौ सुरश्रेष्ठौ ब्रह्माऽऽगत्येदमब्रवीत् ॥३८॥
मित्रावरुणकौ देवौ पुत्रवन्तौ महाद्युती।
सिद्धिर्भविष्यति यथा युवयोर्वैष्णवी पुनः ॥३९॥
स्वाधिकारेण स्थीयेतामधुना लोकसाक्षिकौ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा तौ स्थितौ स्वाधिकारकौ ॥४०॥

तपस्याके द्वारा सनातन परम ज्योति ( ब्रह्मधाम ) को प्राप्त करनेकी इच्छावाले उन दोनों तपस्वी देवेश्वरोंसे ब्रह्माजीने आकर यह कहा—'महान् कान्तिमान् और पुत्रवान् मित्र तथा वरुण देवताओ ! तुम दोनोंको पुनः वैष्णवी सिद्धि प्राप्त होगी। इस समय संसारके साक्षीरूपसे तुम लोग अपने अधिकारपर स्थित हो जाओ।' यों कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे दोनों देवता अपने अधिकृत पदपर स्थित हुए ॥ ३८—४० ॥

एवं ते कथितं विप्र वसिष्ठस्य महात्मनः।
मित्रावरुणपुत्रत्वमगस्त्यस्य च धीमतः ॥४१॥

---

* एक बार राजा निमिने यज्ञ करनेकी इच्छासे अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे परामर्श किया। वसिष्ठजीने कहा—'मैं देवलोकमें एक यज्ञ आरम्भ करा चुका हूँ। उसके समाप्त होनेतक आप अपना यज्ञ रोके रहें। वहाँसे आकर हम आपका यज्ञ आरम्भ करायेंगे।' निमिने उनकी प्रतीक्षा नहीं की। वसिष्ठजीने लौटनेपर यज्ञ होता देख राजाको शाप दिया कि 'तुम विदेह हो जाओ।' तब राजाने भी शाप दिया कि 'आपका भी यह शरीर न रहे।'

इदं पुंसीयमाख्यानं वारुण पापनाशनम् ।
पुत्रकामास्तु ये केचिच्छृण्वन्तीदं शुचिव्रताः ।
अचिरादेव पुत्रांस्ते लभन्ते नात्र संशयः ॥४२॥
यश्चैतत्पठते नित्यं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः ।
देवाश्च पितरस्तस्य तृप्ता यान्ति परं सुखम् ॥४३॥
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ।
नन्दते स सुखं भूमौ विष्णुलोकं स गच्छति ॥४४॥
इत्येतदाख्यानमिदं मयेरितं
पुरातनं वेदविदैरुदीरितम् ।
पठिष्यते यस्तु शृणोति सर्वदा
स याति शुद्धो हरिलोकमञ्जसा ॥४५॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे पुंसवनाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः*

ब्राह्मण ! इस प्रकार महात्मा वसिष्ठजी और बुद्धिमान् अगस्त्यजी जिस तरह मित्रावरुणके पुत्र हुए थे, वह सब प्रसङ्ग मैंने आपसे कह दिया । यह वरुणदेवता-सम्बन्धी पुंसवनाख्यान पाप नष्ट करनेवाला है । जो लोग पुत्रकी कामनासे शुद्ध व्रतका आचरण करते हुए इसका श्रवण करते हैं, वे शीघ्र ही अनेक पुत्र प्राप्त करते हैं—इसमें संदेह नहीं है । जो उत्तम ब्राह्मण हव्य ( देवयाग ) और कव्य ( पितृयाग ) में इसका पाठ करता है, उसके देवता तथा पितर तृप्त होकर अत्यन्त सुख प्राप्त करते हैं । जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर इसका श्रवण करता है, वह पृथ्वीपर सुखपूर्वक प्रसन्नताके साथ रहता है और फिर विष्णुलोकको प्राप्त करता है । वेदवेत्ताओंके द्वारा प्रतिपादित इस पुरातन उपाख्यानको, जिसे मैंने कहा है, जो लोग सादर पढ़ेंगे और सुनेंगे, वे शुद्ध होकर अनायास ही विष्णुलोकको प्राप्त कर लेंगे ॥ ४१—४५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पुंसवन' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

# सातवाँ अध्याय

## मार्कण्डेयजीके द्वारा तपस्यापूर्वक श्रीहरिकी आराधना; 'मृत्युंजय-स्तोत्र'का पाठ और मृत्युपर विजय प्राप्त करना

श्रीभरद्वाज उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः ।
एतदाख्याहि मे सूत त्वयैतत् सूचितं पुरा ॥ १ ॥

श्रीभरद्वाजजी बोले—सूतजी ! मार्कण्डेयमुनिने मृत्युको कैसे पराजित किया ? यह मुझे बताइये । आपने पहले यह सूचित किया था कि वे मृत्युपर विजयी हुए थे* ॥ १ ॥

सूत उवाच

इदं तु महदाख्यानं भरद्वाज शृणुष्व मे ।
शृण्वन्तु ऋषयश्चेमे पुरावृत्तं ब्रवीम्यहम् ॥ २ ॥
कुरुक्षेत्रे महापुण्ये व्यासपीठे वराश्रमे ।
समासीनं मुनिवरं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥ ३ ॥
कृतस्नानं कृतजपं मुनिशिष्यैः समावृतम् ।
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ४ ॥
प्रणिपत्य यथान्यायं शुकः परमधार्मिकः ।
इममेवार्थमुद्दिश्य तं पप्रच्छ कृताञ्जलिः ॥ ५ ॥
यमुद्दिश्य वयं पृष्टास्त्वयात्र मुनिसंनिधौ ।
नरसिंहस्य भक्तेन कृततीर्थनिवासिना ॥ ६ ॥

सूतजी बोले—भरद्वाजजी ! इस महान् पुरातन इतिहासको आप और ये सभी ऋषि सुनें; मैं कह रहा हूँ । अत्यन्त पवित्र कुरुक्षेत्रमें, व्यासपीठपर, एक

---

* यद्यपि नरसिंहपुराणके गत अध्यायोंमें मार्कण्डेयजीका नाम कहीं नहीं आया है । अतः 'आपने पहले यह सूचित किया था—( त्वयैतत् सूचितं पुरा )' इत्यादि कथनकी कोई संगति नहीं प्रतीत होती, तथापि प्रथम अध्यायके पंद्रहवें श्लोकसे इस बातकी सूचना मिलती है कि भरद्वाजजीने सूतजीके मुखसे पहले 'वाराहीसंहिता' सुनी थी, उसके बाद उन्होंने 'नरसिंहसंहिता' सुननेकी इच्छा प्रकट की । तब सूतजीने 'नरसिंहसंहिता' सुनाना आरम्भ किया था । अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वाराहीसंहिता-श्रवणके प्रसङ्गमें भरद्वाजजीको सूतजीके मुखसे मार्कण्डेयजीके मृत्युपर विजय पानेके इतिहासकी कोई सूचना प्राप्त हुई हो, जिसका स्मरण उन्होंने यहाँ दिलाया है ।

सुन्दर आश्रममें स्नान तथा जप आदि समाप्त करके व्यासासनपर बैठे हुए और शिष्यभूत मुनियोंसे घिरे हुए मुनिवर महर्षि कृष्णद्वैपायनसे, जो वेद और वेदार्थोंके तत्त्ववेत्ता तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ थे, परम धर्मात्मा शुकदेवजीने हाथ जोड़ उन्हें यथोचितरूपसे प्रणाम कर इसी विषयको जाननेके लिये प्रश्न किया था, जिसके लिये कि इन मुनियोंके निकट आप पुण्यतीर्थनिवासी नृसिंहभक्तने मुझसे पूछा है ॥ २—६ ॥

श्रीशुक उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः ।
एतदाख्याहि मे तात श्रोतुमिच्छामि तेऽधुना ॥ ७ ॥

**श्रीशुकदेवजी बोले**—पिताजी ! मार्कण्डेय मुनिने मृत्युपर कैसे विजय पायी ? यह कथा कहिये । इस समय मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

व्यास उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना यथा मृत्युः पराजितः ।
तथा ते कथयिष्यामि शृणु वत्स महामते ॥ ८ ॥
शृण्वन्तु मुनयश्चेमे कथ्यमानं मयाधुना ।
मच्छिष्याश्चैव शृण्वन्तु महदाख्यानमुत्तमम् ॥ ९ ॥
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्नो मृकण्डुर्नाम वै सुतः ।
सुमित्रा नाम वै पत्नी मृकण्डोस्तु महात्मनः ॥१०॥
धर्मज्ञा धर्मनिरता पतिशुश्रूषणे रता ।
तस्यां तस्य सुतो जातो मार्कण्डेयो महामतिः ॥११॥
भृगुपौत्रो महाभागो बालत्वेऽपि महामतिः ।
ववृधे वल्लभो बालः पित्रा तत्र कृतक्रियः ॥१२॥

**व्यासजी बोले**—महामते पुत्र ! मार्कण्डेय मुनिने जिस प्रकार मृत्युपर विजय पायी, वह तुमसे कहता हूँ, सुनो । मुझसे कहे जानेवाले इस महान् एवं उत्तम उपाख्यानको ये सभी मुनि और मेरे शिष्यगण भी सुनें । भृगुजीके उनकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे 'मृकण्डु' नामक एक पुत्र हुआ । महात्मा मृकण्डुकी पत्नी सुमित्रा हुई । वह धर्मको जाननेवाली, धर्मपरायणा और पतिकी सेवामें लगी रहनेवाली थी । इसीके गर्भसे मृकण्डुके पुत्र मेधावी मार्कण्डेयजी हुए । ये भृगुके पौत्र महाभाग मार्कण्डेय बचपनमें भी बड़े बुद्धिमान् थे । पिताके द्वारा जातकर्म आदि संस्कार कर देनेपर माँ-बापके लाड़ले बालक मार्कण्डेयजी क्रमशः बढ़ने लगे ॥ ८—१२ ॥

तस्मिन् वै जातमात्रे तु आगमी कश्चिदब्रवीत् ।
वर्षे द्वादशमे पूर्णे मृत्युरस्य भविष्यति ॥१३॥
श्रुत्वा तन्मातापितरौ दुःखितौ तौ बभूवतुः ।
विदूयमानहृदयौ तं निरीक्ष्य महामते ॥१४॥
तथापि तत्पिता तस्य यत्नात् काले क्रियां ततः ।
चकार सर्वां मेधावी उपनीतो गुरोर्गृहे ॥१५॥
वेदानेवाभ्यसन्नास्ते गुरुशुश्रूषणोद्यतः ।
स्वीकृत्य वेदशास्त्राणि स पुनर्गृहमागतः ॥१६॥
मातापितॄन्नमस्कृत्य पादयोर्विनयान्वितः ।
तस्थौ तत्र गृहे धीमान् मार्कण्डेयो महामुनिः ॥१७॥

उनके जन्म लेते ही किसी भविष्यवेत्ता ज्योतिषीने यह कहा था कि 'बारहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही इस बालककी मृत्यु हो जायगी ।' यह सुनकर उनके माता-पिता बहुत ही दुखी हुए । महामते ! उन्हें देख-देखकर उन दोनोंका हृदय व्यथित होता रहता था, तथापि उनके पिताने उनके नामकरण आदि सभी संस्कार किये । तत्पश्चात् मेधावी बालक मार्कण्डेय गुरुके घर ले जाये गये । वहाँ उनका उपनयन-संस्कार हुआ । वहाँ वे गुरुकी सेवामें तत्पर रहकर वेदाभ्यास करते हुए ही रहने लगे । वेद-शास्त्रोंका यथावत् अध्ययन करके वे पुनः अपने घर लौट आये । घर आनेपर बुद्धिमान् महामुनि मार्कण्डेयने विनयपूर्वक माता-पिताके चरणोंमें शीश झुकाया और तबसे वे घरपर ही रहने लगे ॥ १३—१७ ॥

तं निरीक्ष्य महात्मानं सत्प्रज्ञं च विचक्षणम् ।
दुःखितौ तौ भृशं तत्र तन्मातापितरौ शुचा ॥१८॥
तौ दृष्ट्वा दुःखमापन्नौ मार्कण्डेयो महामतिः ।
उवाच वचनं तत्र किमर्थं दुःखमीदृशम् ॥१९॥
सदैतत् कुरुषे मातस्तातेन सह धीमता ।
वक्तुमर्हसि दुःखस्य कारणं मम पृच्छतः ॥२०॥
इत्युक्ता तेन पुत्रेण माता तस्य महात्मनः ।
कथयामास तत्सर्वमागमी यदुवाच ह ॥२१॥

तच्छ्रुत्वासौ मुनिः प्राह मातरं पितरं पुनः ।
पित्रा सार्धं त्वया मातर्न कार्यं दुःखमण्वपि ॥२२॥
अपनेष्यामि भो मृत्युं तपसा नात्र संशयः ।
यथा चाहं चिरायुः स्यां तथा कुर्यामहं तपः ॥२३॥

शुकदेव ! उस समय उन परम बुद्धिमान् महात्मा एवं विद्वान् पुत्रको देखकर माता-पिता शोकसे बहुत ही दुखी हुए। उन्हें दुखी देखकर महामति मार्कण्डेयजीने कहा—'माँ ! तुम बुद्धिमान् पिताजीके साथ क्यों इस प्रकार निरन्तर दुखी रहा करती हो ? मैं पूछता हूँ, मुझसे अपने दुःखका कारण बतलाओ ।' अपने पुत्र मार्कण्डेयजीके इस प्रकार पूछनेपर उन महात्माकी माताने, ज्यौतिषी जो कुछ कह गया था, वह सब कह सुनाया। यह सुनकर मार्कण्डेयमुनिने माता-पितासे कहा—'माँ ! तुम और पिताजी तनिक भी दुःख न मानो। मैं तपस्याके द्वारा अपनी मृत्युको दूर हटा दूँगा, इसमें संशय नहीं है। मैं ऐसा तप करूँगा, जिससे चिरजीवी हो सकूँ' ॥ १८—२३ ॥

इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य पितरौ वनमभ्यगात् ।
वल्लीवटं नाम वनं नानाऋषिनिषेवितम् ॥२४॥
तत्रासौ मुनिभिः सार्धमासीनं स्वपितामहम् ।
भृगुं ददर्श धर्मज्ञं मार्कण्डेयो महामतिः ॥२५॥
अभिवाद्य यथान्यायं मुनींश्चैव स धार्मिकः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तस्थौ तत्पुरतो दमी ॥२६॥
गतायुषं ततो दृष्ट्वा पौत्रं बालं महामतिः ।
भृगुराह महाभागं मार्कण्डेयं तदा शिशुम् ॥२७॥
किमागतोऽसि पुत्रात्र पितुस्ते कुशलं पुनः ।
मातुश्च बान्धवानां च किमागमनकारणम् ॥२८॥
इत्येवमुक्तो भृगुणा मार्कण्डेयो महामतिः ।
उवाच सकलं तस्मै आदेशिवचनं तदा ॥२९॥
पौत्रस्य वचनं श्रुत्वा भृगुस्तु पुनरब्रवीत् ।
एवं सति महाबुद्धे किं त्वं कर्म चिकीर्षसि ॥३०॥

इस प्रकार कहकर, माता-पिताको आश्वासन देकर, वे अनेक ऋषियोंसे सुसेवित 'वल्लीवट' नामक वनमें गये। वहाँ पहुँचकर महामति मार्कण्डेयजीने मुनियोंके साथ विराजमान अपने पितामह धर्मात्मा भृगुजीका दर्शन किया। उनके साथ ही अन्य ऋषियोंका भी यथोचित अभिवादन करके धर्मपरायण मार्कण्डेयजी मनोनिग्रहपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर भृगुजीके समक्ष खड़े हो गये। महामति भृगुजीने अपने बालक पौत्र महाभाग मार्कण्डेयको, जिसकी आयु प्रायः बीत चुकी थी, देखकर कहा—'वत्स ! तुम यहाँ कैसे आये ? अपने माता-पिता और बान्धवजनोंका कुशल कहो तथा यह भी बतलाओ कि यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है ?' भृगुजीके इस प्रकार पूछनेपर महाप्राज्ञ मार्कण्डेयजीने उनसे उस समय ज्यौतिषीकी कही हुई सारी बात कह सुनायी। पौत्रकी बात सुनकर भृगुजीने पुनः कहा—'महाबुद्धे ! ऐसी स्थितिमें तुम कौन-सा कर्म करना चाहते हो ?' ॥ २४—३० ॥

मार्कण्डेय उवाच

भूतापहारिणं मृत्युं जेतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि तत्रोपायं वदस्व नः ॥३१॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन् ! मैं इस समय प्राणियोंका अपहरण करनेवाले मृत्युको जीतना चाहता हूँ, इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये आप मुझे कोई उपाय बतावें ॥ ३१ ॥

भृगुरुवाच

नारायणमनाराध्य तपसा महता सुत ।
को जेतुं शक्नुयान्मृत्युं तस्मात्त्वं तपसार्चय ॥३२॥
तमनन्तमजं विष्णुमच्युतं पुरुषोत्तमम् ।
भक्तप्रियं सुरश्रेष्ठं भक्त्या त्वं शरणं व्रज ॥३३॥
तमेव शरणं पूर्वं गतवान्नारदो मुनिः ।
तपसा महता वत्स नारायणमनामयम् ॥३४॥
तत्प्रसादान्महाभाग नारदो ब्रह्मणः सुतः ।
जरां मृत्युं विजित्याशु दीर्घायुर्वर्धते सुखम् ॥३५॥
तमृते पुण्डरीकाक्षं नारसिंहं जनार्दनम् ।
कः कुर्यान्मानवो वत्स मृत्युसत्तानिवारणम् ॥३६॥
तमनन्तमजं विष्णुं कृष्णं जिष्णुं श्रियःपतिम् ।
गोविन्दं गोपतिं देवं सततं शरणं व्रज ॥३७॥
नरसिंहं महादेवं यदि पूजयसे सदा ।
वत्स जेतासि मृत्युं त्वं सततं नात्र संशयः ॥३८॥

**भृगुजी बोले**—पुत्र ! बहुत बड़ी तपस्याके द्वारा भगवान् नारायणकी आराधना किये विना कौन मृत्युको जीत सकता है ? इसलिये तुम तपस्याद्वारा उन्हींका अर्चन करो । भक्तोंके प्रियतम और देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ उन अनन्त, अजन्मा, अच्युत पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ । वत्स ! पूर्वकालमें नारदमुनि भी महान् तपके द्वारा उन्हीं अनामय भगवान् नारायणकी शरणमें गये थे । महाभाग ! ब्रह्मपुत्र नारदजी उन्हींकी कृपासे जरा और मृत्युको शीघ्र ही जीतकर दीर्घायु हो सुखपूर्वक रहते हैं । पुत्र ! उन कमललोचन नृसिंहस्वरूप भगवान् जनार्दनके विना कौन मनुष्य यहाँ मृत्युकी सत्ताका निवारण कर सकता है ? तुम निरन्तर उन्हीं अनन्त, अजन्मा, विजयी, कृष्णवर्ण, लक्ष्मीपति, गोविन्द, गोपति भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ ! वत्स ! यदि तुम सदा उन महान् देवता भगवान् नरसिंहकी पूजा करते रहोगे, तो सदाके लिये मृत्युपर विजय प्राप्त कर लोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ३२—३८ ॥

व्यास उवाच

**उक्तः पितामहेनैवं भृगुणा पुनरब्रवीत् ।**
**मार्कण्डेयो महातेजा विनयात् स्वपितामहम् ॥३९॥**

**व्यासजी बोले**—पितामह भृगुके इस प्रकार कहनेपर महान् तेजस्वी मार्कण्डेयजीने उनसे विनयपूर्वक कहा ॥ ३९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**आराध्यः कथितस्तात विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः ।**
**कथं कुत्र मया कार्यमच्युताराधनं गुरो ।**
**येनासौ मम तुष्टस्तु मृत्युं सद्योऽपनेष्यति ॥४०॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—तात ! गुरो ! आपने विश्वपति भगवान् विष्णुको आराध्य तो बतलाया, परंतु मैं उन अच्युतकी आराधना कहाँ और किस प्रकार करूँ ? जिससे वे शीघ्र प्रसन्न होकर मेरी मृत्युको दूर कर दें ॥४०॥

भृगुरुवाच

**तुङ्गभद्रेति विख्याता या नदी सह्यपर्वते ।**
**तत्र भद्रवटे वत्स त्वं प्रतिष्ठाप्य केशवम् ॥४१॥**
**आराधय जगन्नाथं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।**
**हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामं मनः संयम्य तत्त्वतः ॥४२॥**
**हृत्पुण्डरीके देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।**
**ध्यायन्नेकमना वत्स द्वादशाक्षरमभ्यसन् ॥४३॥**
**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।**
**इमं मन्त्रं हि जपतो देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥**
**प्रीतो भवति विश्वात्मा मृत्युं येनापनेष्यति ॥४४॥**

**भृगुजी बोले**—सह्यपर्वतपर जो 'तुङ्गभद्रा' नामसे विख्यात नदी है । वहाँ 'भद्रवट' नामक वृक्षके नीचे जगन्नाथ भगवान् केशवकी स्थापना कर क्रमशः गन्ध और पुष्प आदिसे उनकी पूजा करो । इन्द्रियोंको मनमें नियन्त्रित कर, मनको भी पूर्णतः संयममें रखते हुए एकाग्रचित्त हो, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करो और अपने हृदयकमलमें शङ्ख, चक्र, गदा ( एवं पद्म ) धारण किये देवेश्वर भगवान् विष्णुका ध्यान किया करो । जो देवाधिदेव शार्ङ्गधन्वा विष्णुके इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करता है, उसके ऊपर वे विश्वात्मा प्रसन्न होते हैं । तुम भी इसका जप करो, जिससे प्रसन्न होकर वे तुम्हारी मृत्यु दूर कर देंगे ॥४१—४४॥

व्यास उवाच

**इत्युक्तस्तं प्रणम्याथ स जगाम तपोवनम् ॥४५॥**
**सह्यपादोद्भवायास्तु भद्रायास्तटमुत्तमम् ।**
**नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥४६॥**
**गुल्मवेणुलताकीर्णं नानामुनिजनाकुलम् ।**
**तत्र विष्णुं प्रतिष्ठाप्य गन्धधूपादिभिः क्रमात् ॥४७॥**
**पूजयामास देवेशं मार्कण्डेयो महामुनिः ।**
**पूजयित्वा हरिं तत्र तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥४८॥**
**निराहारो मुनिस्तत्र वर्षमेकमतन्द्रितः ।**
**मात्रोक्तकाले त्वासन्ने दिने तत्र महामतिः ॥४९॥**
**स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथार्चनम् ।**
**हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥५०॥**
**आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा कृत्वासौ प्राणसंयमम् ।**
**ॐकारोच्चारणाद्धीमान् हृत्पद्मं स विकासयन् ॥५१॥**
**तन्मध्ये रविसोमाग्निमण्डलानि यथाक्रमम् ।**
**कल्पयित्वा हरेः पीठं तस्मिन् देशे सनातनम् ॥५२॥**
**पीताम्बरधरं कृष्णं शङ्खचक्रगदाधरम् ।**
**भावपुष्पैः समभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्य च ॥५३॥**
**ब्रह्मरूपं हरिं ध्यायंस्ततो मन्त्रमुदीरयत् ।**
**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥५४॥**

**व्यासजी कहते हैं**—वत्स ! भृगुजीके इस प्रकार कहनेपर उन्हें प्रणाम करके मार्कण्डेयजी सह्यपर्वतकी शाखासे निकली हुई तुङ्गभद्राके उत्तम तटपर विविध प्रकारके वृक्ष और लताओंसे भरे हुए नाना भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित, गुल्म, लता और वेणुओंसे व्याप्त तथा अनेकानेक मुनिजनोंसे पूर्ण तपोवनमें गये । वहाँ वे महामुनिने देवेश्वर भगवान् विष्णुकी स्थापना करके क्रमशः गन्ध-धूप आदिसे उनकी पूजा करने लगे । भगवान्‌की पूजा करते हुए वहाँ उन्होंने निरालस्यभावसे निराहार रहकर सालभर अत्यन्त दुष्कर तप किया । माताका बतलाया हुआ समय निकट आनेपर उस दिन महामति मार्कण्डेयजीने वहाँ स्नान करके पूर्वोक्त विधिसे विष्णुकी पूजा की और स्वस्तिकासन बाँध इन्द्रियसमूहको मनमें संयत कर विशुद्ध अन्तःकरणसे युक्त हो प्राणायाम किया । फिर ॐकारके उच्चारणसे हृदयकमलको विकसित करते हुए उसके मध्यभागमें क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि-मण्डलकी कल्पना करके भगवान् विष्णुका पीठ निश्चित किया और उस स्थानपर पीताम्बर तथा शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी भावमय पुष्पोंसे पूजा करके उनमें अपने चित्तको लगा दिया । फिर उन ब्रह्मस्वरूप श्रीहरिका ध्यान करते हुए वे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।'—इस मन्त्रका जप करने लगे ॥ ४९–५४ ॥

व्यास उवाच

**इत्येवं ध्यायतस्तस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।**
**मनस्तत्रैव संलग्नं देवदेवे जगत्पतौ ॥५५॥**
**ततो यमाज्ञया तत्र आगता यमकिंकराः ।**
**पाशहस्तास्तु तं नेतुं विष्णुदूतैस्तु ते हताः ॥५६॥**
**शूलैः प्रहन्यमानास्तु द्विजं मुक्त्वा ययुस्तदा ।**
**वयं निवर्त्य गच्छामो मृत्युरेवागमिष्यति ॥५७॥**

**व्यासजी कहते हैं**—शुकदेव ! इस प्रकार ध्यान करते हुए बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीका मन उन देवाधिदेव जगदीश्वरमें लीन हो गया । तदनन्तर यमराजकी आज्ञासे उन्हें ले जानेके लिये हाथोंमें पाश लिये हुए यमदूत वहाँ आये; परंतु भगवान् विष्णुके दूतोंने उन्हें मार भगाया । शूलोंसे मारे जानेपर वे उस समय विप्रवर मार्कण्डेयको छोड़कर भाग चले और यह कहते गये कि 'हमलोग तो लौटकर चले जा रहे हैं; परंतु अब साक्षात् मृत्युदेव ही यहाँ आयेंगे' ॥ ५५–५७ ॥

विष्णुदूता ऊचुः

**यत्र नः स्वामिनो नाम लोकनाथस्य शार्ङ्गिणः ।**
**को यमस्तत्र मृत्युर्वा कालः कलयतां वरः ॥५८॥**

**विष्णुदूत बोले**—जहाँ हमारे स्वामी जगदीश्वर शार्ङ्गधन्वा भगवान् विष्णुका नाम जपा जाता हो, वहाँ उनकी क्या बिसात है ? ग्रसनेवालोंमें श्रेष्ठ काल, मृत्यु अथवा यमराज कौन होते हैं ? ॥ ५८ ॥

व्यास उवाच

**आगत्य स्वयमेवाह मृत्युः पार्श्वं महात्मनः ।**
**मार्कण्डेयस्य बभ्राम विष्णुकिंकरशङ्कया ॥५९॥**
**तेऽप्युद्यम्याशु मुशलानायसान् विष्णुकिंकराः ।**
**विष्ण्वाज्ञया हनिष्यामो मृत्युमद्येति संस्थिताः ॥६०॥**
**ततो विष्ण्वर्पितमना मार्कण्डेयो महामतिः ।**
**तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं जनार्दनम् ॥६१॥**
**विष्णुनैवोदितं यत्तत्स्तोत्रं कर्णे महात्मनः ।**
**सुभाषितेन मनसा तेन तुष्टाव माधवम् ॥६२॥**

**व्यासजी कहते हैं**—यमदूतोंके लौटनेके बाद साक्षात् मृत्युने ही वहाँ आकर उन्हें यमलोक चलनेको कहा, परंतु श्रीविष्णुदूतोंके डरसे वे महात्मा मार्कण्डेयके आसपास ही घूमते रह गये; उन्हें स्पर्श करनेका साहस न कर सके । इधर विष्णुदूत भी शीघ्र ही लोहेके मूसल उठाकर खड़े हो गये । उन्होंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि 'आज हमलोग विष्णुकी आज्ञासे मृत्युका वध कर डालेंगे ।' तत्पश्चात् महामति मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णुमें चित्त लगाये उन देवाधिदेव जनार्दनको प्रणाम करते हुए स्तुति करने लगे । भगवान् विष्णुने ही वह स्तोत्र उन महात्माके कानमें कह दिया । उसी सुभाषित स्तोत्रद्वारा उन्होंने मनोयोग-पूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्तुति की ॥ ५९–६२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**नारायणं सहस्राक्षं पद्मनाभं पुरातनम् ।**
**प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति ॥६३॥**

गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजमव्ययम् ।
केशवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥६४॥
वासुदेवं जगद्योनिं भानुवर्णमतीन्द्रियम् ।
दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥६५॥
शङ्खचक्रधरं देवं छन्नरूपिणमव्ययम् ।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥६६॥
वाराहं वामनं विष्णुं नरसिंहं जनार्दनम् ।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥६७॥
पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीजं जगत्पतिम् ।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥६८॥
भूतात्मानं महात्मानं जगद्योनिमयोनिजम् ।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥६९॥
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥७०॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—जो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त, इन्द्रियोंके स्वामी, पुरातन पुरुष तथा पद्मनाभ ( अपनी नाभिसे ब्रह्माण्डमय कमलको प्रकट करनेवाले ) हैं, उन श्रीनारायणदेवको मैं प्रणाम करता हूँ । मृत्यु मेरा क्या कर लेगा ? मैं अनन्त, अजन्मा, अविकारी, गोविन्द, कमलनयन भगवान् केशवकी शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा ? मैं संसारकी उत्पत्तिके स्थान, सूर्यके समान प्रकाशमान्, इन्द्रियातीत वासुदेव ( सर्वव्यापी देवता ) भगवान् दामोदरकी शरणमें आ गया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? जिनका स्वरूप अव्यक्त है, जो विकारोंसे रहित हैं, उन शङ्ख-चक्रधारी भगवान् अधोक्षजकी मैं शरणमें आ गया; मृत्यु मेरा क्या कर लेगा ? मैं वाराह, वामन, विष्णु, नरसिंह, जनार्दन एवं माधवकी शरणमें हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? मैं पवित्र, पुष्कररूप अथवा पुष्कल ( पूर्ण ) रूप, कल्याणबीज, जगत्-प्रतिपालक एवं लोकनाथ भगवान् पुरुषोत्तमकी शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा ? जो समस्त भूतोंके आत्मा, महात्मा ( परमात्मा ) एवं जगत्की योनि ( उत्पत्तिके स्थान ) होते हुए भी स्वयं अयोनिज हैं, उन भगवान् विश्वरूपकी मैं शरणमें आया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो व्यक्ताव्यक्त स्वरूप हैं, उन महायोगी सनातन देवकी मैं शरणमें आया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? ॥ ६३–७० ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः ।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैश्च पीडितः ॥७१॥
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥७२॥
मृत्युंजयमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम् ।
मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ॥७३॥
य इदं पठते भक्त्या त्रिकालं नियतः शुचिः ।
नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः ॥७४॥
हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं
नारायणं शाश्वतमादिदेवम् ।
संचिन्त्य सूर्यादपि राजमानं
मृत्युं स योगी जितवांस्तदैव ॥७५॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्कण्डेयमृत्युंजयो नाम*
*सप्तमोऽध्यायः ॥७॥*

महात्मा मार्कण्डेयके द्वारा उच्चारित हुए उस स्तोत्रको सुनकर विष्णुदूतोंद्वारा पीड़ित हुए मृत्युदेव वहाँसे भाग चले । इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेयने मृत्युपर विजय पायी । सच है, कमललोचन भगवान् नृसिंहके प्रसन्न होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता । स्वयं भगवान् विष्णुने ही मार्कण्डेयजीके हितके लिये मृत्युको शान्त करनेवाले इस परम पावन मङ्गलमय मृत्युंजय-स्तोत्रका उपदेश दिया था । जो नित्य नियमपूर्वक पवित्रभावसे भक्तियुक्त होकर सायं, प्रातः और मध्याह्न—तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् अच्युतमें चित्त लगानेवाले उस पुरुषका अकाल-मरण नहीं होता । योगी मार्कण्डेयने अपने हृदय-कमलमें सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान सनातन पुराण-पुरुष आदिदेव नारायणका चिन्तन करके तत्काल मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली ॥ ७१–७५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मार्कण्डेयकी मृत्युपर विजय' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

# आठवाँ अध्याय

## मृत्यु और दूतोंको समझाते हुए यमका उन्हें वैष्णवोंके पास जानेसे रोकना; उनके मुँहसे श्रीहरिके नामकी महिमा सुनकर नरकस्थ जीवोंका भगवान्‌को नमस्कार करके श्रीविष्णुके धाममें जाना

श्रीव्यास उवाच

**मृत्युश्च किंकराश्चैव विष्णुदूतैः प्रपीडिताः ।**
**स्वराज्ञस्तेऽनु निर्वेशं गत्वा ते चुक्रुशुर्भृशम् ॥ १ ॥**

**श्रीव्यासजी बोले**—विष्णुदूतोंके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए मृत्युदेव और यमदूत अपने राजा यमके भवनमें जाकर बहुत रोने-कलपने लगे ॥ १ ॥

मृत्युकिंकरा ऊचुः

**शृणु राजन् वचोऽस्माकं तवाग्रे यद् ब्रवीमहे ।**
**त्वदादेशाद्वयं गत्वा मृत्युं संस्थाप्य दूरतः ॥ २ ॥**
**ब्राह्मणस्य समीपं च भृगोः पौत्रस्य सत्तम ।**
**तं ध्यायमानं कमपि देवमेकाग्रमानसम् ॥ ३ ॥**
**गन्तुं न शक्तास्तत्पार्श्वं वयं सर्वे महामते ।**
**यावत्तावन्महाकायैः पुरुषैर्मुशलैर्हताः ॥ ४ ॥**
**वयं निवृत्तास्तद्वीक्ष्य मृत्युस्तत्र गतः पुनः ।**
**अस्मान्निर्भर्त्स्य तत्रायं तैर्नरैर्मुशलैर्हतः ॥ ५ ॥**
**एवमत्र तमानेतुं ब्राह्मणं तपसि स्थितम् ।**
**अशक्ता वयमेवात्र मृत्युना सह वै प्रभो ॥ ६ ॥**
**तद्ब्रूहि महाभाग यद्ब्रह्म ब्राह्मणस्य तु ।**
**देवं कं ध्यायते विप्रः के वा ते यैर्हता वयम् ॥ ७ ॥**

**मृत्यु और यमदूत बोले**—राजन्! आपके आगे हम जो कुछ कह रहे हैं, हमारी इन बातोंको आप सुनें। हमलोगोंने आपकी आज्ञाके अनुसार यहाँसे जाकर मृत्युको तो दूर ठहरा दिया और स्वयं भृगुके पौत्र ब्राह्मण मार्कण्डेयके समीप गये। परंतु सत्पुरुषशिरोमणे! वह उस समय एकाग्रचित्त होकर किसी देवताका ध्यान कर रहा था। महामते! हम सभी लोग उसके पासतक पहुँचने भी नहीं पाये थे कि बहुत-से महाकाय पुरुष मूसलसे हमें मारने लगे। तब हमलोग तो लौट पड़े, परंतु यह देखकर मृत्युदेव वहाँ फिर पधारे। तब हमें डाँट-फटकारकर उन लोगोंने इन्हें भी मूसलोंसे मारा। प्रभो! इस प्रकार तपस्यामें स्थित हुए उस ब्राह्मणको यहाँतक लानेमें मृत्युसहित हम सब लोग समर्थ न हो सके। महाभाग! उस ब्राह्मणका जो तप है, उसे आप बतलाइये। वह किस देवताका ध्यान कर रहा था और जिन लोगोंने हमें मारा, वे कौन थे? ॥ २—७ ॥

व्यास उवाच

**इत्युक्तः किंकरैः सर्वैर्मृत्युना च महामते ।**
**ध्यात्वा क्षणं महाबुद्धिः प्राह वैवस्वतो यमः ॥ ८ ॥**

**व्यासजी कहते हैं**—महामते! मृत्यु तथा समस्त दूतोंके इस प्रकार कहनेपर महाबुद्धि सूर्यकुमार यमने क्षणभर ध्यान करके कहा ॥ ८ ॥

यम उवाच

**शृण्वन्तु किंकराः सर्वे मृत्युश्चान्ये च मे वचः ।**
**सत्यमेतत्प्रवक्ष्यामि ज्ञानं यद्योगमार्गतः ॥ ९ ॥**
**भृगोः पौत्रो महाभागो मार्कण्डेयो महामतिः ।**
**स ज्ञात्वाद्यात्मनः कालं गतो मृत्युजिगीषया ॥१०॥**
**भृगुणोक्तेन मार्गेण स तेपे परमं तपः ।**
**हरिमाराध्य मेधावी जपन् वै द्वादशाक्षरम् ॥११॥**
**एकाग्रेणैव मनसा ध्यायते हृदि केशवम् ।**
**सततं योगयुक्तस्तु स मुनिस्तत्र किंकराः ॥१२॥**
**हरिध्यानमहादीक्षाबलं तस्य महामुनेः ।**
**नान्यद्वै प्राप्तकालस्य बलं पश्यामि किंकराः ॥१३॥**
**हृदिस्थे पुण्डरीकाक्षे सततं भक्तवत्सले ।**
**पश्यन्तं विष्णुभूतं नु को हि स्यात् केशवाश्रयम्॥१४॥**

**यम बोले**—मृत्यु तथा मेरे अन्य सभी किंकर आज मेरी बात सुनें—योगमार्ग (समाधि) के द्वारा मैंने इस समय जो कुछ जाना है, वही सच-सच बतला रहा हूँ। भृगुके पौत्र महाबुद्धिमान् महाभाग मार्कण्डेयजी आजके दिन अपनी मृत्यु जानकर मृत्युको जीतनेकी इच्छासे तपोवनमें गये थे। वहाँ उन बुद्धिमान्‌ने भृगुजीके बतलाये हुए मार्गके अनुसार भगवान् विष्णुकी आराधना एवं द्वादशाक्षर मन्त्रका

जप करते हुए उत्कृष्ट तपस्या की है। दूतो! वे मुनि निरन्तर योगयुक्त होकर वहाँ एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें केशवका ध्यान कर रहे हैं। किंकरो! उस महामुनिको भगवान् विष्णुके ध्यानकी महादीक्षाका ही बल प्राप्त है; क्योंकि जिसका मरणकाल प्राप्त हो गया है, उसके लिये मैं दूसरा कोई बल नहीं देखता। भक्तवत्सल, कमललोचन भगवान् विष्णुके निरन्तर हृदयस्थ हो जानेपर उस विष्णुस्वरूप भगवच्छरणागत पुरुषकी ओर कौन देख सकता है ? ॥ ९—१४ ॥

**तेऽपि वै पुरुषा विष्णोर्यैर्यूयं ताडिता भृशम् ।**
**अत ऊर्ध्वं न गन्तव्यं यत्र वै वैष्णवाः स्थिताः ॥१५॥**
**न चित्रं ताडनं तत्र अहं मन्ये महात्मभिः ।**
**भवतां जीवनं चित्रं यक्षैर्दत्तं कृपालुभिः ॥१६॥**
**नारायणपरं विप्रं कस्तं वीक्षितुमुत्सहेत् ।**
**युष्माभिश्च महापापैर्मार्कण्डेयं हरिप्रियम् ।**
**समानेतुं कृतो यत्नः समीचीनं न तत्कृतम् ॥१७॥**
**नरसिंहं महादेवं ये नराः पर्युपासते ।**
**तेषां पार्श्वे न गन्तव्यं युष्माभिर्मम शासनात् ॥१८॥**

वे पुरुष भी, जिन्होंने तुम्हें बहुत मारा है, भगवान् विष्णुके ही दूत हैं। आजसे जहाँ वैष्णव हों, वहाँ तुमलोग न जाना। उन महात्माओंके द्वारा तुम्हारा मारा जाना आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि उन दयालु महापुरुषोंने तुम्हें जीवित रहने दिया है। भला, नारायणके ध्यानमें तत्पर हुए उस ब्राह्मणको देखनेका भी साहस कौन कर सकता है ? तुम महापापियोंने भगवान्के प्रिय भक्त मार्कण्डेयजीको जो यहाँ लानेका प्रयत्न किया है, यह अच्छा नहीं किया। आजसे तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर उन महात्माओंके पास न जाना, जो महादेव भगवान् नृसिंहकी उपासना करते हों ॥ १५—१८ ॥

श्रीव्यास उवाच

**स एवं किंकरानुक्त्वा मृत्युं च पुरतः स्थितम् ।**
**यमो निरीक्ष्य च जनं नरकस्थं प्रपीडितम् ॥१९॥**
**कृपया परया युक्तो विष्णुभक्त्या विशेषतः ।**
**जनस्यानुग्रहार्थाय तेनोक्ताश्च गिरः शृणु ॥२०॥**
**नरके पच्यमानस्य यमेन परिभाषितम् ।**
**किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥२१॥**
**उदकेनाप्यलाभे तु द्रव्याणां पूजितः प्रभुः ।**
**यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न पूजितः ॥२२॥**
**नरसिंहो हृषीकेशः पुण्डरीकनिभेक्षणः ।**
**स्मरणान्मुक्तिदो नृणां स त्वया किं न पूजितः ॥२३॥**

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! यमने अपने सामने खड़े हुए मृत्युदेव और दूतोंसे इस प्रकार कहकर नरकमें पड़े हुए पीड़ित मनुष्योंकी ओर देखा तथा अत्यन्त कृपा एवं विशेषतः विष्णुभक्तिसे युक्त होकर नारकीय जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये जो बातें कहीं, उन्हें तुम सुनो। नरकमें यातना सहते हुए जीवोंसे यमने कहा—'पापसे कष्ट पानेवाले जीव ! तुमने क्लेशनाशक भगवान् केशवकी पूजा क्यों नहीं की ? पूजन-सम्बन्धी द्रव्योंके न मिलनेपर केवल जलमात्रसे भी पूजित होनेपर जो भगवान् पूजकको अपना लोकतक दे डालते हैं, उनकी पूजा तुमने क्यों नहीं की ! कमलके समान लोचनोंवाले, नरसिंहरूपधारी जो भगवान् हृषीकेश स्मरणमात्रसे ही मनुष्योंको मुक्ति देनेवाले हैं, उनकी पूजा तुमने क्यों नहीं की ?' ॥ १९—२३ ॥

**इत्युक्त्वा नारकान् सर्वान् पुनराह स किंकरान् ।**
**वैवस्वतो यमः साक्षाद्विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥२४॥**
**नारदाय स विश्वात्मा प्राहैवं विष्णुरव्ययः ।**
**अन्येभ्यो वैष्णवेभ्यश्च सिद्धेभ्यः सततं श्रुतम् ॥२५॥**
**तद्वः प्रीत्या प्रवक्ष्यामि हरिवाक्यमनुत्तमम् ।**
**शिक्षार्थं किंकराः सर्वे शृणुत प्रणता हरेः ॥२६॥**

नरकमें पड़े हुए जीवोंके प्रति यों कहकर विष्णुभक्तिसे युक्त सूर्यनन्दन यमने अपने किंकरोंसे पुनः कहा—'किंकरो ! अविनाशी विश्वात्मा भगवान् विष्णुने नारदजीसे जैसा कहा था और अन्य वैष्णवों तथा सिद्धोंसे जैसा सदा ही सुना गया है, वह अत्यन्त उत्तम भगवद्वाक्य मैं प्रसन्न होकर तुम लोगोंसे शिक्षाके लिये कह रहा हूँ। तुम सभी भगवान्के शरणागत होकर सुनो ॥ २४—२६ ॥

**हे कृष्ण कृष्ण कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।**
**जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥२७॥**
**पुण्डरीकाक्ष देवेश नरसिंह त्रिविक्रम ।**
**त्वामहं शरणं प्राप्त इति यस्तं समुद्धरे ॥२८॥**

त्वां प्रपन्नोऽस्मि शरणं देवदेव जनार्दन ।
इति यः शरणं प्राप्तस्तं क्लेशादुद्धराम्यहम् ॥२९॥

भगवान् कहते हैं—'हे कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !' —इस प्रकार जो मेरा नित्य स्मरण करता है, उसको मैं उसी प्रकार नरकसे निकाल लेता हूँ, जैसे जलको भेदकर कमल बाहर निकल आता है । 'पुण्डरीकाक्ष ! देवेश्वर नरसिंह ! त्रिविक्रम ! मैं आपकी शरणमें पड़ा हूँ'—यों जो कहता है, उसका मैं उद्धार कर देता हूँ । 'देवाधिदेव ! जनार्दन ! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ'—इस प्रकार जो मेरा शरणागत होता है, उसे मैं क्लेशसे मुक्त कर देता हूँ ॥ २७–२९ ॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य हरिवाक्यं यमेन च ।
नारकाः कृष्णकृष्णेति नारसिंहेति चुक्रुशुः ॥३०॥
यथा यथा हरेर्नाम कीर्तयन्त्यत्र नारकाः ।
तथा तथा हरेर्भक्तिमुद्वहन्तोऽब्रुवन्निदम् ॥३१॥

व्यासजी कहते हैं—वत्स ! यमराजके कहे हुए इस भगवद्वाक्यको सुनकर नरकमें पड़े हुए जीव 'कृष्ण ! कृष्ण ! नरसिंह !' इत्यादि भगवन्नामोंका जोरसे उच्चारण करने लगे । नारकीय जीव वहाँ ज्यों-ज्यों भगवन्नामका कीर्तन करते थे, त्यों-ही-त्यों भगवद्भक्तिसे युक्त होते जाते थे । इस तरह भक्ति-भावसे पूर्ण हो वे इस प्रकार कहने लगे ॥ ३०-३१ ॥

नारका ऊचुः

ॐ नमो भगवते तस्मै केशवाय महात्मने ।
यन्नामकीर्तनात्सद्यो नरकाग्निः प्रशाम्यति ॥३२॥
भक्तप्रियाय देवाय रक्षाय हरये नमः ।
लोकनाथाय शान्ताय यज्ञेशायादिमूर्तये ॥३३॥
अनन्तायाप्रमेयाय नरसिंहाय ते नमः ।
नारायणाय गुरवे शङ्खचक्रगदाभृते ॥३४॥
वेदप्रियाय महते विक्रमाय नमो नमः ।
वाराहायाप्रतर्क्याय वेदाङ्गाय महीभृते ॥३५॥
नमो द्युतिमते नित्यं ब्राह्मणाय नमो नमः ।
वामनाय बहुज्ञाय वेदवेदाङ्गधारिणे ॥३६॥
बलिबन्धनदक्षाय वेदपालाय ते नमः ।
विष्णवे सुरनाथाय व्यापिने परमात्मने ॥३७॥
चतुर्भुजाय शुद्धाय शुद्धद्रव्याय ते नमः ।
जामदग्न्याय रामाय दुष्टक्षत्रान्तकारिणे ॥३८॥
रामाय रावणान्ताय नमस्तुभ्यं महात्मने ।
अस्मानुद्धर गोविन्द पूतिगन्धान्नमोऽस्तु ते ॥३९॥

**नरकस्थ जीव बोले**—'ॐ' जिनका नाम कीर्तन करनेसे नरककी ज्वाला तत्काल शान्त हो जाती है, उन महात्मा भगवान् केशवको नमस्कार है । जो यज्ञोंके ईश्वर, आदिमूर्ति, शान्तस्वरूप और संसारके स्वामी हैं, उन भक्त-प्रिय, विश्वपालक भगवान् विष्णुको नमस्कार है । अनन्त, अप्रमेय नरसिंहस्वरूप, शङ्ख-चक्र-गदा धारण करनेवाले, लोकगुरु आप श्रीनारायणको नमस्कार है । वेदोंके प्रिय, महान् एवं विशिष्ट गतिवाले भगवान्‌को नमस्कार है । तर्कके अविषय, वेदस्वरूप, पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् वाराहको प्रणाम है । ब्राह्मणकुलमें अवतीर्ण, वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता और अनेक विषयोंका ज्ञान रखनेवाले कान्तिमान् भगवान् वामनको नमस्कार है । बलिको बाँधनेवाले, वेदके पालक, देवताओंके स्वामी, व्यापक, परमात्मा आप वामनरूपधारी विष्णु भगवान्‌को प्रणाम है । शुद्ध द्रव्यमय, शुद्धस्वरूप भगवान् चतुर्भुजको नमस्कार है । दुष्ट क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले जमदग्निनन्दन भगवान् परशुरामको प्रणाम है । रावणका वध करनेवाले आप महात्मा श्रीरामको नमस्कार है । गोविन्द ! आपको बारंबार प्रणाम है । आप इस दुर्गन्धपूर्ण नरकसे हमारा उद्धार करें ॥ ३२–३९ ॥

व्यास उवाच

इति संकीर्तिते विष्णौ नारकैर्भक्तिपूर्वकम् ।
तदा सा नारकी पीडा गता तेषां महात्मनाम् ॥४०॥
कृष्णरूपधराः सर्वे दिव्यवस्त्रविभूषिताः ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गा दिव्याभरणभूषिताः ॥४१॥
तानारोप्य विमानेषु दिव्येषु हरिपूरुषाः ।
तर्जयित्वा यमभटान् नीतास्ते केशवालयम् ॥४२॥
नारकेषु च सर्वेषु नीतेषु हरिपूरुषैः ।
विष्णुलोकं यमो भूयो नमश्चक्रे तदा हरिम् ॥४३॥
यन्नामकीर्तनाद्याता नारकाः केशवालयम् ।
तं नमामि सदा देवं नरसिंहमहं गुरुम् ॥४४॥

तस्य वै नरसिंहस्य विष्णोरमिततेजसः ।
प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेभ्योऽपीह नमो नमः ॥४५॥

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! इस प्रकार नरकमें पड़े हुए जीवोंने जब भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका कीर्तन किया, तब उन महात्माओंकी नरक-पीड़ा तत्काल दूर हो गयी । वे सभी अपने अङ्गोंमें दिव्य गन्धका अनुलेप लगाये, दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे विभूषित हो, श्रीकृष्णस्वरूप हो गये । फिर भगवान् विष्णुके किंकर यमदूतोंकी भर्त्सना करके उन्हें दिव्य विमानोंपर बिठाकर विष्णुधामको ले गये । विष्णुदूतोंद्वारा सभी नरकस्थ जीवोंके विष्णुलोकमें ले जाये जानेपर यमराजने पुनः भगवान् विष्णुको प्रणाम किया । 'जिनके नामकीर्तनसे नरकमें पड़े हुए जीव विष्णुधामको चले गये, उन गुरुदेव नरसिंह भगवान्‌को मैं सदा प्रणाम करता हूँ । उन अमित तेजस्वी नरसिंहस्वरूप भगवान् विष्णुको जो प्रणाम करते हैं, उन्हें भी मेरा बार-बार नमस्कार है' ॥ ४०—४५ ॥

दृष्ट्वा प्रशान्तं नरकाग्निमुग्रं
यन्त्रादि सर्वं विपरीतमत्र ।
पुनः स शिक्षार्थमथात्मदूतान्
यमो हि वक्तुं कृतवान् मनः स्वयम् ॥४६॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे यमगीता नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥*

उग्र नरकाग्निको शान्त और सभी यन्त्र आदिको विपरीत दशामें पड़े देखकर यमराजने स्वयं ही पुनः अपने दूतोंको शिक्षा देनेके लिये मनमें विचार किया ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'यमगीता' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

# नवाँ अध्याय

## यमाष्टक—यमराजका अपने दूतके प्रति उपदेश

श्रीव्यास उवाच

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ १ ॥
अहममरगणार्चितेन धात्रा
यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुविमुखान् प्रशास्मि मर्त्यान्
हरिच्चरणप्रणतान्नमस्करोमि ॥ २ ॥
सुगतिमभिलषामि वासुदेवा-
दहमपि भागवते स्थितान्तरात्मा ।
मधुवधवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः
प्रभवति संयमने ममापि कृष्णः ॥ ३ ॥
भगवति विमुखस्य नास्ति सिद्धि-
र्विषममृतं भवतीति नेदमस्ति ।
वर्षशतमपीह पच्यमानं
व्रजति न काञ्चनतामयः कदाचित् ॥ ४ ॥
नहि शशिकलुषच्छविः कदाचिद्-
विरमति नो रवितामुपैति चन्द्रः ।
भगवति च हरावनन्यचेता
भृशमलिनोऽपि विराजते मनुष्यः ॥ ५ ॥
महदपि सुविचार्य लोकतत्त्वं
भगवदुपास्तिमृते न सिद्धिरस्ति ।
सुरगुरुसुदृढप्रसाददौ तौ
हरिच्चरणौ स्मरतापवर्गहेतोः ॥ ६ ॥
शुभमिदमुपलभ्य मानुषत्वं
सुकृतशतेन वृथेन्द्रियार्थहेतोः ।
रमयति कुरुते न मोक्षमार्गं
दहयति चन्दनमाशु भस्महेतोः ॥ ७ ॥
मुकुलितकरकुड्मलैः सुरेन्द्रैः
सततनमस्कृतपादपङ्कजो यः ।
अविहतगतये सनातनाय
जगति जनिं हरते नमोऽग्रजाय ॥ ८ ॥

श्रीव्यासजी बोले—अपने किंकरको हाथमें पाश लिये

कहीं जानेको उद्यत देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—"दूत ! तुम भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गये हुए प्राणियोंको छोड़ देना; क्योंकि मेरी प्रभुता दूसरे मनुष्योंपर ही चलती है, वैष्णवोंपर मेरा प्रभुत्व नहीं है । देवपूजित ब्रह्माजीने मुझे 'यम' कहकर लोगोंके पुण्य-पापका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है । जो विष्णु और गुरुसे विमुख हैं, मैं उन्हीं मनुष्योंका शासन करता हूँ । जो श्रीहरिके चरणोंमें शीश झुकानेवाले हैं, उन्हें तो मैं स्वयं ही प्रणाम करता हूँ । भगवद्भक्तोंके चिन्तन एवं स्मरणमें अपना मन लगाकर मैं भी भगवान् वासुदेवसे अपनी सुगति चाहता हूँ । मैं मधुसूदनके वशमें हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ । भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं । जो भगवान्‌से विमुख है, उसे कभी सिद्धि ( मुक्ति ) नहीं प्राप्त हो सकती; विष अमृत हो जाय, ऐसा कभी सम्भव नहीं है; लोहा सैकड़ों वर्षोंतक आगमें तपाया जाय, तो भी कभी सोना नहीं हो सकता; चन्द्रमाकी कलङ्कित कान्ति कभी निष्कलङ्क नहीं हो सकती; वह कभी सूर्यके समान प्रकाशमान नहीं हो सकता; परंतु जो अनन्यचित्त होकर भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा है, वह मनुष्य अपने शरीरसे अत्यन्त मलिन होनेपर भी बड़ी शोभा पाता है । महान् लोकतत्त्वका अच्छी तरह विचार करनेपर भी यही निश्चित होता है कि भगवान्‌की उपासनाके बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती; इसलिये देवगुरु बृहस्पतिके ऊपर सुदृढ़ अनुकम्पा करनेवाले भगवच्चरणोंका तुमलोग मोक्षके लिये स्मरण करते रहो । जो लोग सैकड़ों पुण्योंके फलस्वरूप इस सुन्दर मनुष्य-शरीरको पाकर भी व्यर्थ विषयसुखोंमें रमण करते हैं, मोक्षपथका अनुसरण नहीं करते, वे मानो राखके लिये जल्दी-जल्दी चन्दनकी लकड़ीको फूँक रहे हैं । बड़े-बड़े देवेश्वर हाथ जोड़कर मुकुलित कर पङ्कज-कोष-द्वारा जिन भगवान्‌के चरणारविन्दोंको प्रणाम करते हैं तथा जिनकी गति कभी और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती, उन भव-जन्मनाशक एवं सबके अग्रज सनातन पुरुष भगवान् विष्णुको नमस्कार है" ॥ १-८ ॥

यमाष्टकमिदं पुण्यं पठते यः शृणोति वा ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥
इतीदमुक्तं यमवाक्यमुत्तमं
मयाधुना ते हरिभक्तिवर्द्धनम् ।
पुनः प्रवक्ष्यामि पुरातनीं कथां
भृगोस्तु पौत्रेण च या पुरा कृता ॥१०॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥*

**श्रीव्यासजी कहते हैं**—इस पवित्र यमाष्टकको जो पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको चला जाता है । भगवान् विष्णुकी भक्तिको बढ़ानेवाला यमराजका यह उत्तम वचन मैंने इस समय तुमसे कहा है; अब पुनः उसी पुरानी कथाको अर्थात् भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीने पूर्वकालमें जो कुछ किया था, उसको कहूँगा ॥९-१०॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

## दसवाँ अध्याय

### मार्कण्डेयका विवाह कर वेदशिराको उत्पन्न करके प्रयागमें अक्षयवटके नीचे तप एवं भगवान्‌की स्तुति करना; फिर आकाशवाणीके अनुसार स्तुति करनेपर भगवान्‌का उन्हें आशीर्वाद एवं वरदान देना तथा मार्कण्डेयजीका क्षीरसागरमें जाकर पुनः उनका दर्शन करना

श्रीव्यास उवाच

जित्वैवमात्मनो मृत्युं तपसा शंसितव्रतः ।
स जगाम पितुर्गेहं मार्कण्डेयो महामतिः ॥ १ ॥
कृत्वा विवाहं धर्मेण भृगोर्वाक्यविशेषतः ।
स वेदशिरसं पुत्रमुत्पाद्य च विधानतः ॥ २ ॥
इष्ट्वा यज्ञैस्तु देवेशं नारायणमनामयम् ।
श्राद्धेन तु पितॄनिष्ट्वा अन्नदानेन चातिथीन् ॥ ३ ॥
प्रयागमासाद्य पुनः स्नात्वा तीर्थे गरीयसि ।
मार्कण्डेयो महातेजास्तेपे वटमूले तपः ॥ ४ ॥

यस्य प्रसादेन पुरा जितवान् मृत्युमात्मनः ।
तं देवं द्रष्टुमिच्छन् यः स तेपे परमं तपः ॥ ५ ॥
वायुभक्षश्चिरं कालं तपसा शोषयंस्तनुम् ।
एकदा तु महातेजा मार्कण्डेयो महामतिः ॥ ६ ॥
आराध्य माधवं देवं गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
अग्रे व्यग्रमनाः स्थित्वा हृदये तमनुस्मरन् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥ ७ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! इस प्रकार तपस्याद्वारा अपनी मृत्युको जीतकर प्रशंसित व्रतवाले महाबुद्धिमान् मार्कण्डेयजी पिताके घर गये । वहाँ भृगुजीके विशेष आग्रहसे धर्मपूर्वक विवाह करके उन्होंने विधिके अनुसार 'वेदशिरा' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया । तत्पश्चात् निरामय (निर्विकार) देवेश्वर भगवान् नारायणका यज्ञोंद्वारा यजन करते हुए उन्होंने श्राद्धसे पितरोंका और अन्नदानसे अतिथियोंका पूजन किया । इसके बाद पुनः प्रयागमें जाकर वहाँके श्रेष्ठतम तीर्थ त्रिवेणीमें स्नान करके महातेजस्वी मार्कण्डेयजी अक्षयवटके नीचे तप करने लगे । जिनके कृपाप्रसादसे उन्होंने पूर्वकालमें मृत्युपर विजय प्राप्त की थी, उन्हीं देवाधिदेवके दर्शनकी इच्छासे उन्होंने उत्कृष्ट तपस्या आरम्भ की । दीर्घकालतक केवल वायु पीकर तपस्याद्वारा अपने शरीरको सुखाते हुए वे महातेजस्वी महाबुद्धिमान् मार्कण्डेयजी एक दिन गन्ध-पुष्प आदि शुभ उपकरणोंसे भगवान् वेणीमाधवकी आराधना करके उनके सम्मुख स्वस्थचित्तसे खड़े हो गये और हृदयमें उन्हीं शङ्ख-चक्र-गदाधारी गरुडध्वज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ १–७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नरं नृसिंहं नरनाथमच्युतं
प्रलम्बबाहुं कमलायतेक्षणम् ।
क्षितीश्वरैरर्चितपादपङ्कजं
नमामि विष्णुं पुरुषं पुरातनम् ॥ ८ ॥
जगत्पतिं क्षीरसमुद्रमन्दिरं
तं शार्ङ्गपाणिं मुनिवृन्दवन्दितम् ।
श्रियःपतिं श्रीधरमीशमीश्वरं
नमामि गोविन्दमनन्तवर्चसम् ॥ ९ ॥
अजं वरेण्यं जनदुःखनाशनं
गुरुं पुराणं पुरुषोत्तमं प्रभुम् ।
सहस्रसूर्यद्युतिमन्तमच्युतं
नमामि भक्त्या हरिमाद्यमाधवम् ॥ १० ॥
पुरस्कृतं पुण्यवतां परां गतिं
क्षितीश्वरं लोकपतिं प्रजापतिम् ।
परं पराणामपि कारणं हरिं
नमामि लोकत्रयकर्मसाक्षिणम् ॥ ११ ॥
भोगे त्वनन्तस्य पयोदधौ सुरः
पुरा हि शेते भगवाननादिकृत् ।
क्षीरोदवीचीकणिकाम्बुनोक्षितं
तं श्रीनिवासं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥ १२ ॥
यो नारसिंहं वपुरास्थितो महान्
सुरो मुरारिर्मधुकैटभान्तकृत् ।
समस्तलोकार्तिहरं हिरण्यकं
नमामि विष्णुं सततं नमामि तम् ॥ १३ ॥
अनन्तमव्यक्तमतीन्द्रियं विभुं
स्वे स्वे हि रूपे स्वयमेव संस्थितम् ।
योगेश्वरैरेव सदा नमस्कृतं
नमामि भक्त्या सततं जनार्दनम् ॥ १४ ॥
आनन्दमेकं विरजं चिदात्मकं
वृन्दालयं योगिभिरेव पूजितम् ।
अणोरणीयांसमवृद्धिमक्षयं
नमामि भक्तप्रियमीश्वरं हरिम् ॥ १५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—जो भगवान् श्रेष्ठ नर, नृसिंह और नरनाथ ( मनुष्योंके स्वामी ) हैं, जिनकी भुजाएँ लंबी हैं, नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल हैं तथा चरणारविन्द असंख्य भूपतियोंद्वारा पूजित हैं, उन पुरातन पुरुष भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ । जो संसारके पालक हैं, क्षीरसमुद्र जिनका निवास-स्थान है, जो हाथमें शार्ङ्ग-धनुष धारण किये रहते हैं, मुनिवृन्द जिनकी वन्दना करते हैं, जो लक्ष्मीके पति हैं और लक्ष्मीको निरन्तर अपने हृदयमें धारण करते हैं, उन सर्वसमर्थ, सर्वेश्वर, अनन्त तेजोमय

भगवान् गोविन्दको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अजन्मा, सबके वरणीय, जन-समुदायके दुःखोंका नाश करनेवाले, गुरु, पुराण-पुरुषोत्तम एवं सबके स्वामी हैं, सहस्रों सूर्योंके समान जिनकी कान्ति है तथा जो अच्युतस्वरूप हैं, उन आदि-माधव भगवान् विष्णुको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ। जो पुण्यात्मा भक्तोंके ही समक्ष सगुण-साकार रूपसे प्रकट होते हैं, सबकी परमगति हैं, भूमि, लोक और प्रजाओंके पति हैं, 'पर' अर्थात् कारणोंके भी परम कारण हैं तथा तीनों लोकोंके कर्मोंके साक्षी हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अनादि विधाता भगवान् पूर्वकालमें क्षीर-समुद्रके भीतर 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीररूपी शय्यापर सोये थे, क्षीरसिन्धुकी तरङ्गोंके जलकणोंसे अभिषिक्त होनेवाले उन लक्ष्मीनिवास भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने नरसिंहस्वरूप धारण किया है, जो महान् देवता हैं, मुर दैत्यके शत्रु हैं, मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंका अन्त करनेवाले हैं और समस्त लोकोंकी पीड़ा दूर करनेवाले एवं हिरण्यगर्भ हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो अनन्त, अव्यक्त, इन्द्रियातीत, सर्वव्यापी और अपने विभिन्न रूपोंमें स्वयं ही प्रतिष्ठित हैं तथा योगेश्वरगण जिनके चरणोंमें सदा ही मस्तक झुकाते हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं भक्तिपूर्वक निरन्तर प्रणाम करता हूँ। जो आनन्दमय, एक ( अद्वितीय ), रजोगुणसे रहित, ज्ञानस्वरूप, वृन्दा ( लक्ष्मी ) के धाम और योगियोंद्वारा पूजित हैं; जो अणुसे भी अत्यन्त अणु और वृद्धि तथा क्षयसे शून्य हैं, उन भक्तप्रिय भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८—१५ ॥

श्रीव्यास उवाच

इति स्तोत्रावसाने तं वागुवाचाशरीरिणी।
मार्कण्डेयं महाभागं तीर्थेऽनु तपसि स्थितम् ॥१६॥
किमर्थं क्लिश्यते ब्रह्मंस्त्वया यो नैव दृश्यते।
माधवः सर्वतीर्थेषु यावन्न स्नानमाचरेः ॥१७॥
इत्युक्तः सर्वतीर्थेषु स्नात्वोवाच महामतिः।
कृत्वा कृत्वा सर्वतीर्थे स्नानं चैव कृतं भवेत्।
तद्वद त्वं मम प्रीत्या योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ।१८।

**श्रीव्यासजी कहते हैं**—वत्स ! इस प्रकार स्तुति समाप्त होनेपर उस तीर्थमें तपस्या करनेवाले उन महाभाग मार्कण्डेयजीसे आकाशवाणीने कहा—'ब्रह्मन् ! क्यों क्लेश उठा रहे हो, तुम्हें जो भगवान् माधवका दर्शन नहीं हो रहा है, वह तभीतक जबतक तुम समस्त तीर्थोंमें स्नान नहीं कर लेते' उसके यों कहनेपर महामति मार्कण्डेयजीने समस्त तीर्थोंमें स्नान किया ( परंतु जब फिर भी दर्शन नहीं हुआ, तब उन्होंने आकाशवाणीको लक्ष्य करके कहा—) 'जो कार्य करनेसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करना सफल होता है, अथवा समस्त तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जाता है, वह कार्य मुझे प्रसन्न होकर आप बतलाइये। आप जो भी हों, आपको नमस्कार है' ॥ १६—१८ ॥

वागुवाच

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र स्तुहि नारायणं प्रभुम्।
नान्यथा सर्वतीर्थानां फलं प्राप्स्यसि सुव्रत ॥१९॥

**आकाशवाणीने कहा**—विप्रेन्द्र ! सुव्रत ! इस स्तोत्रसे प्रभुवर नारायणका स्तवन करो; और किसी उपायसे तुम्हें समस्त तीर्थोंका फल नहीं प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तदेवाख्याहि भगवन् स्तोत्रं तीर्थफलप्रदम्।
येन जप्तेन सकलं तीर्थस्नानफलं लभेत् ॥२०॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—भगवन् ! जिसका जप करनेसे तीर्थस्नानका सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है, वह तीर्थ-फलदायक स्तोत्र कौन-सा है ? उसे ही मुझे बताइये ॥ २० ॥

वागुवाच

जय जय देवदेव जय माधव केशव।
जय पद्मपलाशाक्ष जय गोविन्द गोपते ॥२१॥
जय जय पद्मनाभ जय वैकुण्ठ वामन।
जय पद्म हृषीकेश जय दामोदराच्युत ॥२२॥
जय पद्मेश्वरानन्त जय लोकगुरो जय।
जय शङ्खगदापाणे जय भूधरसूकर ॥२३॥
जय यज्ञेश वाराह जय भूधर भूमिप।
जय योगेश योगज्ञ जय योगप्रवर्त्तक ॥२४॥
जय योगप्रवर्त्तक जय धर्मप्रवर्त्तक।
कृतप्रिय जय जय यज्ञेश यज्ञाङ्ग जय ॥२५॥
जय वन्दितसद्द्विज जय नारदसिद्धिद।
जय पुण्यवतां गेह जय वैदिकभाजन ॥२६॥

**जय जय चतुर्भुज(श्री)जयदेव जय दैत्यभयावह।**
**जय सर्वज्ञ सर्वात्मन् जय शंकर शाश्वत ॥२७॥**
**जय विष्णो महादेव जय नित्यमधोक्षज ।**
**प्रसादं कुरु देवेश दर्शयाद्य स्वकां तनुम् ॥२८॥**

**आकाशवाणीने कहा**—देवदेव ! माधव ! केशव ! आपकी जय हो, जय हो । आपके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं । गोविन्द ! गोपते ! आपकी जय हो, जय हो । पद्मनाभ ! वैकुण्ठ ! वामन ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । पद्मस्वरूप हृषीकेश आपकी जय हो । दामोदर ! अच्युत ! आपकी जय हो । लक्ष्मीपते ! अनन्त ! आपकी जय हो । लोकगुरो ! आपकी जय हो, जय हो । शङ्ख और गदा धारण करनेवाले तथा पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वाराह ! आपकी जय हो, जय हो । यज्ञेश्वर ! पृथ्वीका धारण तथा पोषण करनेवाले वाराह ! आपकी जय हो, जय हो । योगके ईश्वर, ज्ञाता और प्रवर्तक ! आपकी जय हो, जय हो । योग और धर्मके प्रवर्तक ! आपकी जय हो, जय हो । कर्मप्रिय ! यज्ञेश्वर ! यज्ञाङ्ग ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । उत्तम ब्राह्मणोंकी वन्दना करने—उन्हें सम्मान देनेवाले देवता ! आपकी जय हो और नारदजीको सिद्धि देनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । पुण्यवानोंके आश्रय, वैदिक वाणीके चरम तात्पर्यभूत एवं वेदोक्त कर्मोंके परम आश्रय नारायण ! आपकी जय हो, जय हो । चतुर्भुज ! आपकी जय हो । दैत्योंको भय देनेवाले श्रीजयदेव ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वज्ञ ! सर्वात्मन् ! आपकी जय हो । सनातनदेव ! कल्याणकारी भगवन् ! आपकी जय हो, जय हो । महादेव ! विष्णो ! अधोक्षज ! देवेश्वर ! आप मुझपर प्रसन्न होइये और आज मुझे अपने स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराइये ॥ २१—२८ ॥

व्यास उवाच

**इत्येवं कीर्तिते तेन मार्कण्डेयेन धीमता ।**
**प्रादुर्बभूव भगवान् पीतवासा जनार्दनः ॥२९॥**
**शङ्खचक्रगदापाणिः सर्वाभरणभूषितः ।**
**तेजसा द्योतयन् सर्वा दिशो विष्णुः सनातनः ॥३०॥**
**तं दृष्ट्वा सहसा भूमौ चिरप्रार्थितदर्शनम् ।**
**प्रयातः शिरसा वश्यो भक्त्या स भृगुनन्दनः ॥३१॥**
**निपत्योत्पत्य च पुनःपुनः साङ्गं महामनाः ।**
**प्रबद्धसम्पुटकरो गोविन्दं पुरतः स्तुवन् ॥३२॥**

**श्रीव्यासजी कहते हैं**—शुकदेव ! आकाशवाणीके कथनानुसार जब बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने इस प्रकार भगवन्नामोंका कीर्तन किया, तब पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दन वहाँ प्रकट हो गये । वे सनातन भगवान् विष्णु हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये, समस्त आभूषणोंसे भूषित हो अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे । भृगुवंशको आनन्दित करनेवाले मार्कण्डेयजीने भगवान्‌को, जिनका दर्शन चिरकालसे प्रार्थित था, सहसा सामने प्रकट हुआ देख, भक्तिविवश हो, भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया । भूमिपर गिर-गिरकर बारंबार साष्टाङ्ग प्रणाम करके, खड़े हो, महामना मार्कण्डेय दोनों हाथ जोड़ सामने उपस्थित हुए भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २९—३२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**नमोऽस्तु ते देवदेव महाचित्त महाकाय**
**महाप्राज्ञ महादेव महाकीर्ते ब्रह्मेन्द्रचन्द्ररुद्रार्चितपाद-**
**युगल श्रीपद्महस्त सम्मर्दितदैत्यदेह ॥३३॥ अनन्त-**
**भोगशयनार्पितसर्वाङ्ग सनकसनन्दनसनत्कुमारा-**
**द्यैर्योगिभिर्नासाग्रन्यस्तलोचनैरनवरतमभिचिन्तित-**
**मोक्षतत्त्व । गन्धर्वविद्याधरयक्षकिंनरकिम्पुरुषैरह-**
**रहोगीयमानदिव्ययशः ॥३४॥ नृसिंह नारायण**
**पद्मनाभ गोविन्द गोवर्द्धनगुहानिवास योगीश्वर**
**देवेश्वर जलेश्वर महेश्वर ॥३५॥ योगधर महा-**
**मायाधर विद्याधर यशोधर कीर्तिधर त्रिगुणनिवास**
**त्रितत्त्वधर त्रेताग्निधर ॥३६॥ त्रिवेदभाक् त्रिनिकेत**
**त्रिसुपर्ण त्रिदण्डधर ॥३७॥ स्निग्धमेघाभार्चितद्युति-**
**विराजित पीताम्बरधर किरीटकटककेयूरहारमणिरत्नां-**
**शुदीप्तिविद्योतितसर्वदिश ॥३८॥ कनकमणिकुण्डल-**
**मण्डितगण्डस्थल मधुसूदन विश्वमूर्ते ॥३९॥ लोक-**
**नाथ यज्ञेश्वर यज्ञप्रिय तेजोमय भक्तिप्रिय वासुदेव**
**दुरितापहाराराध्य पुरुषोत्तम नमोऽस्तु ते ॥४०॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—महामना ! महाकाय ! महामते ! महादेव ! महायशस्वी ! देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है । ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा तथा रुद्र निरन्तर आपके युगल-चरणारविन्दोंकी अर्चना करते हैं । आपके हाथमें शोभाशाली कमल सुशोभित

होता है; आपने दैत्योंके शरीरोंको मसल डाला है, आपको नमस्कार है। आप 'अनन्त' नामसे विख्यात शेषनागके शरीरकी शय्याको अपने सम्पूर्ण अङ्ग समर्पित कर देते हैं—उसीपर शयन करते हैं। सनक, सनन्दन और सनत्कुमार आदि योगीजन अपने नेत्रोंकी दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर सुस्थिर करके नित्य-निरन्तर जिस मोक्षतत्त्वका चिन्तन करते हैं, वह आप ही हैं। गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किंनर और किम्पुरुष प्रतिदिन आपके ही दिव्य सुयशका गान करते रहते हैं। नृसिंह! नारायण! पद्मनाभ! गोविन्द! गिरिराज गोवर्धनकी कन्दरामें क्रीड़ा-विश्रामादिके लिये निवास करनेवाले! योगीश्वर! देवेश्वर! जलेश्वर और महेश्वर! आपको नमस्कार है। योगधर! महामायाधर! विद्याधर! यशोधर! कीर्तिधर! सत्त्वादि तीनों गुणोंके आश्रय! त्रितत्त्वधारी तथा गार्हपत्यादि तीनों अग्नियोंको धारण करनेवाले देव! आपको प्रणाम है। आप ऋक्, साम और यजुष्—इन तीनों वेदोंके परम प्रतिपाद्य, त्रिनिकेत (तीनों लोकोंके आश्रय), त्रिसुपर्ण, मन्त्ररूप और त्रिदण्डधारी हैं; ऐसे आपको प्रणाम है। स्निग्ध मेघकी आभाके सदृश सुन्दर श्यामकान्तिसे सुशोभित, पीताम्बरधारी, किरीट, वलय, केयूर और हारोंमें जटित मणिरत्नोंकी किरणोंसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले नारायणदेव! आपको नमस्कार है। सुवर्ण और मणियोंसे बने हुए कुण्डलोंद्वारा अलंकृत कपोलोंवाले मधुसूदन! विश्वमूर्ते! आपको प्रणाम है। लोकनाथ! यज्ञेश्वर! यज्ञप्रिय! तेजोमय! भक्तिप्रिय वासुदेव! पापहारिन्! आराध्यदेव पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है ॥ ३३–४० ॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य भगवांस्तु जनार्दनः।
देवदेवः प्रसन्नात्मा मार्कण्डेयमुवाच ह ॥४१॥

**श्रीव्यासजी बोले**—इस प्रकार स्तवन सुनकर देवदेव भगवान् जनार्दनने प्रसन्नचित्त होकर मार्कण्डेयजीसे कहा ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स तपसा महता पुनः।
स्तोत्रैरपि महाबुद्धे नष्टपापोऽसि साम्प्रतम् ॥४२॥
वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः।
नातप्ततपसा ब्रह्मन् द्रष्टुं साध्योऽहमञ्जसा ॥४३॥

**श्रीभगवान् बोले**—वत्स! मैं तुम्हारे महान् तप और फिर स्तोत्रपाठसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। महाबुद्धे! इस समय तुम्हारा सारा पाप नष्ट हो चुका है। विप्रेन्द्र! मैं तुम्हारे सम्मुख वर देनेके लिये उपस्थित हूँ; वर माँगो। ब्रह्मन्! जिसने तप नहीं किया है, ऐसा कोई भी मनुष्य अनायास ही मेरा दर्शन नहीं पा सकता ॥ ४२-४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साम्प्रतं तव दर्शनात्।
त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते ॥४४॥
यदि प्रसन्नो भगवन् मम माधव श्रीपते।
चिरायुष्यं हृषीकेश येन त्वां चिरमर्चये ॥४५॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—देवेश्वर! इस समय आपके दर्शनसे ही मैं कृतार्थ हो गया। जगत्पते! अब तो मुझे एकमात्र अपनी अविचल भक्ति ही दीजिये। माधव! श्रीपते! हृषीकेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे चिरकालिक आयु दीजिये, जिससे मैं चिरकालतक आपकी आराधना कर सकूँ ॥ ४४-४५ ॥

श्रीभगवानुवाच

मृत्युस्ते निर्जितः पूर्वं चिरायुस्त्वं च लब्धवान्।
भक्तिरस्त्वचला ते मे वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥४६॥
इदं तीर्थं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति।
पुनस्त्वं द्रक्ष्यसे मां वै क्षीराब्धौ योगशायिनम् ॥४७॥

**श्रीभगवान् बोले**—मृत्युको तो तुम पहले ही जीत चुके हो, अब चिरकालिक आयु भी तुम्हें प्राप्त हुई। साथ ही, मेरी मुक्तिदायिनी अविचल वैष्णवी भक्ति भी तुम्हें प्राप्त हो। महाभाग! यह तीर्थ आजसे तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा; अब पुनः तुम क्षीरसमुद्रमें योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए मेरा दर्शन पाओगे ॥ ४६-४७ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्रैवान्तरधीयत।
मार्कण्डेयोऽपि धर्मात्मा चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥४८॥
अर्चयन् देवदेवेशं जपन् शुद्धं नमन्नपि।
वेदशास्त्राणि पुण्यानि पुराणान्यखिलानि च ॥४९॥
मुनीनां श्रावयामास गाथाश्चैव तपोधनः।
इतिहासानि पुण्यानि पितृतत्त्वं च सत्तमः ॥५०॥

ततः कदाचित् पुरुषोत्तमोक्तं
वचः स्मरन् शास्त्रविदां वरिष्ठः ।
भ्रमन् समुद्रं स जगाम द्रष्टुं
हरिं सुरेशं मुनिरुग्रतेजाः ॥५१॥
श्रमेण युक्तश्चिरकालसम्भ्रमाद्
भृगोः स पौत्रो हरिभक्तिमुद्वहन् ।
क्षीराब्धिमासाद्य हरिं सुरेशं
नागेन्द्रभोगे कृतनिद्रमैक्षत ॥५२॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्कण्डेयचरित्रे दशमोऽध्यायः ॥*

**श्रीव्यासजी बोले**—यों कहकर कमललोचन भगवान् विष्णु वहीं अदृश्य हो गये। धर्मात्मा, साधुशिरोमणि, तपोधन मार्कण्डेयजी भी शुद्धस्वरूप देवदेवेश्वर मधुसूदनका ध्यान, पूजन, जप और नमस्कार करते हुए वहीं रहकर मुनियोंको पवित्र वेद-शास्त्र, अखिल पुराण, विविध प्रकारकी गाथाएँ, पावन इतिहास और पितृतत्त्व भी सुनाने लगे। तदनन्तर किसी समय भगवान् पुरुषोत्तमके कहे हुए वचनको स्मरण कर, वे शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उग्रतेजस्वी मुनि उन सुरेश्वर भगवान् श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये घूमते हुए समुद्रकी ओर चले। हृदयमें भगवान्‌की भक्ति धारण किये चिरकाल-तक परिश्रमपूर्वक चलते-चलते क्षीरसागरमें पहुँचकर उन भृगुके पौत्रने नागराजके शरीररूपी पर्यङ्कपर निद्रामग्न हुए सुरेश्वर भगवान् विष्णुका दर्शन किया ॥ ४८—५२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मार्कण्डेयके चरित्र' वर्णनके प्रसङ्गमें दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

# ग्यारहवाँ अध्याय

## मार्कण्डेयजीद्वारा शेषशायी भगवान्‌का स्तवन

व्यास उवाच

प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम् ।
मार्कण्डेयोऽभितुष्टाव भोगपर्यङ्कशायिनम् ॥ १ ॥

**व्यासजी बोले**—शुकदेव! तदनन्तर मार्कण्डेयजी शेष-शय्यापर सोये हुए उन चराचरगुरु जगदीश्वर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनका स्तवन करने लगे ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम ।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद गरुडध्वज ॥ २ ॥
प्रसीद विष्णो लक्ष्मीश प्रसीद धरणीधर ।
प्रसीद लोकनाथाद्य प्रसीद परमेश्वर ॥ ३ ॥
प्रसीद सर्वदेवेश प्रसीद कमलेक्षण ।
प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन ॥ ४ ॥
प्रसीद सुभगाकान्त प्रसीद भुवनाधिप ।
प्रसीदाद्य महादेव प्रसीद मम केशव ॥ ५ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—भगवन्! विष्णो! आप प्रसन्न हों। पुरुषोत्तम! आप प्रसन्न हों। देवदेवेश्वर! गरुडध्वज! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीपते विष्णो! धरणीधर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लोकनाथ! आदिपरमेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। कमलके समान नेत्रोंवाले सर्वदेवेश्वर! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों! समुद्रमन्थनके समय मन्दर पर्वतको धारण करनेवाले—मधुसूदन! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। लक्ष्मीकान्त! भुवनपते! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। आदिपुरुष महादेव! केशव! आप मुझपर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ॥ २—५ ॥

जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय ।
जय विश्व जयाव्यक्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
जय देव जयाजेय जय सत्य जयाक्षर ।
जय काल जयेशान जय सर्व नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥
जय यज्ञपते नाथ जय विश्वपते विभो ।
जय भूतपते नाथ जय सर्वपते विभो ॥ ८ ॥
जय विश्वपते नाथ जय दक्ष नमोऽस्तु ते ।
जय पापहरानन्त जय जन्मजरापह ॥ ९ ॥
जय भद्रातिभद्रेश जय भद्र नमोऽस्तु ते ।
जय कामद काकुत्स्थ जय मानद माधव ॥१०॥

जय शंकर देवेश जय श्रीश नमोऽस्तु ते ।
जय कुङ्कुमरक्ताभ जय पङ्कजलोचन ॥११॥
जय चन्दनलिप्ताङ्ग जय राम नमोऽस्तु ते ।
जय देव जगन्नाथ जय देवकिनन्दन ॥१२॥
जय सर्वगुरो ज्ञेय जय शम्भो नमोऽस्तु ते ।
जय सुन्दर पद्माभ जय सुन्दरिवल्लभ ।
जय सुन्दरसर्वाङ्ग जय वन्द्य नमोऽस्तु ते ॥१३॥
जय सर्वद सर्वेश जय शर्मद शाश्वत ।
जय कामद भक्तानां प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते ॥१४॥

कृष्ण ! अचिन्तनीय कृष्ण ! अव्यय विष्णो ! विश्वके रूपमें रहनेवाले एवं व्यापक व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त ! परमेश्वर ! आपकी जय हो, आपको मेरा प्रणाम है । अजेय देव ! आपकी जय हो, जय हो । अविनाशी सत्य ! आपकी जय हो, जय हो । सबका शासन करनेवाले काल ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वमय ! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है । यज्ञेश्वर ! नाथ ! व्यापक विश्वनाथ ! आपकी जय हो, जय हो । स्वामिन् ! भूतनाथ ! सर्वेश्वर ! विभो ! आपकी जय हो, जय हो । विश्वपते ! नाथ ! कार्यदक्ष ईश्वर ! आपकी जय हो, जय हो; आपको प्रणाम है । पापहारी ! अनन्त ! जन्म तथा वृद्धावस्थाके भयको नष्ट करनेवाले देव ! आपकी जय हो, जय हो। भद्र ! अतिभद्र ! ईश ! कल्याणमय प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ककुत्स्थकुलोत्पन्न श्रीराम ! सम्मान देनेवाले माधव ! आपकी जय हो, जय हो । देवेश्वर शंकर ! लक्ष्मीपते ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । कुङ्कुमके समान अरुण कान्तिवाले कमलनयन ! आपकी जय हो, जय हो । चन्दनसे अनुलिप्त श्रीअङ्गोंवाले श्रीराम ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । देव ! जगन्नाथ ! देवकीनन्दन ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वगुरो ! जाननेयोग्य शम्भो ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । नील कमलकी-सी आभावाले श्यामसुन्दर ! सुन्दरी श्रीराधाके प्राणवल्लभ ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वाङ्गसुन्दर ! वन्दनीय प्रभो ! आपको नमस्कार है; आपकी जय हो, जय हो । सब कुछ देनेवाले सर्वेश्वर ! कल्याणदायी सनातन पुरुष ! आपकी जय हो, जय हो । भक्तोंकी कामनाओंको देनेवाले प्रभुवर ! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है ॥ ६—१४ ॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ।
लोकनाथ नमस्तेऽस्तु वीरभद्र नमोऽस्तु ते ॥१५॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय चतुर्मूर्ते जगत्पते ।
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय ते ॥१६॥
नमस्ते वासुदेवाय नमस्ते पीतवाससे ।
नमस्ते नरसिंहाय नमस्ते शार्ङ्गधारिणे ॥१७॥
नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च ।
नमः शिवाय देवाय नमस्ते भुवनेश्वर ॥१८॥
नमो वेदान्तवेद्याय नमोऽनन्ताय विष्णवे ।
नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते श्रीधराच्युत ॥१९॥
लोकाध्यक्ष जगत्पूज्य परमात्मन् नमोऽस्तु ते ।

जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमलकी माला पहने हुए हैं, उन भगवान्को नमस्कार है । लोकनाथ ! वीरभद्र ! आपको बार-बार नमस्कार है । चतुर्व्यूहस्वरूप जगदीश्वर ! आप त्रिभुवननाथ देवाधिदेव नारायणको नमस्कार है । पीताम्बरधारी वासुदेवको प्रणाम है, प्रणाम है । शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले नरसिंहस्वरूप आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है । भुवनेश्वर ! चक्रधारी विष्णु, कृष्ण, राम और भगवान् शिवके रूपमें वर्तमान आपको बार-बार नमस्कार है । सबके स्वामी श्रीधर ! अच्युत ! वेदान्त शास्त्रके द्वारा जाननेयोग्य आप अन्तरहित भगवान् विष्णुको बारंबार नमस्कार है । लोकाध्यक्ष ! जगत्पूज्य परमात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥ १५—१९½ ॥

त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥२०॥
त्वमार्तानां सुहृन्मित्रं प्रियस्त्वं प्रपितामहः ।
त्वं गुरुस्त्वं गतिः साक्षी त्वं पतिस्त्वं परायणः ॥२१॥
त्वं ध्रुवस्त्वं वषट्कर्ता त्वं हविस्त्वं हुताशनः ।
त्वं शिवस्त्वं वसुर्धाता त्वं ब्रह्मा त्वं सुरेश्वरः ॥२२॥
त्वं यमस्त्वं रविर्वायुस्त्वं जलं त्वं धनेश्वरः ।
त्वं मनुस्त्वमहोरात्रं त्वं निशा त्वं निशाकरः ।
त्वं धृतिस्त्वं श्रियः कान्तिस्त्वं क्षमा त्वं धराधरः॥२३॥
त्वं कर्ता जगतामीशस्त्वं हन्ता मधुसूदन ।
त्वमेव गोप्ता सर्वस्य जगतस्त्वं चराचर ॥२४॥

**करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः ।**
**शङ्खचक्रगदापाणे भो समुद्धर माधव ॥२५॥**
**प्रिय पद्मपलाशाक्ष शेषपर्यङ्कशायिनम् ।**
**त्वामेव भक्त्या सततं नमामि पुरुषोत्तमम् ॥२६॥**
**श्रीवत्साङ्कं जगद्बीजं श्यामलं कमलेक्षणम् ।**
**नमामि ते वपुर्देव कलिकल्मषनाशनम् ॥२७॥**

आप ही समस्त संसारकी माता और आप ही सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं । आप पीड़ितोंके सुहृद् हैं; आप सबके मित्र, प्रियतम, पिताके भी पितामह, गुरु, गति, साक्षी, पति और परम आश्रय हैं । आप ही ध्रुव, वषट्कर्ता, हवि, हुताशन ( अग्नि ), शिव, वसु, धाता, ब्रह्मा, सुरराज इन्द्र, यम, सूर्य, वायु, जल, कुबेर, मनु, दिन-रात, रजनी, चन्द्रमा, धृति, श्री, कान्ति, क्षमा और धराधर शेषनाग हैं । चराचर-स्वरूप मधुसूदन ! आप ही जगत्के स्रष्टा, शासक और संहारक हैं तथा आप ही समस्त संसारके रक्षक हैं । आप ही करण, कारण, कर्ता और परमेश्वर हैं । हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले माधव ! आप मेरा उद्धार करें । कमलदललोचन प्रियतम ! शेषशय्यापर शयन करनेवाले पुरुषोत्तम आपको ही मैं सदा भक्तिके साथ प्रणाम करता हूँ । देव ! जिसमें श्रीवत्सचिह्न शोभा पाता है, जो जगत्का आदिकारण है, जिसका वर्ण श्यामल और नेत्र कमलके समान हैं तथा जो कलिके दोषोंको नष्ट करनेवाला है, आपके उस श्रीविग्रहको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २०—२७ ॥

**लक्ष्मीधरमुदाराङ्गं दिव्यमालाविभूषितम् ।**
**चारुपृष्ठं महाबाहुं चारुभूषणभूषितम् ॥२८॥**
**पद्मनाभं विशालाक्षं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।**
**दीर्घतुङ्गमहाघ्राणं नीलजीमूतसंनिभम् ॥२९॥**
**दीर्घबाहुं सुगुप्ताङ्गं रत्नहारोज्ज्वलोरसम् ।**
**सुभ्रूललाटमुकुटं स्निग्धदन्तं सुलोचनम् ॥३०॥**
**चारुबाहुं सुताम्रोष्ठं रत्नोज्ज्वलितकुण्डलम् ।**
**वृत्तकण्ठं सुपीनांसं सरसं श्रीधरं हरिम् ॥३१॥**

जो लक्ष्मीजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं, जिनका शरीर सुन्दर है, जो दिव्यमालासे विभूषित हैं, जिनका पृष्ठदेश सुन्दर और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, जो सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत हैं, जिनकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ है, जिनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर और विशाल हैं, नासिका बड़ी ऊँची और लंबी है, जो नील मेघके समान श्याम हैं, जिनकी भुजाएँ लंबी, शरीर सुरक्षित और वक्षःस्थल रत्नोंके हारसे प्रकाशमान है, जिनकी भौंहें, ललाट और मुकुट—सभी सुन्दर हैं, दाँत चिकने और नेत्र मनोहर हैं, जो सुन्दर भुजाओं और रुचिर अरुण अधरोंसे सुशोभित हैं, जिनके कुण्डल रत्नजटित होनेके कारण जगमगा रहे हैं, कण्ठ वर्तुलाकार है और कंधे मांसल हैं, उन रसिकशेखर श्रीधर हरिको नमस्कार है ॥ २८—३१ ॥

**सुकुमारमजं नित्यं नीलकुञ्चितमूर्धजम् ।**
**उन्नतांसं महोरस्कं कर्णान्तायतलोचनम् ॥३२॥**
**हेमारविन्दवदनमिन्दिरायनमीश्वरम् ।**
**सर्वलोकविधातारं सर्वपापहरं हरिम् ॥३३॥**
**सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वसत्त्वमनोरमम् ।**
**विष्णुमच्युतमीशानमनन्तं पुरुषोत्तमम् ॥३४॥**
**नतोऽस्मि मनसा नित्यं नारायणमनामयम् ।**
**वरदं कामदं कान्तमनन्तं सूनृतं शिवम् ॥३५॥**

जो अजन्मा एवं नित्य होनेपर भी सुकुमारस्वरूप धारण किये हुए हैं, जिनके केश काले-काले और घुँघराले हैं, कंधे ऊँचे और वक्षःस्थल विशाल हैं, आँखें कानोंतक फैली हुई हैं, मुखारविन्द सुवर्णमय कमलके समान परम सुन्दर है, जो लक्ष्मीके निवासस्थान एवं सबके शासक हैं, सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा और समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं, समग्र शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और सभी जीवोंके लिये मनोरम हैं तथा जो सर्वव्यापी, अच्युत, ईशान, अनन्त एवं पुरुषोत्तम हैं, वरदाता, कामपूरक, कमनीय, अनन्त, मधुरभाषी एवं कल्याणस्वरूप हैं, उन निरामय भगवान् नारायण श्रीहरिको मैं सदा हृदयसे नमस्कार करता हूँ ॥ ३२—३५ ॥

**नमामि शिरसा विष्णो सदा त्वां भक्तवत्सल ।**
**अस्मिन्नेकार्णवे घोरे वायुस्कम्भितचञ्चले ॥३६॥**
**अनन्तभोगशयने सहस्रफणशोभिते ।**
**विचित्रशयने रम्ये सेविते मन्दवायुना ॥३७॥**
**भुजपञ्जरसंसक्तकमलालयसेवितम् ।**
**इह त्वां मनसा सर्वमिदानीं दृष्टवानहम् ॥३८॥**

भक्तवत्सल विष्णो ! मैं सदा आपको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ । इस भयंकर एकार्णवमें, जो प्रलयकालिक वायुकी प्रेरणासे विक्षुब्ध एवं चञ्चल हो रहा है, सहस्र फणोंसे सुशोभित 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीरकी विचित्र एवं रमणीय शय्यापर, जहाँ मन्द-मन्द वायु चल रही है, आपके भुजपाशमें बँधी हुई श्रीलक्ष्मीजीसे आप सेवित हैं; मैंने इस समय सर्वस्वरूप आपके रूपका यहाँपर जी भरकर दर्शन किया है ॥ ३६–३८ ॥

इदानीं तु सुदुःखार्तो मायया तव मोहितः ।
एकोदके निरालम्बे नष्टस्थावरजंगमे ॥३९॥
शून्ये तमसि दुष्पारे दुःखपङ्के निरामये ।
शीतातपजरारोगशोकतृष्णादिभिः सदा ॥४०॥
पीडितोऽस्मि भृशं तात सुचिरं कालमच्युत ।
शोकमोहग्रहग्रस्तो विचरन् भवसागरे ॥४१॥
इहाद्य विधिना प्राप्तस्तव पादाब्जसंनिधौ ।
एकार्णवे महाघोरे दुस्तरे दुःखपीडितः ॥४२॥
चिरश्रमपरिश्रान्तस्त्वामद्य शरणं गतः ।
प्रसीद सुमहामाय विष्णो राजीवलोचन ॥४३॥

इस समय आपकी मायासे मोहित होकर मैं अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो रहा हूँ । दुःखरूपी पङ्कसे भरे हुए, व्याधिपूर्ण एवं अवलम्ब-शून्य इस एकार्णवमें समस्त स्थावर-जंगम नष्ट हो चुके हैं । सब ओर शून्यमय अपार अन्धकार छाया हुआ है । मैं इसके भीतर शीत, आतप, जरा, रोग, शोक और तृष्णा आदिके द्वारा सदा चिरकालसे अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ । तात ! अच्युत ! इस भवसागरमें शोक और मोहरूपी ग्राहसे ग्रस्त होकर भटकता हुआ आज मैं यहाँ दैववश आपके चरणकमलोंके निकट आ पहुँचा हूँ । इस महाभयानक दुस्तर एकार्णवमें बहुत कालतक भटकते रहनेके कारण दुःखपीड़ित एवं थका हुआ मैं आज आपकी शरणमें आया हूँ । महामायी कमललोचन भगवन् ! विष्णो ! आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३९–४३ ॥

विश्वयोने विशालाक्ष विश्वात्मन् विश्वसम्भव ।
अनन्यशरणं प्राप्तमतोऽत्र कुलनन्दन ॥४४॥
त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतमातुरम् ।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुराणपुरुषोत्तम ॥४५॥
अञ्जनाभ हृषीकेश मायामय नमोऽस्तु ते ।
मामुद्धर महाबाहो मग्ने संसारसागरे ॥४६॥
गह्वरे दुस्तरे दुःखक्लिष्टे क्लेशमहाग्रहैः ।
अनाथं कृपणं दीनं पतितं भवसागरे ।
मां समुद्धर गोविन्द वरदेश नमोऽस्तु ते ॥४७॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय हरये भूधराय च ।
देवदेव नमस्तेऽस्तु श्रीवल्लभ नमोऽस्तु ते ॥४८॥

कुलनन्दन कृष्ण ! आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, विशाललोचन, विश्वोत्पादक और विश्वात्मा हैं; अतः दूसरेकी शरणमें न जाकर एकमात्र आपकी ही शरणमें आये हुए मुझ आतुरका आप कृपापूर्वक यहाँ उद्धार करें । पुराण-पुरुषोत्तम पुण्डरीकलोचन ! आपको नमस्कार है । कज्जलके समान श्याम कान्तिवाले हृषीकेश ! मायाके आश्रयभूत महेश्वर ! आपको नमस्कार है । महाबाहो ! संसार-सागरमें डूबे हुए मुझ शरणागतका उद्धार कर दें । वरदाता ईश्वर ! गोविन्द ! क्लेशरूपी महान् ग्राहोंसे भरे हुए, दुःख और क्लेशोंसे युक्त, दुस्तर एवं गहरे भवसागरमें गिरे हुए मुझ दीन, अनाथ एवं कृपणका उद्धार करें । त्रिभुवननाथ विष्णु और धरणीधर अनन्तको नमस्कार है । देवदेव ! श्रीवल्लभ ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ४४–४८ ॥

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भवान् ।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद मधुसूदन ॥४९॥

त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुराणं
जगत्पतिं कारणमच्युतं प्रभुम् ।
जनार्दनं जन्मजरार्तिनाशनं
सुरेश्वरं सुन्दरमिन्दिरापतिम् ॥५०॥
बृहद्भुजं श्यामलकोमलं शुभं
वराननं वारिजपत्रनेत्रम् ।
तरंगभङ्गायतकुन्तलं हरिं
सुकान्तमीशं प्रणतोऽस्मि शाश्वतम् ॥५१॥

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्त्वदर्पितम् ।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ त्वत्पूजाकरौ करौ ॥५२॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यन्मया पातकं कृतम् ।
तन्मे हर त्वं गोविन्द वासुदेवेति कीर्तनात् ॥५३॥

कृष्ण ! कृष्ण ! आप दयालु और आश्रयहीनके आश्रय हैं । मधुसूदन ! संसार-सागरमें निमग्न हुए प्राणियोंपर आप प्रसन्न हों। आज मैं एक (अद्वितीय), आदि, पुराणपुरुष, जगदीश्वर, जगत्के कारण, अच्युतस्वरूप, सबके स्वामी और जन्म-जरा एवं पीड़ाको नष्ट करनेवाले, देवेश्वर, परम सुन्दर लक्ष्मीपति भगवान् जनार्दनको प्रणाम करता हूँ। जिनकी भुजाएँ बड़ी हैं, जो श्यामवर्ण, कोमल, सुशोभन, सुमुख और कमलदललोचन हैं, क्षीरसागरकी तरंगभङ्गीके समान जिनके लंबे-लंबे घुँघराले केश हैं, उन परम कमनीय, सनातन ईश्वर भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवन् ! वही जिह्वा सफल है, जो आप श्रीहरिका स्तवन करती है; वही चित्त सार्थक है, जो आपके चरणोंमें समर्पित हो चुका है तथा केवल वे ही हाथ श्लाघ्य हैं, जो आपकी पूजा करते हैं। गोविन्द ! हजारों जन्मान्तरोंमें मैंने जो-जो पाप किये हों, उन सबको आप 'वासुदेव' इस नामका कीर्तन करनेमात्रसे हर लीजिये ॥ ४९—५३ ॥

व्यास उवाच

इति स्तुतस्ततो विष्णुर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
संतुष्टः प्राह विश्वात्मा तं मुनिं गरुडध्वजः ॥५४॥

**व्यासजी बोले**—तदनन्तर बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस प्रकार स्तुति करनेपर गरुडचिह्नित ध्वजावाले विश्वात्मा भगवान् विष्णुने संतुष्ट होकर उनसे कहा ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा विप्र स्तुत्या च भृगुनन्दन ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते प्रार्थितं दद्मि ते वरम् ॥५५॥

**श्रीभगवान् बोले**—विप्र ! भृगुनन्दन ! मैं तुम्हारी तपस्या और स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे वर माँगो। मैं तुम्हें मुँहमाँगा वर दूँगा ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वत्पादपद्मे देवेश भक्तिं मे देहि सर्वदा ।
यदि तुष्टो ममाद्य त्वमन्यदेकं वृणोम्यहम् ॥५६॥
स्तोत्रेणानेन देवेश यस्त्वां स्तोष्यति नित्यशः ।
स्वलोकवसतिं तस्य देहि देव जगत्पते ॥५७॥
दीर्घायुष्ट्वं तु यद्दत्तं त्वया मे तप्यतः पुरा ।
तत्सर्वं सफलं जातमिदानीं तव दर्शनात् ॥५८॥
वस्तुमिच्छामि देवेश तव पादाब्जमर्चयन् ।
अत्रैव भगवन्नित्यं जन्ममृत्युविवर्जितः ॥५९॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—देवेश्वर ! यदि आज आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि 'आपके चरण-कमलोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे।' इसके सिवा एक दूसरा वर भी मैं माँग रहा हूँ—'देव ! देवेश्वर ! जगत्पते ! जो इस स्तोत्रसे आपकी नित्य स्तुति करे, उसे आप अपने वैकुण्ठधाममें निवास प्रदान करें।' पूर्वकालमें तपस्या करते हुए मुझको जो आपने दीर्घायु होनेका वरदान दिया था, वह सब आज आपके दर्शनसे सफल हो गया। देवेश ! भगवन् ! अब मैं आपके चरणारविन्दोंका पूजन करता हुआ जन्म और मृत्युसे रहित होकर यहाँ ही नित्य निवास करना चाहता हूँ ॥ ५६—५९ ॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यस्तु ते भृगुश्रेष्ठ भक्तिरव्यभिचारिणी ।
भक्त्या मुक्तिर्भवत्येव तव कालेन सत्तम ॥६०॥
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं सायं प्रातस्त्वयेरितम् ।
मयि भक्तिं दृढां कृत्वा मम लोके स मोदते ॥६१॥
यत्र यत्र भृगुश्रेष्ठ स्थितस्त्वं मां स्मरिष्यसि ।
तत्र तत्र समेष्यामि दान्तो भक्तवशोऽस्मि भोः ॥६२॥

**श्रीभगवान् बोले**—भृगुश्रेष्ठ ! मुझमें तुम्हारी अनन्य-भक्ति बनी रहे तथा साधुशिरोमणे ! समय आनेपर इस भक्तिसे तुम्हारी मुक्ति भी अवश्य ही हो जायगी। तुम्हारे कहे हुए इस स्तोत्रका जो लोग नित्य प्रातःकाल और संध्याके समय पाठ करेंगे, वे मुझमें सुदृढ़ भक्ति रखते हुए मेरे लोकमें आनन्दपूर्वक रहेंगे। भृगुश्रेष्ठ ! मैं दान्त (स्ववश) होनेपर भी भक्तोंके वशमें रहता हूँ; अतः तुम जहाँ-जहाँ रहकर मेरा स्मरण करोगे, वहाँ-वहाँ मैं पहुँच जाऊँगा ॥६०—६२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तं मुनिश्रेष्ठं मार्कण्डेयं स माधवः ।
विरराम स सर्वत्र पश्यन् विष्णुं यतस्ततः ॥६३॥
इति ते कथितं विप्र चरितं तस्य धीमतः ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेस्तेनैवोक्तं पुरा मम ॥६४॥

ये विष्णुभक्त्या चरितं पुराणं
भृगोस्तु पौत्रस्य पठन्ति नित्यम् ।
ते मुक्तपापा नरसिंहलोके
वसन्ति भक्तैरभिपूज्यमानाः ॥६५॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्कण्डेयचरितं नाम*
*एकादशोऽध्यायः ॥११॥*

व्यासजी बोले—मुनिवर मार्कण्डेयसे यों कहकर भगवान् लक्ष्मीपति मौन हो गये तथा वे मुनि इधर-उधर विचरते हुए सर्वत्र भगवान् विष्णुका साक्षात्कार करने लगे। विप्र ! बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस चरित्रका, जिसे पूर्वकालमें उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा था, मैंने तुमसे वर्णन किया । जो लोग भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीके इस पुरातन चरित्रका भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए नित्य पाठ करते हैं, वे पापोंसे मुक्त हो, भक्तोंसे पूजित होते हुए भगवान् नृसिंहके लोकमें निवास करते हैं ॥ ६३–६५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मार्कण्डेय-चरित' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

# बारहवाँ अध्याय

## यम और यमीका संवाद*

सूत उवाच

श्रुत्वेमाममृतां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
अवितृप्तः स धर्मात्मा शुको व्यासमभाषत ॥ १ ॥

**सूतजी बोले**—समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली और अमृतके समान मधुर इस पावन कथाको सुनकर धर्मात्मा शुकदेवजी तृप्त न हुए—उनकी श्रवणविषयक इच्छा बढ़ती ही गयी; अतः वे व्यासजीसे बोले ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

अहोऽतीव तपश्चर्या मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
येन दृष्टो हरिः साक्षाद्येन मृत्युः पराजितः ॥ २ ॥

---

* यह 'यम-यमी-संवाद' ऋग्वेदके एक सूक्तपर आधारित है । वहाँ प्रसङ्ग यह है कि यम और यमी, जो परस्पर भाई और बहन हैं, कुमारावस्थामें बालोचित खेलसे मन बहला रहे थे । उनके सामने एक ऐसा दृश्य आया, जिसमें कोई वर, बाजे-गाजेके साथ विवाहके लिये जा रहा था । यमीने पूछा—'भैया ! यह क्या है ?' यमने उसे बताया कि 'यह बारात है । इसमें वर-वेषधारी पुरुष किसी कुमारी स्त्रीके साथ विवाह करेगा । फिर वे दोनों पति-पत्नी होकर गृहस्थ-जीवन व्यतीत करेंगे ।' यमी बालोचित सरलताके साथ प्रस्ताव कर बैठी—'भैया ! आओ, हम और तुम भी परस्पर विवाह कर लें ।' यमने उसे समझाया कि भाईके साथ बहनका विवाह नहीं होता । तुम्हें, मुझसे भिन्न, किसी दूसरे श्रेष्ठ पुरुषको अपना पति चुनना होगा—'अन्यं वृणुष्व सुभगे पतिं मत् ।''

इसी वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, मानो यमी कामवेदनासे पीड़ित हो यमसे यह प्रार्थना कर रही हो कि—वे उसे अपनी पत्नी बनाकर उसकी इच्छा पूर्ण करें । इसमें यमीका विकारोत्पादक चित्र प्रस्तुत किया गया है और 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।' ( विकारका कारण उपस्थित होनेपर भी जिनके चित्तमें विकार नहीं होता, वे ही पुरुष धीर—ज्ञानी और संयमी हैं—) इस उक्तिके अनुसार यमकी जितेन्द्रियता, उनकी धर्मविषयक अविचल निष्ठा, धैर्य और विवेकको लोकके समक्ष प्रकाशमें लाया गया । जैसे सोना आगमें तपकर खरा उतरता है, उसी प्रकार यम यमीकी अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण हो सुदृढ़ धर्मात्मा, संयमी और विवेकी सिद्ध हुए हैं । यमके उज्ज्वल चरित्रको और भी चमत्कारी रूपमें सामने लाना इस कथाका उद्देश्य है । इससे प्रत्येक भाई तथा नवयुवकको सदाचारी, संयमी तथा धर्ममें अविचल भावसे स्थित रहनेकी शिक्षा और प्रेरणा मिलती है । यमीके चरित्रसे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक कुमारीका विवाहयोग्य अवस्था होनेपर अविलम्ब किसी योग्य वरके साथ विवाह कर देना चाहिये । वास्तवमें यम और यमी दोनों ही सूर्यदेवकी दिव्य संतानें हैं । उनमें किसी प्रकारके विकारकी लेशमात्र भी सम्भावना नहीं है । लोगोंको सदाचार और संयमकी शिक्षा देनेके लिये ही व्यासजीने इस वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार चित्रित किया है ।

न तृप्तिरस्ति मे तात श्रुत्वेमां वैष्णवीं कथाम् ।
पुण्यां पापहरां तात तस्मादन्यत्तु मे वद ॥ ३ ॥
नराणां दृढचित्तानामकार्यं नेह कुर्वताम् ।
यत्पुण्यमृषिभिः प्रोक्तं तन्मे वद महामते ॥ ४ ॥

**श्रीशुकदेवजी बोले**—पिताजी ! बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीकी तपस्या बड़ी भारी और अद्भुत है, जिन्होंने साक्षात् भगवान् विष्णुका दर्शन किया और मृत्युपर विजय पायी। तात ! पापोंको नष्ट करनेवाली इस विष्णु-सम्बन्धिनी पावन कथाको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है; अतः अब मुझसे कोई दूसरी कथा कहिये । महामते ! जिनका मन सुदृढ़ है, जो इस जगत्में कभी निषिद्ध कर्म नहीं करते, उन मनुष्योंको जिस पुण्यकी प्राप्ति ऋषियोंने बतायी है, उसे ही आप कहिये ॥ २–४ ॥

व्यास उवाच

नराणां दृढचित्तानामिह लोके परत्र च ।
पुण्यं यत्स्यान्मुनिश्रेष्ठ तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५ ॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यम्या च सह संवादं यमस्य च महात्मनः ॥ ६ ॥
विवस्वानदितेः पुत्रस्तस्य पुत्रौ सुवर्चसौ ।
जज्ञाते स यमश्चैव यमी चापि यवीयसी ॥ ७ ॥
तौ तत्र संविवर्द्धेते पितुर्भवन उत्तमे ।
क्रीडमानौ स्वभावेन स्वच्छन्दगमनावुभौ ॥ ८ ॥
यमी यमं समासाद्य स्वसा भ्रातरमब्रवीत् ॥ ९ ॥

**व्यासजी बोले**—मुनिश्रेष्ठ शुकदेव ! स्थिर चित्तवाले पुरुषोंको इस लोकमें या परलोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे मैं बतलाता हूँ; तुम सुनो । इसी विषयमें विद्वान् पुरुष यमीके साथ महात्मा यमके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं । अदितिके पुत्र जो विवस्वान् ( सूर्य ) हैं, उनके दो तेजस्वी संतानें हुईं । उनमें प्रथम तो 'यम' नामक पुत्र था और दूसरी उससे छोटी 'यमी' नामकी कन्या थी । वे दोनों अपने पिताके उत्तम भवनमें दिनोंदिन भलीभाँति बढ़ने लगे । वे बाल-स्वभावके अनुसार साथ-साथ खेलते-कूदते और इच्छानुसार घूमते-फिरते थे । एक दिन यमकी बहिन यमीने अपने भाई यमके पास जाकर कहा ॥ ५–९ ॥

न भ्राता भगिनीं योग्यां कामयन्तीं च कामयेत् ।
भ्रातृभूतेन किं तस्य स्वसुर्यो न पतिर्भवेत् ॥१०॥
अभूत इव स ज्ञेयो न तु भूतः कथंचन ।
अनाथां नाथमिच्छन्तीं स्वसारं यो न नाथति ॥११॥
काङ्क्षन्तीं भ्रातरं नाथं भर्तारं यस्तु नेच्छति ।
भ्रातेति नोच्यते लोके स पुमान् मुनिसत्तमः ॥१२॥
स्याद्वान्यतनया तस्य भार्या भवति किं तया ।
ईक्षतस्तु स्वसा भ्रातुः कामेन परिदह्यते ॥१३॥
यत्कार्यमहमिच्छामि त्वमेवेच्छ तदेव हि ।
अन्यथाहं मरिष्यामि त्वामिच्छन्ती विचेतना ॥१४॥
कामदुःखमसह्यं नु भ्रातः किं त्वं न चेच्छसि ।
कामाग्निना भृशं तप्ता प्रलीयाम्यङ्ग मा चिरम् ॥१५॥
कामार्तायाः स्त्रियाः कान्त वशगो भव मा चिरम् ।
स्वेन कायेन मे कायं संयोजयितुमर्हसि ॥१६॥

**यमी बोली**—जो भाई अपनी योग्य बहिनको उसके चाहनेपर भी न चाहे, जो बहिनका पति न हो सके, उसके भाई होनेसे क्या लाभ ? जो स्वामीकी इच्छा रखनेवाली अपनी कुमारी बहिनका स्वामी नहीं बनता, उस भ्राताको ऐसा समझना चाहिये कि वह पैदा ही नहीं हुआ । किसी तरह भी उसका उत्पन्न होना नहीं माना जा सकता । भैया ! यदि बहिन अपने भाईको ही अपना स्वामी—अपना पति बनाना चाहती है, इस दशामें जो बहिनको नहीं चाहता, वह पुरुष मुनिशिरोमणि ही क्यों न हो, इस संसारमें भ्राता नहीं कहा जा सकता । यदि किसी दूसरेकी ही कन्या उसकी पत्नी हो तो भी उससे क्या लाभ, यदि उस भाईकी अपनी बहिन उसके देखते-देखते कामसे दग्ध हो रही है । मेरे होश, इस समय अपने ठिकाने नहीं हैं । मैं इस समय जो काम करना चाहती हूँ, तुम भी उसीकी इच्छा करो; नहीं तो मैं तुम्हारी ही चाह लेकर प्राण त्याग दूँगी, मर जाऊँगी । भाई ! कामकी वेदना असह्य होती है । तुम मुझे क्यों नहीं चाहते ? प्यारे भैया ! कामाग्निसे अत्यन्त संतप्त होकर मैं मरी जा रही हूँ; अब देर न करो । कान्त ! मैं कामपीड़िता स्त्री हूँ । तुम शीघ्र ही मेरे अधीन हो जाओ । अपने शरीरसे मेरे शरीरका संयोग होने दो ॥ १०–१६ ॥

यम उवाच

किमिदं लोकविद्विष्टं धर्मं भगिनि भाषसे ।
अकार्यमिह कः कुर्यात् पुमान् भद्रे सुचेतनः ॥१७॥
न ते संयोजयिष्यामि कायं कायेन भामिनि ।
न भ्राता मदनार्तायाः स्वसुः कामं प्रयच्छति ॥१८॥
महापातकमित्याहुः स्वसारं योऽधिगच्छति ।
पशूनामेष धर्मः स्यात्तिर्यग्योनिवतां शुभे ॥१९॥

यम बोले—बहिन ! सारा संसार जिसकी निन्दा करता है, उसी इस पापकर्मको तू धर्म कैसे बता रही है ? भद्रे ! भला कौन सचेत पुरुष यह न करनेयोग्य पापकर्म कर सकता है ? भामिनि ! मैं अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका संयोग न होने दूँगा । कोई भी भाई अपनी काम-पीड़िता बहिनकी इच्छा नहीं पूरी कर सकता । जो बहिनके साथ समागम करता है, उसके इस कर्मको महापातक बताया गया है—शुभे ! यह तिर्यग्-योनिमें पड़े हुए पशुओंका धर्म है—देवता या मनुष्यका नहीं ॥ १७–१९ ॥

यम्युवाच

एकस्थाने यथा पूर्वं संयोगो नौ न दुष्यति ।
मातृगर्भे तथैवायं संयोगो नौ न दुष्यति ॥२०॥
किं भ्रातरप्यनाथां त्वं मा नेच्छसि शोभनम् ।
स्वसारं निर्ऋती रक्षः संगच्छति च नित्यशः ॥२१॥

यमी बोली—भैया ! हम दोनों जुड़वी संतानें हैं और माताके गर्भमें एक साथ रहे हैं । पहले माताके गर्भमें एक ही स्थानपर हम दोनोंका जो संयोग हुआ था, वह कैसे दूषित नहीं माना गया, उसी प्रकार यह संयोग भी दूषित नहीं हो सकता । भाई ! अभीतक मुझे पतिकी प्राप्ति नहीं हुई है । तुम मेरा भला करना क्यों नहीं चाहते ! 'निर्ऋति' नामक राक्षस तो अपनी बहिनके साथ नित्य ही समागम करता है ॥ २०-२१ ॥

यम उवाच

स्वयम्भुवापि निन्द्येत लोकवृत्तं जुगुप्सितम् ।
प्रधानपुरुषाचीर्णं लोकोऽयमनुवर्तते ॥२२॥
तस्मादनिन्दितं धर्मं प्रधानपुरुषश्चरेत् ।
निन्दितं वर्जयेद्यत्नादेतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥२३॥
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२४॥
अतिपापमहं मन्ये सुभगे वचनं तव ।
विरुद्धं सर्वधर्मेषु लोकेषु च विशेषतः ॥२५॥
मत्तोऽन्यो यो भवेद्यो वै विशिष्टो रूपशीलतः ।
तेन सार्धं प्रमोदस्व न ते भर्ता भवाम्यहम् ॥२६॥
नाहं स्पृशामि तन्वा ते तनुं भद्रे दृढव्रतः ।
मुनयः पापमाहुस्तं यः स्वसारं निगृह्णति ॥२७॥

यम बोले—बहिन ! कुत्सित लोकव्यवहारकी निन्दा ब्रह्माजीने भी की है । इस संसारके लोग श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित धर्मका ही अनुसरण करते हैं । इसलिये श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि वह उत्तम धर्मका ही आचरण करे और निन्दित कर्मको यत्नपूर्वक त्याग दे—यही धर्मका लक्षण है । श्रेष्ठ पुरुष जिस-जिस कर्मका आचरण करता है, उसीको अन्य लोग भी आचरणमें लाते हैं और वह जिसे प्रमाणित कर देता है, लोग उसीका अनुसरण करते हैं । सुभगे ! मैं तो तुम्हारे इस वचनको अत्यन्त पापपूर्ण समझता हूँ । इतना ही नहीं, मैं इसे सब धर्मों और विशेषतः समस्त लोकोंके विपरीत मानता हूँ । मुझसे अन्य जो कोई भी रूप और शीलमें विशिष्ट हो, उसके साथ तुम आनन्दपूर्वक रहो; मैं तुम्हारा पति नहीं हो सकता । भद्रे ! मैं दृढ़ता-पूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला हूँ, अतः अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका स्पर्श नहीं करूँगा । जो बहिनको ग्रहण करता है, उसे मुनियोंने 'पापी' कहा है ॥ २२—२७ ॥

यम्युवाच

दुर्लभं चैव पश्यामि लोके रूपमिहेदृशम् ।
यत्र रूपं वयश्चैव पृथिव्यां क्व प्रतिष्ठितम् ॥२८॥
न विजानामि ते चित्तं कुत एतत्प्रतिष्ठितम् ।
आत्मरूपगुणोपेतां न कामयसि मोहिताम् ॥२९॥
लतेव पादपे लग्ना कामं त्वच्छरणं गता ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य निवसामि शुचिस्मिता ॥३०॥

यमी बोली—मैं देखती हूँ, इस संसारमें ऐसा ( तुम्हारे समान ) रूप दुर्लभ है । भला, पृथ्वीपर ऐसा स्थान कहाँ है, जहाँ रूप और समान अवस्था—दोनों एकत्र वर्तमान हों । मैं नहीं समझती, तुम्हारा यह चित्त इतना स्थिर

कैसे है, जिसके कारण तुम अपने समान रूप और गुणसे युक्त होनेपर भी मुझ मोहिता स्त्रीकी इच्छा नहीं करते हो। तुममें संलग्न हुई लताके समान मैं स्वेच्छानुसार तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मेरे मुखपर पवित्र मुसकान शोभा पाती है। अब मैं अपनी दोनों भुजाओंसे तुम्हारा आलिङ्गन करके ही रहूँगी ॥ २८—३० ॥

यम उवाच

अन्यं श्रयस्व सुश्रोणि देवं देव्यसितेक्षणे ।
यस्तु ते काममोहेन चेतसा विभ्रमं गतः ।
तस्य देवस्य देवी त्वं भवेथा वरवर्णिनि ॥३१॥
ईप्सितां सर्वभूतानां वरां शंसन्ति मानवाः ।
सुभद्रां चारुसर्वाङ्गीं संस्कृतां परिचक्षते ॥३२॥
तत्कृतेऽपि सुविद्वांसो न करिष्यन्ति दूषणम् ।
परितापं महाप्राज्ञे न करिष्ये दृढव्रतः ॥३३॥
चित्तं मे निर्मलं भद्रे विष्णौ रुद्रे च संस्थितम् ।
अतः पापं नु नेच्छामि धर्मचित्तो दृढव्रतः ॥३४॥

यम बोले—श्यामलोचने! सुश्रोणि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेमें असमर्थ हूँ। तुम किसी दूसरे देवताका आश्रय लो। वरवर्णिनि! तुम्हें देखकर काममोहसे जिसका चित्त विभ्रान्त हो उठे, उसी देवताकी तुम देवी हो जाओ। जिसे समस्त प्राणी चाहते हैं, मानवगण जिसे वरणीय बतलाते हैं, कल्याणमयी, सर्वाङ्गसुन्दरी और सुसंस्कृता कहते हैं, उसके लिये भी विद्वान् पुरुष कभी दूषित कर्म नहीं करेंगे। महाप्राज्ञे! मेरा व्रत अटल है। मैं यह पश्चात्तापजनक पाप कदापि नहीं करूँगा। भद्रे! मेरा चित्त निर्मल है, भगवान् विष्णु और शिवके चिन्तनमें लगा हुआ है। इसलिये मैं दृढ़संकल्प एवं धर्मात्मा होकर निश्चय ही यह पापकर्म नहीं करना चाहता ॥ ३१—३४ ॥

व्यास उवाच

असकृत् प्रोच्यमानोऽपि तया चैवं दृढव्रतः ।
कृतवान्न यमः कार्यं तेन देवत्वमाप्तवान् ॥३५॥
नराणां दृढचित्तानामेवं पापमकुर्वताम् ।
अनन्तं फलमित्याहुस्तेषां स्वर्गफलं भवेत् ॥३६॥
एतत्तु यम्युपाख्यानं पूर्ववृत्तं सनातनम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं श्रोतव्यमनसूयया ॥३७॥
यश्चैतत्पठते नित्यं हव्यकव्येषु ब्राह्मणः ।
संतृप्ताः पितरस्तस्य न विशन्ति यमालयम् ॥३८॥
यश्चैतत् पठते नित्यं पितृणामनृणो भवेत् ।
वैवस्वतीभ्यस्तीव्राभ्यो यातनाभ्यः प्रमुच्यते ॥३९॥
पुत्रैतदाख्यानमनुत्तमं मया
तवोदितं वेदपदार्थनिश्चितम् ।
पुरातनं पापहरं सदा नृणां
किमन्यदद्यैव वदामि शंस मे ॥४०॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे यमीयमसंवादो नाम*
*द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥*

**श्रीव्यासजी कहते हैं**—शुकदेव! यमीके बारंबार कहनेपर भी दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले यमने वह पाप-कर्म नहीं किया; इसलिये वे देवत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार स्थिरचित्त होकर पाप न करनेवाले मनुष्योंके लिये अनन्त पुण्यफलकी प्राप्ति बतलायी गयी है। ऐसे लोगोंको स्वर्गरूप फल उपलब्ध होता है। यह यमीका उपाख्यान, जो प्राचीन एवं सनातन इतिहास है, सब पापोंको दूर करनेवाला और पवित्र है। असूया त्यागकर इसका श्रवण करना चाहिये। जो ब्राह्मण देवयाग और पितृयागमें सदा इसका पाठ करता है, उसके पितृगण पूर्णतः तृप्त होते हैं। उन्हें कभी यमराजके भवनमें प्रवेश नहीं करना पड़ता। जो इसका नित्य पाठ करता है, वह पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है तथा उसे तीव्र यम-यातनाओंसे छुटकारा मिल जाता है। बेटा शुकदेव! मैंने तुमसे यह सर्वोत्तम एवं पुरातन उपाख्यान कह सुनाया, जो वेदके पदों तथा अर्थोंद्वारा निश्चित है। इसका पाठ करनेपर यह सदा ही मनुष्योंका पाप हर लेता है। मुझे बताओ, अब मैं तुम्हें और क्या सुनाऊँ? ॥ ३५—४० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'यमी-यम-संवाद' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

# तेरहवाँ अध्याय

## पतिव्रताकी शक्ति; उसके साथ एक ब्रह्मचारीका संवाद; माताकी रक्षा परम धर्म है, इसका उपदेश

श्रीशुक उवाच

विचित्रेयं कथा तात वैदिकी मे त्वयेरिता ।
अन्याः पुण्याश्च मे ब्रूहि कथाः पापप्रणाशिनीः ॥ १ ॥

**श्रीशुकदेवजी बोले**—तात ! आपने जो यह वैदिक कथा मुझे सुनायी है, बड़ी विचित्र है । अब दूसरी पापनाशक कथाओंका मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

अहं ते कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
पतिव्रतायाः संवादं कस्यचिद्ब्रह्मचारिणः ॥ २ ॥
कश्यपो नीतिमान्नाम ब्राह्मणो वेदपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो व्याख्याने परिनिष्ठितः ॥ ३ ॥
स्वधर्मकार्यनिरतः परधर्मपराङ्मुखः ।
ऋतुकालाभिगामी च अग्निहोत्रपरायणः ॥ ४ ॥
सायंप्रातर्महाभाग हुत्वाग्निं तर्पयन् द्विजान् ।
अतिथीनागतान् गेहं नरसिंहं च पूजयन् ॥ ५ ॥
तस्य पत्नी महाभागा सावित्री नाम नामतः ।
पतिव्रता महाभागा पत्युः प्रियहिते रता ॥ ६ ॥
भर्तुः शुश्रूषणेनैव दीर्घकालमनिन्दिता ।
परोक्षज्ञानमापन्ना कल्याणी गुणसम्मता ॥ ७ ॥
तया सह स धर्मात्मा मध्यदेशे महामतिः ।
नन्दिग्रामे वसन् धीमान् स्वानुष्ठानपरायणः ॥ ८ ॥

**व्यासजी बोले**—बेटा ! अब मैं तुमसे उस परम उत्तम प्राचीन इतिहासका वर्णन करूँगा, जो किसी ब्रह्मचारी और एक पतिव्रता स्त्रीका संवादरूप है । ( मध्यदेशमें ) एक कश्यप नामक ब्राह्मण रहते थे, जो बड़े ही नीतिज्ञ, वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान्, समस्त शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वके ज्ञाता, व्याख्यानमें प्रवीण, अपने धर्मके अनुकूल कार्योंमें तत्पर और परधर्मसे विमुख रहनेवाले थे । वे ऋतुकाल आनेपर ही पत्नी-समागम करते और प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे । महाभाग ! कश्यपजी नित्य सायं और प्रातःकाल अग्निमें हवन करनेके पश्चात् ब्राह्मणों तथा घरपर आये हुए अतिथियोंको तृप्त करते हुए भगवान् नृसिंहका पूजन किया करते थे । उनकी परम सौभाग्यशालिनी पत्नीका नाम सावित्री था । महाभागा सावित्री पतिव्रता होनेके कारण पतिके ही प्रिय और हित-साधनमें लगी रहती थी । अपने गुणोंके कारण उसका बड़ा सम्मान था । वह कल्याणमयी अनिन्दिता सती-साध्वी दीर्घकालतक पतिकी शुश्रूषामें संलग्न रहनेके कारण परोक्ष-ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी थी—परोक्षमें घटित होनेवाली घटनाओंका भी उसे ज्ञान हो जाता था । मध्यदेशके निवासी वे धर्मात्मा एवं परम बुद्धिमान् कश्यपजी अपनी उसी धर्मपत्नीके साथ नन्दिग्राममें रहते हुए स्वधर्मके अनुष्ठानमें लगे रहते थे ॥ २—८ ॥

अथ कौशलिको विप्रो यज्ञशर्मा महामतिः ।
तस्य भार्याभवत् साध्वी रोहिणी नाम नामतः ॥ ९ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना पतिशुश्रूषणे रता ।
सा प्रसूता सुतं त्वेकं तस्माद्भर्तुरनिन्दिता ॥१०॥
स यायावरवृत्तिस्तु पुत्रे जाते विचक्षणः ।
जातकर्म तदा चक्रे स्नात्वा पुत्रस्य मन्त्रतः ॥११॥
द्वादशेऽहनि तस्यैव देवशर्मेति बुद्धिमान् ।
पुण्याहं वाचयित्वा तु नाम चक्रे यथाविधि ॥१२॥
उपनिष्क्रमणं चैव चतुर्थे मासि यत्नतः ।
तथान्नप्राशनं षष्ठे मासि चक्रे यथाविधि ॥१३॥

उन्हीं दिनों कोशलदेशमें उत्पन्न यज्ञशर्मा नामक एक परम बुद्धिमान् ब्राह्मण थे, जिनकी सती-साध्वी स्त्रीका नाम रोहिणी था । वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी और पतिकी सेवामें सदा तत्पर रहती थी । उस उत्तम आचार-विचारवाली स्त्रीने अपने स्वामी यज्ञशर्मासे एक पुत्र उत्पन्न किया । पुत्रके उत्पन्न होनेपर यायावर वृत्तिवाले बुद्धिमान् पण्डित यज्ञशर्माने स्नान करके मन्त्रोंद्वारा उसका जातकर्म-संस्कार किया और जन्मके बारहवें दिन उन्होंने विधिपूर्वक पुण्याह-वाचन कराकर उसका “देवशर्मा” नाम रक्खा । इसी प्रकार चौथे महीनेमें यत्नपूर्वक उसका उपनिष्क्रमण हुआ अर्थात्

वह घरसे बाहर लाया गया और छठे मासमें उन्होंने उस पुत्रका विधिपूर्वक अन्नप्राशन-संस्कार किया ॥ ९–१३ ॥

संवत्सरे ततः पूर्णे चूडाकर्म च धर्मवित् ।
कृत्वा गर्भाष्टमे वर्षे व्रतबन्धं चकार सः ॥१४॥
सोपनीतो यथान्यायं पित्रा वेदमधीतवान् ।
स्वीकृते त्वेकवेदे तु पिता स्वर्लोकमास्थितः ॥१५॥
मात्रा सहास दुःखी स पितर्युपरते सुतः ।
धैर्यमास्थाय मेधावी साधुभिः प्रेरितः पुनः ॥१६॥
प्रेतकार्याणि कृत्वा तु देवशर्मा गतः सुतः ।
गङ्गादिषु सुतीर्थेषु स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥१७॥
तमेव प्राप्तवान् ग्रामं यत्रास्ते सा पतिव्रता ।
सम्प्राप्य विश्रुतः सोऽथ ब्रह्मचारी महामते ॥१८॥
भिक्षाटनं तु कृत्वासौ जपन् वेदमतन्द्रितः ।
कुर्वन्नेवाग्निकार्यं तु नन्दिग्रामे च तस्थिवान् ॥१९॥
मृते भर्तरि तन्माता पुत्रे प्रव्रजिते तु सा ।
दुःखाद्दुःखमनुप्राप्ता नियतं रक्षकं विना ॥२०॥

तदनन्तर एक वर्ष पूर्ण होनेपर धर्मज्ञ पिताने उसका चूडाकर्म और गर्भसे आठवें वर्षपर उपनयन-संस्कार किया। पिताके द्वारा यथोचितरूपसे उपनयन-संस्कार हो जानेपर उसने वेदाध्ययन किया। उसके द्वारा एक वेदका अध्ययन पूर्ण हो जानेपर उसके पिता स्वर्गगामी हो गये। पिताकी मृत्यु होनेपर वह अपनी माताके साथ बहुत दुःखी हो गया। फिर श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञासे उस बुद्धिमान् पुत्रने धैर्य धारण करके पिताका प्रेतकार्य किया। इसके पश्चात् ब्राह्मणकुमार देवशर्मा घरसे निकल गया (विरक्त हो गया)। वह गङ्गा आदि उत्तम तीर्थोंमें विधिपूर्वक स्नान करके घूमता हुआ वहीं जा पहुँचा, जहाँ वह पतिव्रता सावित्री निवास करती थी। महामते! वहाँ जाकर वह 'ब्रह्मचारी'के रूपमें विख्यात हुआ। भिक्षाटन करके जीवन-निर्वाह करता हुआ वह आलस्यरहित हो वेदके स्वाध्याय तथा अग्निहोत्रमें तत्पर रहकर उसी नन्दिग्राममें रहने लगा। इधर उसकी माता अपने स्वामीके मरने और पुत्रके विरक्त होकर घरसे निकल जानेके बाद किसी नियत रक्षकके न होनेसे दुःख-पर-दुःख भोगने लगी ॥ १४–२० ॥

अथ स्नात्वा तु नद्यां वै ब्रह्मचारी स्वकर्पटम् ।
क्षितौ प्रसार्य शोषार्थं जपन्नासीत वाग्यतः ॥२१॥
काको बलाका तद्वस्त्रं परिगृह्याशु जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा भर्त्सयामास देवशर्मा ततो द्विजः ॥२२॥
विष्ठामुत्सृज्य वस्त्रे तु जग्मतुस्तस्य भर्त्सनात् ।
रोषेण वीक्षयामास खे यान्तौ पक्षिणौ तु सः ॥२३॥
तद्रोषवह्निना दग्धौ भूम्यां निपतितौ खगौ ।
स दृष्ट्वा तौ क्षितिं यातौ पक्षिणौ विस्मयं गतः ॥२४॥
तपसा न मया कश्चित् सदृशोऽस्ति महीतले ।
इति मत्वा गतो भिक्षामटितुं ग्राममञ्जसा ॥२५॥

तदनन्तर एक दिन ब्रह्मचारीने नदीमें स्नान करके अपना वस्त्र सुखानेके लिये पृथ्वीपर फैला दिया और स्वयं मौन होकर जप करने लगा। इसी समय एक कौआ और बगुला—दोनों वह वस्त्र लेकर शीघ्रतासे उड़ चले। तब उन्हें इस प्रकार करते देख देवशर्मा ब्राह्मणने डाँट बतायी। उसकी डाँट सुनकर वे पक्षी उस वस्त्रपर बीट करके उसे वहीं छोड़कर चले गये। तब ब्राह्मणने आकाशमें जाते हुए उन पक्षियोंकी ओर क्रोधपूर्वक देखा। वे पक्षी उसकी क्रोधाग्निसे भस्म होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें पृथ्वीपर गिरा देख ब्रह्मचारी बहुत ही विस्मित हुआ। फिर वह यह समझकर कि इस पृथ्वीपर तपस्यामें मेरी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है, अनायास ही गाँवमें भिक्षा माँगने चला ॥२१–२५॥

अटन् ब्राह्मणगेहेषु ब्रह्मचारी तपःक्षयी ।
प्रविष्टस्तद्गृहं वत्स गृहे यत्र पतिव्रता ॥२६॥
तं दृष्ट्वा याच्यमानापि तेन भिक्षां पतिव्रता ।
वाग्यता पूर्वं विज्ञाय भर्तुः कृत्वानुशासनम् ॥२७॥
क्षालयामास तत्पादौ भूय उष्णेन वारिणा ।
आश्वास्य स्वपतिं सा तु भिक्षां दातुं प्रचक्रमे ॥२८॥
ततः क्रोधेन रक्ताक्षो ब्रह्मचारी पतिव्रताम् ।
दग्धुकामस्तपोवीर्यात् पुनः पुनरुदैक्षत ।
सावित्री तु निरीक्ष्यैनं हसन्ती सा तमब्रवीत् ॥२९॥
न काको न बलाकाहं त्वत्क्रोधेन तु यौ मृतौ ।
नदीतीरेऽद्य कोपात्मन् भिक्षां मत्तो यदीच्छसि ॥३

वत्स ! तपस्याका अभिमान रखनेवाला वह ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंके घरोंमें भीख माँगता हुआ उस घरमें गया, जहाँ वह पतिव्रता सावित्री रहती थी। पतिव्रताने उसे देखा, ब्रह्मचारीने भिक्षाके लिये उससे याचना की, तो भी वह मौन ही रही। पहले उसने अपने स्वामीके आदेशकी ओर ध्यान दे उसीका पालन किया; फिर गरम जलसे पतिके चरण धोये—इस प्रकार स्वामीको आराम देकर वह भिक्षा देनेको उद्यत हुई। तब ब्रह्मचारी क्रोधसे लाल आँखें करके अपने तपोबलके द्वारा पतिव्रताको जला देनेकी इच्छासे उसकी ओर बारंबार देखने लगा। सावित्री उसे यों करते देख हँसती हुई बोली—'ऐ क्रोधी ब्राह्मण ! मैं कौआ और बगुला नहीं हूँ, जो आज नदीके तटपर तुम्हारे कोपसे जलकर भस्म हो गये थे। मुझसे यदि भीख चाहते हो, तो चुपचाप ले लो' ॥ २६—३० ॥

तथैवमुक्तः सावित्र्या भिक्षामादाय सोऽग्रतः ।
चिन्तयन् मनसा तस्याः शक्तिं दूरार्थवेदिनीम् ॥३१॥
एत्याश्रमे मठे स्थाप्य भिक्षापात्रं प्रयत्नतः ।
पतिव्रतायां भुक्तायां गृहस्थे निर्गते पतौ ॥३२॥
पुनरागम्य तद्गेहं तामुवाच पतिव्रताम् ।

सावित्रीके यों कहनेपर उससे भिक्षा लेकर वह आगे चला और उसकी दूरवर्ती घटनाको जान लेनेवाली शक्तिका मन-ही-मन चिन्तन करता हुआ अपने आश्रमपर पहुँचा। वहाँ भिक्षापात्रको यत्नपूर्वक मठमें रखकर जब पतिव्रता भोजनसे निवृत्त हो गयी और जब उसका गृहस्थ पति घरसे बाहर चला गया, तब वह पुनः उसके घर आया और उस पतिव्रतासे बोला ॥ ३१-३२½ ॥

ब्रह्मचार्युवाच

प्रब्रूह्येतन्महाभागे पृच्छतो मे यथार्थतः ॥३३॥
विप्रकृष्टार्थविज्ञानं कथमाशु तवाभवत् ।

ब्रह्मचारीने कहा—महाभागे ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, तुम मुझे यथार्थरूपसे बताओ, तुम्हें दूरकी घटनाका ज्ञान इतना शीघ्र कैसे हो गया ? ॥ ३३½ ॥

इत्युक्ता तेन सा साध्वी सावित्री तु पतिव्रता ॥३४॥
तं ब्रह्मचारिणं प्राह पृच्छन्तं गृहमेत्य वै ।
शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥३५॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि स्वधर्मपरिबृंहितम् ।
स्त्रीणां तु पतिशुश्रूषा धर्म एष परिस्थितः ॥३६॥
तमेवाहं सदा कुर्यां नान्यमस्मि महामते ।
दिवारात्रमसंदिग्धं श्रद्धया परितोषणम् ॥३७॥
कुर्वन्त्या मम सम्भूतं विप्रकृष्टार्थदर्शनम् ।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं यदीच्छसि ॥३८॥
पिता यायावरः शुद्धस्तस्माद्वेदमधीत्य वै ।
मृते पितरि कृत्वा तु प्रेतकार्यमिहागतः ॥३९॥
उत्सृज्य मातरं द्रष्टुं वृद्धां दीनां तपस्विनीम् ।
अनाथां विधवामत्र नित्यं स्वोदरपोषकः ॥४०॥
यया गर्भे धृतः पूर्वं पालितो लालितस्तथा ।
तां त्यक्त्वा विपिने धर्मं चरन् विप्र न लज्जसे ॥४१॥
यया तव कृतं ब्रह्मन् बाल्ये मलनिकृन्तनम् ।
दुःखितां तां गृहे त्यक्त्वा किं भवेद्विपिनेऽटतः ॥४२॥
मातृदुःखेन ते वक्त्रं पूतिगन्धमिदं भवेत् ।
पित्रैव संस्कृतो यस्मात् तस्माच्छक्तिरभूदियम् ॥४३॥
पक्षी दग्धः सुदुर्बुद्धे पापात्मन् साम्प्रतं वृथा ।
वृथा स्नानं वृथा तीर्थं वृथा जप्तं वृथा हुतम् ॥४४॥
स जीवति वृथा ब्रह्मन् यस्य माता सुदुःखिता ।
यो रक्षेत् सततं भक्त्या मातरं मातृवत्सलः ॥४५॥
तस्येहानुष्ठितं सर्वं फलं चामुत्र चेह हि ।
मातुश्च वचनं ब्रह्मन् पालितं यैर्नरोत्तमैः ॥४६॥
ते मान्यास्ते नमस्कार्या इह लोके परत्र च ।
अतस्त्वं तत्र गत्वाद्य यत्र माता व्यवस्थिता ॥४७॥
तां त्वं रक्षय जीवन्तीं तद्रक्षा ते परं तपः ।
क्रोधं परित्यजैनं त्वं दृष्टादृष्टविघातकम् ॥४८॥
तयोः कुरु वधे शुद्धिं पक्षिणोरात्मशुद्धये ।
याथातथ्येन कथितमेतत्सर्वं मया तव ॥४९ ॥
ब्रह्मचारिन् कुरुष्व त्वं यदीच्छसि सतां गतिम् ।

उसके यों कहनेपर वह साध्वी पतिव्रता सावित्री घर आकर प्रश्न करनेवाले उस ब्रह्मचारीसे यों बोली—'ब्रह्मन् ! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उसे सावधान होकर सुनो—स्वधर्म पालनसे बढ़े हुए अपने परोक्षज्ञानके विषयमें मैं तुमसे

भलीभाँति बताऊँगी। पतिकी सेवा करना ही स्त्रियोंका सुनिश्चित परम धर्म है। महामते! मैं सदा उसी धर्मका पालन करती हूँ, किसी अन्य धर्मका नहीं। निस्संदेह मैं दिन-रात श्रद्धापूर्वक पतिको संतुष्ट करती रहती हूँ, इसीलिये मुझे दूर होनेवाली घटनाका भी ज्ञान हो जाता है। मैं तुम्हें कुछ और भी बताऊँगी; तुम्हारी इच्छा हो, तो सुनो—'तुम्हारे पिता यज्ञशर्मा यायावर-वृत्तिके शुद्ध ब्राह्मण थे। उनसे ही तुमने वेदाध्ययन किया था। पिताके मर जानेपर उनका प्रेतकार्य करके तुम यहाँ चले आये। दीन अवस्थामें पड़कर कष्ट भोगती हुई उस अनाथ विधवा वृद्धा माताकी देख-भाल करना छोड़कर तुम यहाँ रोज अपना ही पेट भरनेमें लगे हुए हो। ब्राह्मण! जिसने पहले तुम्हें गर्भमें धारण किया और जन्मके बाद तुम्हारा लालन-पालन किया, उसे असहायावस्थामें छोड़कर वनमें धर्माचरण करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ब्रह्मन्! जिसने बाल्यावस्थामें तुम्हारा मल-मूत्र साफ किया था, उस दुखिया माताको घरमें अकेली छोड़कर वनमें घूमनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? माताके कष्टसे तुम्हारा मुँह दुर्गन्ध-युक्त हो जायगा। तुम्हारे पिताने ही तुम्हारा उत्तम संस्कार कर दिया था, जिससे तुम्हें यह शक्ति प्राप्त हुई है। दुर्बुद्धि पापात्मन्! तुमने व्यर्थ ही पक्षियोंको जलाया। इस समय तुम्हारा किया हुआ स्नान, तीर्थसेवन, जप और होम—सब व्यर्थ है। ब्रह्मन्! जिसकी माता अत्यन्त दुःखमें पड़ी हो, वह व्यर्थ ही जीवन धारण करता है। जो पुत्र मातापर दया करके भक्तिपूर्वक निरन्तर उसकी रक्षा करता है, उसका किया हुआ सब कर्म यहाँ और परलोकमें भी फलप्रद होता है। ब्रह्मन्! जिन उत्तम पुरुषोंने माताके वचनका पालन किया है, वे इस लोक और परलोकमें भी माननीय तथा नमस्कारके योग्य हैं। अतः जहाँ तुम्हारी माता है, वहाँ जाकर उसके जीतेजी उसीकी रक्षा करो। उसकी रक्षा करना ही तुम्हारे लिये परम तपस्या है। इस क्रोधको त्याग दो; क्योंकि यह तुम्हारे दृष्ट और अदृष्ट—सभी कर्मोंको नष्ट करनेवाला है। उन पक्षियोंकी हत्याके पापसे अपनी शुद्धिके लिये तुम प्रायश्चित्त करो। यह सब मैंने तुमसे यथार्थ बातें कही हैं। ब्रह्मचारिन्! यदि तुम सत्पुरुषोंकी गतिको प्राप्त करना चाहते हो तो मेरे कहे अनुसार करो'॥ ३४—४९½॥

इत्युक्त्वा विरराामाथ द्विजपुत्रं पतिव्रता ॥५०॥
सोऽपि तामाह भूयोऽपि सावित्रीं तु क्षमापयन्।
अज्ञानात्कृतपापस्य क्षमस्व वरवर्णिनि ॥५१॥
मया तवाहितं यच्च कृतं क्रोधनिरीक्षणम्।
तत् क्षमस्व महाभागे हितमुक्तं पतिव्रते ॥५२॥
तत्र गत्वा मया यानि कर्माणि तु शुभव्रते।
कार्याणि तानि मे ब्रूहि यथा मे सुगतिर्भवेत् ॥५३॥

ब्राह्मणकुमारसे यों कहकर वह पतिव्रता चुप हो गयी। तब ब्रह्मचारी भी पुनः अपने अपराधके लिये क्षमा माँगता हुआ सावित्रीसे बोला—'वरवर्णिनि! अनजानमें किये हुए मेरे इस पापको क्षमा करो। महाभागे! पतिव्रते! तुमने मेरे हितकी ही बात कही है। मैंने जो क्रोधपूर्वक तुम्हारी ओर देखकर तुम्हारा अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो। शुभव्रते! अब मुझे माताके पास जाकर जिन कर्तव्योंका पालन करना चाहिये, उन्हें बताओ, जिनके करनेसे मेरी शुभगति हो'॥ ५०—५३॥

तेनैवमुक्ता साप्याह तं पृच्छन्तं पतिव्रता।
यानि कार्याणि वक्ष्यामि त्वया कर्माणि मे शृणु ॥५४॥
पोष्या माता त्वया तत्र निश्चयं भैक्षवृत्तिना।
अत्र वा तत्र वा ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं च पक्षिणोः ॥५५॥
यज्ञशर्मसुता कन्या भार्या तव भविष्यति।
तां गृह्णीष्व च धर्मेण गते त्वयि स दास्यति ॥५६॥
पुत्रस्ते भविता तस्यामेकः संततिवर्धनः।
यायावरधनाद्वृत्तिः पितृवत्ते भविष्यति ॥५७॥
पुनर्मृतायां भार्यायां भविता त्वं त्रिदण्डकः।
स यत्याश्रमधर्मेण यथोक्त्यानुष्ठितेन च।
नरसिंहप्रसादेन वैष्णवं पदमाप्स्यसि ॥५८॥
भाव्यमेतत्तु कथितं मया तव हि पृच्छतः।
मन्यसे नानृतं त्वेतत् कुरु सर्वं हि मे वचः ॥५९॥

उसके इस प्रकार कहनेपर उस पूछनेवाले ब्राह्मणसे पतिव्रता सावित्री पुनः बोली—"ब्रह्मन्! वहाँ तुमको जो कर्म करने चाहिये, उन्हें बतलाती हूँ; सुनो—'तुम्हें भिक्षावृत्तिसे

जीवननिर्वाह करते हुए वहाँ माताका निश्चय ही पोषण करना चाहिये और पक्षियोंकी हत्याका प्रायश्चित्त यहाँ अथवा वहाँ अवश्य करना चाहिये । यज्ञशर्माकी[१] पुत्री तुम्हारी पत्नी होगी । उसे ही तुम धर्मपूर्वक ग्रहण करो । तुम्हारे जानेपर यज्ञशर्मा अपनी कन्या तुम्हें दे देंगे । उसके गर्भसे तुम्हारी वंश-परम्पराको बढ़ानेवाला एक पुत्र होगा । पिताकी भाँति यायावर-वृत्तिसे प्राप्त हुए धनसे ही तुम अपनी जीविका चलाओगे । फिर तुम अपनी पत्नीकी मृत्युके बाद त्रिदण्डी ( संन्यासी ) हो जाओगे । वहाँ संन्यासाश्रमके लिये शास्त्रविहित धर्मका यथावत् रूपसे पालन करनेपर भगवान् नरसिंहकी प्रसन्नतासे तुम विष्णुपदको प्राप्त कर लोगे ।' तुम्हारे पूछनेपर मैंने ये भविष्यमें होनेवाली बातें तुमसे बतला दी हैं । यदि तुम इन्हें असत्य नहीं मानते, तो मेरे सब वचनोंका पालन करो'' ॥५४—५९॥

ब्राह्मण उवाच

गच्छामि मातृरक्षार्थमद्यैवाहं पतिव्रते ।
करिष्ये त्वद्वचः सर्वं तत्र गत्वा शुभेक्षणे ॥६०॥

**ब्राह्मण बोला**—पतिव्रते ! मैं माताकी रक्षाके लिये आज ही जाता हूँ । शुभेक्षणे ! वहाँ जाकर तुम्हारी सब बातोंका मैं पालन करूँगा ॥ ६० ॥

इत्युक्त्वा गतवान् ब्रह्मन् देवशर्मा ततस्त्वरन् ।
संरक्ष्य मातरं यत्नात् क्रोधमोहविवर्जितः ॥६१॥
कृत्वा विवाहमुत्पाद्य पुत्रं वंशकरं शुभम् ।
मृतभार्यश्च संन्यस्य समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
नरसिंहप्रसादेन परां सिद्धिमवाप्तवान् ॥६२॥
पतिव्रताशक्तिरियं तवेरिता
धर्मश्च मातुः परिरक्षणं परम् ।
संसारवृक्षं च निहत्य बन्धनं
छित्त्वा च विष्णोः पदमेति मानवः ॥६३॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्रह्मचारिसंवादो नाम*
*त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥*

ब्रह्मन् ! यों कहकर देवशर्मा वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चला गया और क्रोध तथा मोहसे रहित होकर उसने यत्नपूर्वक माताकी रक्षा की । फिर विवाह करके एक सुन्दर वंशवर्धक पुत्र उत्पन्न किया और कुछ कालके बाद पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर संन्यासी होकर ढेले और मिट्टीको बराबर समझते हुए उसने भगवान् नृसिंहकी कृपासे परमसिद्धि ( मोक्ष ) प्राप्त कर ली । यह मैंने तुमसे पतिव्रताकी शक्ति बतायी और यह भी बतलाया कि माताकी रक्षा करना परम धर्म है । संसारवृक्षका उच्छेद करके सब बन्धनोंको तोड़ देनेपर मनुष्य विष्णुपदको प्राप्त करता है ॥ ६१—६३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पतिव्रता और ब्रह्मचारीका संवाद' विषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

# चौदहवाँ अध्याय

## तीर्थसेवन और आराधनसे भगवान्‌की प्रसन्नता; 'अनाश्रमी' रहनेसे दोष तथा आश्रमधर्मके पालनसे भगवत्प्राप्तिका कथन

व्यास उवाच

शृणु वत्स महाबुद्धे शिष्याश्चैतां परां कथाम् ।
मयोच्यमानां शृण्वन्तु सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १ ॥

**व्यासजी बोले**—महाबुद्धिमान् पुत्र शुकदेव ! तुम और मेरे अन्य शिष्यगण भी मेरे द्वारा कही जानेवाली इस पापहारिणी कथाको सुनो ॥ १ ॥

पुरा द्विजवरः कश्चिद्वेदशास्त्रविशारदः ।
मृतभार्यो गतस्तीर्थं चक्रे स्नानं यथाविधि ॥ २ ॥
तपः सुतप्तं विजने निःस्पृहो दारकर्मणि ।
भिक्षाहारः प्रवसितो जपस्नानपरायणः ॥ ३ ॥

स्नात्वा स गङ्गां यमुनां सरस्वतीं
पुण्यां वितस्तामथ गोमतीं च ।
गयां समासाद्य पितॄन् पितामहान्
संतर्पयन् सन् गतवान् महेन्द्रम् ॥ ४ ॥

---

[१] ये यज्ञशर्मा देवशर्माके पितासे भिन्न थे ।

तत्रापि कुण्डेषु गिरौ महामतिः
स्नात्वा नु दृष्ट्वा भृगुनन्दनोत्तमम् ।
कृत्वा पितृभ्यस्तु तथैव तृप्तिं
व्रजन् वनं पापहरं प्रविष्टः ॥ ५ ॥

पूर्वकालमें कोई वेदशास्त्रविशारद श्रेष्ठ ब्राह्मण अपनी पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर तीर्थमें गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक स्नान किया और विजन ( एकान्त ) में रहकर उत्तम तपस्या की । तत्पश्चात् दारकर्म ( विवाह ) की इच्छा न रखकर वह परदेशमें रहता हुआ भिक्षा माँगकर जीवननिर्वाह करने और जप, स्नान आदि उत्तम कर्ममें तत्पर रहने लगा । गङ्गा, यमुना, सरस्वती, पावन वितस्ता ( झेलम ) और गोमती आदिमें स्नान करके वह गयामें पहुँचा और वहाँ अपने पिता-पितामह आदिका तर्पण करके महेन्द्र पर्वतपर गया । वहाँ उस परम बुद्धिमान् द्विजने पर्वतीय कुण्डोंमें स्नान करनेके पश्चात् ऋषिश्रेष्ठ भृगुनन्दन परशुरामजीका दर्शन किया; फिर पूर्ववत् पितरोंके लिये तर्पण करके चलते-चलते एक वनमें प्रवेश किया, जो पापोंका नाश करनेवाला था ॥ २–५ ॥

धारां पतन्तीं महतीं शिलोच्चयात्
संधार्य भक्त्या त्वनु नारसिंहे ।
शिरस्यशेषाघविनाशिनीं तदा
विशुद्धदेहः स बभूव विप्रः ॥ ६ ॥
विन्ध्याचले सक्तमनन्तमच्युतं
भक्तैर्मुनीन्द्रैरपि पूजितं सदा ।
आराध्य पुष्पैर्गिरिसम्भवैः शुभै-
स्तत्रैव सिद्धिं त्वभिकाङ्क्ष्य संस्थितः ॥ ७ ॥

वहाँ एक पर्वतसे बहुत बड़ी धारा गिरती थी, जो निश्शेष पापराशिका विनाश करनेवाली थी । उसके जलको लेकर ब्राह्मणने भक्तिपूर्वक भगवान् नृसिंहके मस्तकपर चढ़ाया । इससे उसी समय उसका शरीर विशुद्ध हो गया । फिर विन्ध्याचल पर्वतपर स्थित होकर भक्तों और मुनीश्वरोंसे सदा पूजित होनेवाले अनन्त अच्युत भगवान् विष्णुकी सुन्दर पर्वतीय पुष्पोंसे पूजा करता हुआ वह ब्राह्मण सिद्धिकी कामनासे वहीं ठहर गया ॥ ६-७ ॥

स नारसिंहो बहुकालपूजया
तुष्टः सुनिद्रागतमाह भक्तम् ।
अनाश्रमित्वं गृहभङ्गकारणं
ह्यतो गृहाणाश्रममुत्तमं द्विज ॥ ८ ॥
अनाश्रमीति द्विजवेदपारगा-
नपि त्वहं नानुगृह्णामि चात्र ।
तथापि निष्ठां तव वीक्ष्य सत्तम
त्वयि प्रसन्नेन मयेत्युदीरितम् ॥ ९ ॥

इस तरह दीर्घकालतक उसने पूजा की । उससे प्रसन्न होकर वे भगवान् नृसिंह गाढ़ निद्रामें सोये हुए अपने उस भक्तसे स्वप्नमें दर्शन देकर बोले—'ब्रह्मन् ! किसी आश्रमधर्मको स्वीकार करके न चलना गृहस्थकी मर्यादाके भङ्गका कारण होता है; अतः यदि तुम्हें गृहस्थ नहीं रहना है तो किसी दूसरे उत्तम आश्रमको ग्रहण करो । ब्रह्मन् ! जो किसी आश्रममें स्थित नहीं है, वह यदि वेदोंका पारगामी विद्वान् हो, तो भी मैं यहाँ उसपर अनुग्रह नहीं करता; परंतु साधुवर ! तुम्हारी निष्ठा देखकर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसीसे मैंने तुमसे यह बात कही है' ॥ ८-९ ॥

तेनैवमुक्तः परमेश्वरेण
द्विजोऽपि बुद्ध्या प्रविचिन्त्य वाक्यम् ।
हरेरलङ्घ्यं नरसिंहमूर्ते-
र्बाधं च कृत्वा स यतिर्बभूव ॥१०॥

उन परमेश्वरके इस प्रकार कहनेपर उस ब्राह्मणने भी अपनी बुद्धिसे नृसिंहस्वरूप श्रीहरिके उस कथनपर विचार करके उसे अलङ्घनीय माना और सम्पूर्ण जगत्का बाध ( त्याग ) करके वह संन्यासी हो गया ॥ १० ॥

त्रिदण्डवृक्षाक्षपवित्रपाणि-
राप्लुत्य तोये त्वघहारिणि स्थितः ।
जपन् सदा मन्त्रमपास्तदोषं
सावित्र्यमीशं हृदये स्मरन् हरिम् ॥११॥
यथाकथंचित् प्रतिलभ्य शाकं
भैक्ष्याभितुष्टो वनवासवासी ।
अभ्यर्च्य विष्णुं नरसिंहमूर्तिं
ध्यात्वा च नित्यं हृदि शुद्धमाद्यम् ॥१२॥

विविक्तदेशे विपुले कुशासने
निवेश्य सर्वं हृदयेऽस्य स[illegible]म् ।
बाह्यं समस्तं गुणमिन्द्रियाणां
विलीय भेदं भगवत्यनन्ते ॥१३॥
विज्ञेयमानन्दमजं विशालं
सत्यात्मकं क्षेमपदं वरेण्यम् ।
संचिन्त्य तस्मिन् प्रविहाय देहं
बभूव मुक्तः परमात्मरूपी ॥१४॥

फिर प्रतिदिन उस पापहारी जलमें डुबकी लगाकर तथा उसीमें खड़ा रहकर त्रिदण्ड और अक्षमाला धारण करनेसे पवित्र हाथोंवाला वह ब्राह्मण मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करता हुआ निर्दोष गायत्री-मन्त्रका जप करने लगा। नित्यप्रति शुद्ध आदिदेव भगवान् विष्णुका हृदयमें ध्यान करके उनके नृसिंह-विग्रहका पूजन करता और वनवासी हो किसी प्रकार शाक आदि खाकर भिक्षावृत्तिसे ही संतोषपूर्वक रहता था। विस्तृत एकान्त प्रदेशमें कुशासनपर बैठकर वह इन्द्रियोंके समस्त बाह्य विषयों तथा भेदबुद्धिको हृदयस्थित भगवान् अनन्तमें विलीन करके विज्ञेय, अजन्मा, विराट्, सत्यस्वरूप, श्रेष्ठ, कल्याणधाम आनन्दमय परमेश्वरका चिन्तन करता हुआ आयु पूरी होनेपर शरीर त्यागकर मुक्त एवं परमात्मस्वरूप हो गया ॥ ११-१४॥

इमां कथां मुक्तिपरां यथोक्तां
पठन्ति ये नारसिंहं स्मरन्तः ।
प्रयागतीर्थप्लवने तु यत्फलं
तत् प्राप्य ते यान्ति हरेः पदं महत् ॥१५॥
इत्येतदुक्तं तव पुत्र पृच्छतः
पुरातनं पुण्यतमं पवित्रकम् ।
संसारवृक्षस्य विनाशनं परं
पुनः कमिच्छस्यभिवाञ्छितं वद ॥१६॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥*

जो लोग मोक्ष-सम्बन्धिनी अथवा मोक्षको ही उत्कृष्ट बनानेवाली इस कथाको भगवान् नृसिंहका स्मरण करते हुए पढ़ते हैं, वे प्रयागतीर्थमें स्नान करनेसे जो फल होता है, उसे पाकर अन्तमें भगवान् विष्णुके महान् पदको प्राप्त कर लेते हैं। बेटा! तुम्हारे पूछनेसे मैंने यह उत्तम, पवित्र, पुण्यतम एवं पुरातन उपाख्यान, जो संसारवृक्षका नाश करनेवाला है, तुमसे कहा है; अब और क्या सुनना चाहते हो? अपना मनोरथ प्रकट करो ॥ १५-१६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

* * *

# पंद्रहवाँ अध्याय

## संसारवृक्षका वर्णन तथा इसे नष्ट करनेवाले ज्ञानकी महिमा

श्रीशुक उवाच

श्रोतुमिच्छाम्यहं तात साम्प्रतं मुनिभिः सह ।
संसारवृक्षं सकलं येनेदं परिवर्तते ॥ १ ॥
वक्तुमर्हसि मे तात त्वयैतत् सूचितं पुरा ।
नान्यो वेत्ति महाभाग संसारोच्चारलक्षणम् ॥ २ ॥

**श्रीशुकदेवजी बोले**—तात! मैं इस समय मुनियोंके साथ संसार-वृक्षका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जिसके द्वारा यह परिवर्तनका सम्पूर्ण चक्र चलता रहता है। तात! आपने ही पहले इस वृक्षको सूचित किया है; अतः आप ही इसका वर्णन करनेके योग्य हैं। महाभाग! आपके सिवा दूसरा कोई इस संसारवृक्षका लक्षण नहीं जानता ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

स पुत्रेणैवमुक्तस्तु शिष्याणां मध्यगेन च ।
कृष्णद्वैपायनः प्राह संसारतरुलक्षणम् ॥ ३ ॥

**सूतजी बोले**—भरद्वाज! अपने शिष्योंके बीचमें बैठे हुए पुत्र शुकदेवजीके इस प्रकार पूछनेपर श्रीकृष्णद्वैपायन (व्यासजी) ने उन्हें संसारवृक्षका लक्षण इस प्रकार बताया ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

शृण्वन्तु शिष्याः सकला वत्स त्वं शृणु भावितः ।
संसारवृक्षं वक्ष्यामि येन चेदं समावृतम् ॥ ४ ॥

अव्यक्तमूलप्रभवस्तस्मादग्रे तथोत्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥ ५ ॥
महाभूतविशाखश्च विशेषैः पत्रशाखवान् ।
धर्माधर्मसुपुष्पश्च सुखदुःखफलोदयः ॥ ६ ॥
आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्म वृक्षः सनातनः ।
एतद् ब्रह्म परं चैव ब्रह्म वृक्षस्य तस्य तत् ॥ ७ ॥
इत्येवं कथितं वत्स संसारवृक्षलक्षणम् ।
वृक्षमेनं समारूढा मोहमायान्ति देहिनः ॥ ८ ॥
संसरन्तीह सततं सुखदुःखसमन्विताः ।
प्रायेण प्राकृता मर्त्या ब्रह्मज्ञानपराङ्मुखाः ॥ ९ ॥
छित्त्वैनं कृतिनो यान्ति नो यान्ति ब्रह्मज्ञानिनः ।
कर्मक्रिये महाप्राज्ञ नैनं छिन्दन्ति दुष्कृताः ॥१०॥
एनं छित्त्वा च भित्त्वा च ज्ञानेन परमासिना ।
ततोऽमरत्वं ते यान्ति यस्मान्नावर्तते पुनः ॥११॥
देहदारमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते ।
ज्ञानमेव परं पुंसां श्रेयसामभिवाञ्छितम् ।
तोषणं नरसिंहस्य ज्ञानहीनः पशुः पुमान् ॥१२॥
आहारनिद्राभयमैथुनानि
समानमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं नराणामधिकं हि लोके
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥१३॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥*

**श्रीव्यासजी बोले**—मेरे सभी शिष्य इस विषयको सुनें; तथा वत्स ! तुम भी सावधान होकर सुनो—मैं संसार-वृक्षका वर्णन करता हूँ, जिसने इस सारे दृश्य-प्रपञ्चको व्याप्त कर रक्खा है । यह संसार-वृक्ष अव्यक्त परमात्मारूपी मूलसे प्रकट हुआ है । उन्हींसे प्रकट होकर हमारे सामने इस रूपमें खड़ा है । बुद्धि ( महत्तत्त्व ) उसका तना है, इन्द्रियाँ ही उसके अङ्कुर और कोटर हैं, पञ्चमहाभूत उसकी बड़ी-बड़ी डालियाँ हैं, विशेष पदार्थ ही उसके पत्ते और टहनियाँ हैं, धर्म-अधर्म फूल हैं, उससे 'सुख' और 'दुःख'नामक फल प्रकट होते हैं, प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाला यह संसारवृक्ष ब्रह्मकी भाँति सभी भूतोंका आश्रय है । यह अपर ब्रह्म और परब्रह्म भी इस संसार-वृक्षका कारण है । पुत्र ! इस प्रकार मैंने तुमसे संसारवृक्षका लक्षण बतलाया है । इस वृक्षपर चढ़े हुए देहाभिमानी जीव मोहित हो जाते हैं । प्रायः ब्रह्मज्ञानसे विमुख प्राकृत मनुष्य सदा सुख-दुःखसे युक्त होकर इस संसारमें फँसे रहते हैं, ब्रह्मज्ञानी विद्वान् इस संसारवृक्षको नहीं प्राप्त होते । वे इसका उच्छेद करके मुक्त हो जाते हैं । महाप्राज्ञ शुकदेव ! जो पापी हैं, वे कर्म-क्रियाका उच्छेद नहीं कर पाते । ज्ञानी पुरुष ज्ञानरूपी उत्तम खड्गके द्वारा इस वृक्षको छिन्न-भिन्न करके उस अमरपदको प्राप्त करते हैं, जहाँसे जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता । शरीर तथा स्त्रीरूपी बन्धनोंसे दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष भी ज्ञानके द्वारा मुक्त हो जाता है; अतः श्रेष्ठतम पुरुषोंको ज्ञानकी प्राप्ति ही परम अभीष्ट होती है; क्योंकि ज्ञान ही भगवान् नृसिंहको संतोष देता है । ज्ञानहीन पुरुष तो पशु ही है । मनुष्योंके आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि कर्म तो पशुओंके ही समान होते हैं; उनमें केवल ज्ञान ही अधिक होता है । जो ज्ञानहीन हैं, वे पशुओंके ही तुल्य हैं ॥ ४—१३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

# सोलहवाँ अध्याय

## भगवान् विष्णुके ध्यानसे मोक्षकी प्राप्तिका प्रतिपादन

श्रीशुक उवाच

संसारवृक्षमारुह्य द्वन्द्वपाशशतैर्दृढैः ।
बध्यमानः सुतैश्वर्यैः पतितो योनिसागरे ॥ १ ॥
यः कामक्रोधलोभैस्तु विषयैः परिपीडितः ।
बद्धः स्वकर्मभिर्गौणैः पुत्रदारैषणादिभिः ॥ २ ॥
स केन निस्तरत्याशु दुस्तरं भवसागरम् ।
पृच्छामाख्याहि मे तात तस्य मुक्तिः कथं भवेत् ॥ ३ ॥

**श्रीशुकदेवजी बोले**—पिताजी ! जो संसार-वृक्षपर आरूढ़ हो; राग-द्वेषादि द्वन्द्वमय सैकड़ों सुदृढ़ पाशों तथा पुत्र और ऐश्वर्य आदिके बन्धनसे बँधकर योनि-समुद्रमें

गिरा हुआ है तथा काम, क्रोध, लोभ और विषयोंसे पीड़ित होकर अपने कर्ममय मुख्य-बन्धनों तथा पुत्रैषणा और दारैषणा आदि गौण-बन्धनोंसे आबद्ध है, वह मनुष्य इस दुस्तर भवसागरको कैसे शीघ्र पार कर सकता है? उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? हमारे इस प्रश्नका समाधान कीजिये ॥ १–३ ॥

श्रीव्यास उवाच

शृणु वत्स महाप्राज्ञ यज्ज्ञात्वा मुक्तिमाप्नुयात् ।
तच्च वक्ष्यामि ते दिव्यं नारदेन श्रुतं पुरा ॥ ४ ॥
नरके रौरवे घोरे धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
स्वकर्मभिर्महादुःखं प्राप्ता यत्र यमालये ॥ ५ ॥
महापापकृतं घोरं सम्प्राप्ताः पापकृज्जनाः ।
आलोक्य नारदः शीघ्रं गत्वा यत्र त्रिलोचनः ॥ ६ ॥
गङ्गाधरं महादेवं शंकरं शूलपाणिनम् ।
प्रणम्य विधिवद्देवं नारदः परिपृच्छति ॥ ७ ॥

**श्रीव्यासजी बोले**—महाप्राज्ञ पुत्र! मैंने पूर्वकालमें नारदजीके मुखसे जिसका श्रवण किया था और जिसे जान लेनेपर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उस दिव्य ज्ञानका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। यमराजके भवनमें जहाँ घोर रौरव नरकके भीतर धर्म और ज्ञानसे रहित प्राणी अपने पापकर्मोंके कारण महान् कष्ट पाते हैं, वहाँ एक बार नारदजी गये। उन्होंने देखा, पापी जीव अपने महान् पापोंके फलस्वरूप घोर संकटमें पड़े हैं। यह देखकर नारदजी शीघ्र ही उस स्थानपर गये, जहाँ त्रिलोचन महादेवजी थे। वहाँ पहुँचकर सिरपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले महान् देवता शूलपाणि भगवान् शंकरको उन्होंने विधिवत् प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा ॥ ४–७ ॥

नारद उवाच

यः संसारे महाद्वन्द्वैः कामभोगैः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैर्बद्धः पीड्यमानः षडूर्मिभिः ॥ ८ ॥
कथं नु मुच्यते क्षिप्रं मृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् ब्रूहि मे तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि शंकर ॥ ९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः ।
उवाच तमृषिं शम्भुः प्रसन्नवदनो हरः ॥१०॥

**नारदजी बोले**—भगवन्! जो संसारमें महान् द्वन्द्वों, शुभाशुभ कामभोगों और शब्दादि विषयोंसे बँधकर छहों ऊर्मियों*द्वारा पीड़ित हो रहा है, वह मृत्युमय संसार-सागरसे किस प्रकार शीघ्र ही मुक्त हो सकता है? कल्याणस्वरूप भगवान् शिव! यह बात मुझे बताइये। मैं यही सुनना चाहता हूँ।' नारदजीका वह वचन सुनकर त्रिनेत्रधारी भगवान् हरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उन महर्षिसे बोले ॥ ८–१० ॥

महेश्वर उवाच

ज्ञानामृतं च गुह्यं च रहस्यमृषिसत्तम ।
वक्ष्यामि शृणु दुःखघ्नं सर्वबन्धभयापहम् ॥११॥
तृणादि चतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया ॥१२॥
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यते ।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥१३॥
भोगैश्वर्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुखः ।
संसारसुमहापङ्के जीर्णा गौरिव मज्जति ॥१४॥
यस्त्वात्मानं निबध्नाति कर्मभिः कोशकारवत् ।
तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥१५॥
तस्मान्नारद सर्वेशं देवानां देवमव्ययम् ।
आराधयेत्सदा सम्यग् ध्यायेद्विष्णुं समाहितः ॥१६॥

**श्रीमहेश्वरने कहा**—मुनिश्रेष्ठ! सुनो; मैं सब प्रकारके बन्धनोंका भय और दुःख दूर करनेवाले गोपनीय रहस्यभूत ज्ञानामृतका वर्णन करता हूँ। तृणसे लेकर चतुरानन ब्रह्माजीतक, जो चार प्रकारका प्राणि-समुदाय है, वह अथवा समस्त चराचर जगत् जिनकी मायासे सुप्त हो रहा है, उन भगवान् विष्णुकी कृपासे यदि कोई जाग उठता है—ज्ञानवान् हो जाता है तो वही देवताओंके लिये भी दुस्तर इस संसार-सागरको पार कर जाता है। जो मनुष्य भोग और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त और तत्त्वज्ञानसे विमुख है, वह संसाररूपी महान् पङ्कमें उस तरह डूब जाता है, जैसे कीचड़में फँसी हुई बूढ़ी गाय। जो रेशमके कीड़ेकी भाँति अपनेको कर्मोंके बन्धनसे बाँध लेता है, उसके लिये करोड़ों जन्मोंमें भी मैं मुक्तिकी सम्भावना नहीं देखता। इसलिये नारद! सदा समाहितचित्त

---

* भूख, प्यास, जरा, मृत्यु, शोक और मोह—छः दुःख 'ऊर्मि' कहे गये हैं।

होकर सर्वेश्वर अविनाशी देवदेव भगवान् विष्णुका सदा भलीभाँति आराधन और ध्यान करना चाहिये ॥ ११–१६ ॥

यस्तं विश्वमनाद्यन्तमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम्।
सर्वज्ञममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१७॥
निर्विकल्पं निराकाशं निष्प्रपञ्चं निरामयम्।
वासुदेवमजं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१८॥
निरञ्जनं परं शान्तमच्युतं भूतभावनम्।
देवगर्भं विभुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१९॥
सर्वपापविनिर्मुक्तमप्रमेयमलक्षणम्।
निर्वाणमनघं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२०॥
अमृतं परमानन्दं सर्वपापविवर्जितम्।
ब्रह्मण्यं शंकरं विष्णुं सदा संकीर्त्य मुच्यते ॥२१॥
योगेश्वरं पुराणाख्यमशरीरं गुहाशयम्।
अमात्रमव्ययं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२२॥

जो सदा उन विश्वस्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सबके आदिकारण, आत्मनिष्ठ, अमल एवं सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है। जो विकल्पसे रहित, अवकाशशून्य, प्रपञ्चसे परे, रोग-शोकसे हीन एवं अजन्मा हैं, उन वासुदेव ( सर्वव्यापी भगवान् ) विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सब दोषोंसे रहित, परम शान्त, अच्युत, प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले तथा देवताओंके भी उत्पत्तिस्थान हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जो सम्पूर्ण पापोंसे शून्य, प्रमाणरहित, लक्षणहीन, शान्त तथा निष्पाप हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा चिन्तन करनेवाला मनुष्य कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो अमृतमय, परमानन्दस्वरूप, सब पापोंसे रहित, ब्राह्मणप्रिय तथा सबका कल्याण करनेवाले हैं, उन भगवान् विष्णुका निरन्तर नाम-कीर्तन करनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो योगोंके ईश्वर, पुराण, प्राकृत देहहीन, बुद्धिरूप गुहामें शयन करनेवाले, विषयोंके सम्पर्कसे शून्य और अविनाशी हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है ॥१७–२२॥

शुभाशुभविनिर्मुक्तमूर्मिषट्कपरं विभुम्।
अचिन्त्यममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२३॥
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वदुःखविवर्जितम्।
अप्रतर्क्यमजं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२४॥
अनामगोत्रमद्वैतं चतुर्थं परमं पदम्।
तं सर्वहृद्गतं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२५॥
अरूपं सत्यसंकल्पं शुद्धमाकाशवत्परम्।
एकाग्रमनसा विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२६॥
सर्वात्मकं स्वभावस्थमात्मचैतन्यरूपकम्।
शुभ्रमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२७॥
अनिर्वाच्यमविज्ञेयमक्षरादिमसम्भवम्।
एकं नूत्नं सदा विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२८॥
विश्वाद्यं विश्वगोप्तारं विश्वादं सर्वकामदम्।
स्थानत्रयातिगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥२९॥
सर्वदुःखक्षयकरं सर्वशान्तिकरं हरिम्।
सर्वपापहरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥३०॥

ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः।
योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥३१॥
विष्णौ प्रतिष्ठितं विश्वं विष्णुर्विश्वे प्रतिष्ठितः।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं कीर्तयन्नेव मुच्यते ॥३२॥
संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन् काममशेषतः।
भक्त्यैव वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥३३॥

जो शुभ और अशुभके बन्धनसे रहित, छः ऊर्मियोंसे परे, सर्वव्यापी, अचिन्तनीय तथा निर्मल हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है। जो समस्त द्वन्द्वोंसे मुक्त और सब दुःखोंसे रहित हैं, उन तर्कके अविषय, अजन्मा भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करता हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। जो नाम-गोत्रसे शून्य, अद्वितीय और जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंसे परे तुरीय परमपद हैं, समस्त भूतोंके हृदय-मन्दिरमें विद्यमान उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष मुक्त हो जाता है। जो रूपरहित, सत्यसंकल्प और आकाशके समान परम शुद्ध हैं; उन भगवान् विष्णुका सदा एकाग्रचित्तसे चिन्तन करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो सर्वरूप, स्वभावनिष्ठ और आत्मचैतन्यरूप हैं, उन प्रकाशमान एकाक्षर ( प्रणवमय ) भगवान् विष्णुका सदा ध्यान

करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो अनिर्वचनीय, ज्ञानातीत, प्रणवस्वरूप और जन्म-रहित हैं, उन एकमात्र नित्यनूतन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो विश्वके आदिकारण, विश्वके रक्षक, विश्वका भक्षण ( संहार ) करनेवाले तथा सम्पूर्ण काम्य वस्तुओंके दाता हैं, तीनों अवस्थाओंसे अतीत उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। समस्त दुःखोंके नाशक, सबको शान्ति प्रदान करनेवाले और सम्पूर्ण पापोंको हर लेनेवाले भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्मा आदि देवता, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण और योगियोंद्वारा सेवित भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष पाप-तापसे मुक्त हो जाता है। यह विश्व भगवान् विष्णुमें स्थित है और भगवान् विष्णु इस विश्वमें प्रतिष्ठित हैं। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी, अजन्मा भगवान् विष्णुका कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो संसार-बन्धनसे मुक्ति तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति चाहता है, वह यदि भक्तिपूर्वक वरदायक भगवान् विष्णुका ध्यान करे तो सफलमनोरथ होकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २३–३३ ॥

व्यास उवाच

**नारदेन पुरा पृष्ट एवं स वृषभध्वजः ।**
**यदुवाच तदा तस्मै तन्मया कथितं तव ॥३४॥**
**तमेव सततं ध्याहि निर्बीजं ब्रह्म केवलम् ।**
**अवाप्स्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमव्ययम् ॥३५॥**

**श्रीव्यासजी कहते हैं**—बेटा ! इस प्रकार पूर्वकालमें देवर्षि नारदजीके पूछनेपर उन वृषभचिह्नित ध्वजावाले भगवान् शंकरने उस समय उनके प्रति जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया। तात ! निर्बीज ब्रह्मरूप उन अद्वितीय विष्णुका ही निरन्तर ध्यान करो; इससे तुम अवश्य ही सनातन अविनाशी पदको प्राप्त करोगे ॥३४-३५॥

**श्रुत्वा सुरर्षिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात् ।**
**स विष्णुं सम्यगाराध्य परां सिद्धिमवाप्तवान् ॥३६॥**
**यश्चैनं पठते चैव नृसिंहकृतमानसः ।**
**शतजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति ॥३७॥**
**विष्णोः स्तवमिदं पुण्यं महादेवेन कीर्तितम् ।**
**प्रातः स्नात्वा पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ॥३८॥**
**ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं**
**हृत्पद्ममध्येष्वथ कीर्तयन्ति ये ।**
**उपासकानां प्रभुमीश्वरं परं**
**ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥३९॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोः स्तवराजनिरूपणे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥*

देवर्षि नारदने शंकरजीके मुखसे इस प्रकार भगवान् विष्णुकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन सुनकर उनकी भलीभाँति आराधना करके उत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली। जो भगवान् नृसिंहमें चित्त लगाकर इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, उसका सौ जन्मोंमें किया हुआ पाप भी नष्ट हो जाता है। महादेवजीके द्वारा कथित भगवान् विष्णुके इस पावन स्तोत्रका जो प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके पाठ करता है, वह अमृतपद ( मोक्ष ) को प्राप्त कर लेता है। जो लोग अपने हृदय-कमलके मध्यमें विराजमान अनन्त भगवान् अच्युतका सदा ध्यान करते हैं और उपासकोंके प्रभु उन परमेश्वर भगवान् विष्णुका कीर्तन करते हैं, वे परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि ( विष्णु-सायुज्य ) प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३६–३९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीविष्णुस्तवराजनिरूपण' विषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

# सत्रहवाँ अध्याय

## अष्टाक्षरमन्त्र और उसका माहात्म्य

श्रीशुक उवाच

**किं जपन् मुच्यते तात सततं विष्णुतत्परः ।**
**संसारदुःखात् सर्वेषां हिताय वद मे पितः ॥ १ ॥**

**श्रीशुकदेवजी बोले**—तात ! पिताजी ! मनुष्य सदा भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहकर किस मन्त्रका जप करनेसे सांसारिक कष्टसे मुक्त होता है ? यह मुझे बताइये। इससे सब लोगोंका हित होगा ॥ १ ॥

व्यास उवाच

अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां मन्त्रमुत्तमम् ।
यं जपन् मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥ २ ॥

श्रीव्यासजी बोले—बेटा ! मैं तुम्हें सभी मन्त्रोंमें उत्तम अष्टाक्षरमन्त्र बतलाऊँगा, जिसका जप करनेवाला मनुष्य जन्म और मृत्युसे युक्त संसाररूपी बन्धनमे मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
एकाग्रमनसा ध्यात्वा विष्णुं कुर्याज्जपं द्विजः ॥ ३ ॥
एकान्ते निर्जनस्थाने विष्ण्वग्रे वा जलान्तिके ।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै ॥ ४ ॥
अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य ऋषिर्नारायणः स्वयम् ।
छन्दश्च दैवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥ ५ ॥
शुक्लवर्णं च ॐकारं नकारं रक्तमुच्यते ।
मोकारं वर्णतः कृष्णं नाकारं रक्तमुच्यते ॥ ६ ॥
राकारं कुङ्कुमाभं तु यकारं पीतमुच्यते ।
णाकारमञ्जनाभं तु यकारं बहुवर्णकम् ॥ ७ ॥
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।
भक्तानां जपतां तात स्वर्गमोक्षफलप्रदः ।

द्विजको चाहिये कि अपने हृदय-कमलके मध्यभागमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुका एकाग्रचित्तसे ध्यान करते हुए जप करे । एकान्त, जनशून्य, स्थानमें, श्रीविष्णुमूर्तिके सम्मुख अथवा जलाशयके निकट मनमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये । साक्षात् भगवान् नारायण ही अष्टाक्षरमन्त्रके ऋषि हैं, दैवी गायत्री छन्द है, परमात्मा देवता है, ॐकार शुक्लवर्ण है, 'न' रक्तवर्ण है, 'मो' कृष्णवर्ण है, 'ना' रक्त है, 'रा' कुङ्कुम-रंगका है, 'य' पीतवर्णका है, 'णा' अञ्जनके समान कृष्णवर्णवाला है और 'य' विविध वर्णोंसे युक्त है । तात ! यह 'ॐनमो नारायणाय ।' मन्त्र समस्त प्रयोजनोंका साधक है और भक्तिपूर्वक जप करनेवाले लोगोंको स्वर्ग तथा मोक्षरूप फल देनेवाला है ॥ ३–७½ ॥

वेदानां प्रणयेनैष सिद्धो मन्त्रः सनातनः ॥ ८ ॥
सर्वपापहरः श्रीमान् सर्वमन्त्रेषु चोत्तमः ।
एनमष्टाक्षरं मन्त्रं जपन्नारायणं स्मरेत् ॥ ९ ॥
संध्यावसाने सततं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एष एव परो मन्त्र एष एव परं तपः ॥१०॥
एष एव परो मोक्ष एष स्वर्ग उदाहृतः ।
सर्ववेदरहस्येभ्यः सार एष समुद्धृतः ॥११॥
विष्णुना वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुरा ।
एवं ज्ञात्वा ततो विप्रो ह्यष्टाक्षरमिमं स्मरेत् ॥१२॥

यह सनातन मन्त्र वेदोंके प्रणय ( सारभूत अक्षरों- )से सिद्ध होता है । यह सभी मन्त्रोंमें उत्तम, श्रीसम्पन्न और सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है । जो सदा संध्याके अन्तमें इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करता हुआ भगवान् नारायणका स्मरण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । यही उत्तम मन्त्र है और यही उत्तम तपस्या है । यही उत्तम मोक्ष तथा यही स्वर्ग कहा गया है । पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वैष्णवजनोंके हितके लिये सम्पूर्ण वेद-रहस्योंसे यह सारभूत मन्त्र निकाला है । इस प्रकार जानकर ब्राह्मणको चाहिये कि इस अष्टाक्षर-मन्त्रका स्मरण ( जप ) करे ॥ ८–१२ ॥

स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे जपेत् पापविशुद्धये ।
जपे दाने च होमे च गमने ध्यानपर्वसु ॥१३॥
जपेन्नारायणं मन्त्रं कर्मपूर्वे परे तथा ।
जपेत्सहस्रं नियुतं शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥१४॥
मासि मासि तु द्वादश्यां विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः ।

स्नान करके, पवित्र होकर, शुद्ध स्थानमें बैठकर पाप-शुद्धिके लिये इस मन्त्रका जप करना चाहिये । जप, दान, होम, गमन, ध्यान तथा पर्वके अवसरपर और किसी कर्मके पहले तथा पश्चात् इस नारायण-मन्त्रका जप करना चाहिये । भगवान् विष्णुके भक्तश्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि वह प्रत्येक मासकी द्वादशी तिथिको पवित्रभावसे एकाग्र-चित्त होकर सहस्र या लक्ष-मन्त्रका जप करे ॥ १३-१४½ ॥

स्नात्वा शुचिर्जपेद्यस्तु नमो नारायणं शतम् ॥१५॥
स गच्छेत् परमं देवं नारायणमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्विष्णुमनेनाराध्य यो जपेत् ॥१६॥
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नात्र संशयः ।
हृदि कृत्वा हरिं देवं मन्त्रमेनं तु यो जपेत् ॥१७॥
सर्वपापविशुद्धात्मा स गच्छेत् परमां गतिम् ।

स्नान करके पवित्रभावसे जो 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका सौ ( एक सौ आठ ) बार जप करता है, वह निरामय परमदेव भगवान् नारायणको प्राप्त करता है। जो इस मन्त्रके द्वारा गन्ध-पुष्प आदिसे भगवान् विष्णुकी आराधना करके इसका जप करता है, वह महापातकसे युक्त होनेपर भी निस्संदेह मुक्त हो जाता है। जो हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका जप करता है, वह समस्त पापोंसे विशुद्धचित्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है ॥ १५–१७½ ॥

प्रथमेन तु लक्षेण आत्मशुद्धिर्भविष्यति ॥१८॥
द्वितीयेन तु लक्षेण मनुसिद्धिमवाप्नुयात् ।
तृतीयेन तु लक्षेण स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥१९॥
चतुर्थेन तु लक्षेण हरेः सामीप्यमाप्नुयात् ।
पञ्चमेन तु लक्षेण निर्मलं ज्ञानमाप्नुयात् ॥२०॥
तथा षष्ठेन लक्षेण भवेद्विष्णौ स्थिरा मतिः ।
सप्तमेन तु लक्षेण स्वरूपं प्रतिपद्यते ॥२१॥
अष्टमेन तु लक्षेण निर्वाणमधिगच्छति ।
स्वस्वधर्मसमायुक्तं जपं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥२२॥
एतत् सिद्धिकरं मन्त्रमष्टाक्षरमतन्द्रितः ।
दुःस्वप्नासुरपैशाचा उरगा ब्रह्मराक्षसाः ॥२३॥
जापिनं नोपसर्पन्ति चौरक्षुद्राधयस्तथा ।

एक लक्ष मन्त्रका जप करनेसे चित्तशुद्धि होती है, दो लक्षके जपसे मन्त्रकी सिद्धि होती है, तीन लक्षके जपसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर सकता है, चार लक्षसे भगवान् विष्णुकी समीपता प्राप्त होती है और पाँच लक्षसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार छः लक्षसे भगवान् विष्णुमें चित्त स्थिर होता है, सातसे भगवत्स्वरूपका ज्ञान होता है और आठ लक्षसे पुरुष निर्वाण ( मोक्ष ) प्राप्त कर लेता है। द्विजमात्रको चाहिये कि अपने-अपने धर्ममें युक्त रहकर इस मन्त्रका जप करे। यह अष्टाक्षरमन्त्र सिद्धिदायक है। आलस्य त्यागकर इसका जप करना चाहिये। इसे जप करनेवाले पुरुषके पास दुःस्वप्न, असुर, पिशाच, सर्प, ब्रह्मराक्षस, चोर और छोटी-मोटी मानसिक व्याधियाँ भी नहीं फटकती हैं ॥ १८—२३½ ॥

एकाग्रमनसाव्यग्रो विष्णुभक्तो दृढव्रतः ॥२४॥
जपेन्नारायणं मन्त्रमेतन्मृत्युभयापहम् ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रो देवतानां च दैवतम् ॥२५॥
गुह्यानां परमं गुह्यमोंकाराद्यक्षराष्टकम् ।
आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशून् विद्यां महद्यशः ॥२६॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते च जपन्नरः ।
एतत् सत्यं च धर्म्यं च वेदश्रुतिनिदर्शनात् ॥२७॥
एतत् सिद्धिकरं नृणां मन्त्ररूपं न संशयः ।
ऋषयः पितरो देवाः सिद्धास्त्वसुरराक्षसाः ॥२८॥
एतदेव परं जप्त्वा परां सिद्धिमितो गताः ।
ज्ञात्वा यस्त्वात्मनः कालं शास्त्रान्तरविधानतः ।
अन्तकाले जपन्नेति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२९॥

विष्णुभक्तको चाहिये कि वह दृढ़संकल्प एवं स्वस्थ होकर एकाग्रचित्तसे इस नारायण-मन्त्रका जप करे। यह मृत्युभयका नाश करनेवाला है। मन्त्रोंमें सबसे उत्कृष्ट मन्त्र और देवताओंका भी देवता ( आराध्य ) है। यह ॐकारादि अष्टाक्षर मन्त्र गोपनीय वस्तुओंमें परम गोपनीय है। इसका जप करनेवाला मनुष्य आयु, धन, पुत्र, पशु, विद्या, महान् यश एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। यह वेदों और श्रुतियोंके कथनानुसार धर्मसम्मत तथा सत्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये मन्त्ररूपी नारायण मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले हैं। ऋषि, पितृगण, देवता, सिद्ध, असुर और राक्षस इसी परम उत्तम मन्त्रका जप करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो ज्योतिष आदि अन्य शास्त्रोंके विधानसे अपना अन्तकाल निकट जानकर इस मन्त्रका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके प्रसिद्ध परमपदको प्राप्त होता है ॥२४—२९ ॥

नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यं
संसारघोरविषसंहरणाय मन्त्रः ।
शृण्वन्तु भव्यमतयो मुदितास्त्वरागा
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥३०॥
भूत्वोर्ध्वबाहुरद्याहं सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम् ।
हे पुत्र शिष्याः शृणुत न मन्त्रोऽष्टाक्षरात्परः ॥३१॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते ।
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात् परः ॥३२॥

आलोच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥३३॥
इत्येतत् सकलं प्रोक्तं शिष्याणां तव पुण्यदम् ।
कथाश्च विविधाः प्रोक्ता मया भज जनार्दनम् ॥३४॥
अष्टाक्षरमिमं मन्त्रं सर्वदुःखविनाशनम् ।
जप पुत्र महाबुद्धे यदि सिद्धिमभीप्ससि ॥३५॥
इदं स्तवं व्यासमुखात्तु निस्सृतं
संध्यात्रये ये पुरुषाः पठन्ति ।
ते धौतपाण्डुरपटा इव राजहंसाः
संसारसागरमपेतभयास्तरन्ति ॥३६॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे अष्टाक्षरमाहात्म्यं नाम*
*सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥*

भव्य बुद्धिवाले विरक्त पुरुष प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनें—मैं दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर उच्चस्वरसे यह उपदेश देता हूँ कि "संसाररूपी सर्पके भयानक विषका नाश करनेके लिये यह 'ॐ नारायणाय नमः ।' मन्त्र ही सत्य ( अमोघ ) औषध है"। पुत्र और शिष्यो ! सुनो—आज मैं दोनों बाँहें ऊपर उठाकर सत्य कह रहा हूँ कि 'अष्टाक्षरमन्त्र'से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। मैं भुजाओंको ऊपर उठाकर सत्य, सत्य और सत्य कह रहा हूँ, 'वेदसे बढ़कर दूसरा शास्त्र और भगवान् विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है।' सम्पूर्ण शास्त्रोंकी आलोचना तथा बार-बार उनका विचार करनेसे एकमात्र यही उत्तम कर्तव्य सिद्ध होता है कि "नित्य-निरन्तर भगवान् नारायणका ध्यान ही करना चाहिये"। बेटा ! तुमसे और शिष्योंसे यह सारा पुण्यदायक प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया तथा नाना प्रकारकी कथाएँ भी सुनायीं; अब तुम भगवान् जनार्दनका भजन करो। महाबुद्धिमान् पुत्र ! यदि तुम सिद्धि चाहते हो तो इस सर्वदुःखनाशक अष्टाक्षरमन्त्रका जप करो । जो पुरुष श्रीव्यासजीके मुखसे निकले हुए इस स्तोत्रका त्रिकाल संध्याके समय पाठ करेंगे, वे धुले हुए श्वेत वस्त्र तथा राजहंसोंके समान निर्मल ( विशुद्ध ) चित्त हो निर्भयतापूर्वक संसार-सागरसे पार हो जायँगे ॥ ३०—३६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'अष्टाक्षरमन्त्रका माहात्म्य' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

## अठारहवाँ अध्याय

### भगवान् सूर्यद्वारा संज्ञाके गर्भसे मनु, यम और यमीकी, छायाके गर्भसे मनु, शनैश्चर एवं तपतीकी उत्पत्ति तथा अश्वारूपधारिणी संज्ञासे अश्विनीकुमारोंका प्रादुर्भाव

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कथाः पुण्याः सर्वपापप्रणाशनीः ।
नानाविधा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णद्वैपायनात् पुनः ॥ १ ॥
शुकः पूर्वं महाभागो भरद्वाजो महामते ।
सिद्धैरन्यैश्च सहितो नारायणपरोऽभवत् ॥ २ ॥
एवं ते कथिता विप्र मार्कण्डेयादिकाः कथाः ।
मया विचित्राः पापघ्न्यः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३॥

सूतजी बोले—मुनिवरो तथा महामते भरद्वाज ! पूर्वकालमें श्रीकृष्णद्वैपायनसे इस प्रकार नाना भाँतिकी पावन पापनाशक कथाएँ सुनकर महाभाग शुक अन्य सिद्धगणोंके साथ भगवान् नारायणकी आराधनामें तत्पर हो गये। ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने आपसे पाप-नाश करनेवाली मार्कण्डेय आदिकी विचित्र कथाएँ कहीं; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ १—३ ॥

भरद्वाज उवाच

वस्वादीनां तथा प्रोक्ता मम सृष्टिस्त्वया पुरा ।
अश्विनोर्मरुतां चैव नोक्तोत्पत्तिस्तु तां वद ॥ ४ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी ! आपने पहले मुझसे वसु आदि देवताओंकी सृष्टिका उस प्रकार वर्णन किया; परंतु अश्विनीकुमारों तथा मरुद्गणोंकी उत्पत्ति नहीं कही; अतः अब उसे ही कहिये ॥ ४ ॥

सूत उवाच

मरुतां विस्तरेणोक्ता वैष्णवाख्ये महामते ।
पुराणे शक्तिपुत्रेण पुरोत्पत्तिश्च वायुना ॥ ५ ॥

**अश्विनोर्देवयोश्चैव सूतिरुक्ता सुविस्तरात्।**
**संक्षेपाच्च वक्ष्यामि सृष्टिमेतां शृणुष्व मे ॥ ६ ॥**

सुमन्तुजी बोले—महामते ! पूर्वकालमें ऋषिनन्दन श्रीपराशरजीने विष्णुपुराणमें मरुद्गणोंकी उत्पत्तिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है तथा वायुदेवताने वायुपुराणमें अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति भी विस्तारपूर्वक कही है; अतः मैं यहाँ संक्षेपसे ही इस सृष्टिका वर्णन करूँगा, सुनिये ॥ ५-६ ॥

**दक्षकन्यादितिः। आदितेरादित्यः पुत्रः। तस्मै त्वष्टा दुहितरं संज्ञां नाम कन्यां दत्तवान् ॥ ७ ॥ सोऽपि त्वाष्ट्रीं रूपवतीं मनोज्ञां प्राप्य तया सह रेमे। सा कतिपयात् कालात् स्वभर्तुरादित्यस्य तापमसहन्ती पितुर्गृहं जगाम ॥ ८ ॥ तामपलोक्य सुतां पितोवाच किं पुत्रि तव भर्ता सविता स्नेहात् त्वां रक्षत्युत परुष इति ॥ ९ ॥ एवं पितुर्वचनं श्रुत्वा संज्ञा तं प्रत्युवाच। दग्धाहं भर्तुः प्रचण्डतापादिति ॥ १० ॥ एवं श्रुत्वा तामाह पिता गच्छ पुत्रि भर्तुर्गृहमिति ॥ ११ ॥ युवतीस्त्रीणां भर्तुः शुश्रूषणमेव धर्मः श्रेयान्। अहमपि कतिपयदिवसादागत्यादित्यस्योष्णतां जामातुरुद्धरिष्यामि ॥ १२ ॥**

प्रजापति दक्षकी एक कन्या अदिति नामसे प्रसिद्ध है। उनके गर्भसे ‘आदित्य’ नामक पुत्र हुआ। अदितिकुमार आदित्यको त्वष्टा प्रजापतिने अपनी संज्ञा नामकी कन्या ब्याह दी। आदित्य भी त्वष्टाकी रूपवती एवं मनोरमा कन्या संज्ञाको पाकर उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। संज्ञा अपने पतिके तापको न सह सकनेके कारण कुछ कालके बाद अपने पिताके घर चली गयी। उस कन्याको देखकर पिताने कहा—‘बेटी ! तुम्हारे स्वामी सूर्यदेव तुम्हारा स्नेहपूर्वक पालन करते हैं या तुम्हारे साथ कठोरतापूर्ण व्यवहार करते हैं ?’ पिताकी ऐसी बात सुनकर संज्ञा उनसे बोली—‘तात ! मैं स्वामीके प्रचण्ड तापसे जल गयी हूँ।’ यह सुन पिताने उससे कहा—‘बेटी ! तुम पतिके घर चली जाओ। पतिकी सेवा करना ही युवती स्त्रियोंका परम उत्तम धर्म है। मैं भी कुछ दिनोंके बाद आकर जामाता आदित्यदेवकी उष्णताको उनके शरीरसे कुछ कम कर दूँगा’ ॥ ७—१२ ॥

**इत्युक्ता सा च पुनर्भर्तृगृहं प्राप्य कतिपयदिवसान्मनुं यमीं यमं चापत्यत्रयमादित्याद् असूत। पुनस्तदुष्णतामसहन्ती छायां भर्तुरुपभोगाय स्वमङ्गादुत्पाद्य तत्र संस्थाप्य उत्तरकुरूनधिष्ठायाश्वी भूत्वा विचचार ॥ १३ ॥**

पिताके यों कहनेपर वह पुनः पतिके घर लौट आयी तथा कुछ दिनोंके बाद क्रमशः मनु, यम और यमी (यमुना)—इन तीन संतानोंको जन्म दिया। किंतु पुनः जब सूर्यका ताप उससे नहीं सहा गया, तब संज्ञाने अपनी बुद्धिके बलसे स्वामीके उपभोगके लिये अपनी छाया (प्रतिबिम्ब)-स्वरूपा एक स्त्रीको उत्पन्न किया तथा उसे ही वहाँ रखकर वह उत्तरकुरुदेशमें चली गयी और वहाँ घोड़ीका रूप धारण करके इधर-उधर विचरने लगी ॥ १३ ॥

**आदित्योऽपि संज्ञेयमिति मत्वा तस्यां जायां पुनरपत्यत्रयमुत्पादयामास ॥ १४ ॥ मनुं शनैश्चरं तपतीं च। स्वेष्वपत्येषु पक्षपातेन वर्तन्तीं छायां दृष्ट्वा यमः स्वपितरमाह नेयमस्मन्मातेति ॥ १५ ॥ पितापि तच्छ्रुत्वा भार्यां प्राह। सर्वेष्वपत्येषु सममेव वर्तस्वेति ॥ १६ ॥ पुनरपि स्वेष्वपत्येषु स्नेहात्प्रवर्तन्तीं छायां दृष्ट्वा यमो यमी च तां बहुविधमपीडयताम्। आदित्यसंनिधाने तूष्णीं बभूवतुः ॥ १७ ॥ ततश्छाया तयोः शापं दत्तवती। यम त्वं प्रेतराजो भव यमि त्वं यमुना नाम नदी भवेति ॥ १८ ॥ ततः क्रोधादादित्योऽपि छायापुत्रयोः शापं दत्तवान् हे पुत्र शनैश्चर त्वं ग्रहो भव क्रूरदृष्टिर्मन्दगामी च पापग्रहस्त्वं च ॥ १९ ॥ पुत्रि तपती नाम नदी भवेति। अथादित्यो ध्यानमास्थाय संज्ञा क्व स्थितेति विचारयामास ॥ २० ॥**

अदितिनन्दन सूर्यने भी उसे संज्ञा ही मानकर उस अपनी जाया (भार्या) रूपधारिणी छायाके गर्भसे पुनः मनु, शनैश्चर तथा तपती—इन तीन संतानोंको उत्पन्न किया। छायाको अपनी संतानोंके प्रति पक्षपातपूर्ण बर्ताव करते देखकर यमने अपने पितासे कहा—‘तात ! यह हमलोगोंकी माता नहीं है।’ पिताने भी जब यह सुना, तब उस भार्यासे

कहा—“सब संतानोंके प्रति समानरूपसे ही बर्ताव करो।” फिर भी छायाको अपनी ही संतानोंके प्रति अधिक स्नेहपूर्ण बर्ताव करते देख यम और यमीने उसे बहुत कुछ बुरा-भला कहा, किंतु जब सूर्यदेव पास आये, तब वे दोनों चुप हो रहे। यह देख छायाने उन दोनोंको शाप देते हुए कहा—“यम! तुम प्रेतोंके राजा बनो और यमी! तू ‘यमुना’ नामक नदी हो जा।” छायाका यह क्रूरतापूर्ण बर्ताव देखकर भगवान् सूर्य भी कुपित हो उठे और उसके पुत्रोंको शाप देते हुए बोले—“बेटा शनैश्चर! तू क्रूरतापूर्ण दृष्टिसे देखनेवाला मन्दगामी ग्रह हो जा। तेरी गणना पापग्रहोंमें होगी। बेटी तपती! तू भी ‘तपती’ नामकी नदी हो जा।” इसके बाद भगवान् सूर्य ध्यानस्थ होकर विचार करने लगे कि ‘संज्ञा’ कहाँ है॥ १४—२०॥

**स दृष्ट्वोत्तरकुरुषु ध्यानचक्षुषाश्वीभूय विचरन्तीम्। स्वयं चाश्वरूपेण तत्र गत्वा तया सह सम्पर्कं कृतवान्॥ २१॥ तस्यामेवादित्यादश्विनावुत्पन्नौ तयोरतिशयवपुषोः साक्षात् प्रजापतिरागत्य देवत्वं यज्ञभागत्वं मुख्यं च देवानां भिषजत्वं दत्त्वा जगाम। आदित्यश्चाश्वरूपं विहाय स्वभार्यां संज्ञां त्वाष्ट्रीं स्वरूपधारिणीं नीत्वा स्वरूपमास्थाय दिवं जगाम॥ २२॥ विश्वकर्मा चागत्य आदित्यं नामभिः स्तुत्वा तदतिशयोष्णतांशतामपशातयामास॥ २३॥**

उन्होंने ध्यान-नेत्रसे देखा, संज्ञा उत्तरकुरुमें ‘अश्वा’-का रूप धारण करके विचर रही है। तब वे स्वयं भी अश्वका रूप धारण करके वहाँ गये। जाकर उन्होंने उसके साथ समागम किया। उस अश्वारूपधारिणी संज्ञाके ही गर्भसे, सूर्यके वीर्यसे दोनों ‘अश्विनीकुमार’ उत्पन्न हुए। उनके शरीर सब देवताओंसे अधिक सुन्दर थे। साक्षात् ब्रह्माजीने वहाँ पधारकर उन दोनों कुमारोंको देवत्व तथा यज्ञोंमें भाग प्राप्त करनेका अधिकार प्रदान किया। साथ ही उन्हें देवताओंका प्रधान वैद्य बना दिया। इसके बाद ब्रह्माजी चले गये। फिर सूर्यदेवने अश्वका रूप त्यागकर अपना स्वरूप धारण कर लिया। त्वष्टा प्रजापतिकी पुत्री संज्ञा भी अश्वाका रूप छोड़कर अपने साक्षात् स्वरूपमें प्रकट हो गयी। उस अवस्थामें सूर्यदेव त्वष्टाकी पुत्री अपनी पत्नी संज्ञाको आदित्यलोकमें ले गये। तदनन्तर विश्वकर्मा सूर्यके पास आये। उन्होंने विविध नामोंद्वारा उनका स्तवन किया और उनकी अनुमतिसे ही उनके श्रीअङ्गोंकी अतिशय उष्णताके अंशको कुछ शान्त कर दिया॥ २१—२३॥

**एवं वः कथिता विप्रा अश्विनोत्पत्तिरुत्तमा।**
**पुण्या पवित्रा पापघ्नी भरद्वाज महामते॥ २४॥**

**आदित्यपुत्रौ भिषजौ सुराणां**
**दिव्येन रूपेण विराजमानौ।**
**श्रुत्वा तयोर्जन्म नरः पृथिव्यां**
**भवेत् सुरूपो दिवि मोदते च॥ २५॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे अश्विनोरुत्पत्तिर्नाम*
*अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥*

महामते भरद्वाज तथा अन्य ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे दोनों अश्विनीकुमारोंके जन्मकी उत्तम, पुण्यमयी, पवित्र एवं पापनाशक कथा कह सुनायी। सूर्यके वे दोनों पुत्र देवताओंके वैद्य हैं। अपने दिव्यरूपसे सदा प्रकाशित होते रहते हैं। उन दोनोंके जन्मकी कथा सुनकर मनुष्य इस भूतलपर सुन्दर रूपसे सुशोभित होता है और अन्तमें स्वर्गलोकमें जाकर वहाँ आनन्दका अनुभव करता है॥ २४-२५॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें ‘दोनों अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति’ नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

◆

## उन्नीसवाँ अध्याय

### विश्वकर्माद्वारा १०८ नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तवन

भरद्वाज उवाच

**यैः स्तुतो नामभिस्तेन सविता विश्वकर्मणा।**
**तान्यहं श्रोतुमिच्छामि वद सूत विवस्वतः॥ १॥**

भरद्वाज बोले—सूतजी! विश्वकर्माने जिन नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका स्तवन किया था, उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ। आप सूर्यदेवके उन नामोंका वर्णन करें॥ १॥

सूत उवाच

तानि मे शृणु नामानि यैः स्तुतो विश्वकर्मणा।
सविता तानि वक्ष्यामि सर्वपापहराणि ते ॥ २ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन् ! विश्वकर्माने जिन नामोंद्वारा भगवान् सविताका स्तवन किया था, उन सर्वपापहारी नामोंको तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्ड आशुगः॥ ३ ॥

१. आदित्यः—अदितिके पुत्र, २. सविता—जगत्‌के उत्पादक, ३. सूर्यः—सम्पत्ति एवं प्रकाशके स्रष्टा, ४. खगः—आकाशमें विचरनेवाले, ५. पूषा—सबका पोषण करनेवाले, ६. गभस्तिमान्—सहस्रों किरणोंसे युक्त, ७. तिमिरोन्मथनः—अन्धकारनाशक, ८. शम्भुः—कल्याणकारी, ९. त्वष्टा—विश्वकर्मा अथवा विश्वरूपी शिल्पके निर्माता, १०. मार्तण्डः—मृत-अण्डसे प्रकट, ११. आशुगः—शीघ्रगामी ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः कपिलस्तपनो भास्करो रविः ।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शम्भुस्तिमिरनाशनः ॥ ४ ॥

१२. हिरण्यगर्भः—ब्रह्मा, १३. कपिलः—कपिलवर्णवाले अथवा कपिलमुनिस्वरूप, १४. तपनः—तपने या ताप देनेवाले, १५. भास्करः—प्रकाशक, १६. रविः—रव—वेदत्रयीकी ध्वनिसे युक्त अथवा भूतलके रसोंका आदान ( आकर्षण ) करनेवाले, १७. अग्निगर्भः—अपने भीतर अग्निमय तेजको धारण करनेवाले, १८. अदितेः पुत्रः—अदितिदेवीके पुत्र, शम्भुः—कल्याणके उत्पादक, १९. तिमिरनाशनः—अन्धकारका नाश करनेवाले ॥ ४ ॥

अंशुमानंशुमाली च तमोघ्नस्तेजसां निधिः ।
आतपी मण्डली मृत्युः कपिलः सर्वतापनः ॥ ५ ॥

२०. अंशुमान्—अनन्त किरणोंसे प्रकाशमान, २१. अंशुमाली—किरणमालामण्डित, २२. तमोघ्नः—अन्धकारनाशक, २३. तेजसां निधिः—तेज अथवा प्रकाशके भण्डार, २४. आतपी—आतप या घाम प्रकट करनेवाले, २५. मण्डली—अपने मण्डल या बिम्बसे युक्त, २६. मृत्युः—मृत्युस्वरूप अथवा मृत्युके अधिष्ठाता यमको जन्म देनेवाले, २७. कपिलः सर्वतापनः—भूरी या सुनहरी किरणोंसे युक्त होकर सबको संताप देनेवाले ॥ ५ ॥

हरिर्विश्वो महातेजाः सर्वरत्नप्रभाकरः ।
अंशुमाली तिमिरहा ऋग्यजुस्सामभावितः ॥ ६ ॥

२८. हरिः—सूर्य अथवा पापहारी, २९. विश्वः—सर्वरूप, ३०. महातेजाः—महातेजस्वी, ३१. सर्वरत्नप्रभाकरः—सम्पूर्ण रत्नों तथा प्रभापुञ्जको प्रकट करनेवाले, ३२. अंशुमाली तिमिरहा—किरणोंकी माला धारण करके अन्धकारको दूर करनेवाले, ३३. ऋग्यजुस्सामभावितः—ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनोंके द्वारा भावित या प्रतिपादित ॥ ६ ॥

प्राणाविष्करणो मित्रः सुप्रदीपो मनोजवः ।
यज्ञेशो गोपतिः श्रीमान् भूतज्ञः क्लेशनाशनः ॥ ७ ॥

३४. प्राणाविष्करणः—प्राणोंके आधारभूत अन्न आदिकी उत्पत्ति और जलकी वृष्टि करनेवाले, ३५. मित्रः—'मित्र' नामक आदित्य अथवा सबके सुहृद्, ३६. सुप्रदीपः—भलीभाँति प्रकाशित होनेवाले अथवा सर्वत्र उत्तम प्रकाश बिखेरनेवाले, ३७. मनोजवः—मनके समान या उससे भी अधिक तीव्र वेगवाले, ३८. यज्ञेशः—यज्ञोंके स्वामी नारायणस्वरूप, ३९. गोपतिः—किरणोंके स्वामी अथवा भूमि एवं गौओंके पालक, ४०. श्रीमान्—कान्तिमान्, ४१. भूतज्ञः—सम्पूर्ण भूतोंके ज्ञाता अथवा भूतकालकी बातोंको भी जाननेवाले, ४२. क्लेशनाशनः—सब प्रकारके क्लेशोंका नाश करनेवाले ॥ ७ ॥

अमित्रहा शिवो हंसो नायकः प्रियदर्शनः ।
शुद्धो विरोचनः केशी सहस्रांशुः प्रतर्दनः ॥ ८ ॥

४३. अमित्रहा—शत्रुनाशक, ४४. शिवः—कल्याणस्वरूप, ४५. हंसः—आकाशरूपी सरोवरमें विचरनेवाले एकमात्र राजहंस अथवा सबके आत्मा, ४६. नायकः—नेता अथवा नियन्ता, ४७. प्रियदर्शनः—सबका प्रिय देखने या चाहनेवाले अथवा जिनका दर्शन प्राणिमात्रको प्रिय है, ऐसे, ४८. शुद्धः—मलिनतासे रहित, ४९. विरोचनः—अत्यन्त प्रकाशमान, ५०. केशी—किरणरूपी केशोंसे युक्त, ५१. सहस्रांशुः—असंख्य किरणोंके पुञ्ज, ५२. प्रतर्दनः—अन्धकार आदिका विशेषरूपसे संहार करनेवाले ॥ ८ ॥

धर्मरश्मिः पतंगश्च विशालो विश्वसंस्तुतः ।
दुर्विज्ञेयगतिः शूरस्तेजोराशिर्महायशाः ॥ ९ ॥

५३. अंशुमाली—चाँदनी किरणोंसे युक्त अथवा सबके प्रकाशक, ५४. पतङ्गः—किरणरूपी पंखोंसे उड़नेवाले आकाशचारी पक्षिरूप, ५५. विराट्—महान् आकारवाले अथवा विविधरूपसे शोभायमान, ५६. विश्वसंस्तुतः—सम्पूर्ण जगत् जिनकी स्तुति—गुणगान करता है, ऐसे, ५७. दुर्विज्ञेयगतिः—जिनके स्वरूपको जानना या समझना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ५८—शूरः—शौर्यशाली, ५९. तेजोराशिः—तेजके समूह, ६० महायशाः—महान् यशसे सम्पन्न ॥ ९ ॥

भ्राजिष्णुर्ज्योतिषामीशो विजिष्णुर्विश्वभावनः ।
प्रभविष्णुः प्रकाशात्मा ज्ञानराशिः प्रभाकरः ॥ १० ॥

६१. भ्राजिष्णुः—दीप्तिमान्, ६२. ज्योतिषामीशः—तेजोमय ग्रह-नक्षत्रोंके स्वामी, ६३. विजिष्णुः—विजयशील, ६४. विश्वभावनः—जगत्‌के उत्पादक, ६५. प्रभविष्णुः—प्रभावशाली अथवा जगत्‌की उत्पत्तिके कारण, ६६. प्रकाशात्मा—प्रकाशस्वरूप, ६७ ज्ञानराशिः—ज्ञाननिधि, ६८. प्रभाकरः—उत्कृष्ट प्रकाश फैलानेवाले ॥ १० ॥

आदित्यो विश्वदृग् यज्ञकर्ता नेता यशस्करः ।
विमलो वीर्यवानीशो योगज्ञो योगभावनः ॥ ११ ॥

६९. आदित्यो विश्वदृक्—आदित्यरूपसे जगत्‌के द्रष्टा या साक्षी अथवा सम्पूर्ण संसारके नेत्ररूप, ७०. यज्ञकर्ता—जगत्‌को जल एवं जीवन प्रदान करके दानयज्ञ सम्पन्न करनेवाले, ७१. नेता—अन्धकारका नयन—अपसारण कर देनेवाले, ७२. यशस्करः—यशका विस्तार करनेवाले, ७३. विमलः—निर्मलस्वरूप, ७४. वीर्यवान्—शक्तिशाली, ७५. ईशः—ईश्वर, ७६. योगज्ञः—भगवान् श्रीहरिसे कर्मयोगका ज्ञान प्राप्त करके उसका मनुको उपदेश करनेवाले*, ७७. योगभावनः—योगको प्रकट करनेवाले ॥ ११ ॥

अमृतात्मा शिवो नित्यो वरेण्यो वरदः प्रभुः ।
धनदः प्राणदः श्रेष्ठः कामदः कामरूपधृक् ॥ १२ ॥

७८. अमृतात्मा शिवः—अमृतस्वरूप शिव, ७९. नित्यः—सनातन, ८०. वरेण्यः—वरणीय—आश्रय लेनेयोग्य, ८१. वरदः—उपासकको मनोवाञ्छित वर देनेवाले, ८२. प्रभुः—सब कुछ करनेमें समर्थ, ८३. धनदः—धनदान करनेवाले, ८४. प्राणदः—प्राणदाता, ८५. श्रेष्ठः—सबसे उत्कृष्ट, ८६. कामदः—मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले, ८७. कामरूपधृक्—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले ॥ १२ ॥

तरणिः शाश्वतः शास्ता शास्त्रज्ञस्तपनः शयः ।
वेदगर्भो विभुर्वीरः शान्तः सावित्रिवल्लभः ॥ १३ ॥

८८. तरणिः—संसारसागरसे तारनेवाले, ८९. शाश्वतः—सनातन पुरुष, ९०. शास्ता—शासक या उपदेशक, ९१. शास्त्रज्ञः—समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता, तपनः—तपनेवाले या ताप देनेवाले, ९२. शयः—सबके अधिष्ठान या आश्रय, ९३. वेदगर्भः—शुक्लयजुर्वेदको प्रकट करनेवाले, ९४. विभुः—सर्वत्र व्यापक, ९५. वीरः—शूरवीर, ९६. शान्तः—शमयुक्त, ९७. सावित्रिवल्लभः—गायत्री मन्त्रके अधिदेवता ॥ १३ ॥

ध्येयो विश्वेश्वरो भर्ता लोकनाथो महेश्वरः ।
महेन्द्रो वरुणो धाता विष्णुरग्निर्दिवाकरः ॥ १४ ॥

९८. ध्येयः—ध्यान करनेयोग्य, ९९. विश्वेश्वरः—सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर, १००. भर्ता—सबका भरण-पोषण करनेवाले, १०१. लोकनाथः—संसारके रक्षक, १०२. महेश्वरः—परमेश्वर, १०३. महेन्द्रः—देवराज इन्द्रस्वरूप, १०४. वरुणः—पश्चिम दिशाके अधिपति 'वरुण' नामक आदित्य, १०५. धाता—जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले अथवा 'धाता' नामक आदित्य, १०६. विष्णुः—व्यापक अथवा 'विष्णु' नामक आदित्य, १०७. अग्निः—अग्निस्वरूप, १०८. दिवाकरः—रात्रिका अंधकार दूर करके प्रकाशपूर्ण दिनको प्रकट करनेवाले ॥ १४ ॥

एतैस्तु नामभिः सूर्यः स्तुतस्तेन महात्मना ।
उवाच विश्वकर्माणं प्रसन्नो भगवान् रविः ॥ १५ ॥

उन महात्मा विश्वकर्माने उपर्युक्त नामोंद्वारा भगवान् सूर्यका स्तवन किया । इससे भगवान् सूर्यको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे उन विश्वकर्मासे बोले ॥ १५ ॥

भ्रमिमारोप्य मामत्र मण्डलं मम शातय ।
त्वद्बुद्धिस्थं मया ज्ञातमेवमौष्ण्यं शमं व्रजेत् ॥ १६ ॥

प्रजापते ! आपकी बुद्धिमें जो बात है—आप जिस

---

* जैसा कि गीतामें कहा है—'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् । विवस्वान् मनवे प्राह ··· ··· ॥'

उद्देश्यको लेकर आये हैं, वह मुझे ज्ञात है । अतः आप मुझे शाणचक्रपर चढ़ाकर मेरे मण्डलको छाँट दें; इससे मेरी उष्णता कुछ कम हो जायगी ॥ १६ ॥

**इत्युक्तो विश्वकर्मा च तथा स कृतवान् द्विज ।**
**शान्तोष्णः सविता तस्य दुहितुर्विश्वकर्मणः ॥१७॥**
**संज्ञायाश्चाभवद्विप्र भानुस्त्वष्टारमब्रवीत् ।**

ब्रह्मन् ! भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्माने वैसा ही किया । विप्रवर ! उस दिनसे प्रकाशस्वरूप सविता विश्वकर्माकी बेटी संज्ञाके लिये शान्त हो गये तथा उनकी उष्णता कम हो गयी । इसके बाद वे त्वष्टासे बोले ॥ १७½ ॥

**त्वया यस्मात् स्तुतोऽहं वै नाम्नामष्टशतेन च ॥१८॥**
**वरं वृणीष्व तस्मात् त्वं वरदोऽहं तवानघ ।**

अनघ ! चूँकि आपने एक सौ आठ नामोंके द्वारा मेरी स्तुति की है, इसलिये मैं प्रसन्न होकर आपको वर देनेके लिये उद्यत हूँ । कोई वर माँगिये ॥ १८½ ॥

**इत्युक्तो भानुना सोऽथ विश्वकर्माब्रवीदिदम् ॥१९॥**
**वरदो यदि मे देव वरमेतं प्रयच्छ मे ।**
**एतैस्तु नामभिर्यस्त्वां नरः स्तोष्यति नित्यशः ॥२०॥**
**तस्य पापक्षयं देव कुरु भक्तस्य भास्कर ॥२१॥**

भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्मा बोले—देव ! यदि आप मुझे वर देनेको उद्यत हैं तो यह मुझे वर प्रदान कीजिये—'देव भास्कर ! जो मनुष्य इन नामोंके द्वारा प्रतिदिन आपकी स्तुति करे, उस भक्तपुरुषके सारे पापोंका आप नाश कर दें' ॥ १९–२१ ॥

**तेनैवमुक्तो दिनकृत्तथेति**
**त्वष्टारमुक्त्वा विरराम भास्करः ।**
**संज्ञां विशङ्कां रविमण्डलस्थितां**
**कृत्वा जगामाथ रविं प्रसाद्य ॥२२॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥*

विश्वकर्माके यों कहनेपर दिन प्रकट करनेवाले भगवान् भास्कर उनसे 'बहुत अच्छा !' कहकर चुप हो गये, तत्पश्चात् सूर्यमण्डलमें निवास करनेवाली संज्ञाको निर्भय करके, सूर्यदेवको प्रसन्नकर विश्वकर्मा अपने स्थानको चले गये ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

# बीसवाँ अध्याय

## मारुतोंकी उत्पत्ति

**साम्प्रतं मारुतोत्पत्तिं वक्ष्यामि द्विजसत्तम ।**
**पुरा देवासुरे युद्धे देवैरिन्द्रादिभिर्दितेः ॥ १ ॥**
**पुत्राः पराभूता दितिश्च विनष्टपुत्रा महेन्द्रदर्पहरं पुत्रमिच्छन्ती कश्यपमृषिं स्वपतिमाराधयामास ॥ २ ॥ स च तपसा संतुष्टो गर्भाधानं चकार तस्याम् । पुनस्तामेवमुक्तवान् ॥ ३ ॥ यदि त्वं शुचिः सती शरच्छतमिमं गर्भं धारयिष्यसि ततश्च महेन्द्रदर्पहन्ता पुत्रो भविष्यति । इत्येवमुक्ता सा च तं गर्भं धारयामास ॥ ४ ॥**

श्रीसूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं मारुतोंकी उत्पत्तिका वर्णन करूँगा । पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें इन्द्र आदि देवताओंद्वारा दितिके पुत्र दैत्यगण पराजित हो गये थे । उस समय दिति, जिसके पुत्र नष्ट हो गये थे, महेन्द्रके अभिमानको चूर्ण करनेवाले पुत्रकी इच्छा मनमें लेकर अपने पति कश्यप ऋषिकी आराधना करने लगी । तपस्यासे संतुष्ट होकर ऋषिने दितिके भीतर गर्भका आधान किया । फिर वे उससे इस प्रकार बोले—'यदि तुम पवित्र रहती हुई सौ वर्षोंतक इस गर्भको धारण कर सकोगी तो उसके बाद इन्द्रका दर्प चूर्ण करनेवाला पुत्र तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होगा ।' कश्यपजीके यों कहनेपर दितिने उस गर्भको धारण किया ॥ १–४ ॥

**इन्द्रोऽपि तज्ज्ञात्वा वृद्धब्राह्मणरूपेणागत्य दितिपार्श्वं स्थितवान् । किंचिदूनपूर्णे वर्षशते पादशौचमकृत्वा दितिः शयनमारुह्य निद्रां गता ॥५॥**

सोऽपि लब्धावसरो वज्रपाणिस्तत्कुक्षिं प्रविश्य वज्रेण तं गर्भं सप्तधा चिच्छेद। सोऽपि तेन प्रच्छिद्यमानो रुरोद ॥६॥ मा रोदीरिति वदन्निन्द्रस्तान् सप्तैकैकं चिच्छेद ॥७॥ सप्तधा ते सर्वे मरुतो यतो जातमात्रान्मा रोदीरित्युक्तवान्। महेन्द्रस्य सहाया अमी मरुतो नाम देवा बभूवुः ॥ ८ ॥

इन्द्रको भी जब यह समाचार ज्ञात हुआ, तब वे बूढ़े ब्राह्मणके वेषमें दितिके पास आये और रहने लगे। जब सौ वर्ष पूर्ण होनेमें कुछ ही कमी रह गयी, तब एक दिन दिति ( भोजनके पश्चात् ) पैर धोये बिना ही शय्यापर आरूढ़ हो, सो गयी। इधर इन्द्रने भी अवसर प्राप्त हो जानेसे वज्र हाथमें ले, दितिके उदरमें प्रविष्ट हो, वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये। उनके द्वारा काटे जानेपर वह गर्भ रोने लगा। तब इन्द्रने 'मा रोदीः' ( मत रोओ )—यों कहते हुए पुनः एक-एकके सात-सात टुकड़े कर डाले। इस तरह सात-सात टुकड़ोंमें बँटे हुए वे सातों खण्ड 'मारुत' नामसे विख्यात हुए; क्योंकि जन्म होते ही इन्द्रने उन्हें 'मा रोदीः'—इस प्रकार कहा था। ये सभी इन्द्रके सहायक 'मरुत्' नामक देवता हुए ॥५-८॥

एवं मुने सृष्टिरियं तवेरिता
देवासुराणां नरनागरक्षसाम् ।
वियन्मुखानामपि यः पठेदिदं
शृण्वंश्च भक्त्या हरिलोकमेति सः ॥ ९ ॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥*

मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे देवता, असुर, नर, नाग, राक्षस और आकाश आदि भूतोंकी सृष्टिका वर्णन किया। जो इसका भक्तिपूर्वक पाठ अथवा श्रवण करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मरुतोंकी उत्पत्ति' नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

## इक्कीसवाँ अध्याय

### सूर्यवंशका वर्णन

भरद्वाज उवाच

अनुसर्गश्च सर्गश्च त्वया चित्रा कथेरिता।
वंशमन्वन्तरे ब्रूहि वंशानुचरितं च मे ॥ १ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! आपने 'सर्ग' और 'अनुसर्ग'का वर्णन किया; विचित्र कथाएँ सुनायीं; अब मुझसे राजाओंके वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरितका वर्णन करें ॥१॥

सूत उवाच

राज्ञां वंशः पुराणेषु विस्तरेण प्रकीर्तितः।
संक्षेपात्कथयिष्यामि वंशमन्वन्तराणि ते ॥ २ ॥
वंशानुचरितं चैव शृणु विप्र महामते।
शृण्वन्तु मुनयश्चेमे श्रोतुमागत्य ये स्थिताः ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—पुराणोंमें राजाओंके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है; यहाँ मैं राजाओंके वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरितका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। महामते विप्रवर! इसे आप तथा अन्य मुनि भी, जो कथाश्रवणके लिये यहाँ आकर ठहरे हुए हैं, सुनें ॥ २-३ ॥

आदौ तावद्ब्रह्मा ब्रह्मणो मरीचिः। मरीचेः कश्यपः कश्यपादादित्यः ॥ ४ ॥ आदित्यान्मनुः। मनोरिक्ष्वाकुः, इक्ष्वाकोर्विकुक्षिः। विकुक्षेर्द्योतः, द्योताद्वेनो वेनात्पृथुः पृथोः पृथाश्वः ॥ ५ ॥ पृथाश्वादसंख्याताश्वः। असंख्याताश्वान्मांधाता ॥ ६ ॥ मांधातुः पुरुकुत्सः पुरुकुत्साद्दृषदो दृषदादभिशम्भुः ॥ ७ ॥ अभिशम्भोर्दारुणो दारुणात्सगरः ॥ ८ ॥ सगराद्धर्यश्वो हर्यश्वाद्धारीतः ॥ ९ ॥ हारीताद्रोहिताश्वो रोहिताश्वादंशुमान्। अंशुमतो भगीरथः ॥ १० ॥ भगीरथात् सौदासः सौदासाच्छत्रुंदमः ॥ ११ ॥ शत्रुंदमादनरण्यः, अनरण्याद्दीर्घबाहुः, दीर्घबाहोरजः ॥१२॥ अजाद्दशरथः। दशरथाद्रामः, रामाल्लवः, लवात् पद्मः ॥१३॥ पद्मादनुपर्णः। अनुपर्णादस्त्रपाणिः

॥ १४ ॥ वस्त्रपाणेः शुद्धोदनः । शुद्धोदनाद्बुधः । बुधादादित्यवंशो निवर्तते ॥ १५ ॥

सबसे पहले ब्रह्माजी प्रकट हुए; उनसे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य, सूर्यसे मनु, मनुसे इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि, विकुक्षिसे द्योत, द्योतसे वेन, वेनसे पृथु और पृथुसे पृथाश्वकी उत्पत्ति हुई। पृथाश्वसे असंख्याताश्व, असंख्याताश्वसे मांधाता, मांधातासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे दृषद, दृषदसे अभिशम्भु, अभिशम्भुसे दारुण, दारुणसे सगर, सगरसे हर्यश्व, हर्यश्वसे हारीत, हारीतसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे अंशुमान् तथा अंशुमान्से भगीरथ उत्पन्न हुए। भगीरथसे सौदास, सौदाससे शत्रुंदम, शत्रुंदमसे अनरण्य, अनरण्यसे दीर्घबाहु, दीर्घबाहुसे अज, अजसे दशरथ, दशरथसे श्रीराम, श्रीरामसे लव, लवसे पद्म, पद्मसे अनुपर्ण और अनुपर्णसे वस्त्रपाणिका जन्म हुआ। वस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे बुध ( बुद्ध ) की उत्पत्ति हुई। बुधसे सूर्यवंश समाप्त हो जाता है ॥ ४–१५ ॥

सूर्यवंशभवास्ते ते प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।
यैरियं पृथिवी भुक्ता धर्मतः क्षत्रियैः पुरा ॥१६॥
सूर्यस्य वंशः कथितो मया मुने
समुद्भवा यत्र नरेश्वराः पुरा ।
मयोच्यमानाञ्छशिनः समाहितः
शृणुष्व वंशेऽथ नृपाननुक्रमात् ॥१७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूर्यवंशकथनं
नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जो क्षत्रिय हैं, उनमेंसे मुख्य-मुख्य लोगोंका यहाँ वर्णन किया गया है, जिन्होंने पूर्वकालमें इस पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया है। मुने! यह मैंने सूर्यवंशका वर्णन किया है, जिसमें प्राचीनकालमें अनेकानेक नरेश हो गये हैं। अब मेरे द्वारा बतलाये जानेवाले चन्द्रवंशीय परम उत्तम राजाओंका वर्णन आपलोग सुनें ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सूर्यवंशका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

## बाईसवाँ अध्याय

### चन्द्रवंशका वर्णन

सूत उवाच

सोमवंशं शृणुष्वाथ भरद्वाज महामुने ।
पुराणे विस्तरेणोक्तं संक्षेपात् कथयेऽधुना ॥ १ ॥

सूतजी बोले—महामुने भरद्वाज! अब चन्द्रवंशका वर्णन सुनो। (अन्य) पुराणोंमें इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, अतः इस समय मैं यहाँ संक्षेपसे इसका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

आदौ तावद्ब्रह्मा । ब्रह्मणो मानसः पुत्रो मरीचिर्मरीचेर्दाक्षायण्यां कश्यपः ॥ २ ॥ कश्यपाददितेरादित्यः । आदित्यात्सुवर्चलायां मनुः ॥३॥ मनोः सुरूपायां सोमः । सोमाद्रोहिण्यां बुधः । बुधादिलायां पुरूरवाः ॥ ४ ॥ पुरूरवस आयुः । आयो रूपवत्यां नहुषः ॥ ५ ॥ नहुषात् पितृवत्यां ययातिः । ययातेः शर्मिष्ठायां पूरुः ॥ ६ ॥ पूरोर्वंशदायां सम्पातिः । सम्पातेर्भानुदत्तायां सार्वभौमः । सार्वभौमस्य वैदेह्यां भोजः ॥ ७ ॥ भोजस्य लिङ्गायां दुष्यन्तः । दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां भरतः ॥ ८ ॥ भरतस्य नन्दायामजमीढः । अजमीढस्य सुदेव्यां पृश्निः । पृश्नेरुग्रसेनायां प्रसरः । प्रसरस्य बहुरूपायां शंतनुः । शंतनोर्योजनगन्धायां विचित्रवीर्यः । विचित्रवीर्यस्याम्बिकायां पाण्डुः ॥ ९ ॥ पाण्डोः कुन्तिदेव्यामर्जुनः । अर्जुनात् सुभद्रायामभिमन्युः ॥ १० ॥ अभिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः । परीक्षितस्य मातृवत्यां जनमेजयः । जनमेजयस्य पुष्पवत्यां शतानीकः ॥ ११ ॥ शतानीकस्य पुष्पवत्यां सहस्रानीकः । सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः । तस्य वासवदत्तायां

**नरवाहनः ॥ १२ ॥ नरवाहनस्याश्वमेधायां क्षेमकः । क्षेमकान्ताः पाण्डवाः सोमवंशो निवर्तते ॥ १३ ॥**

सर्वप्रथम ब्रह्माजी हुए, उनके मानसपुत्र मरीचि हुए, मरीचिसे दाक्षायणीके गर्भसे कश्यपजी उत्पन्न हुए । कश्यपसे अदितिके गर्भसे सूर्यका जन्म हुआ । सूर्यसे सुवर्चला ( संज्ञा ) के गर्भसे मनुकी उत्पत्ति हुई । मनुके द्वारा सुरूपाके गर्भसे सोम और सोमके द्वारा रोहिणीके गर्भसे बुधका जन्म हुआ तथा बुधके द्वारा इलाके गर्भसे राजा पुरूरवा उत्पन्न हुए । पुरूरवासे आयुका जन्म हुआ, आयुद्वारा रूपवतीके गर्भसे नहुष हुए । नहुषके द्वारा पितृवतीके गर्भसे ययाति हुए और ययातिसे शर्मिष्ठाके गर्भसे पूरुका जन्म हुआ । पूरुके द्वारा वंशदाके गर्भसे सम्पाति और उससे भानुदत्ताके गर्भसे सार्वभौम हुआ । सार्वभौमसे वैदेहीके गर्भसे भोजका जन्म हुआ । भोजके लिङ्गाके गर्भसे दुष्यन्त और दुष्यन्तके शकुन्तलासे भरत हुआ । भरतके नन्दासे अजमीढ नामक पुत्र हुआ, अजमीढके सुदेवीके गर्भसे पृश्नि हुआ तथा पृश्निके उग्रसेनाके गर्भसे प्रसरका आविर्भाव हुआ । प्रसरके बहुरूपाके गर्भसे शंतनु हुए, शंतनुसे योजनगन्धाने विचित्रवीर्यको जन्म दिया । विचित्रवीर्यके अम्बिकाके गर्भसे पाण्डुका जन्म हुआ । पाण्डुसे कुन्तीदेवीके गर्भसे अर्जुन हुआ, अर्जुनसे सुभद्राने अभिमन्युको उत्पन्न किया । अभिमन्युसे उत्तराके गर्भसे परीक्षित हुआ, परीक्षितके मातृवतीसे जनमेजय उत्पन्न हुआ और जनमेजयके पुण्यवतीके गर्भसे शतानीककी उत्पत्ति हुई । शतानीकके पुष्पवतीसे सहस्रानीक हुआ, सहस्रानीकसे मृगवतीसे उदयन उत्पन्न हुआ और उदयनके वासवदत्ताके गर्भसे नरवाहन हुआ । नरवाहनके अश्वमेधासे क्षेमक हुआ । यह क्षेमक ही पाण्डववंशका अन्तिम राजा है, इसके बाद सोमवंश निवृत्त हो जाता है ॥ २–१३ ॥

**य इदं शृणुयान्नित्यं राजवंशमनुत्तमम् ।**
**सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥१४॥**
**यश्चेदं पठते नित्यं श्राद्धे वा श्रावयेत्पितॄन् ।**
**वंशानुकीर्तनं पुण्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥१५॥**
**राज्ञां हि सोमस्य मया तवेरिता**
**वंशानुकीर्तिर्द्विज पापनाशनी ।**
**शृणुष्व विप्रेन्द्र मयोच्यमानं**
**मन्वन्तरं चापि चतुर्दशाख्यम् ॥१६॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सोमवंशानुकीर्तनं नाम*
*द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥*

जो पुरुष इस उत्तम राजवंशका सदा श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त एवं विशुद्धचित्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है । जो इस पवित्र वंश-वर्णनको प्रतिदिन स्वयं पढ़ता अथवा श्राद्धकालमें पितृगणोंको सुनाता, उसके पितरोंको दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है । द्विज ! यह मैंने आपसे सोमवंशी राजाओंका पापनाशक वंशानुकीर्तन सुनाया । विप्रवर ! अब मेरे द्वारा बताये जानेवाले चौदह मन्वन्तरोंको सुनिये ॥ १४–१६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सोमवंशका वर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

* * *

# तेईसवाँ अध्याय

## चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन

सूत उवाच

**प्रथमं तावत्स्वायम्भुवं मन्वन्तरं तत्स्वरूपं कथितम् । सर्गादौ स्वारोचिषो नाम द्वितीयो मनुः ॥ १ ॥ तस्मिन् स्वारोचिषे मन्वन्तरे विपश्चिन्नाम देवेन्द्रः । पारावताः सतुषिता देवाः ॥ २ ॥ ऊर्जस्तम्बः सुप्राणो दन्तो निर्ऋषभो वरीयानीश्वरः सोमः सप्तर्षयश्चैवम् किम्पुरुषाद्याः स्वारोचिषस्य मनोः पुत्रा राजानो भवन्ति ॥ ३ ॥ तृतीय उत्तमो नाम मनुः । सुधामानः सत्याः शिवाः प्रतर्दना वंशवर्तिनश्च देवाः । पञ्चैते द्वादशगणाः ॥ ४ ॥ तेषां सुशान्तिरिन्द्रः ॥ ५ ॥ वन्द्याः सप्तर्षयोऽभवन् । अत्र परशुचित्राद्या मनोः सुताः ॥ ६ ॥**

**चतुर्थस्तामसो नाम मनुः । तत्र मन्वन्तरे सुराः पराः सत्याः सुधियश्च सप्तविंशतिका गणाः ॥ ७ ॥ तत्र भुशुण्डी नाम देवेन्द्रः । हिरण्यरोमा देवश्रीरूर्ध्वबाहुर्देवबाहुः सुधामा ह पर्जन्यो मुनिरित्येते सप्तर्षयः ॥ ८ ॥ ज्योतिर्धामा पृथुः काश्योऽग्निर्धनक इत्येते तामसस्य मनोः पुत्रा राजानः ॥ ९ ॥ पञ्चमो नाम रैवतो मनुः । तस्यान्तरेऽमिता निरता वैकुण्ठाः सुमेधस इत्येते देवगणाश्चतुर्दशका गणाः । असुरान्तको नाम देवेन्द्रः । सप्तकाद्या मनोः सुता राजानो वै बभूवुः ॥ १० ॥ शान्तः शान्तभयो विद्वांस्तपस्वी मेधावी सुतपाः सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ११ ॥ षष्ठश्चाक्षुषो नाम मनुः । पुरुशतद्युम्नप्रमुखास्तस्य सुता राजानः । सुशान्ता आप्याः प्रसूता भव्याः प्रथिताश्च महानुभावा लेखाद्याः पञ्चैते अष्टका गणास्तत्र देवाः ॥ १२ ॥ तेषामिन्द्रो मनोजवः । मेधाः सुमेधा विरजा हविष्मानुत्तमो मतिमान्नाम्ना सहिष्णुश्चैते सप्तर्षयः ॥ १३ ॥ सप्तमो वैवस्वतो मनुः साम्प्रतं वर्तते । तस्य पुत्रा इक्ष्वाकुप्रभृतयः क्षत्रिया भूभुजः ॥ १४ ॥ आदित्यविश्ववसुरुद्राद्या देवाः पुरंदरोऽत्र देवेन्द्रः ॥ १५ ॥ वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिर्जमदग्निर्गौतम विश्वामित्रभरद्वाजाः सप्तर्षयो भवन्ति ॥ १६ ॥**

सूतजी बोले—प्रथम 'स्वायम्भुव' मन्वन्तर है, उसका स्वरूप पहले बतलाया जा चुका है। सृष्टिके आदिकालमें 'स्वारोचिष' नामक द्वितीय मनु हुए थे । उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें 'विपश्चित्' नामक देवराज इन्द्र थे । उस समयके देवता 'पारावत' और 'तुषित' नामसे प्रसिद्ध थे । ऊर्जस्तम्ब, सुप्राण, दन्त, निर्ऋषभ, वरीयान्, ईश्वर और सोम—ये उस मन्वन्तरमें सप्तर्षि थे । इसी प्रकार 'स्वारोचिष' मनुके किम्पुरुष आदि पुत्र उन दिनों भूमण्डलके राजा थे । तृतीय मनु 'उत्तम' नामसे प्रसिद्ध हुए । उनके समयमें सुधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वंशवर्ती ( अथवा वशवर्ती )—ये पाँच देवगण थे । इनमेंसे प्रत्येक गणमें बारह-बारह व्यक्ति थे । इन देवताओंके इन्द्रका नाम था—'सुशान्ति'। उन दिनों जो सप्तर्षि थे, उनकी 'वन्द्य' संज्ञा थी । इस मन्वन्तरमें 'परशु' और 'चित्र' आदि मनुपुत्र राजा थे । चौथे मनुका नाम था—'तामस' । उनके मन्वन्तरमें देवताओंके पर, सत्य और सुधी नामवाले गण थे । इनमेंसे प्रत्येक गणमें सत्ताईस-सत्ताईस देवता थे । इन देवताओंके राजा इन्द्रका नाम था—'भुशुण्डी' । उस समय हिरण्यरोमा, देवश्री, ऊर्ध्वबाहु, देवबाहु, सुधामा, पर्जन्य और मुनि—ये सप्तर्षि थे । ज्योतिर्धाम, पृथु, काश्य, अग्नि और धनक—ये तामस मनुके पुत्र इस भूमण्डलके राजा थे । पाँचवें मनुका नाम था—'रैवत' । उनके मन्वन्तरमें अमित, निरत, वैकुण्ठ और सुमेधा—ये देवताओंके गण थे । इनमेंसे प्रत्येक गणमें चौदह-चौदह व्यक्ति थे । इन देवताओंके जो इन्द्र थे, उनका नाम था—'असुरान्तक' । उस समय सप्तक आदि मनुपुत्र भूतलके राजा थे । शान्त, शान्तमय, विद्वान्, तपस्वी, मेधावी और सुतपा—ये सप्तर्षि थे । छठे मनुका नाम 'चाक्षुष' था । उनके समयमें पुरु और शतद्युम्न आदि मनुपुत्र राजा थे । उस समय अत्यन्त शान्त रहनेवाले लेख, आप्य, प्रसूत, भव्य और प्रथित—ये पाँच महानुभाव देवगण थे । इन पाँचों गणोंमें आठ-आठ व्यक्ति थे । इनके इन्द्रका नाम 'मनोजव' था । उन दिनों मेधा, सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मतिमान् और सहिष्णु—ये सप्तर्षि थे । सातवें मनुको 'वैवस्वत' कहते हैं, जो इस समय वर्तमान हैं । इनके इक्ष्वाकु आदि क्षत्रियजातीय पुत्र भूपाल हुए । इस मन्वन्तरमें आदित्य, विश्ववसु और रुद्र आदि देवगण हैं और 'पुरंदर' इनके इन्द्र हैं । वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये इस मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं ॥ १—१६ ॥

**भविष्याणि मन्वन्तराणि कथ्यन्ते । तद्यथा आदित्यात् संज्ञायां जातो यो मनुः पूर्वोक्तश्छायायामुत्पन्नो मनुर्द्वितीयः स तु । पूर्वजस्य सावर्णस्य मन्वन्तरं सावर्णिकमष्टमं शृणु ॥ १७ ॥ मनुः सावर्णोऽष्टमो भविता तत्र सुतपाद्या देवगणास्तेषां बलिरिन्द्रो भविता ॥ १८ ॥ दीप्तिमान् गालवो नामा कृपद्रौणिव्यासऋष्यभृङ्गाश्च सप्तर्षयो भवितारः । विराजोर्वरीयनिर्मोकाद्याः सावर्णस्य मनोः सुता राजानो भविष्यन्ति ॥ १९ ॥ नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्भविता । धृतिः कीर्तिर्दीप्तिः केतुः पञ्चहस्तो निरामयः पृथुश्रवाद्या**

**दक्षसावर्णी राजानोऽस्य मनोः सुताः ॥ २० ॥ मरीचिगर्भाः सुधर्माणो हविष्मन्तस्तथ देवताः । तेषामिन्द्रोऽद्भुतः ॥ २१ ॥ सवनः कृतिमान् हव्यो वसुर्मेधातिथिर्ज्योतिष्मानित्येते सप्तर्षयः ॥ २२ ॥ दशमो ब्रह्म सावर्णिर्मनुर्भविता । विरुद्धादयस्तत्र देवाः । तेषां शान्तिरिन्द्रः । हविष्मान् सुकृतिः सत्यस्तपोमूर्तिर्नाभागः अप्रतिमोकः सप्तकेतुरित्येते सप्तर्षयः ॥ २३ ॥ सुक्षेत्र उत्तमो भूरिषेणादयो ब्रह्मसावर्णिपुत्रा राजानो भविष्यन्ति ॥ २४ ॥ एकादशे मन्वन्तरे धर्मसावर्णिको मनुः ॥ २५ ॥ सिंहसवनादयो देवगणाः । तेषां दिवस्पतिरिन्द्रः ॥ २६ ॥ निर्मोहस्तत्त्वदर्शी निकम्पो निरुत्साहो धृतिमान् रुच्य इत्येते सप्तर्षयः । चित्रसेनविचित्राद्या धर्मसावर्णिपुत्रा भूभुजो भविष्यन्ति ॥ २७ ॥ रुद्रसावर्णिर्भविता द्वादशो मनुः ॥२८॥ कृतधामा तत्रेन्द्रो हरिता रोहिताः सुमनसः सुकर्माणः सुतपाश्च देवाः ॥ २९ ॥ तपस्वी चारुतपास्तपोमूर्तिस्तपोरतिस्तपोधृतिर्ज्योतिस्तप इत्येते सप्तर्षयः ॥ ३० ॥ देववान् देवश्रेष्ठाद्यास्तस्य मनोः सुता भूपाला भविष्यन्ति ॥ ३१ ॥ त्रयोदशो रुचिर्नाम मनुः । स्रग्वी त्राणः सुधर्मा प्रभृतयो देवगणाः । तेषामिन्द्र ऋषभो नाम भविता ॥ ३२ ॥ निश्चितोऽग्नितेजा वपुष्मान् धृष्टो वारुणिर्हविष्मान् नहुषो भव्य इति सप्तर्षयः । सुधर्मा देवानीकादयस्तस्य मनोः सुताः पृथ्वीश्वरा भविष्यन्ति ॥ ३३ ॥ भौमश्चतुर्दशो मनुर्भविता । सुरुचिस्तत्रेन्द्रः । चक्षुष्मन्तः पवित्राः कनिष्ठाभा देवगणाः ॥ ३४ ॥ अग्निबाहुः शुचिः शुक्रमाधवशिवाभीमजितश्वासा इत्येते सप्तर्षयः । उरुगम्भीरब्रह्माद्यास्तस्य मनोः सुता राजानः ॥ ३५ ॥**

अब भविष्य मन्वन्तरोंका वर्णन किया जाता है—आदित्यसे संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए जो 'मनु' हैं, उनकी चर्चा पहले हो चुकी है और छायाके गर्भसे उत्पन्न दूसरे 'मनु' हैं। इनमें प्रथम उत्पन्न हुए जो 'सावर्ण' मनु हैं, उनके ही 'सावर्णिक' नामक आठवें मन्वन्तरका वर्णन सुनिये। 'सावर्ण' ही आठवें मनु होंगे। उस समय सुतप आदि देवगण होंगे और 'बलि' उनके इन्द्र होंगे। दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, अश्वत्थामा, व्यास और ऋष्यशृङ्ग—ये सप्तर्षि होंगे। विरजा, उर्वरीय और निर्मोक आदि सावर्ण मनुके पुत्र राजा होंगे। नवें भावी मनु 'दक्षसावर्णि' हैं। धृति, कीर्ति, दीप्ति, केतु, पञ्चहस्त, निरामय तथा पृथुश्रवा आदि दक्षसावर्णि मनुके पुत्र उस समय राजा होंगे। उस मन्वन्तरमें मरीचिगर्भ, सुधर्मा और हविष्मान्—ये देवता होंगे और उनके इन्द्र 'अद्भुत' नामसे प्रसिद्ध होंगे। सवन, कृतिमान्, हव्य, वसु, मेधातिथि तथा ज्योतिष्मान् (और सत्य)—ये सप्तर्षि होंगे। दसवें मनु 'ब्रह्मसावर्णि' होंगे। उस समय विरुद्ध आदि देवता और उनके 'शान्ति' नामक इन्द्र होंगे। हविष्मान्, सुकृति, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमोक और सप्तकेतु—ये सप्तर्षि होंगे। सुक्षेत्र, उत्तम, भूरिषेण आदि 'ब्रह्मसावर्णि'के पुत्र राजा होंगे। ग्यारहवें मन्वन्तरमें 'धर्मसावर्णि' नामक मनु होंगे। उस समय सिंह, सवन आदि देवगण और उनके 'दिवस्पति' नामक इन्द्र होंगे। निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निकम्प, निरुत्साह, धृतिमान् और रुच्य—ये सप्तर्षि होंगे। चित्रसेन और विचित्र आदि धर्मसावर्णि मनुके पुत्र राजा होंगे। बारहवें मनु 'रुद्रसावर्णि' होंगे। उस मन्वन्तरमें 'कृतधामा' नामक इन्द्र और हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा तथा सुतपा नामक देवगण होंगे। तपस्वी, चारुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, ज्योति और तप—ये सप्तर्षि होंगे। रुद्रसावर्णिके पुत्र देववान् और देवश्रेष्ठ आदि भूमण्डलके राजा होंगे। तेरहवें मनुका नाम 'रुचि' होगा। उस समय स्रग्वी, त्राण और सुधर्मा नामक देवगण तथा उनके 'ऋषभ' नामक इन्द्र होंगे। निश्चित, अग्नितेजा, वपुष्मान्, धृष्ट, वारुणि, हविष्मान् और भव्यमूर्ति नहुष—ये सप्तर्षि होंगे। उस मनुके सुधर्मा तथा देवानीक आदि पुत्र भूपाल होंगे। चौदहवें भावी मनुका नाम 'भौम' होगा। उस समय 'सुरुचि' नामक इन्द्र और चक्षुष्मान्, पवित्र तथा कनिष्ठाभ नामक देवगण होंगे। अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, माधव, शिव, अभीम और जितश्वास—ये सप्तर्षि होंगे तथा उस भौम मनुके पुत्र उरु, गम्भीर और ब्रह्मा आदि भूतलके राजा होंगे ॥ १७—३५ ॥

**एवं ते चतुर्दश मन्वन्तराणि कथितानि । राजानश्च यैरियं वसुधा पाल्यते ॥ ३६ ॥**

मनुः सप्तर्षयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्रश्चैवाधिकारिणः ॥३७॥
चतुर्दशभिरेतैस्तु गतैर्मन्वन्तरैर्द्विज ।
सहस्रयुगपर्यन्तः कालो गच्छति वासरः ॥३८॥
तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम ।
ब्रह्मरूपधरः शेते सर्वात्मा नृहरिः स्वयम् ॥३९॥
त्रैलोक्यमखिलं ग्रस्त्वा भगवानादिकृद्विभुः ।
स्वमायामास्थितो विप्र सर्वरूपी जनार्दनः ॥४०॥
अथ प्रबुद्धो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः ।
युगव्यवस्थां कुरुते सृष्टिं च पुरुषोत्तमः ॥४१॥
एते तवोक्ता मनवोऽमराश्च
पुत्राश्च भूपा मुनयश्च सर्वे ।
विभूतयस्तस्य स्थितौ स्थितस्य
तस्यैव सर्वं त्वमवेहि विप्र ॥४२॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

इस प्रकार मैंने आपसे चौदह मन्वन्तरोंका और उन-उन मनुके पुत्र तत्कालीन राजाओंका वर्णन किया, जिनके द्वारा इस वसुधाका पालन होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें मनु, सप्तर्षि, देवता और भूपाल मनुपुत्र तथा इन्द्र—ये अधिकारी होते हैं। ब्रह्मन्! इन चौदह मन्वन्तरोंके व्यतीत हो जानेपर एक हजार चतुर्युगका समय बीत जाता है। यह ( ब्रह्माजीका ) एक दिन कहलाता है। साधुशिरोमणे! फिर उतने ही प्रमाणकी उनकी रात्रि होती है। उस समय सब भूतोंके आत्मा साक्षात् भगवान् नृसिंह ब्रह्मरूप धारण करके शयन करते हैं। विप्रवर! सर्वत्र व्यापक एवं आदिविधाता सर्वरूप भगवान् जनार्दन उस समय समस्त त्रिभुवनको अपनेमें लीन करके अपनी योगमायाका आश्रय ले शयन करते हैं। फिर जाग्रत् होनेपर वे भगवान् पुरुषोत्तम पूर्वकल्पके अनुसार पुनः युग-व्यवस्था तथा सृष्टि करते हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने मनु, देवगण, भूपाल, मनुपुत्र और ऋषि—इन सबका आपसे वर्णन किया। आप इन सबको पालनकर्ता भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ ही समझें ॥ ३६–४२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

## चौबीसवाँ अध्याय

### सूर्यवंश—राजा इक्ष्वाकुका भगवत्प्रेम; उनका भगवद्दर्शनके हेतु तपस्याके लिये प्रस्थान

श्रीसूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितं शुभम् ।
शृण्वतामपि पापघ्नं सर्वलोकनृपात्मकम् ॥ १ ॥
सूर्यवंशोद्भवो यो वै मनुपुत्रः पुरोदितः ।
इक्ष्वाकुर्नाम भूपालश्चरितं तस्य मे शृणु ॥ २ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—अब मैं सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके 'वंशानुचरित' का वर्णन करूँगा, जो श्रोताओंका भी पाप नष्ट करनेवाला है। मुने! मैंने पहले सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जिन मनुपुत्र 'इक्ष्वाकु' नामक भूपालकी चर्चा की थी, उनके चरित्रका वर्णन आप मुझसे सुनें ॥ १-२ ॥

आसीद् भूमौ महाभाग पुरी दिव्या सुशोभना ।
सरयूतीरमासाद्य अयोध्या नाम नामतः ॥ ३ ॥
अमरावत्यतिशया त्रिंशद्योजनमालिनी ।
हस्त्यश्वरथपत्त्योघैर्द्रुमैः कल्पद्रुमप्रभैः ॥ ४ ॥
प्राकाराट्टप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्चनप्रभैः ।
विराजमाना सर्वत्र सुविभक्तचतुष्पथा ॥ ५ ॥
अनेकभूमिप्रासादा बहुभाण्डसुविक्रया ।
पद्मोत्पलयुतैस्तोयैर्वापीभिरुपशोभिता ॥ ६ ॥
देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च शोभिता ।
वीणावेणुमृदङ्गैश्च शब्दैरुत्कृष्टकैर्युता ॥ ७ ॥
शालैस्तालैर्नालिकेरैः पनसामलजम्बुकैः ।
तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता ॥ ८ ॥

महाभाग! इस पृथ्वीपर सरयू नदीके किनारे 'अयोध्या' नामसे प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्य पुरी है। वह अमरावतीसे भी बढ़कर सुन्दर और तीस योजन लंबी-चौड़ी थी। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंके समूह तथा कल्पवृक्षके समान कान्तिमान् वृक्ष उस पुरीकी शोभा बढ़ाते

थे। वहाँ दिवारी, अट्टालिका, प्रतोली ( गली या राजमार्ग ) और सुवर्णकी-सी कान्तिवाले फाटकोंसे वह बड़ी शोभा पा रही थी। अलग-अलग बने हुए उसके चौराहे बहुत सुन्दर लगते थे। वहाँके महल कई मंजिल ऊँचे थे। नाना प्रकारके माण्डों ( भाँति-भाँतिके सामानों ) का सुन्दर ढंगसे क्रय-विक्रय होता था। कमलों और उत्पलोंसे सुशोभित जलसे भरी हुई बावलियाँ उस पुरीकी शोभा बढ़ा रही थीं। दिव्य देवालय तथा वेदमन्त्रोंके घोष उस नगरीकी श्रीवृद्धि करते थे। वीणा, वेणु और मृदङ्ग आदिके उत्कृष्ट शब्दोंसे वह पुरी गूँजती रहती थी। शाल ( साखू ), ताल ( ताड़ ), नारियल, कटहल, आँवला, जामुन, आम और कपित्थ ( कैथ ) आदिके वृक्षों तथा अशोक-पुष्पोंसे अयोध्यापुरीकी बड़ी शोभा होती थी ॥ ३–८ ॥

**आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वत्र फलपादपैः ।**
**मल्लिकामालतीजातिपाटलानागचम्पकैः ॥ ९ ॥**
**करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलंकृता ।**
**कदलीलवलीजातिमातुलुङ्गमहाफलैः ।**
**क्वचिच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नारङ्गैश्च सुशोभिता ॥१०॥**
**नित्योत्सवप्रमुदिता गीतवाद्यविचक्षणैः ।**
**नरनारीभिराढ्याभी रूपद्रविणप्रेक्षणैः ॥११॥**

वहाँ सब जगह नाना प्रकारके बगीचे और फलवाले वृक्ष पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। मल्लिका ( मोतिया या बेला ), मालती, चमेली, पाड़र, नागकेसर, चम्पा, कनेर, कनकचम्पा और केतकी ( केवड़ा ) आदि पुष्पोंसे मानो उस पुरीका शृङ्गार किया गया था। केला, हरफा, रेवड़ी, जायफल और बिजौरा नीबू, चन्दनकी-सी गन्धवाले तथा दूसरे प्रकारके संतरे आदि बड़े-बड़े फल उसकी शोभा बढ़ाते थे। गीत और वाद्यमें कुशल पुरुष उस पुरीमें प्रतिदिन आनन्दोत्सव मचाये रहते थे। वहाँके स्त्री-पुरुष रूप-वैभव तथा सुन्दर नेत्रोंसे सम्पन्न थे ॥ ९–११ ॥

**नानाजनपदाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।**
**देवतुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता ॥१२॥**
**सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ।**
**विप्रैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमप्रभैः ॥१३॥**
**वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षवरैर्युता ।**
**अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव ॥१४॥**
**इति नानाविधैर्भावैरयोध्येन्द्रपुरीसमा ।**
**तां दृष्ट्वा नारदः श्लोकं सभामध्ये पुरोक्तवान् ॥१५॥**
**स्वर्गं वै सृजमानस्य व्यर्थं स्यात् पद्मजन्मनः ।**
**जातायोध्याधिका स्वर्गात् कामभोगसमन्विता ॥१६॥**

वह पुरी नाना देशोंके मनुष्योंसे भरी-पूरी, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित तथा अनेकानेक कान्तिमान् देवोपम राजकुमारोंसे युक्त थी। वहाँ देवाङ्गनाओंके समान श्रेष्ठ एवं रूपवती वनिताएँ निवास करती थीं। बृहस्पतिके समान तेजस्वी सत्कवि ब्राह्मण उस नगरीकी शोभा बढ़ाते थे। कल्पवृक्षसे भी बढ़कर उदार नागरिकों और वैश्यों, उच्चैःश्रवाके समान श्रेष्ठ घोड़ों और दिग्गजोंके समान विशालकाय हाथियोंसे वह पुरी बड़ी शोभा पाती थी। इस प्रकार नाना वस्तुओंसे भरी-पूरी अयोध्यापुरी इन्द्रपुरी अमरावतीकी समता करती थी। पूर्वकालमें नारदजीने उस पुरीको देखकर भरी सभामें यह श्लोक कहा था—'स्वर्गकी सृष्टि करनेवाले विधाताका वह सारा प्रयत्न व्यर्थ हो गया; क्योंकि अयोध्यापुरी उससे भी बढ़कर मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न हो गयी' ॥ १२–१६ ॥

**तामावसदयोध्यां तु स्वभिषिक्तो महीपतिः ।**
**जितवान् सर्वभूपालान् धर्मेण स महाबलः ॥१७॥**
**माणिक्यमुकुटैर्युक्तै राजभिर्मण्डलाधिपैः ।**
**नमद्भिर्भक्तिभीतिभ्यां पादौ तस्य किणीकृतौ ॥१८॥**

इक्ष्वाकु इसी अयोध्यामें निवास करते थे। वे राजाके पदपर अभिषिक्त हो, पृथ्वीका पालन करने लगे। उन महान् बलशाली नरेशने धर्मयुद्धके द्वारा समस्त भूपालोंको जीत लिया था। मानिकके बने मुकुटोंसे अलंकृत अनेक छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक राजाओंके भक्ति तथा भयपूर्वक प्रणाम करनेसे उनके दोनों चरणोंमें मुकुटोंकी रगड़से चिह्न बन गया था ॥ १७-१८ ॥

**इक्ष्वाकुरक्षतबलः सर्वशास्त्रविशारदः ।**
**तेजसेन्द्रेण सदृशो मनोः सूनुः प्रतापवान् ॥१९॥**
**धर्मतो न्यायतश्चैव वेदज्ञैर्ब्राह्मणैर्युतः ।**
**पालयामास धर्मात्मा आसमुद्रां महीमिमाम् ॥२०॥**
**अस्त्रैर्जिगाय सकलान् संयुगे भूपतीन् बली ।**
**अवजित्य सुतीक्ष्णैस्तु तन्मण्डलमथाहरत् ॥२१॥**

मनुपुत्र प्रतापी राजा इक्ष्वाकु अपने राजोचित तेजसे इन्द्रकी समानता करते थे। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण थे। उनका बल कभी क्षीण नहीं होता था। वे धर्मात्मा भूपाल वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके साथ धर्म और न्यायपूर्वक इस समुद्र-पर्यन्त पृथिवीका पालन करते थे। उन बलशाली नरेशने संग्राममें अपने तीखे शस्त्रोंसे समस्त भूपोंको जीतकर उनका मण्डल अपने अधिकारमें कर लिया था॥ १९—२१ ॥

जितवान् परलोकांश्च क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
दानैश्च विविधैर्ब्रह्मन् राजेक्ष्वाकुः प्रतापवान् ॥२२॥
बाहुद्वयेन वसुधां जिह्वाग्रेण सरस्वतीम् ।
बभार पद्मामुरसा भक्तिं चित्तेन माधवे ॥२३॥
संतिष्ठतो हरे रूपमुपविष्टं च माधवम् ।
शयानमप्यनन्तं तु कारयित्वा पटेऽमलम् ॥२४॥
त्रिकालं त्रयमाराध्य रूपं विष्णोर्महात्मनः ।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं रेमे दृष्ट्वा पटे हरिम् ॥२५॥
कृष्णं तं कृष्णमेघाभं भुजगेन्द्रनिवासिनम् ।
पद्माक्षं पीतवासं च स्वप्नेष्वपि स दृष्टवान् ॥२६॥
चकार मेघे तद्वर्णे बहुमानमतिं नृपः ।
पक्षपातं च तन्नाम्नि मृगे पद्मे च तादृशे ॥२७॥

ब्रह्मन्! प्रतापी राजा इक्ष्वाकुने प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ और नाना प्रकारके दान करके परलोकोंपर भी विजय प्राप्त कर ली थी। वे अपनी दोनों भुजाओंद्वारा पृथ्वीका, जिह्वाके अग्रभागसे सरस्वतीका, वक्षःस्थलसे राजलक्ष्मीका और हृदयसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी भक्तिका भार वहन करते थे। एक वस्त्रपर खड़े हुए भगवान् हरिका, बैठे हुए लक्ष्मीपतिका और सोये हुए अनन्तदेवका निर्मल चित्र बनवाकर क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकालमें तीनों समय वे महात्मा भगवान् विष्णुके उन तीनों रूपोंका गन्ध तथा पुष्प आदिके द्वारा पूजन करते और उस पटपर प्रतिदिन भगवान् विष्णुका दर्शन करके प्रसन्न रहते थे। उन्हें स्वप्नमें भी नागराज अनन्तकी शय्यापर सोये हुए, काले मेघके समान श्यामवर्ण, कमललोचन, पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण ( विष्णु ) का दर्शन हुआ करता था। राजाने भगवान्‌के समान श्यामवर्णवाले मेघमें अत्यन्त सम्मानपूर्ण बुद्धि कर ली थी। भगवान् श्रीकृष्णके नामसे युक्त कृष्णसार मृगमें और कृष्णवर्णवाले कमलमें वे पक्षपात रखते थे॥ २२—२७ ॥

दिव्याकृतिं हरेः साक्षाद् द्रष्टुं तस्य महीभृतः।
अतीव तृष्णा संजाता अपूर्वेव हि सत्तम ॥२८॥
तृष्णायां तु प्रवृद्धायां मनसैव हि पार्थिवः ।
चिन्तयामास मतिमान् राज्यभोगमसारवत् ॥२९॥
वेश्मदारसुतक्षेत्रं संन्यस्तं येन दुःखदम् ।
वैराग्यज्ञानपूर्वेण लोकेऽस्मिन्नास्ति तत्समः ॥३०॥
इत्येवं चिन्तयित्वा तु तपस्यासक्तचेतनः ।
वसिष्ठं परिपप्रच्छ तत्रोपायं पुरोहितम् ॥३१॥
तपोबलेन देवेशं नारायणमजं मुने ।
द्रष्टुमिच्छाम्यहं तत्र उपायं तं वदस्व मे ॥३२॥

साधुशिरोमणे! उस राजाके मनमें भगवान् विष्णुके दिव्य स्वरूपको प्रत्यक्ष देखनेकी अत्यन्त उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हुई; उनकी वह तृष्णा अपूर्व ही थी। जब उनकी तृष्णा बहुत बढ़ गयी, तब वे बुद्धिमान् भूपाल मन-ही-मन सारे राज्य-भोगको निस्सार-सा समझने लगे। उन्होंने सोचा—'जिस पुरुषने गेह, स्त्री, पुत्र और क्षेत्र आदि दुःखद भोगोंको वैराग्य और ज्ञानपूर्वक त्याग दिया है, उसके समान बड़भागी इस संसारमें कोई नहीं है।' इस प्रकार सोच-विचारकर, तपस्यामें आसक्तचित्त हो उन्होंने उसके लिये अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे उपाय पूछा—'मुने! मैं तपस्याके बलसे देवेश्वर, अजन्मा भगवान् नारायणका दर्शन करना चाहता हूँ; इसके लिये आप मुझे कोई उत्तम उपाय बताइये'॥ २८—३२ ॥

इत्युक्तः प्राह राजानं तपस्यासक्तमानसम् ।
वसिष्ठः सर्वधर्मज्ञः सदा तस्य हिते रतः ॥३३॥
यदीच्छसि महाराज द्रष्टुं नारायणं परम् ।
तपसा सुकृतेनेह आराधय जनार्दनम् ॥३४॥
केनाप्यतप्ततपसा देवदेवो जनार्दनः ।
द्रष्टुं न शक्यते जातु तस्मात्त्वं तपसार्चय ॥३५॥
पूर्वदक्षिणदिग्भागे सरयूतीरगो नृप ।
गालवप्रमुखानां च ऋषीणामस्ति चाश्रमः ॥३६॥
पञ्चयोजनमध्वानं स्थानमस्त्याशु पावनम् ।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पसमाकुलम् ॥३७॥

स्वमन्त्रिणि महाप्राज्ञे नीतिमत्यर्जुने नृप ।
स्वराज्यभारं विन्यस्य कर्मकाण्डमपि द्विज ॥३८॥
स्तुत्वाऽऽराध्य गणाध्यक्षमितो व्रज विनायकम् ।
तपःसिद्ध्यर्थमन्विच्छंस्तत्रास्स्व तपः कुरु ॥३९॥
तापसं वेषमास्थाय शाकमूलफलाशनः ।
ध्यायन्नारायणं देवमिमं मन्त्रं सदा जप ॥४०॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
एष सिद्धिकरो मन्त्रो द्वादशाक्षरसंज्ञितः ।
जप्त्वैनं मुनयः सिद्धिं परां प्राप्ताः पुरातनाः ॥४१॥
गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
अद्यापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥४२॥
बाह्येन्द्रियं हृदि स्थाप्य मनः सूक्ष्मे परात्मनि ।
नृप संजप तन्मन्त्रं द्रष्टव्यो मधुसूदनः ॥४३॥
इति ते कथितोपायो हरिप्राप्तेस्तपःक्रतौ ।
पृच्छतः साम्प्रतं भूयो यदीच्छसि कुरुष्व तत् ॥४४॥

उनके इस प्रकार कहनेपर राजाके हितमें सदा लगे रहनेवाले सर्वधर्मज्ञ मुनिवर वसिष्ठजीने तपमें आसक्तचित्त उन नरेशसे कहा—'महाराज! यदि तुम परमात्मा नारायणका साक्षात्कार करना चाहते हो तो तपस्या और शुभकर्मोंके द्वारा उन भगवान् जनार्दनकी आराधना करो। कोई भी पुरुष तपस्या किये बिना देवदेव जनार्दनका दर्शन नहीं पा सकता। इसलिये तुम तपस्याके द्वारा उनका पूजन करो। यहाँसे पाँच योजन दूर सरयूके तटपर पूर्व और दक्षिण भागमें एक पवित्र स्थान है, जहाँ गालव आदि ऋषियोंका आश्रम है। वह स्थान नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त तथा विविध भाँतिके पुष्पोंसे परिपूर्ण है। राजन्! अपने बुद्धिमान् एवं नीतिज्ञ मन्त्री अर्जुनको राज्यका भार तथा सारा कार्य-कलाप सौंप, तत्पश्चात् गणनायक भगवान् विनायककी स्तुति एवं आराधना करके तपस्याकी सिद्धिरूप प्रयोजनकी इच्छा मनमें लेकर यहाँसे उस आश्रमकी यात्रा करो और वहाँ पहुँचकर तपस्यामें संलग्न हो जाओ। तपस्वीका वेष धारणकर, साग और फल-मूलका आहार करते हुए, भगवान् नारायणके ध्यानमें तत्पर रहकर सदा ही 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'—इस मन्त्रका जप करो। यह 'द्वादशाक्षर'-संज्ञक मन्त्र अभीष्टको सिद्ध करनेवाला है। प्राचीनकालके ऋषियोंने इस मन्त्रका जप करके परम सिद्धि प्राप्त की है। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह जा-जाकर पुनः लौट आते हैं, परंतु द्वादशाक्षर-मन्त्रका चिन्तन करनेवाले पुरुष आजतक नहीं लौटे—भगवान्‌को पाकर आवागमनसे मुक्त हो गये। नरेश्वर! बाह्य इन्द्रियोंको हृदयमें स्थापितकर तथा मनको सूक्ष्म परात्मतत्त्वमें स्थिर करके इस मन्त्रका जप करो; इससे तुम्हें भगवान् मधुसूदनका दर्शन होगा। इस प्रकार इस समय तुम्हारे पूछनेपर मैंने तपरूप कर्मसे भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय बतलाया; अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो' ॥ ३३—४४ ॥

इत्येवमुक्तो मुनिना स राजा
राज्यं सुधौ मन्त्रिवरे समर्प्य ।
स्तुत्वा गणेशं सुमनोभिरर्च्य
गतः पुराद् आत्तपसे धृतात्मा ॥४५॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे इक्ष्वाकुचरित्रे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥*

मुनिवर वसिष्ठके इस प्रकार कहनेपर वे राजा इक्ष्वाकु अपने श्रेष्ठ मन्त्रीको भूमण्डलके राज्यका भार सौंपकर, पुष्पोंद्वारा गणेशजीका पूजन तथा स्तवन करके, तपस्या करनेका दृढ़ निश्चय मनमें लेकर, अपने नगरसे चल दिये ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'इक्ष्वाकुका चरित्र' विषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

## पचीसवाँ अध्याय

### इक्ष्वाकुकी तपस्या और ब्रह्माजीद्वारा विष्णुप्रतिमाकी प्राप्ति

भरद्वाज उवाच

कथं स्तुतो गणाध्यक्षस्तेन राज्ञा महात्मना ।
यथा तेन तपस्तप्तं तन्मे वद महामते ॥ १ ॥

भरद्वाजजीने पूछा—महामते! उन महात्मा राजाने किस प्रकार गणेशजीका स्तवन किया? तथा उन्होंने जिस प्रकार तपस्या की, उसका आप मुझसे वर्णन करें ॥ १ ॥

सूत उवाच

चतुर्थीदिवसे राजा स्नात्वा त्रिषवणं द्विज ।
रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तगन्धानुलेपनः ॥ २ ॥
सुरक्तकुसुमैर्हृद्यैर्विनायकमथार्चयत् ।
रक्तचन्दनतोयेन स्नानपूर्वं यथाविधि ॥ ३ ॥
विलिप्य रक्तगन्धेन रक्तपुष्पैः प्रपूजयत् ।
ततोऽसौ दत्तवान् धूपमाज्ययुक्तं सचन्दनम् ।
नैवेद्यं चैव हारिद्रं गुडखण्डघृतप्लुतम् ॥ ४ ॥
एवं सुविधिना पूज्य विनायकमथास्तवीत् ।

**सूतजी बोले**—द्विज ! गणेश-चतुर्थीके दिन राजाने त्रिकाल स्नान करके रक्तवस्त्र धारण किया और लालचन्दन लगाकर मनोहर लाल फूलों तथा रक्तचन्दनमिश्रित जलसे गणेशजीको स्नान कराके विधिवत् उनका पूजन किया। स्नान करानेके बाद उनके श्रीअङ्गोंमें लाल चन्दन लगाया। फिर रक्तपुष्पोंसे उनकी पूजा की। तदनन्तर उन्हें घृत और चन्दन मिला हुआ धूप निवेदन किया। अन्तमें हल्दी, घी और गुडखण्डके मेलसे तैयार किया हुआ मधुर नैवेद्य अर्पण किया। इस प्रकार सुन्दर विधिपूर्वक भगवान् विनायकका पूजन करके राजाने उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ २–४½ ॥

इक्ष्वाकुरुवाच

नमस्कृत्य महादेवं स्तोष्येऽहं तं विनायकम् ॥ ५ ॥
महागणपतिं शूरमजितं ज्ञानवर्धनम् ।
एकदन्तं द्विदन्तं च चतुर्दन्तं चतुर्भुजम् ॥ ६ ॥
त्र्यक्षं त्रिशूलहस्तं च रक्तनेत्रं वरप्रदम् ।
आम्बिकेयं शूर्पकर्णं प्रचण्डं च विनायकम् ॥ ७ ॥
आरक्तं दण्डिनं चैव वह्निवक्त्रं हुतप्रियम् ।
अनर्चितो विघ्नकरः सर्वकार्येषु यो नृणाम् ॥ ८ ॥
तं नमामि गणाध्यक्षं भीममुग्रमुमासुतम् ।
मदमत्तं विरूपाक्षं भक्तविघ्ननिवारकम् ॥ ९ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं भिन्नाञ्जनसमप्रभम् ।
बुद्धं सुनिर्मलं शान्तं नमस्यामि विनायकम् ॥१०॥
नमोऽस्तु गजवक्त्राय गणानां पतये नमः ।
मेरुमन्दररूपाय नमः कैलासवासिने ॥११॥
विरूपाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तस्तुताय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥१२॥

**इक्ष्वाकु बोले**—मैं महान् देव गणेशजीको प्रणाम करके उन विघ्नराजका स्तवन करता हूँ, जो महान् देवता एवं गणोंके स्वामी हैं, शूरवीर तथा अपराजित हैं और ज्ञानवृद्धि करानेवाले हैं। जो एक, दो तथा चार दाँतोंवाले हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं, जो तीन नेत्रोंसे युक्त और हाथमें त्रिशूल धारण करते हैं, जिनके नेत्र रक्तवर्ण हैं, जो वर देनेवाले हैं, जो माता पार्वतीके पुत्र हैं, जिनके सूप-जैसे कान हैं, जिनका वर्ण कुछ-कुछ लाल है, जो दण्डधारी तथा अग्निमुख हैं एवं जिन्हें होम प्रिय है तथा जो प्रथम पूजित न होनेपर मनुष्योंके सभी कार्योंमें विघ्नकारी होते हैं, उन भीमकाय और उग्र स्वभाववाले पार्वतीनन्दन गणेशजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मदसे मत्त रहते हैं, जिनके नेत्र भयंकर हैं और जो भक्तोंके विघ्न दूर करनेवाले हैं, करोड़ों सूर्यके समान जिनकी कान्ति है, खानसे काटकर निकाले हुए कोयलेकी भाँति जिनकी श्याम प्रभा है तथा जो विमल और शान्त हैं, उन भगवान् विनायकको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरुगिरिके समान रूप और हाथीके मुख-सदृश मुखवाले, कैलासवासी गणपतिको नमस्कार है। विनायक देव ! आप विरूपधारी और ब्रह्मचारी हैं, भक्तजन आपकी स्तुति करते हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥५–१२॥

त्वया पुराण पूर्वेषां देवानां कार्यसिद्धये ।
गजरूपं समास्थाय त्रासिताः सर्वदानवाः ॥१३॥
ऋषीणां देवतानां च नायकत्वं प्रकाशितम् ।
यतस्ततः सुरैरग्रे पूज्यसे त्वं भवात्मज ॥१४॥
त्वामाराध्य गणाध्यक्षं सर्वज्ञं कामरूपिणम् ।
कार्यार्थं रक्तकुसुमै रक्तचन्दनवारिभिः ॥१५॥
रक्ताम्बरधरो भूत्वा चतुर्थ्यामर्चयेज्जपेत् ।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेन्नियताशनः ॥१६॥
राजानं राजपुत्रं वा राजमन्त्रिणमेव वा ।
राज्यं च सर्वविघ्नेश वशं कुर्यात् सराष्ट्रकम् ॥१७॥

पुराणपुरुष ! आपने पूर्ववर्ती देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हाथीका स्वरूप धारण करके समस्त दानवोंको भयभीत किया था। शिवपुत्र ! आपने ऋषि और देवताओंपर अपना स्वामित्व

प्रकट कर दिया है, इसीसे देवगण आपकी प्रथम पूजा करते हैं। सर्वविघ्नेश्वर ! यदि मनुष्य रक्तवस्त्र धारणकर नियमित आहार करके अपने कार्यकी सिद्धिके लिये लाल पुष्पों और रक्तचन्दन युक्त जलसे चतुर्थीके दिन तीनों काल या एक कालमें आप कामरूपी सर्वज्ञ गणपतिका पूजन करे तथा आपका नाम जपे तो वह पुरुष राजा, राजकुमार, राजमन्त्रीको राज्य अथवा समस्त राष्ट्रसहित अपने वशमें कर सकता है॥१३–१७॥

अविघ्नं तपसो मह्यं कुरु नौमि विनायक।
मयेत्थं संस्तुतो भक्त्या पूजितश्च विशेषतः ॥१८॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
तत्फलं पूर्णमाप्नोति स्तुत्वा देवं विनायकम् ॥१९॥
विषमं न भवेत्तस्य न च गच्छेत् पराभवम्।
न च विघ्नो भवेत्तस्य जातो जातिस्मरो भवेत् ॥२०॥
य इदं पठते स्तोत्रं षड्भिर्मासैर्वरं लभेत्।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः ॥२१॥

विनायक ! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। आप मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक स्तवन एवं विशेषरूपसे पूजन किये जानेपर मेरी तपस्याके विघ्नको दूर कर दें। सम्पूर्ण तीर्थों और समस्त यज्ञोंमें जो फल प्राप्त होता है, उसी फलको मनुष्य भगवान् विनायकका स्तवन करके पूर्णरूपसे प्राप्त कर लेता है। उसपर कभी संकट नहीं आता, उसका कभी तिरस्कार नहीं होता और न उसके कार्यमें विघ्न ही पड़ता है; वह जन्म लेनेके बाद पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला होता है। जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह छः महीनोंतक निरन्तर पाठ करनेसे गणेशजीसे मनोवाञ्छित वर प्राप्त करता है और एक वर्षमें पूर्णतः सिद्धि प्राप्त कर लेता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है॥ १८–२१॥

सूत उवाच

एवं स्तुत्वा पुरा राजा गणाध्यक्षं द्विजोत्तम।
तापसं वेषमास्थाय तपश्चर्तुं गतो वनम् ॥२२॥
उत्सृज्य वस्त्रं नागत्वक्सदृशं बहुमूल्यकम्।
कठिनां तु त्वचं वार्क्षीं कट्यां धत्ते नृपोत्तमः ॥२३॥
तथा रत्नानि दिव्यानि वलयानि निरस्य तु।
अक्षसूत्रमलंकारं फलैः पद्मस्य शोभनम् ॥२४॥
तथोत्तमाङ्गे मुकुटं रत्नहाटकशोभितम्।
त्यक्त्वा जटाकलापं तु तपोऽर्थे बिभृयान्नृपः ॥२५॥

सूतजी बोले—द्विजोत्तमगण ! इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु पहले गणेशजीका स्तवन करके, फिर तपस्वीका वेष धारणकर तप करनेके लिये वनमें चले गये। साँपकी त्वचाके समान मुलायम एवं बहुमूल्य वस्त्र त्यागकर वे श्रेष्ठ महाराज कमरमें वृक्षोंकी कठोर छाल पहनने लगे। दिव्य रत्नोंके हार और कड़े निकालकर हाथमें अक्षसूत्र तथा गलेमें कमलगट्टोंकी बनी हुई सुन्दर माला धारण करने लगे। इसी प्रकार वे नरेश मस्तकपरसे रत्न तथा सुवर्णसे सुशोभित मुकुट हटाकर वहाँ तपस्याके लिये जटाजूट रखने लगे॥ २२–२५॥

कृत्वेत्थं स तपोवेषं वसिष्ठोक्तं तपोवनम्।
प्रविश्य च तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः ॥२६॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थोऽतपत्काले महातपाः।
वर्षाकाले निरालम्बो हेमन्ते च सरोजले ॥२७॥
इन्द्रियाणि समस्तानि नियम्य हृदये पुनः।
मनो विष्णौ समावेश्य मन्त्रं वै द्वादशाक्षरम् ॥२८॥
जपतो वायुभक्षस्य तस्य राज्ञो महात्मनः।
आविर्बभूव भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२९॥
तमागतमथालोक्य पद्मयोनिं चतुर्मुखम्।
प्रणम्य भक्तिभावेन स्तुत्या च पर्यतोषयत् ॥३०॥

इस प्रकार वसिष्ठजीके कथनानुसार तापस-वेष धारणकर तपोवनमें प्रविष्ट हो, वे शाक और फल-मूलका आहार करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हो गये। महातपस्वी राजा इक्ष्वाकु ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्निके बीच स्थित होकर तपस्या करते थे, वर्षाके समय खुले मैदानमें रहते और शीतकालमें सरोवरके जलमें खड़े होकर तप करते थे। इस प्रकार समस्त इन्द्रियोंको मनमें निरुद्ध करके, मनको भगवान् विष्णुमें लीन कर द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते और वायु पीकर रहते हुए उन महात्मा राजाके समक्ष लोक-पितामह भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन चार मुखोंवाले पद्मयोनि ब्रह्माजीको आया देख राजाने उन्हें भक्तिभावसे प्रणाम एवं उनकी स्तुति करके संतुष्ट किया॥ २६–३०॥

नमो हिरण्यगर्भाय जगत्स्रष्ट्रे महात्मने।
वेदशास्त्रार्थविदुषे चतुर्वक्त्राय ते नमः ॥३१॥
इति स्तुतो जगत्स्रष्टा ब्रह्मा प्राह नृपोत्तमम्।
तपस्यभिरतं शान्तं त्यक्तराज्यं महासुखम्

**( राजा बोले— )** 'संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा वेद-शास्त्रोंके मर्मज्ञ, चार मुखोंवाले महात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीको नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति की जानेपर जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने राज्य त्यागकर तपस्यामें लगे हुए उन शान्त एवं महान् सुखी श्रेष्ठ नरेशसे कहा ॥ ३१½ ॥

ब्रह्मोवाच

लोकप्रकाशको राजन् सूर्यस्तव पितामहः ॥३२॥
मुनीनामपि सर्वेषां सदा मान्यो मनुः पिता ।
कृतवन्तौ तपः पूर्वं तीव्रं पितृपितामहौ ॥३३॥
किमर्थं राज्यभोगं तु त्यक्त्वा सर्वं नृपोत्तम ।
तपः करोषि घोरं त्वं समाचक्ष्व महामते ॥३४॥

**ब्रह्माजी बोले**—राजन्! समस्त विश्वको प्रकाशित करनेवाले तुम्हारे पितामह सूर्य तथा पिता मनु भी सदा ही सभी मुनियोंके मान्य हैं। तुम्हारे पिता और पितामहने भी पूर्वकालमें तीव्र तपस्या की थी। ( उन्हींके समान आज तुम भी तप कर रहे हो। ) महामते नृपश्रेष्ठ! सारा राज्य-भोग छोड़कर किसलिये यह घोर तप कर रहे हो? इसका कारण बताओ ॥ ३२–३४ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा राजा तं प्रणम्याब्रवीद्वचः ।
द्रष्टुमिच्छंस्तपश्चर्याबलेन मधुसूदनम् ॥३५॥
करोम्येवं तपो ब्रह्मन् शङ्खचक्रगदाधरम् ।
इत्युक्तः प्राह राजानं पद्मजन्मा हसन्निव ॥३६॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर राजाने उनको प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! मैं तपोबलसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा लेकर ही ऐसा तप कर रहा हूँ।' राजाके यों कहनेपर कमलजन्मा ब्रह्माजीने हँसते हुए-से उनसे कहा ॥३५-३६॥

न शक्यस्तपसा द्रष्टुं त्वया नारायणो विभुः ।
मादृशैरपि नो दृश्यः केशवः क्लेशनाशनः ॥३७॥
पुरातनीं पुण्यकथां कथयामि निबोध मे ।
निशान्ते प्रलये लोकान् निनीय कमलेक्षणः ॥३८॥
अनन्तभोगशयने योगनिद्रां गतो हरिः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानो महामते ॥३९॥
तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममजायत ।
तस्मिन् पद्मे शुभे राजन् जातोऽहं वेदवित्पुरा॥४०॥
ततो भूत्वा त्वधोदृष्टिर्दृष्टवान् कमलेक्षणम् ।
अनन्तभोगपर्यङ्के भिन्नाञ्जननिभं हरिम् ॥४१॥
अतसीकुसुमाभासं शयानं पीतवाससम् ।
दिव्यरत्नविचित्राङ्गं मुकुटेन विराजितम् ॥४२॥

"राजन्! सर्वत्र व्यापक भगवान् नारायणका दर्शन तुम केवल तपस्यासे नहीं कर सकोगे। ( औरोंकी तो बात ही क्या है, ) हमारे-जैसे लोगोंको भी क्लेशनाशन भगवान् केशवका दर्शन नहीं हो पाता। महामते! मैं तुम्हें एक पुरातन पवित्र कथा सुनाता हूँ, सुनो—'प्रलयकी रातमें कमललोचन भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंको अपनेमें लीन कर लिया और सनन्दन आदि मुनियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे 'अनन्त' नामक शेषनाग-की शय्यापर योगनिद्राका आश्रय ले सो गये। राजन्! उन सोये हुए भगवान्‌की नाभिसे प्रकाशमान एक बहुत बड़ा कमल उत्पन्न हुआ। पूर्वकालमें उस प्रकाशमान कमलपर सर्वप्रथम मुझ वेदवेत्ता ब्रह्माका ही आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् नीचेकी ओर दृष्टि करके मैंने खानसे काटकर निकाले हुए कोयलेके समान श्यामवर्णवाले भगवान् विष्णुको शेषनागकी शय्यापर सोते देखा। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति सुन्दर जान पड़ती थी, दिव्य रत्नोंके आभरणोंसे उनके श्रीविग्रहकी विचित्र शोभा हो रही थी और उनका मस्तक मुकुटसे शोभायमान था ॥ ३७–४२ ॥

कुन्देन्दुसदृशाकारमनन्तं च महामते ।
सहस्रफणमध्यस्थैर्मणिभिर्दीप्तिमत्तरम् ॥४३॥
क्षणमात्रं तु तं दृष्ट्वा पुनस्तत्र न दृष्टवान् ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो बभूवाहं नृपोत्तम ॥४४॥
ततो न्ववातरं तस्मात् पद्मनालं समाश्रितः ।
कौतूहलेन तं द्रष्टुं नारायणमनामयम् ॥४५॥
ततस्त्वन्विष्य राजेन्द्र सलिलान्ते न दृष्टवान् ।
श्रीशं पुनस्तमेवाहं पद्ममाश्रित्य चिन्तयन् ॥४६॥
तद्रूपं वासुदेवस्य द्रष्टुं तेपे महत्तपः ।
ततो मामन्तरिक्षस्था वागुवाचाशरीरिणी ॥४७॥

"महामते! उस समय मैंने उन अनन्तदेव शेषनागका भी दर्शन किया, जिनका आकार कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत था तथा जो हजारों फणोंकी मणियोंसे अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे थे। नृपश्रेष्ठ

क्षणभर ही वहाँ उन्हें देखकर मैं फिर उनका दर्शन न पा सका; इससे अत्यन्त दुखी हो गया। तब मैं कौतूहलवश निरामय भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये कमल-नालका सहारा ले वहाँसे नीचे उतरा; परंतु राजेन्द्र! उस समय जलके भीतर बहुत खोजनेपर भी मैं उन लक्ष्मीपतिका पुनः दर्शन न पा सका। तब मैं फिर उसी कमलका आश्रय ले वासुदेवके उसी रूपका चिन्तन करता हुआ उनके दर्शनके लिये बड़ी भारी तपस्या करने लगा। तत्पश्चात् अन्तरिक्षके भीतरसे किसी अव्यक्त शरीरवाली वाणीने मुझसे कहा ॥ ४३–४७ ॥

**वृथा किं क्लिश्यते ब्रह्मन् साम्प्रतं कुरु मे वचः ।**
**न दृश्यो भगवान् विष्णुस्तपसा महतापि ते ॥४८॥**
**सृष्टिं कुरु तदाज्ञप्तो यदि द्रष्टुमिहेच्छसि ।**
**शुद्धस्फटिकसंकाशनागपर्यङ्कशायिनम् ॥४९॥**
**यद्दृष्टं शार्ङ्गिणो रूपं भिन्नाञ्जनसमप्रभम् ।**
**प्रतिभानियतं रूपं विमानस्थं महामते ॥५०॥**
**भज नित्यमनालस्यस्ततो द्रक्ष्यसि माधवम् ।**

"ब्रह्मन्! क्यों व्यर्थ क्लेश उठा रहे हो? इस समय मेरी बात मानो। बहुत बड़ी तपस्यासे भी तुम्हें भगवान् विष्णुका दर्शन नहीं हो सकेगा। यदि यहाँ शुद्ध स्फटिकमणिके समान श्वेत नाग-शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन करना चाहते हो तो उनके आज्ञानुसार सृष्टि करो। महामते! तुमने 'शार्ङ्ग' धनुष धारण करनेवाले उन भगवान्‌का, जो अञ्जन-पुञ्जके समान श्याम सुषमासे युक्त तथा स्वभावतः प्रतिभाशाली रूप विमान (शेष-शय्या) पर स्थित देखा है, उसीका आलस्यरहित होकर भजन-ध्यान करो, तब उन माधवको देख सकोगे ॥४८–५०½॥

**तयेत्थं चोदितो राजंस्त्यक्त्वा तप्तमनुक्षणम् ॥५१॥**
**सृष्टवान् लोकभूतानां सृष्टिं सृष्ट्वा स्थितस्य च ।**
**आविर्बभूव मनसि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥५२॥**
**अनन्तकृष्णयोस्तेन द्वे रूपे निर्मिते शुभे ।**
**विमानस्थो यथापूर्वं मया दृष्टो जले नृप ॥५३॥**
**तथैव तं ततो भक्त्या सम्पूज्याहं हरिं स्थितः ।**
**तत्प्रसादात्तपः श्रेष्ठं मया ज्ञानमनुत्तमम् ॥५४॥**
**लब्ध्वा मुक्तिं च पश्यामि अविकारक्रियासुखम् ।**

"राजन्! उस आकाशवाणीद्वारा इस प्रकार प्रेरित हो मैंने निरन्तर की जानेवाली तीव्र तपस्याका अनुष्ठान त्यागकर इस जगत्‌के प्राणियोंकी सृष्टि की। सृष्टि करके स्थित होनेपर मेरे हृदयमें प्रजापति विश्वकर्माका प्राकट्य हुआ। उन्होंने 'अनन्त' नामक शेषनाग और भगवान् विष्णुकी दो चमकीली प्रतिमाएँ बनायीं। नरेश्वर! मैंने पहले जलके भीतर शेष-शय्यापर जिस रूपमें देख चुका था, उसी रूपमें भगवान् श्रीहरिकी वह प्रतिमा बनायी गयी थी। तब मैं उन श्रीहरिके उस श्रीविग्रहकी भक्तिपूर्वक पूजा करके और उन्हींके प्रसादसे श्रेष्ठ तपरूप परम उत्तम ज्ञान प्राप्त करके विकाररहित नित्यानन्दमय मोक्ष-सुखका अनुभव करने लगा ॥५१–५४½॥

**तदहं ते प्रवक्ष्यामि हितं नृपवरेश्वर ॥५५॥**
**विसृज्यैतत्तपो घोरं पुरीं व्रज निजां नृप ।**
**प्रजानां पालनं धर्मस्तपश्चैव महीभृताम् ॥५६॥**
**विमानं प्रेषयिष्यामि सिद्धद्विजगणान्वितम् ।**
**तत्राराधय देवेशं बाह्यार्थैरखिलैः शुभैः ॥५७॥**
**नारायणमनन्ताख्ये शयानं क्रतुभिर्यजन् ।**
**निष्कामो नृपशार्दूल प्रजा धर्मेण पालय ॥५८॥**
**प्रसादाद्वासुदेवस्य मुक्तिस्ते भविता नृप ।**
**इत्युक्त्वा तं जगामाथ ब्रह्मलोकं पितामहः ॥५९॥**

"राजराजेश्वर! इस समय मैं तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूँ, सुनो—राजन्! इस घोर तपस्याको छोड़कर अब अपनी पुरीको लौट जाओ। प्रजाओंका पालन करना ही राजाओंका धर्म तथा तप है। मैं सिद्धों और ब्राह्मणोंसहित उस विमानको, जिसपर भगवान्‌की प्रतिमा है, तुम्हारे पास भेजूँगा। उसीमें तुम सुन्दर बाह्य उपचारोंद्वारा उन देवेश्वरकी आराधना करो। नृपश्रेष्ठ! तुम यज्ञोंद्वारा 'अनन्त' नामक शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् नारायणका निष्कामभावसे यज्ञोंद्वारा आराधन करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करो। नृप! भगवान् वासुदेवकी कृपासे अवश्य ही तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।" राजासे यों कहकर लोक-पितामह ब्रह्माजी अपने धामको चले गये ॥ ५५–५९ ॥

**इक्ष्वाकुश्चिन्तयन्नास्ते पद्मयोनिवचो द्विज ।**
**आविर्बभूव पुरतो विमानं तन्महीभृतः ॥६०॥**
**ब्रह्मदत्तं द्विजयुतं माधवानन्तयोः शुभम् ।**
**तं दृष्ट्वा परया भक्त्या नत्वा च पुरुषोत्तमम् ॥६१॥**

**ऋषीन् प्रणम्य विप्रांश्च तदादाय ययौ पुरीम् ।**
**पौरैर्जनैश्च नारीभिर्दृष्टः शोभासमन्वितैः ॥६२॥**
**लाजा विनिक्षिपद्भिश्च नीतो राजा स्वकं गृहम् ।**
**स्वमन्दिरे विशाले तु विमानं वैष्णवं शुभम् ॥६३॥**
**संस्थाप्याराधयामास तैर्द्विजैरर्चितं हरिम् ।**
**महिष्यः शोभना यास्तु पिष्ट्वा तु हरिचन्दनम् ॥६४॥**
**मालां कृत्वा सुगन्धाढ्यां प्रीतिस्तस्य ववर्ध ह ।**
**पौराः कर्पूरश्रीखण्डं कुङ्कुमाद्यगुरुं तथा ॥६५॥**
**कृत्स्नं विशेषतो वस्त्रं महिषाख्यं च गुग्गुलम् ।**
**पुष्पाणि विष्णुयोग्यानि ददुरानीय भूपतेः ॥६६॥**

द्विज ! ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा इक्ष्वाकु उनकी बातोंपर विचार ही कर रहे थे, तबतक उनके समक्ष वह विष्णु और अनन्तकी प्रतिमाओंका शुभ विमान, जिसे ब्रह्माजीने दिया था, सिद्ध ब्राह्मणोंसहित प्रकट हो गया। उन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करके उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया तथा साथमें आये हुए ऋषियों एवं ब्राह्मणोंको भी नमस्कार करके वे उस विमानको लेकर अपनी पुरीको गये। वहाँ नगरके सभी शोभायमान स्त्री-पुरुषोंने राजाका दर्शन किया और लावा छींटते हुए वे उन्हें राजभवनमें ले गये। राजाने अपने विशाल मन्दिरमें उस सुन्दर वैष्णव—विमानको स्थापित किया और साथ आये हुए उन ब्राह्मणोंद्वारा पूजित भगवान् विष्णुकी वे आराधना करने लगे। उनकी सुन्दरी रानियाँ चन्दन घिसकर और सुगन्धित फूलोंका हार गूँथकर अर्पण करती थीं, इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता होती थी। इसी प्रकार नगर-निवासी जन कपूर, श्रीखण्ड, कुङ्कुम, अगुरु आदि सभी उपचार और विशेषतः वस्त्र, गुग्गुल तथा श्रीविष्णुके योग्य पुष्प ला-लाकर राजाको अर्पित करते थे ॥ ६०—६६ ॥

**विमानस्थं हरिं पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।**
**त्रिसंध्यं परया भक्त्या जपैः स्तोत्रैश्च वैष्णवैः ॥६७॥**
**गीतैः कोलाहलैः शब्दैः शङ्खवादित्रनादितैः ।**
**प्रेक्षणैरपि शास्त्रोक्तैः प्रीतैश्च निशि जागरैः ॥६८॥**
**कारयामास सुचिरमुत्सवं परमं हरेः ।**
**यागैश्च तोषयित्वा तं सर्वदेवमयं हरिम् ॥६९॥**
**निष्कामो दानधर्मैश्च परं ज्ञानमवाप्तवान् ।**
**यजन् यज्ञं महीं रक्षन् स कुर्वन् केशवार्चनम् ॥७०॥**
**उत्पाद्य पुत्रान् पित्रर्थं ध्यानात्त्यक्त्वा कलेवरम् ।**
**ध्यायन् वै केवलं ब्रह्म प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥७१॥**
**अजं विशोकं विमलं विशुद्धं**
**शान्तं सदानन्दचिदात्मकं ततः ।**
**विहाय संसारमनन्तदुःखं**
**जगाम तद्विष्णुपदं हि राजा ॥७२॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे इक्ष्वाकुचरिते*
*'पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥*

राजा तीनों संध्याओंमें विमानपर विराजमान भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंद्वारा बड़ी भक्तिसे पूजा करते थे। श्रीविष्णुके नामोंका जप, उनके स्तोत्रोंका पाठ, उनके गुणोंका गान और शङ्ख आदि वाद्योंका शब्द करते-कराते थे। शास्त्रोक्त विधिसे प्रेमपूर्वक सजायी हुई भगवान्‌की झाँकियों तथा रात्रिमें जागरण आदिके द्वारा वे सदा ही देरतक भगवत्सम्बन्धी उत्सव कराया करते थे। निष्कामभावसे किये गये यज्ञ, दान तथा धर्माचरणोंद्वारा उन सर्वदेवमय भगवान् विष्णुको संतुष्ट करके राजाने परम उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया। यज्ञोंका अनुष्ठान, पृथ्वीका पालन और भगवान् केशवका पूजन करते हुए राजाने पितृगणोंकी तृप्तिके निमित्त श्राद्ध आदि कर्म करनेके लिये पुत्रोंको उत्पन्न किया और केवल ब्रह्मका चिन्तन करते हुए ध्यानके द्वारा ही शरीरका त्यागकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त कर लिया। इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु अनन्त दुःखोंसे पूर्ण संसारका त्याग करके अज, अशोक, अमल, विशुद्ध, शान्त एवं सच्चिदानन्दमय विष्णुपदको प्राप्त हो गये ॥ ६७—७२ ॥

इस तरह श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत 'इक्ष्वाकुचरित्र' विषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

* * *

# छब्बीसवाँ अध्याय

## इक्ष्वाकुकी संततिका वर्णन

श्रीसूत उवाच

**इक्ष्वाकोर्विकुक्षिनामपुत्रः । स तु सिद्धे पितरि महर्षिभिरभिषिक्तो धर्मेण पृथिवीं पालयन् विमानस्थमनन्तभोगशायिनमच्युतमाराध्य यागैरपि देवानिष्ट्वा स्वपुत्रं राज्ये सुबाहुमभिषिच्य दिवमारुरोह । सुबाहोश्चोजमानादुद्योतोऽभिगीयते । स तु सप्तद्वीपां पृथ्वीं धर्मेण पालयित्वा भक्तिं परां नारायणे पितामहवत् कृत्वा क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैर्यज्ञेश्वरं निष्कामेन मनसेष्ट्वा नित्यं निरञ्जनं निर्विकल्पं परं ज्योतिरमृताक्षरं परमात्मरूपं ध्यात्वा हरिमनन्तं च परमाराध्य स्वर्गलोकं गतः ॥ १ ॥**

**श्रीसूतजी बोले**—इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रका नाम था विकुक्षि। वह अपने पिताके मुक्त हो जानेपर महर्षियोंद्वारा राजपदपर अभिषिक्त हुआ और धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करने लगा। राजा विकुक्षिने विमानपर विराजमान शेषशायी भगवान् विष्णुकी आराधना करते हुए अनेक यज्ञोंद्वारा देवताओंका भी यजन किया। अन्तमें वे अपने पुत्र सुबाहुको राज्यपर अभिषिक्तकर स्वयं स्वर्गगामी हो गये। अब तेजस्वी राजा सुबाहुके पुत्र उद्योतका यशोगान किया जाता है। उद्योतने सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। उन्होंने अपने पितामह राजा इक्ष्वाकुकी ही भाँति भगवान् नारायणमें पराभक्ति करके प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा यज्ञपति विष्णुका निष्कामभावसे यजन किया तथा नित्य, निरञ्जन, निर्विकल्प, अमृत, अक्षर, परम, ज्योतिर्मय परमात्मरूपका चिन्तन करते हुए श्रीविष्णु और अनन्तकी आराधना करके वे परमधामको प्राप्त हुए ॥ १ ॥

**तस्य युवनाश्वो युवनाश्वस्य च मांधाता पुत्रोऽभवत्। स चाभिषिक्तो महर्षिभिर्निसर्गादेव विष्णुभक्तोऽनन्तशयनमच्युतं भक्त्याऽऽराधयन् यागैश्च विविधैरिष्ट्वा सप्तद्वीपवतीं पृथिवीं परिपाल्य दिवं गतः ॥ २ ॥ यस्यैष श्लोको गीयते ।**

उनके पुत्र युवनाश्व हुए, युवनाश्वके पुत्र मांधाता। मांधाता स्वभावसे ही भगवान् विष्णुके भक्त थे। महर्षियोंने जब उनका राज्याभिषेक कर दिया, तब शेषशायी भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना तथा विविध यज्ञोंद्वारा यजन करते हुए उन्होंने सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका पालन किया और अन्तमें उनका वैकुण्ठवास हुआ ॥ २ ॥

मांधाताके ही विषयमें यह श्लोक अबतक गाया जाता है—

**यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।**
**सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३ ॥**

'जहाँसे सूर्य उदय होता और जहाँतक जाकर अस्त होता है, वह सब युवनाश्वके पुत्र मांधाताका ही क्षेत्र कहलाता है' ॥ ३ ॥

**तस्य पुरुकुत्स्योऽभवद् येन देवा ब्राह्मणाश्च यागदानैः संतुष्टाः ॥ ४ ॥ पुरुकुत्स्याद् दृषदो दृषदादभिशम्भुः । अभिशम्भोर्दारुणो दारुणात्सगरः ॥ ५ ॥ सगराद्धर्यश्वो हर्यश्वाद्धारीतो हारीताद्रोहिताश्वः । रोहिताश्वादंशुमान् ॥ ६ ॥ अंशुमतो भगीरथः । येन महता तपसा पुरा दिवो गङ्गा अशेषकल्मषनाशिनी चतुर्विधपुरुषार्थदायिनी भुवमानीता । अस्थिशर्कराभूताः कपिलमहर्षिनिर्दग्धाश्च गुरवः सगराख्या गङ्गातोयसंस्पृष्टा दिवमारोपिताः । भगीरथात् सौदासः सौदासात् सत्रसवः ॥ ७ ॥ सत्रसवादनरण्योऽनरण्याद्दीर्घबाहुः ॥ ८ ॥ दीर्घबाहोरजोऽजाद्दशरथः । तस्य गृहे रावणविनाशार्थं साक्षान्नारायणोऽवतीर्णो रामः ॥ ९ ॥**

मांधाताका पुत्र पुरुकुत्स्य ( या पुरुकुत्स ) हुआ, जिसने यज्ञ और दानके द्वारा देवताओं तथा ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया था। पुरुकुत्स्यसे दृषद और दृषदसे अभिशम्भु हुआ। अभिशम्भुसे दारुण और दारुणसे सगरका जन्म हुआ। सगरसे हर्यश्व, हर्यश्वसे हारीत, हारीतसे रोहिताश्व,

रोहिताश्वसे अंशुमान् और अंशुमान्से भगीरथ हुए, जो पूर्वकालमें बहुत बड़ी तपस्या करके समस्त पापोंका नाश करनेवाली और चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली गङ्गाको आकाशसे पृथ्वीपर ले आये। उन्होंने गङ्गाजलके स्पर्शसे अपने 'सागर' संज्ञक पितरोंको, जो महर्षि कपिलके शापसे दग्ध होकर अस्थि-भस्ममात्र शेष रह गये थे, स्वर्गलोकको पहुँचा दिया। भगीरथसे सौदास और सौदाससे सत्रसवका जन्म हुआ। सत्रसवसे अनरण्य और अनरण्यसे दीर्घबाहु हुआ। दीर्घबाहुसे अज तथा अजसे दशरथ हुए। इनके घरमें साक्षात् भगवान् नारायण रावणका नाश करनेके लिये 'राम' रूपमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ४–९ ॥

**स तु पितृवचनाद् भ्रातृभार्यासहितो दण्डकारण्यं प्राप्य तपश्चचार । वने रावणापहृतभार्यो भ्रात्रा सह दुःखितोऽनेककोटिवानरनायकसुग्रीवसहायो महोदधौ सेतुं निबध्य तैर्गत्वा लङ्कां रावणं देवकण्टकं सबान्धवं हत्वा सीतामादाय पुनरयोध्यां प्राप्य भरताभिषिक्तो विभीषणाय लङ्काराज्यं विमानं वा दत्त्वा तं प्रेषयामास । स तु परमेश्वरो विमानस्थो विभीषणेन नीयमानो लङ्कायामपि राक्षसपुर्यां वस्तुमनिच्छन् पुण्यारण्यं तत्र स्थापितवान् ॥ १० ॥ तन्निरीक्ष्य तत्रैव महाहिभोगशयने भगवान् शेते । सोऽपि विभीषणस्ततस्तद्विमानं नेतुमसमर्थः, तद्वचनात् स्वां पुरीं जगाम ॥ ११ ॥**

राम अपने पिताके कहनेसे छोटे भाई लक्ष्मण तथा पत्नीसहित दण्डकारण्यमें जाकर तपस्या करने लगे। उस वनमें रावणने इनकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया। इससे दुखी होकर वे अपने भाई लक्ष्मणको साथ लेकर अनेक करोड़ वानर-सेनाके अधिपति सुग्रीवको सहायक बनाकर चले और महासागरमें पुल बाँधकर उन सबके साथ लङ्कामें जा पहुँचे। वहाँ देवताओंके मार्गका काँटा बने हुए रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर सीताको साथ ले पुनः अयोध्यामें लौट आये। अयोध्यामें भरतजीने उनका 'राजा'के पदपर अभिषेक किया। श्रीरामने विभीषणको लङ्काका राज्य तथा [ विष्णुप्रतिमायुक्त ] विमान देकर अयोध्यासे विदा किया। विमानपर विराजमान परमेश्वर विष्णु विभीषणद्वारा ले जाये जानेपर भी राक्षसपुरी लङ्कामें निवास करना नहीं चाहते थे, अतः विभीषणने वहाँ जिस पवित्र वनकी स्थापना की थी, उसको देखकर वे उसीमें स्थित हो गये। वहाँ महान् सर्प-शरीरकी शय्यापर भगवान् शयन करते हैं। विभीषण भी जब वहाँसे उस विमानको ले जानेमें असमर्थ हो गये, तब भगवान्के ही कहनेसे वे उन्हें वहीं छोड़ अपनी पुरी लङ्काको चले गये ॥ १०-११ ॥

**नारायणसंनिधानान्महद्वैष्णवं क्षेत्रमभवदद्यापि दृश्यते । रामाल्लवो लवात्पद्मः पद्मादृतुपर्ण ऋतुपर्णादस्त्रपाणिः । अस्त्रपाणेः शुद्धोदनः शुद्धोदनाद्बुधः । बुधाद्वंशो निवर्तते ॥ १२ ॥**

भगवान् नारायणकी उपस्थितिसे वह स्थान महान् वैष्णवतीर्थ हो गया, जो आज भी श्रीरङ्गक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध देखा जाता है। रामसे लव, लवसे पद्म, पद्मसे ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णसे अस्त्रपाणि, अस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे बुध ( बुद्ध ) की उत्पत्ति हुई; बुधसे इस वंशकी समाप्ति हो जाती है ॥ १२ ॥

**एते महीपा रविवंशजास्तव**
**प्राधान्यतस्ते कथिता महाबलाः ।**
**पुरातनैर्यैर्वसुधा प्रपालिता**
**यज्ञक्रियाभिश्च दिवौकसैर्नृपैः ॥ १३ ॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सूर्यवंशानुचरितं नाम*
*षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥*

मैंने यहाँ आपके समक्ष पूर्ववर्ती उन प्रधान-प्रधान महाबली सूर्यवंशी राजाओंका नामोल्लेख किया है, जिन्होंने धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन और यज्ञ-क्रियाओंद्वारा देवताओंका भी पोषण किया था ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सूर्यवंशका अनुचरित' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

◆

# सत्ताईसवाँ अध्याय

## चन्द्रवंशका वर्णन

सूत उवाच

**अथ सोमवंशोद्भवानां भूभुजां संक्षेपेण चरितमुच्यते ॥ १ ॥ आदौ तावत् समस्तं त्रैलोक्यं कुक्षौ कृत्वा एकार्णवे महाम्भसि नागभोगशयने ॥ २ ॥ ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयोऽथर्वमयो भगवान्नारायणो योगनिद्रां समारेभे । तस्य सुप्तस्य नाभौ महापद्ममजायत । तस्मिन् पद्मे चतुर्मुखो ब्रह्माभवत् ॥ ३ ॥ तस्य ब्रह्मणो मानसः पुत्रोऽत्रिरभवत् । अत्रेरनसूयायां सोमः । स तु प्रजापतेर्दक्षस्य त्रयस्त्रिंशत्कन्या रोहिण्याद्या भार्यार्थं गृहीत्वा प्रियायां ज्येष्ठायां विशेषात् प्रसन्नमनाः रोहिण्यां बुधं पुत्रमुत्पादयामास ॥ ४ ॥ बुधोऽपि सर्वशास्त्रज्ञः प्रतिष्ठाने पुरेऽवसत् । इलायां पुरूरवसं पुत्रमुत्पादयामास । तस्यातिशयरूपान्वितस्य स्वर्गभोगान् विहाय उर्वशी बहुकालं भार्या बभूव ॥ ५ ॥ पुरूरवसः उर्वश्यामायुः पुत्रो जज्ञे । स तु राज्यं धर्मतः कृत्वा दिवमारुरोह ॥ ६ ॥ आयो रूपवत्यां नहुषः पुत्रोऽभवत् । येनेन्द्रत्वं प्राप्तम् । नहुषस्यापि पितृमत्यां ययातिः ॥ ७ ॥ यस्य वंशजा वृष्णयः । ययातेः शर्मिष्ठायां पूरुरभवत् ॥ ८ ॥ पूरोर्वंशदायां संयातिः पुत्रोऽभवत् । यस्य पृथिव्यां सम्पन्नाः सर्वे कामाः ॥ ९ ॥**

**सूतजी बोले**—अब संक्षेपसे चन्द्रवंशी राजाओंके चरित्रका वर्णन किया जाता है। कल्पके आदिकी बात है, ऋक्, यजुष्, साम और अथर्ववेदस्वरूप भगवान् नारायण समस्त त्रिभुवनको अपने उदरमें लीन करके एकार्णवकी अगाध जलराशिमें शेषनागकी शय्यापर योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे। सोये हुए उन भगवान्‌की नाभिसे एक महान् कमल प्रकट हुआ। उस कमलमें चतुर्मुख ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। उन ब्रह्माजीके मानसपुत्र अत्रि हुए। अत्रिसे अनसूयाके गर्भसे चन्द्रमाका जन्म हुआ। उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी रोहिणी आदि तैंतीस कन्याओंको पत्नी बनानेके लिये ग्रहण किया और ज्येष्ठ भार्या रोहिणीसे उसके प्रति अधिक प्रसन्न रहनेके कारण, 'बुध' नामक पुत्र उत्पन्न किया। बुध भी समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता होकर प्रतिष्ठानपुरमें निवास करने लगे। उन्होंने इलाके गर्भसे पुरूरवा नामक पुत्रको जन्म दिया। पुरूरवा बहुत ही सुन्दर थे, अतः उर्वशी नामक अप्सरा बहुत कालतक स्वर्गके भोगोंको त्यागकर इनकी भार्या बनी रही। पुरूरवाद्वारा उर्वशीके गर्भसे आयु नामक पुत्रका जन्म हुआ। वह धर्मपूर्वक राज्य करके अन्तमें स्वर्गलोकको चला गया। आयुके रूपवतीसे नहुष नामक पुत्र हुआ, जिसने इन्द्रत्व प्राप्त किया था। नहुषके भी पितृमतीके गर्भसे ययाति हुए, जिनके वंशज वृष्णि कहलाते हैं। ययातिके शर्मिष्ठाके गर्भसे पूरु हुए। पूरुके वंशदासे संयाति नामक पुत्र हुआ, जिसको इस पृथ्वीपर सभी तरहके मनोवाञ्छित भोग प्राप्त थे ॥१—९॥

**संयातेर्भानुदत्तायां सार्वभौमः । स तु सर्वां पृथिवीं धर्मेण परिपालयन्नरसिंहं भगवन्तमाराध्य यागदानैः सिद्धिमाप ॥ १० ॥ तस्य सार्वभौमस्य वैदेह्यां भोजः । यस्य वंशे पुरा देवासुरसंग्रामे विष्णुचक्रहतः कालनेमिः कंसो भूत्वा वृष्णिवंशजेन वासुदेवेन घातितो निधनं गतः ॥ ११ ॥**

संयातिसे भानुदत्ताके गर्भसे सार्वभौम नामक पुत्र हुआ। उसने सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते हुए यज्ञ-दान आदिके द्वारा भगवान् नृसिंहकी आराधना करके सिद्धि ( मुक्ति ) प्राप्त कर ली। उपर्युक्तसार्वभौमसे वैदेहीके गर्भसे भोज उत्पन्न हुआ, जिसके वंशमें कालनेमि नामक राक्षस, जो पहले देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णुके चक्रसे मारा गया था, कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ और वृष्णिवंशी वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १०-११ ॥

**तस्य भोजस्य कलिङ्गायां दुष्यन्तः । स तु नरसिंहं भगवन्तमाराध्य तत्प्रसादान्निष्कण्टकं राज्यं धर्मेण कृत्वा दिवं प्राप्तवान् । दुष्यन्तस्य**

**शकुन्तलायां भरतः । स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन् क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः सर्वदेवतामयं भगवन्तमाराध्य निवृत्ताधिकारो ब्रह्मध्यानपरो वैष्णवे परे ज्योतिषि लयमवाप ॥ १२ ॥**

भोजकी पत्नी कलिङ्गासे दुष्यन्तका जन्म हुआ। वह भगवान् नृसिंहकी आराधना करके उनकी प्रसन्नतासे धर्मपूर्वक निष्कण्टक राज्य भोगकर जीवनके अन्तमें स्वर्गको प्राप्त हुआ। दुष्यन्तको शकुन्तलाके गर्भसे भरत नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वह धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंसे सर्वदेवमय भगवान् विष्णुकी आराधना करके कर्माधिकारसे निवृत्त एवं ब्रह्मध्यानपरायण हो परम ज्योतिर्मय वैष्णवधाममें लीन हो गया॥ १२ ॥

**भरतस्य आनन्दायामजमीढः । स च परमवैष्णवो नरसिंहमाराध्य जातपुत्रो धर्मेण कृतराज्यो विष्णुपुरमारुरोह ॥ १३ ॥ अजमीढस्य सुदेव्यां वृष्णिः पुत्रोऽभवत् । सोऽपि बहुवर्षं धर्मेण राज्यं कुर्वन् दुष्टनिग्रहं शिष्टपरिपालनं सप्तद्वीपां वशे चक्रे। वृष्णेरुग्रसेनायां प्रत्यञ्चः पुत्रो बभूव ॥ १४ ॥ सोऽपि धर्मेण मेदिनीं पालयन् प्रतिसंवत्सरं ज्योतिष्टोमं चकार । निर्वाणमपि लब्धवान् । प्रत्यञ्चस्य बहुरूपायां शांतनुः ॥ १५ ॥ तस्य देवदत्तस्यन्दनारोहणमशक्यं बभूव पुरतः शक्यं च ॥ १६ ॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सोमवंशवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥*

भरतके उसकी पत्नी आनन्दाके गर्भसे अजमीढ नामक पुत्र हुआ। वह परम वैष्णव था। राजा अजमीढ भगवान् नृसिंहकी आराधनासे पुत्रवान् होकर धर्मपूर्वक राज्य करनेके पश्चात् श्रीविष्णुधामको प्राप्त हुए। अजमीढके सुदेवीके गर्भसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ। वह भी बहुत वर्षोंतक धर्मपूर्वक राज्य करता रहा। दुष्टोंका दमन और सज्जनोंका पालन करते हुए उसने सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया था। वृष्णिके उग्रसेनाके गर्भसे प्रत्यञ्च नामक पुत्र हुआ। वह भी धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करता था। उसने प्रतिवर्ष ज्योतिष्टोमयागका अनुष्ठान करते हुए आयुका अन्त होनेपर निर्वाणपद ( मोक्ष ) प्राप्त कर लिया। प्रत्यञ्चको बहुरूपाके गर्भसे शांतनु नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिनमें देवताओंके दिये हुए रथपर चढ़नेकी पहले शक्ति नहीं थी, परंतु पीछे उसपर चढ़नेकी शक्ति हो गयी॥ १३—१६॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सोमवंशवर्णन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

* * *

# अट्ठाईसवाँ अध्याय

## शांतनुका चरित्र

भरद्वाज उवाच

**स्यन्दनारोहणे पूर्वमशक्तिः शांतनोः कथम् ।**
**पश्चाच्छक्तिः कथं चासीत् तस्य वै तद्वदस्व नः॥ १ ॥**

भरद्वाजजीने पूछा—शांतनुको पहले देवताओंके रथपर चढ़नेकी शक्ति क्यों नहीं थी ? और फिर उनमें वह शक्ति कैसे आ गयी ? इसे आप हमें बतलायें ॥ १ ॥

सूत उवाच

**भरद्वाज शृणुष्वैतत् पुरावृत्तं वदामि ते ।**
**सर्वपापहरं तद्धि चरितं शांतनोर्नृणाम् ॥ २ ॥**
**बभूव शांतनुर्भक्तो नरसिंहतनौ पुरा ।**
**नारदोक्तविधानेन पूजयामास माधवम् ॥ ३ ॥**
**नरसिंहस्य देवस्य निर्माल्यं तेन लङ्घितम् ।**
**राज्ञा शांतनुना विप्र तस्मात् स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ४ ॥**
**देवदत्तं तदारोढुमशक्तस्तत्क्षणादभूत् ।**
**किमियं मे गतिर्भग्ना सहसा वै रथात्ततः ॥ ५ ॥**
**दुःखं चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो नारदः किल ।**
**किं विषण्णः स्थितो राजन्निति पृष्टः स शांतनुः ॥**

सूतजी बोले—भरद्वाजजी ! यह पुराना इतिहास

है; इसे मैं कहता हूँ, सुनिये । शांतनुका चरित्र मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है । शांतनु पूर्वकालमें नृसिंह-रूपधारी भगवान् विष्णुके भक्त थे और नारदजीकी बतायी हुई विधिसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी सदा पूजा किया करते थे । विप्रवर ! एक बार राजा शांतनु भूलसे श्रीनृसिंहदेवके निर्माल्यको लाँघ गये, अतः वे उसी क्षण देवताओंके दिये हुए उत्तम रथपर चढ़नेमें असमर्थ हो गये । तब वे सोचने लगे—'यह क्या बात है ? इस रथपर चढ़नेमें हमारी गति सहसा कुण्ठित क्यों हो गयी ?' कहते हैं, इस प्रकार दुखी होकर सोचते हुए उन राजाके पास नारदजी आये और उन्होंने राजा शांतनुसे पूछा—"राजन् ! तुम क्यों विषादमें डूबे हुए हो ?" ॥ २–६ ॥

नारदैतन्न जानामि गतिभङ्गस्य कारणम् ।
इत्युक्तो नारदो ध्यात्वा ज्ञात्वा तत्कारणं ततः॥ ७ ॥
शांतनुं प्राह राजानं विनयेन यतः स्थितः ।
यत्र क्वापि त्वया राजन्नरसिंहस्य वै ध्रुवम् ॥ ८ ॥
निर्माल्यो लङ्घितस्तस्माद्रथारोहणकर्मणि ।
गतिर्भग्ना महाराज श्रूयतामत्र कारणम् ॥ ९ ॥

(राजाने कहा—) 'नारदजी ! मेरी गति कुण्ठित कैसे हुई, इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है, इसीसे मैं चिन्तित हूँ ।' उनके यों कहनेपर नारदजीने ध्यान लगाया और उसका कारण जानकर राजा शांतनुसे, जो विनीतभावसे वहाँ खड़े थे, कहा—"राजन् ! अवश्य ही तुमने कहीं-न-कहीं भगवान् नृसिंहके निर्माल्यका लङ्घन किया है । इसीसे रथपर चढ़नेमें तुम्हारी गति अवरुद्ध हो गयी है । महाराज ! इसका कारण सुनो ॥ ७–९ ॥

अन्तर्वेद्यां पुरा राजन्नासीत्कश्चिन्महामतिः ।
मालाकारो रविर्नाम्ना तेन वृन्दावनं कृतम् ॥१०॥
विविधानि च पुष्पार्थं वनानि सुकृतानि वै ।
मल्लिकामालतीजातिबकुलादीनि सर्वशः ॥११॥
प्राकारमुच्छ्रितं तस्य स्वभूमौ चापि विस्तृतम् ।
अलङ्घ्यमप्रवेश्यं च कृत्वा चक्रे स्वकं गृहम् ॥१२॥
गृहं प्रविश्य तद्द्वारं भवेन्नान्यत्र सत्तम ।

"राजन् ! पूर्वकालकी बात है, अन्तर्वेदीमें कोई बड़ा बुद्धिमान् माली रहता था । उसका नाम था रवि । उसने तुलसीका बगीचा लगाया था और उसका नाम 'वृन्दावन' रख दिया था । उसमें फूलोंके लिये सब ओर मल्लिका, मालती, जाती तथा बकुल ( मौलसिरी ) आदि नाना प्रकारके वृक्षोंके बाग सुंदर ढंगसे लगाये थे । उस वनकी चहारदीवारी बहुत ऊँची और चौड़ी बनवाकर, उसे अलङ्घनीय और दुर्गम करके भीतरकी भूमिपर उसने अपने रहनेके लिये घर बनाया था । साधुशिरोमणे ! उसने ऐसा प्रबन्ध किया था कि घरमें प्रवेश करनेके बाद ही उस वाटिकाका द्वार प्राप्त हो सकता था, दूसरी ओरसे उसका मार्ग नहीं था ॥१०–१२½॥

एवं कृत्वा नु वसतो मालाकारस्य धीमतः ॥१३॥
पुष्पितं तद्वनं त्वासीद् गन्धामोदितदिङ्मुखम् ।
भार्यया सह पुष्पाणि समाहृत्य दिने दिने ॥१४॥
कृत्वा मालां यथान्यायं नरसिंहस्य नित्यशः ।
ददौ काश्चिद् द्विजेभ्यश्च काश्चिद्विक्रीय पोषणम्॥१५॥
चक्रे समात्मजीवी च भार्यादेरात्मनस्तथा ।

"ऐसी व्यवस्था करके निवास करते हुए उस मालीका वह वृन्दावन फूलोंसे भरा रहता था और उसकी सुगन्धसे सारी दिशाएँ सुवासित होती रहती थीं । वह प्रतिदिन अपनी पत्नीके साथ फूलोंका संग्रह करके यथोचित मालाएँ तैयार करता था । उनमेंसे कुछ मालाएँ तो वह भगवान् नृसिंहको अर्पण कर देता था, कुछ ब्राह्मणोंको दे डालता था और कुछको बेचकर उससे अपना तथा पत्नी आदिका पालन-पोषण करता था । मालासे जो कुछ प्राप्त होता, उसीके द्वारा वह अपनी जीविका चलाता था ॥ १३–१५½ ॥

अथ स्वर्गादुपागम्य इन्द्रपुत्रो रथेन वै ॥१६॥
अप्सरोगणसंयुक्तो निशि पुष्पाणि संहरेत् ।
तद्गन्धलिप्सुः सर्वाणि विचित्याहृत्य गच्छति॥१७॥
दिने दिने हृते पुष्पे मालाकारोऽप्यचिन्तयत् ।
नान्यद् द्वारं वनस्यास्यालङ्घ्यप्राकारमुन्नतम् ॥१८॥
समस्तपुष्पजातस्य हरणे निशि वै नृणाम् ।
अहं शक्तिं न पश्यामि किमिदं नु परीक्षये ॥१९॥
इति संचिन्त्य मेधावी जाग्रद्रात्रौ वने स्थितः ।
तथैवागत्य पुष्पाणि संगृहीत्वा गतः पुमान्॥२०॥

"कुछ कालके बाद वहाँ इन्द्रका पुत्र जयन्त प्रतिदिन रातमें स्वर्गसे अप्सराओंके साथ रथपर चढ़कर आने और फूलोंकी चोरी करने लगा। उस वनके पुष्पोंकी सुगन्धके लोभसे वह सारे फूल तोड़ लेता और लेकर चल देता था। जब प्रतिदिन फूलोंकी चोरी होने लगी, तब मालीको बड़ी चिन्ता हुई। उसने मन-ही-मन सोचा—'इस वनका कोई दूसरा द्वार तो है नहीं। चहारदीवारी भी इतनी ऊँची है कि वह लाँघी नहीं जा सकती। मनुष्योंकी ऐसी शक्ति मैं नहीं देखता कि इसे लाँघकर वे सारे फूल चुरा ले जानेमें समर्थ हों। फिर इन फूलोंके लुप्त होनेका क्या कारण है, आज अवश्य ही इसका पता लगाऊँगा।' यह सोचकर वह बुद्धिमान् माली उस रातमें जागता हुआ बगीचेमें ही बैठा रहा। अन्य दिनोंकी भाँति उस दिन भी वह पुरुष आया और फूल लेकर चला गया ॥ १६–२० ॥

तं दृष्ट्वा दुःखितोऽतीव माल्यजीवी वनेऽभवत् ।
ततो निद्रां गतः स्वप्ने दृष्टवांस्तं नृकेसरिम् ॥२१॥
तद्वाक्यं श्रुतवांश्चैवं निर्माल्यं मम पुत्रक ।
आनीय क्षिप्यतां क्षिप्रं पुष्पारामसमीपतः ॥२२॥
इन्द्रपुत्रस्य दुष्टस्य नान्यदस्ति निवारणम् ।

"उसे देखकर मालाओंसे ही जीविका चलानेवाला वह माली उस उपवनमें बहुत ही दुखी हुआ। तदनन्तर रातको नींद आनेपर उसने स्वप्नमें साक्षात् भगवान् नृसिंहको देखा तथा उन नृसिंहदेवका यह वचन भी सुना—'पुत्र! तुम शीघ्र ही फूलोंके बगीचेके समीप मेरा निर्माल्य लाकर छींट दो। उस दुष्ट इन्द्रपुत्रको रोकनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है'॥ २१-२२½ ॥

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नरसिंहस्य धीमतः ॥२३॥
बुद्ध्वाऽऽनीय तु निर्माल्यं तथा चक्रे यथोदितम् ।
सोऽप्यागत्य यथापूर्वं रथेनालक्षितेन तु ॥२४॥
रथादुत्तीर्य पुष्पाणि विचिन्वंस्तद्भुविस्थितम् ।
निर्माल्यं लङ्घयामास इन्द्रसूनुरनिष्टकृत् ॥२५॥
ततस्तस्य न शक्तिः स्याद्रथारोहणकर्मणि ।
उक्तः सारथिना चैव रथस्यारोहणे तव ॥२६॥
नरसिंहस्य निर्माल्यलङ्घने नास्ति योग्यता ।
गच्छामि दिवमेवाहं त्वं भूम्यां वस माऽऽरुह ॥२७॥

"बुद्धिमान् भगवान् नृसिंहका यह वचन सुनकर माली जाग उठा और उसने निर्माल्य लाकर उनके कथनानुसार वहाँ छींट दिया। जयन्त भी पहलेके ही समान अलक्षित रथसे आया और उससे उतरकर फूल तोड़ने लगा। उसी समय अपना अनिष्ट करनेवाला इन्द्रपुत्र वहाँ भूमिपर पड़े हुए निर्माल्यको लाँघ गया। इससे उसमें रथपर चढ़नेकी शक्ति नहीं रह गयी। तब सारथिने उससे कहा—'नृसिंहका निर्माल्य लाँघ जानेके कारण अब तुममें इस रथपर चढ़नेकी योग्यता नहीं रह गयी है। मैं तो स्वर्गलोकको लौटता हूँ, किंतु तुम यहाँ भूतलपर ही रहो; रथपर न चढ़ो'॥२३–२७॥

तेनैवमुक्तो मतिमांस्तमाह हरिनन्दनः ।
पापस्य नोदनं त्वत्र कर्मणा येन मे भवेत् ॥२८॥
तदुक्त्वा गच्छ नाकं त्वं कर्मास्मान् सारथे द्रुतम् ।

"सारथिके इस प्रकार कहनेपर मतिमान् इन्द्रकुमारने उससे कहा—"सारथे! जिस कर्मसे यहाँ मेरे पापका निवारण हो, उसे बताकर तुम शीघ्र स्वर्गलोकको जाओ" ॥ २८½ ॥

सारथिरुवाच

रामसत्रे कुरुक्षेत्रे द्वादशाब्दे तु नित्यशः ॥२९॥
द्विजोच्छिष्टापनयनं कृत्वा त्वं शुद्धिमेष्यसि ।
इत्युक्त्वासौ गतः स्वर्गं सारथिर्देवसेवितम् ॥३०॥

**सारथि बोला**—'कुरुक्षेत्रमें परशुरामजीका एक यज्ञ हो रहा है, जो बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला है। उसमें जाकर तुम प्रतिदिन ब्राह्मणोंका जूठा साफ करो; इससे तुम्हारी शुद्धि होगी।' यों कहकर सारथि देवसेवित स्वर्गलोकको चला गया ॥ २९-३० ॥

इन्द्रसूनुः कुरुक्षेत्रं प्राप्तः सारस्वतं तटम् ।
रामसत्रे तथा कुर्याद्द्विजोच्छिष्टस्य मार्जनम् ॥३१॥
पूर्णे द्वादशमे वर्षे तमूचुः शङ्किता द्विजाः ।
कस्त्वं ब्रूहि महाभाग नित्यमुच्छिष्टमार्जकः ॥३२॥
न भुञ्जसे च नः सत्रे शङ्का नो महती भवेत् ।
इत्युक्तः कथयित्वा तु यथावृत्तमनुक्रमात् ॥३३॥
जगाम त्रिदिवं क्षिप्रं रथेन तनयो हरेः ।

"इधर इन्द्रपुत्र जयन्त कुरुक्षेत्रमें सरस्वतीके तटपर आया

और परशुरामजीके यज्ञमें ब्राह्मणोंकी जूठन साफ करने लगा। जब बारहवाँ वर्ष पूर्ण हुआ, तब ब्राह्मणोंने शङ्कित होकर उससे पूछा—'महाभाग ! तुम कौन हो ? जो नित्य जूठन साफ करते हुए भी हमारे यज्ञमें भोजन नहीं करते। इससे हमारे मनमें महान् संदेह हो रहा है।' उनके इस प्रकार पूछनेपर इन्द्रकुमार क्रमशः अपना सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बताकर तुरंत रथसे स्वर्गलोकको चला गया ॥ ३१—३३½ ॥

**तस्मात्त्वमपि भूपाल ब्राह्मणोच्छिष्टमादरात् ॥३४॥**
**मार्जनं कुरु रामस्य सत्रे द्वादशवार्षिके ।**
**ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति सर्वपापहरं परम् ॥३५॥**
**एवं कृते देवदत्तस्यन्दनारोहणे गतिः ।**
**भविष्यति महीपाल प्रायश्चित्ते कृते तव ॥३६॥**
**अत ऊर्ध्वं च निर्माल्यं मा लङ्घय महामते ।**
**नरसिंहस्य देवस्य तथान्येषां दिवौकसाम् ॥३७॥**

"इसलिये, हे भूपाल ! तुम भी परशुरामजीके द्वादशवार्षिक यज्ञमें आदरपूर्वक ब्राह्मणोंकी जूठन साफ करो। ब्राह्मणोंसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पापोंका अपहरण कर सके। महीपाल ! इस प्रकार प्रायश्चित्त कर लेनेपर तुम्हें देवताओंके दिये हुए रथपर चढ़नेकी शक्ति प्राप्त हो जायगी। महामते ! आजसे तुम भी श्रीनृसिंहदेवका तथा अन्य देवताओंके भी निर्माल्यका उल्लङ्घन न करना" ॥ ३४—३७ ॥

**इत्युक्तः शांतनुस्तेन ब्राह्मणोच्छिष्टमार्जनम् ।**
**कृतवान् द्वादशाब्दं तु आरुरोह रथं च तम् ॥३८॥**
**एवं पूर्वमशक्तिः स्याद् रथारोहे महीक्षितः ।**
**पश्चात्तस्यैव विप्रेन्द्र शक्तिरेवमजायत ॥३९॥**

नारदजीके ऐसा कहनेपर शांतनुने बारह वर्षोंतक ब्राह्मणोंकी जूठन साफ की। इसके बाद वे शक्ति पाकर उस रथपर चढ़नेमें समर्थ हुए। विप्रवर ! इस प्रकार पूर्वकालमें राजाकी उस रथपर चढ़नेकी शक्ति जाती रही और फिर उक्त उपाय करनेसे उनमें पुनः वह शक्ति आ गयी ॥ ३८-३९ ॥

**एवं ते कथितो विप्र दोषो निर्माल्यलङ्घने ।**
**पुण्यं तथा द्विजानां तु प्रोक्तमुच्छिष्टमार्जने ॥४०॥**
**भक्त्या द्विजोच्छिष्टमिहापमार्ज्य-**
**च्छुचिर्नरो यः सुसमाहितात्मा ।**
**स पापबन्धं प्रविहाय भुङ्क्ते**
**गवां प्रदानस्य फलं दिवि स्थितः ॥४१॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे शंतनुचरितं नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥*

ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने निर्माल्य लाँघनेमें जो दोष है, वह बताया तथा ब्राह्मणोंका जूठा साफ करनेमें जो पुण्य है, उसका भी वर्णन किया। जो मनुष्य इस लोकमें पवित्र होकर, अपने चित्तको एकाग्र करके, भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका जूठा साफ करता है, वह पापबन्धनसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता और गौओंके दानका फल भोगता है ॥ ४०-४१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शांतनुचरित्र' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

# उन्तीसवाँ अध्याय

## शांतनुकी संततिका वर्णन

श्रीसूत उवाच

**शंतनोर्योजनगन्धायां विचित्रवीर्यः । स तु हस्तिनापुरे स्थित्वा प्रजाः स्वधर्मेण पालयन् देवांश्च यागैः पितॄंश्च श्राद्धैः संतर्प्य संजातपुत्रो दिवमारुरोह ॥ १ ॥ विचित्रवीर्यस्याम्बालिकायां पाण्डुः पुत्रो जज्ञे । सोऽपि राज्यं धर्मतः कृत्वा मुनिशापाच्छरीरं विहाय देवलोकमवाप । तस्य पाण्डोः कुन्तिदेव्यामर्जुनः ॥ २ ॥ स तु महता तपसा शंकरं तोषयित्वा पाशुपतमस्त्रमवाप्य त्रिविष्टपाधिपतेः शत्रून् निवातकवचान् दानवान् हत्वा खाण्डववनमग्नेर्यथारुचि निवेद्य तृप्ताग्नितो दिव्यान् वरानवाप्य सुयोधनेन हृतराज्यो धर्मभीम-**

**नकुलसहदेवद्रौपदीसहितो विराटनगरेऽज्ञातवासं चरित्वा गोग्रहे च भीष्मद्रोणकृपदुर्योधनकर्णादीन् जित्वा समस्तगोमण्डलं निवर्तयित्वा भ्रातृभिः सह विराटराजकृतपूजो वासुदेवसहितः कुरुक्षेत्रे धार्तराष्ट्रैर्बहुबलैर्युद्धं कुर्वन् भीष्मद्रोणकृपशल्यकर्णादिभिर्भूरिपराक्रमैः क्षत्रियैर्नानादेशागतैरनेकैरपि राजपुत्रैः सह दुर्योधनादीन् धार्तराष्ट्रान् हत्वा स्वराज्यं प्राप्य धर्मेण राज्यं परिपाल्य भ्रातृभिः सह मुदितो दिवमारुरोह ॥ ३ ॥**

श्रीसूतजी कहते हैं—शांतनुके योजनगन्धासे 'विचित्रवीर्य' नामक पुत्र हुआ। राजा विचित्रवीर्य हस्तिनापुरमें रहकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे और यज्ञोंद्वारा देवताओंको तथा श्राद्धके द्वारा पितरोंको तृप्त करके पुत्र पैदा होनेपर स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। विचित्रवीर्यके अम्बालिकाके गर्भसे 'पाण्डु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डु भी धर्मपूर्वक राज्यपालन करके मुनिके शापसे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये। उन राजा पाण्डुके कुन्तीदेवीके गर्भसे 'अर्जुन' नामक पुत्र हुआ। अर्जुनने बड़ी भारी तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न किया, उनसे 'पाशुपत' नामक अस्त्र प्राप्त किया और स्वर्गलोकके अधिपति इन्द्रके शत्रु 'निवातकवच' नामक दानवोंका वध करके अग्निदेवको उनकी रुचिके अनुसार खाण्डववन समर्पित किया। खाण्डववनको जलाकर, तृप्त हुए अग्निदेवसे अनेक दिव्य वर प्राप्त कर, दुर्योधनद्वारा अपना राज्य छिन जानेपर उन्होंने (अपने भाई) धर्म ( युधिष्ठिर ), भीम, नकुल, सहदेव और (पत्नी) द्रौपदीके साथ विराटनगरमें अज्ञातवास किया। वहाँ जब शत्रुओंने आक्रमण करके विराटकी गौओंको अपने अधिकारमें कर लिया, तब अर्जुनने भीष्म, द्रोण, कृप, दुर्योधन और कर्ण आदिको हराकर समस्त गौओंको वापस घुमाया। फिर विराटराजके द्वारा भाइयोंसहित सम्मानित होकर कुरुक्षेत्रमें भगवान् वासुदेवको साथ ले अत्यन्त बलशाली धृतराष्ट्र-पुत्रोंके साथ युद्ध किया और भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, कर्ण आदि महापराक्रमी क्षत्रियों तथा नाना देशोंसे आये हुए अनेकों राजपुत्रोंसहित दुर्योधनादि धृतराष्ट्रपुत्रोंका उन्होंने भीम आदिके सहयोगसे वध करके अपना राज्य प्राप्त कर लिया। फिर भाइयोंसहित वे धर्मके अनुसार ( अपने सबसे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरका राजाके पदपर अभिषेक करके ) राज्यका पालन करके अन्तमें सबके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १–३ ॥

**अर्जुनस्य सुभद्रायामभिमन्युः । येन भारतयुद्धे चक्रव्यूहं प्रविश्यानेकभूभुजो निधनं प्रापिताः ॥ ४ ॥ अभिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः । सोऽप्यभिषिक्तो वनं गच्छता धर्मपुत्रेण राज्यं कृत्वा राजपुत्रो नाकं सम्प्राप्य रेमे ॥ ५ ॥ परीक्षितान्मातृवत्यां जनमेजयः । येन ब्रह्महत्यावारणार्थं महाभारतं व्यासशिष्याद्वैशम्पायनात् साद्यन्तं श्रुतम् ॥ ६ ॥ राज्यं च धर्मतः कृत्वा दिवमारुरोह । जनमेजयस्य पुष्पवत्यां शतानीकः ॥ ७ ॥ स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन् संसारदुःखाद्विरक्तः शौनकोपदेशेन क्रियायोगेन सकललोकनाथं विष्णुमाराध्य निष्कामो वैष्णवं पदमवाप । तस्य शतानीकस्य फलवत्यां सहस्रानीकः ॥ ८ ॥ स तु बाल एवाभिषिक्तो नरसिंहेऽत्यन्तं भक्तिमानभवत् । तस्य चरितमुपरिष्टाद् भविष्यति ॥ ९ ॥ सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः । सोऽपि राज्यं कृत्वा धर्मतो नारायणमाराध्य तत्पुरमवाप ॥ १० ॥ उदयनस्य वासवदत्तायां नरवाहनः । स तु यथान्यायं राज्यं कृत्वा दिवमवाप । नरवाहनस्याश्वमेधदत्तायां क्षेमकः ॥ ११ ॥ स च राज्यस्थः प्रजाः परिपाल्य म्लेच्छाभिभूते जगति ज्ञानबलात् कलापग्राममाश्रितः ॥ १२ ॥**

अर्जुनको सुभद्राके गर्भसे 'अभिमन्यु' नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने महाभारत-युद्धमें चक्रव्यूहके भीतर प्रवेश करके अनेक राजाओंको मृत्युके घाट उतारा था। अभिमन्युके उत्तराके गर्भसे परीक्षितका जन्म हुआ। धर्मनन्दन युधिष्ठिर जब वानप्रस्थ धर्मके अनुसार वनमें जाने लगे, तब उन्होंने परीक्षितको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया। तब वे भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके अन्तमें वैकुण्ठधाममें जाकर अक्षय सुखके भागी हुए। परीक्षितसे मातृवतीके गर्भसे जनमेजयका जन्म हुआ, जिन्होंने ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेके लिये व्यासशिष्य वैशम्पायनके मुखसे सम्पूर्ण महाभारत आदिसे अन्ततक सुना था। वे भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके अन्तमें स्वर्गवासी हुए। जनमेजयको अपनी पत्नी पुष्पवतीके गर्भसे

'शतानीक' नामक पुत्र प्राप्त हुआ। उन्होंने धर्मपूर्वक राज्यका पालन करते हुए संसार-दुःखसे विरक्त हो, शौनकके उपदेशसे यागादि कर्मोंके द्वारा समस्त लोकोंके अधीश्वर भगवान् विष्णुकी निष्कामभावसे आराधना की और अन्तमें वैष्णवधामको प्राप्त कर लिया। शतानीकके फलवतीके गर्भसे सहस्रानीककी उत्पत्ति हुई। सहस्रानीक बाल्यावस्थामें ही राजाके पदपर अभिषिक्त हो भगवान् नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखने लगे। उनके चरित्रका आगे वर्णन किया जायगा। सहस्रानीकके मृगवतीसे उदयन हुए। वे कौशाम्बीमें धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके नारायणकी आराधना करते हुए वैकुण्ठधामको प्राप्त हुए। उदयनके वासवदत्ताके गर्भसे नरवाहन नामक पुत्र हुआ। वह भी न्यायतः राज्यका पालन करके स्वर्गको प्राप्त हुआ। नरवाहनके अश्वमेधदत्ताके गर्भसे क्षेमक नामक पुत्रका जन्म हुआ। क्षेमक राजाके पदपर प्रतिष्ठित होनेके पश्चात् प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करने लगे। उन्हीं दिनों म्लेच्छोंका आक्रमण हुआ और सम्पूर्ण जगत् उनके द्वारा पददलित होने लगा। तब वे ज्ञानके बलसे कलापग्राममें चले आये ॥४—१२॥

**यः श्रद्दधानः पठते शृणोति वा**
**हरौ च भक्तिं चरितं महीभृताम् ।**
**स संततिं प्राप्य विशुद्धकर्मकृद्**
**दिवं समासाद्य वसेच्चिरं सुखी ॥१३॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे शंतनुसंतति-वर्णनं नाम*
*एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥*

जो उपर्युक्त राजाओंकी हरिभक्ति तथा चरित्रका श्रद्धापूर्वक पाठ या श्रवण करता है, वह विशुद्ध कर्म करनेवाला पुरुष संतति प्राप्त करके अन्तमें स्वर्गलोकमें पहुँचकर वहाँ सुदीर्घ कालतक सुखी रहता है ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शांतनुकी संततिका वर्णन' नामक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

## तीसवाँ अध्याय

### भूगोल तथा स्वर्गलोकका वर्णन

श्रीसूत उवाच

**अतः परं प्रवक्ष्यामि भूगोलं द्विजसत्तमाः ।**
**संक्षेपात् पर्वताकीर्णं नदीभिश्च समन्ततः ॥ १ ॥**

**श्रीसूतजी बोले**—द्विजवरो ! अब मैं सब ओर नदी तथा पर्वतोंसे व्याप्त भूगोल ( भूमिमण्डल ) का संक्षेपसे वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

**जम्बुप्लक्षशाल्मलकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञाः सप्त द्वीपाः। लक्षयोजनप्रमाणाज्जम्बुद्वीपादुत्तरोत्तरद्विगुणाः ॥ लवणेक्षुरससुरासर्पिर्दधिदुग्धस्वच्छोदकसंज्ञैः परस्परं द्विगुणैः सप्तसमुद्रैर्वलयाकारैस्ते द्वीपाः परिधिष्ठिताः ॥ २ ॥ योऽसौ मनुपुत्रः प्रियव्रतो नाम स सप्तद्वीपाधिपतिर्बभूव । तस्य अग्नीध्रादयो दश पुत्रा बभूवुः ॥ ३ ॥ त्रयः प्रव्रजिताः। शिष्टानां सप्तानां सप्तद्वीपाः पित्रा दत्ताः। तत्र जम्बुद्वीपाधिपतेरग्नीध्रस्य नव पुत्रा जाताः ॥ ४ ॥**

**नाभिः किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ।**
**रम्यो हिरण्मयश्चैव कुरुर्भद्रश्च केतुमान् ॥ ५ ॥**

**नववर्षाः विभज्य पुत्रेभ्यः पित्रा दत्ता वनं प्रविशता । अग्नीध्रीयं हिमाह्वयम् । यस्याधिपतिर्नाभिः ऋषभः पुत्रो बभूव ॥ ६ ॥**

इस पृथ्वीपर जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नामके सात द्वीप हैं। इनमें जम्बूद्वीप तो लाख योजन लंबा-चौड़ा है और प्लक्ष आदि जम्बूद्वीपसे उत्तरोत्तर दुगुने बड़े हैं। ये द्वीप क्रमशः अपनेसे दूने प्रमाणवाले लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और शुद्धोदक नामसे विख्यात सात वलयाकार समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। मनुके जो 'प्रियव्रत' नामक पुत्र थे, वे ही सात द्वीपोंके अधिपति हुए। उनके अग्नीध्र आदि दस पुत्र हुए। इनमेंसे तीन तो सर्वत्यागी संन्यासी हो गये और शेष सातोंको उनके पिताने एक-एक द्वीप बाँट दिया। इनमें जम्बूद्वीपके अधिपति 'अग्नीध्र'के नौ पुत्र हुए। उनके नाम ये हैं—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्र और केतुमान्। राजा अग्नीध्र जब ( घर त्यागकर ) वनमें जाने लगे तब उन्होंने जम्बूद्वीपको उसके नौ खण्ड

करके अपने पुत्रोंको बाँट दिया । हिमालय पर्वतसे मिला हुआ वर्ष अग्नीध्र ( नाभि ) को मिला था । इसके अधिपति राजा नाभिसे 'ऋषभ' नामक पुत्र हुआ ॥ २–६ ॥

**ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत्।इलावृतस्य मध्ये मेरुः सुवर्णमयश्चतुरशीतिसहस्राणि योजनानि तस्योच्छ्रायः । षोडशसहस्रमप्यधस्तादवगाढः । तद्द्विगुणो मूर्ध्नि विस्तारः ॥ ७ ॥ तन्मध्ये ब्रह्मणः पुरी । ऐन्द्र्यामिन्द्रस्य चामरावती । आग्नेय्यामग्नेस्तेजोवती । याम्यां यमस्य संयमनी । नैर्ऋत्यां निर्ऋतेर्भयंकरी । वारुण्यां वरुणस्य विश्वावती । वायव्यां वायोर्गन्धवती । उदीच्यां सोमस्य विभावरीति । नववर्षान्वितं जम्बूद्वीपं पुण्यपर्वतैः पुण्यनदीभिरन्वितम् ॥८॥ किम्पुरुषादीन्यष्टवर्षाणि पुण्यवतां भोगस्थानानि साक्षाद् भारतवर्षमेकं कर्मभूमिश्चातुर्वर्ण्ययुतम् ॥ ९ ।**

**तत्रैव कर्मभिः स्वर्गं कृतैः प्राप्स्यन्ति मानवाः ।**
**मुक्तिश्चात्रैव निष्कामैः प्राप्यते ज्ञानकर्मभिः ।**
**अधोगतिमितो विप्र यान्ति वै पापकारिणः ॥१०॥**

**ये पापकारिणस्तान् विद्धि पातालतले नरके कोटिसमन्वितान् ॥ ११ ॥**

ऋषभसे भरतका जन्म हुआ, जिनके द्वारा चिरकालतक धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण इस देशका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा । इलावृत वर्षके बीचमें मेरु नामक सुवर्णमय पर्वत है । उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । वह सोलह हजार योजनतक नीचे जमीनमें गड़ा है और इसके दूनी ( बत्तीस हजार योजन ) इसकी चोटीकी चौड़ाई है । इसीके मध्यभागमें ब्रह्माजीकी पुरी है, पूर्वभागमें इन्द्रकी 'अमरावती' है, अग्निकोणमें अग्निकी 'तेजोवती' पुरी है, दक्षिणमें यमराजकी 'संयमनी' है, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिकी 'भयंकरी' नामक पुरी है, पश्चिममें वरुणकी 'विश्वावती' है, वायव्यकोणमें वायुकी 'गन्धवती' नगरी है और उत्तरमें चन्द्रमाकी 'विभावरी' पुरी है । नौ खण्डोंसे युक्त यह जम्बूद्वीप पुण्य पर्वतों तथा पुण्य नदियोंसे युक्त है । किम्पुरुष आदि आठ वर्ष पुण्यवानोंके भोगस्थान हैं; केवल एक भारतवर्ष ही चारों वर्णोंसे युक्त कर्म-क्षेत्र है । भारतवर्षमें ही कर्म करनेसे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करेंगे और वहाँ ही ज्ञान-साधकको निष्काम कर्मोंसे मुक्ति भी प्राप्त होती है । विप्रवर ! पाप करनेवाले पुरुष यहाँसे अधोगतिको प्राप्त होते हैं । जो पापी हैं, उन करोड़ों मनुष्योंको पातालस्थ नरकमें पड़े हुए समझिये ॥७–११॥

**अथ सप्त कुलपर्वताः कथ्यन्ते । महेन्द्रो मलयः शुक्तिमान् ऋष्यमूकः सह्यपर्वतो विन्ध्यः पारियात्रः । इत्येते भारते कुलपर्वताः ॥ १२ ॥ नर्मदा सुरसा ऋषिकुल्या भीमरथी कृष्णा वेणी चन्द्रभागा ताम्रपर्णी इत्येताः सप्त नद्यः । गङ्गा यमुना गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी सरयूरित्येता महानद्यः पापघ्न्यः ॥ १३ ॥**

अब सात कुलपर्वतोंका वर्णन किया जाता है—महेन्द्र, मलय, शुक्तिमान्, ऋष्यमूक, सह्य, विन्ध्य और पारियात्र । ये ही भारतवर्षमें कुलपर्वत हैं । नर्मदा, सुरसा, ऋषिकुल्या, भीमरथी, कृष्णावेणी, चन्द्रभागा तथा ताम्रपर्णी—ये सात नदियाँ हैं तथा गङ्गा, यमुना, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी और सरयू—ये छः महानदियाँ सब पापोंको नष्ट करनेवाली हैं ॥ १२-१३ ॥

**जम्बुनाम्ना च विख्यातं जम्बुद्वीपमिदं शुभम् ।**
**लक्षयोजनविस्तीर्णमिदं श्रेष्ठं तु भारतम् ॥ १४ ॥**

**ऋक्षद्वीपादिपुण्या जनपदाः । निष्कामा ये स्वधर्मेण नरसिंहं यजन्ति ते तत्र निवसन्ति । अधिकारक्षयान्मुक्तिं च प्राप्नुवन्ति ॥ १५ ॥ जम्ब्वाद्याः स्वादूदकान्ताः सप्त पयोधयः । ततः परा हिरण्मयी भूमिः । ततो लोकालोकपर्वतः । एष भूर्लोकः ॥ १६ ॥**

यह सुन्दर जम्बूद्वीप जम्बू ( जामुन ) के नामसे विख्यात है । इसका विस्तार एक लाख योजन है । इस द्वीपमें यह भारतवर्ष ही सबसे श्रेष्ठ स्थान है । ऋक्षद्वीप आदि पुण्य देश हैं । जो लोग निष्कामभावसे अपने-अपने वर्णधर्मका आचरण करते हुए भगवान् नृसिंहका यजन करते हैं, वे ही उन पुण्य देशोंमें निवास करते

हैं तथा कर्माधिकारका क्षय हो जानेपर मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं। जम्बूद्वीपसे लेकर 'शुद्धोदक'संज्ञक समुद्रपर्यन्त सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उसके बाद स्वर्णमयी भूमि है। उसके आगे लोकालोक पर्वत है—यह सब 'भूलोकका' वर्णन हुआ ॥ १४—१६ ॥

अस्योपरि अन्तरिक्षलोकः ।
खेचराणां रम्यस्तदूर्ध्वं स्वर्गलोकः ।।१७।।
स्वर्गस्थानं महापुण्यं प्रोच्यमानं निबोधत ।
भारते कृतपुण्यानां देवानामपि चालयम् ।।१८।।
मध्ये पृथिव्यामद्रीन्द्रो भास्वान् मेरुर्हिरण्मयः ।
योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिमुच्छ्रितः ।।१९।।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्धरण्यां धरणीधरः ।
तावत्प्रमाणा पृथिवी पर्वतस्य समन्ततः ।।२०।।

इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जो अन्तरिक्षचारी प्राणियोंके लिये परम रमणीय है। इसके ऊपर स्वर्गलोक है। अब महापुण्यमय स्वर्गलोकका वर्णन किया जाता है, उसे आपलोग मुझसे सुनें। जिन्होंने भारतवर्षमें रहकर पुण्यकर्म किये हैं, उनका तथा देवताओंका वहाँ निवास है। भूमण्डलके बीचमें पर्वतोंका राजा मेरु है, जो सुवर्णमय होनेके कारण अपनी प्रभासे उद्भासित होता रहता है। वह पर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा है और सोलह हजार योजनतक पृथ्वीमें नीचेकी ओर धँसा हुआ है। साथ ही उसके चारों ओर उतने ही प्रमाणवाली पृथिवी है ॥१७—२०॥

तस्य शृङ्गत्रयं मूर्ध्नि स्वर्गो यत्र प्रतिष्ठितः ।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ।।२१।।
मध्यमं पश्चिमं पूर्वं मेरोः शृङ्गाणि त्रीणि वै ।
मध्यमं स्फाटिकं शृङ्गं वैदूर्यमणिकामयम् ।।२२।।
इन्द्रनीलमयं पूर्वं माणिक्यं पश्चिमं स्मृतम् ।
योजनानां सहस्राणि नियुतानि चतुर्दश ।।२३।।
उच्छ्रितं मध्यमं शृङ्गं स्वर्गो यत्र त्रिविष्टपः ।
अग्रभान्तरितं शृङ्गं मूर्ध्नि छत्राकृति स्थितम् ।।२४।।
पूर्वमुत्तरशृङ्गाणामन्तरं मध्यमस्य च ।
त्रिविष्टपे नाकपृष्ठे ह्यप्सराः सन्ति निर्वृताः ।।२५।।

मेरुगिरिके ऊपरी भागमें तीन शिखर हैं, जहाँ स्वर्गलोक बसा हुआ है। मेरुके वे स्वर्गीय शिखर नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आवृत तथा भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित हैं। मध्यम, पश्चिम और पूर्व—ये ही तीन मेरुके शिखर हैं। इनमें मध्यम शृङ्ग स्फटिक तथा वैदूर्यमणिमय हैं, पूर्व शृङ्ग इन्द्रनीलमय और पश्चिम शिखर माणिक्यमय कहा जाता है। इनमेंसे मध्यम शृङ्ग चौदह लाख चौदह हजार योजन ऊँचा है, जहाँ 'त्रिविष्टप' नामका स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है। पूर्व शृङ्ग मेरुके ऊपर छत्राकार स्थित है। मध्यम शृङ्ग और उसके बीचका अन्धकारका व्यवधान है। वह मध्यम शृङ्ग और उसके बादवाले पश्चिम शिखरके बीचमें स्थित है। नाकपृष्ठ—त्रिविष्टपमें आनन्दमयी अप्सराएँ निवास करती हैं ॥ २१—२५ ॥

आनन्दोऽथ प्रमोदश्च स्वर्गशृङ्गे तु मध्यमे ।
श्वेतश्च पौष्टिकश्चैव उपशोभनमन्मथौ ।।२६।।
आह्लादः स्वर्गराजा वै स्वर्गशृङ्गे तु पश्चिमे ।
निर्ममो निरहंकारः सौभाग्यश्चातिनिर्मलः ।।२७।।
स्वर्गाश्चैव द्विजश्रेष्ठ पूर्वशृङ्गे समास्थिताः ।
एकविंशतिः स्वर्गा वै निविष्टा मेरुमूर्द्धनि ।।२८।।
अहिंसादानकर्तारो यज्ञानां तपसां तथा ।
तत्तेषु निवसन्ति स्म जनाः क्रोधविवर्जिताः ।।२९।।

मेरुके मध्यवर्ती शिखरपर विराजमान स्वर्गमें आनन्द और प्रमोदका वास है। पश्चिम शिखरपर श्वेत, पौष्टिक, उपशोभन और काम एवं स्वर्गके राजा आह्लाद निवास करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! पूर्व शिखरपर निर्मम, निरहंकार, सौभाग्य और अतिनिर्मल नामक स्वर्ग सुशोभित होते हैं। मेरु पर्वतकी चोटीपर कुल इक्कीस स्वर्ग बसे हुए हैं। जो अहिंसाधर्मका पालन करनेवाले और दानी हैं तथा जो यज्ञ और तपका अनुष्ठान करनेवाले हैं, वे क्रोधरहित मनुष्य इन स्वर्गोंमें निवास करते हैं ॥ २६—२९ ॥

जलप्रवेशे चानन्दं प्रमोदं वह्निसाहसे ।
भृगुप्रपाते सौख्यं च रणं चैवास्य निर्मलम् ।।३०।।
अनाशके तु संन्यासे मृतो गच्छेत्त्रिविष्टपम् ।
क्रतुयाजी नाकपृष्ठमग्निहोत्री च निर्वृतिम् ।।३१।।
तडागकूपकर्त्ता च लभते पौष्टिकं द्विज ।
सुवर्णदायी सौभाग्यं लभन्स्वर्गं तपःफलम् ।।३२।।

शीतकाले महावह्निं प्रज्वालयति यो नरः ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय स्वर्गं सोऽप्सरसं लभेत् ॥३३॥
हिरण्यगोप्रदाने हि निरहंकारमाप्नुयात् ।
भूमिदानेन शुद्धेन लभते शान्तिकं पदम् ॥३४॥
रौप्यदानेन स्वर्गं तु निर्मलं लभते नरः ।
अश्वदानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम् ॥३५॥
द्विजेभ्यस्तर्पणं कृत्वा दत्त्वा वस्त्राणि भक्तितः ।
श्वेतं तु लभते स्वर्गं यत्र गत्वा न शोचते ॥३६॥

जो धर्मपालनके लिये जलमें प्रविष्ट होकर प्राण त्याग करते हैं, वे 'आनन्द' नामक स्वर्गको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जो धर्मरक्षाके ही लिये अग्निमें जलनेका साहस करते हैं, उन्हें 'प्रमोद' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है और जो धर्मार्थ पर्वतशिखरसे कूदकर प्राण देते हैं, उन्हें 'सौख्य'-संज्ञक स्वर्ग प्राप्त होता है। संग्रामकी मृत्युसे 'निर्मल' ( या अतिनिर्मल ) नामक स्वर्गकी उपलब्धि होती है। उपवास-व्रत एवं संन्यासावस्थामें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोग 'त्रिविष्टप' नामक स्वर्गमें जाते हैं। श्रौत यज्ञ करनेवाला 'नाकपृष्ठ' में और अग्निहोत्री 'निर्वृति' नामक स्वर्गमें जाते हैं। द्विज ! पोखरा और कुआँ बनवानेवाला मनुष्य 'पौष्टिक' स्वर्गको पाता है, सोना दान करनेवाला पुरुष तपस्याके फलभूत 'सौभाग्य' नामक स्वर्गको जाता है। जो शीतकालमें सब प्राणियोंके हितके लिये लकड़ियोंके ढेरको जलाकर बड़ी भारी अग्निराशि प्रज्वलित करता और उन्हें गरमी पहुँचाता है, वह 'अप्सरा' संज्ञक स्वर्गको उपलब्ध करता है। सुवर्ण और गोदान करनेपर दाता 'निरहंकार' नामवाले स्वर्गको पाता है और शुद्धभावसे भूमिदान करके मनुष्य 'शान्तिक' नामसे प्रसिद्ध स्वर्गधामको उपलब्ध करता है। चाँदी दान करनेसे मनुष्यको 'निर्मल' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अश्वदानसे दाता 'पुण्याह'का और कन्यादानसे 'मङ्गल'का लाभ करता है। ब्राह्मणोंको तृप्त करके उन्हें भक्तिपूर्वक वस्त्र दान करनेसे मनुष्य 'श्वेत' नामक स्वर्गको पाता है, जहाँ जाकर वह कभी शोकका भागी नहीं होता ॥ ३०—३६ ॥

कपिलागोप्रदानेन परमार्थे महीयते ।
गोवृषस्य प्रदानेन स्वर्गं मन्मथमाप्नुयात् ॥३७॥
माघमासे सरित्स्नायी तिलधेनुप्रदस्तथा ।
छत्रोपानहदाता च स्वर्गं यात्युपशोभनम् ॥३८॥
देवतायतनं कृत्वा द्विजशुश्रूषकस्तथा ।
तीर्थयात्रापरश्चैव स्वर्गराजे महीयते ॥३९॥
एकान्नभोजी यो मर्त्यो नक्तभोजी च नित्यशः ।
उपवासी त्रिरात्राद्यैः शान्तः स्वर्गं शुभं लभेत् ॥४०॥
सरित्स्नायी जितक्रोधो ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
निर्मलं स्वर्गमाप्नोति यथा भूतहिते रतः ।
विद्यादानेन मेधावी निरहंकारमाप्नुयात् ॥४१॥

कपिला गौका दान करनेसे दाता 'परमार्थ' नामक स्वर्गमें पूजित होता है और उत्तम साँड़का दान करनेसे उसे 'मन्मथ' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो माघके महीनेमें नित्य नदीमें स्नान करता, तिलमयी धेनु देता और छत्र तथा जूतेका दान करता है, वह 'उपशोभन' नामक स्वर्गमें जाता है। जिसने देवमन्दिर बनवाया है, जो द्विजोंकी सेवा करता है तथा सदा तीर्थयात्रा करता रहता है, वह 'स्वर्गराज' ( आह्लाद ) में प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य नित्य एक ही अन्न भोजन करता, जो प्रतिदिन केवल रातमें ही खाता तथा त्रिरात्र आदि व्रतोंके द्वारा उपवास किया करता है, वह 'शुभ' नामक स्वर्गको पाता है। नदीमें स्नान करनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला एवं दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी सम्पूर्ण जीवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले पुरुषके समान 'निर्मल' नामक स्वर्गको पाता है। मेधावी पुरुष विद्यादान करके 'निरहंकार' नामक स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ३७—४१ ॥

येन येन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्स्वर्गमवाप्नोति यद्यदिच्छति मानवः ॥४२॥
चत्वारि अतिदानानि कन्या गौर्भूः सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येते जयवाहनदोहनात् ॥४३॥
यस्तु सर्वाणि दानानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
सम्प्राप्य न निवर्तेत स्वर्गं शान्तमनामयम् ॥४४॥
शृङ्गे तु पश्चिमे यत्र ब्रह्मा तत्र स्थितः स्वयम् ।
पूर्वशृङ्गे स्वयं विष्णुः मध्ये चैव शिवः स्थितः ॥४५॥

मनुष्य जिस-जिस भावनासे जो-जो दान देता है और उससे जो-जो फल चाहता है, तदनुसार ही विभिन्न स्वर्गलोकोंको पाता है। कन्या, गौ, भूमि तथा विद्या—इन चारोंके दानको 'अतिदान' कहा गया है। ये चार

वस्तुएँ दान की जानेपर दाताका नरकसे उद्धार कर देती हैं। इतना ही नहीं, बैलपर सवारी करने और गायको दुहनेसे जो दोष होता है, उससे भी मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मणोंको सब प्रकारके दान अर्पित करता है, वह शान्त एवं निरामय स्वर्गलोकको प्राप्त होकर फिर वहाँसे नहीं लौटता है। मेरुगिरिके पश्चिम शिखरपर, जहाँ स्वयं ब्रह्माजी विराजमान हैं, वहीं वह स्वयं भी वास करता है। पूर्वशृङ्गपर साक्षात् भगवान् विष्णु और मध्यम शृङ्गपर शिवजी विराजमान हैं ॥ ४२-४५ ॥

**अतः परं तु विप्रेन्द्र स्वर्गाध्वानमिमं शृणु ।**
**विमलं विपुलं शुद्धमुपर्युपरि संस्थितम् ॥४६॥**
**प्रथमे तु कुमारस्तु द्वितीये मातरः स्थिताः ।**
**तृतीये सिद्धगन्धर्वास्तुर्ये विद्याधरा द्विज ॥४७॥**
**पञ्चमे नागराजा च षष्ठे तु विनतासुतः ।**
**सप्तमे दिव्यपितरो धर्मराजस्तथाष्टमे ।**
**नवमे तु तथा दक्ष आदित्यो दशमे पथि ॥४८॥**

विप्रेन्द्र ! इसके बाद आप स्वर्गके इस 'निर्मल' तथा 'विशाल' मार्गका वर्णन सुनें। स्वर्गलोकके दस मार्ग हैं। ये सभी एकके ऊपर दूसरेके क्रमसे स्थित हैं। प्रथम मार्गपर कुमार कार्तिकेय और दूसरेपर मातृकाएँ रहती हैं। द्विज ! तीसरे मार्गपर सिद्ध-गन्धर्व, चौथेपर विद्याधर, पाँचवेंपर नागराज और छठेपर विनतानन्दन गरुड-जी विराजमान हैं। सातवेंपर दिव्य पितृगण, आठवेंपर धर्मराज, नवेंपर दक्ष और दसवें मार्गपर आदित्यकी स्थिति है ॥४६-४८॥

**भूर्लोकाच्छतसाहस्रादूर्ध्वं चरति भास्करः ।**
**योजनानां सहस्रे द्वे विष्कम्भं समन्ततः ॥४९॥**
**त्रिगुणं परिणाहेन सूर्यबिम्बं प्रमाणतः ।**
**सोमपुर्यां विभावर्यां मध्याह्ने चार्यमा यदा ।**
**महेन्द्रस्यामरावत्यां तदा तिष्ठति भास्करः ॥५०॥**
**मध्याह्ने त्वमरावत्यां यदा भवति भास्करः ।**
**तदा संयमने याम्ये तत्रोद्यंस्तु प्रदृश्यते ॥५१॥**
**मेरुं प्रदक्षिणं कुर्वन् भात्येव सविता सदा ।**
**ध्रुवाधारस्तथोत्तिष्ठन् बालखिल्यादिभिः स्तुतः ॥५२॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे भूगोलकथने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥*

भूलोकसे एक लाख दो हजार योजनकी ऊँचाईपर सूर्यदेव विचरते हैं। उस ऊँचाईपर सब ओर उनके रुकनेके लिये आधार हैं तथा उस ऊँचाईसे तीन गुने प्रमाणमें सूर्यमण्डलका दीर्घ विस्तार है। जिस समय सूर्य चन्द्रमाकी विभावरीपुरीमें दोपहरके समय रहते हैं, उस समय इन्द्रकी अमरावतीमें उदय होते-से प्रतीत होते हैं। जिस समय अमरावतीपुरीमें मध्याह्नके समय सूर्य रहते हैं, उस समय यमकी संयमनी पुरीमें उदित होते दीख पड़ते हैं। भगवान् सूर्य सदा मेरुगिरिकी परिक्रमा करते हुए ही सुशोभित होते हैं। वे ध्रुवके आधारपर स्थित हैं। उनके उदय होते समय बालखिल्यादि ऋषि उनकी स्तुति करते हैं ॥ ४९—५२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'भूगोलवर्णन' विषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

## इकतीसवाँ अध्याय

### ध्रुव-चरित्र तथा ग्रह, नक्षत्र एवं पातालका संक्षिप्त वर्णन

भरद्वाज उवाच

**कोऽसौ ध्रुवः कस्य सुतः सूर्याधारोऽभवत्कथम् ।**
**विचिन्त्य कथयाशु त्वं सूत जीव समाः शतम् ॥ १ ॥**

**भरद्वाजजीने पूछा**—सूतजी ! ध्रुव कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? तथा वे सूर्यके आधार कैसे हुए ? ये सब बातें भलीभाँति सोच-विचारकर बताइये। हमारी यह कामना है कि आप हमें कथा सुनाते हुए सैकड़ों वर्षोंतक जीवित रहें ॥ १ ॥

सूत उवाच

**मनोः स्वायम्भुवस्यासीदुत्तानचरणः सुतः ।**
**तस्य क्षितिपतेर्विप्र द्वौ सुतौ सम्बभूवतुः ॥ २ ॥**

सुरुच्यामुत्तमो ज्येष्ठः सुनीत्यां तु ध्रुवोऽपरः ।
मध्येसभं नरपतेरुपविष्टस्य चैकदा ॥ ३ ॥
सुनीत्या राजसेवार्थं नियुक्तोऽलंकृतः सुतः ।
ध्रुवो धात्रेयिकापुत्रैः समं विनयतत्परः ॥ ४ ॥
स गत्वोत्तानचरणं क्षोणीशं प्रणनाम ह ।
दृष्ट्वोत्तमं तदुत्सङ्गे निविष्टं जनकस्य वै ॥ ५ ॥
प्राप्य सिंहासनस्थं च नृपतिं बालचापलात् ।
आरुरुक्षुमवेक्ष्यामुं सुरुचिर्ध्रुवमब्रवीत् ॥ ६ ॥

**सूतजी बोले**—विप्रवर ! स्वायम्भुव मनुके एक पुत्र थे राजा उत्तानपाद। उन भूपालके दो पुत्र हुए । एक तो सुरुचिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम उत्तम था । वह ज्येष्ठ था और दूसरा पुत्र 'ध्रुव' था, जो सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । एक दिन जब राजा राजसभामें बैठे हुए थे, सुनीतिने अपने पुत्र ध्रुवको वस्त्राभूषणसे विभूषित करके राजाकी सेवाके लिये भेजा । विनयशील ध्रुवने धायके पुत्रोंके साथ राजसभामें जाकर राजा उत्तानपादको प्रणाम किया । वहाँ उत्तमको पिताकी गोदमें बैठा देख ध्रुव सिंहासनपर आसीन राजाके पास जा पहुँचा और बालोचित चपलताके कारण राजाकी गोदमें चढ़नेकी इच्छा करने लगा । यह देख सुरुचिने ध्रुवसे कहा ॥ २—६ ॥

सुरुचिरुवाच

दौर्भाग्येय किमारोढुमिच्छेरङ्कं महीपतेः ।
बाल बालिशबुद्धित्वादभाग्याजाठरोद्भवः ॥ ७ ॥
अस्मिन् सिंहासने स्थातुं सुकृतं किं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥
यदि स्यात्सुकृतं तत्किं दुर्भाग्योदरगोऽभवः ।
अनेनैवानुमानेन बुध्यस्व स्वल्पपुण्यताम् ॥ ९ ॥
भूत्वा राजकुमारोऽपि नालंकुर्या ममोदरम् ।
सुकुक्षिजममुं पश्य त्वमुत्तममनुत्तमम् ॥१०॥
अधिजानु धराजानेर्मानेन परिबृंहितम् ।

**सुरुचि बोली**—अभागिनीके बच्चे ! क्या तू भी महाराजकी गोदमें चढ़ना चाहता है ? बालक ! मूर्खतावश ही ऐसी चेष्टा कर रहा है । तू इसके योग्य कदापि नहीं है; क्योंकि तू एक भाग्यहीना स्त्रीके गर्भसे पैदा हुआ है । बता तो सही, तूने इस सिंहासनपर बैठनेके लिये कौन-सा पुण्यकर्म किया है ? यदि पुण्य ही किया होता तो क्या अभागिनीके गर्भसे जन्म लेता ? राजकुमार होनेपर भी तू मेरे उदरकी शोभा नहीं बढ़ा सका है । इसी बातसे जान ले कि तेरा पुण्य बहुत कम है । उत्तम कोखसे पैदा हुआ है—कुमार 'उत्तम' जो सर्वश्रेष्ठ है; देखो, वह कितने सम्मानके साथ पृथ्वीनाथ महाराजके दोनों घुटनोंपर बैठा है ॥७—१०½॥

सूत उवाच

मध्येराजसभं बालस्तयेति परिभर्त्सितः ॥११॥
निपतन्नेत्रबाष्पाम्बुर्धैर्यात्किंचिन्न चोक्तवान् ।
उचितं नोचितं किंचिन्नोचिवान् सोऽपि पार्थिवः॥१२॥
नियन्त्रितो महिष्याश्च तस्याः सौभाग्यगौरवात् ।
विसर्जितसभालोकं शोकं संहृत्य चेष्टितैः ॥१३॥
शैशवैः स शिशुर्नत्वा नृपं स्वसदनं ययौ ।

**सूतजी कहते हैं**—राजसभाके बीच सुरुचिके द्वारा इस प्रकार झिड़के जानेपर बालक ध्रुवकी आँखोंसे अश्रुबिन्दु झरने लगे; किंतु वह धैर्यपूर्वक कुछ भी न बोला । इधर राजा भी रानीके सौभाग्य-गौरवसे आबद्ध हो, उसका कार्य उचित था या अनुचित, कुछ भी न कह सके । जब सभासद्गण विदा हुए, तब अपनी शैशवोचित चेष्टाओंसे शोकको दबाकर वह बालक राजाको प्रणाम करके अपने घरको गया ॥ ११—१३½ ॥

सुनीतिर्नीतिनिलयमवलोक्याथ बालकम् ॥१४॥
मुखलक्ष्म्यैव चाज्ञासीद् ध्रुवं राज्ञापमानितम् ।
अथ दृष्ट्वा सुनीतिं तु रहोऽन्तःपुरवासिनीम् ॥१५॥
आलिङ्ग्य दीर्घं निःश्वस्य मुक्तकण्ठं रुरोद ह ।
सान्त्वयित्वा सुनीतिस्तं वदनं परिमार्ज्य च ॥१६॥
दुकूलाञ्चलसम्पर्कैर्वीज्य तं मृदुपाणिना ।
पप्रच्छ तनयं माता वद रोदनकारणम् ॥१७॥
विद्यमाने नरपतौ शिशो केनापमानितः ।

सुनीतिने अपने नीतिके खजाने बालकको देखकर उसके मुखकी कान्तिसे ही जान लिया कि ध्रुवका राजाके द्वारा अपमान किया गया है । माता सुनीतिको अन्तःपुरके एकान्त स्थानमें देखकर ध्रुव अपने दुःखके आवेगको न रोक सका । वह माताके गलेसे लगकर लंबी साँस खींचता हुआ फूट-फूटकर रोने

गया। सुनीतिने उसे सान्त्वना देकर कोमल हाथसे उसका मुख पोंछा और साड़ीके अञ्चलसे हवा करती हुई माता अपने लालसे पूछने लगी—'बेटा ! अपने रोनेका कारण बताओ। राजाके रहते हुए किसने तुम्हारा अपमान किया है ?' ॥ १४–१७½ ॥

ध्रुव उवाच

सम्पृच्छे जननि त्वाहं सम्यक् शंस ममाग्रतः ॥१८॥
भार्यात्वेऽपि च सामान्ये कथं सा सुरुचिः प्रिया।
कथं न भवती मातः प्रिया क्षितिपतेरसि ॥१९॥
कथमुत्तमतां प्राप्त उत्तमः सुरुचेः सुतः ।
कुमारत्वेऽपि सामान्ये कथं चाहमनुत्तमः ॥२०॥
कथं त्वं मन्दभाग्यासि सुकुक्षिः सुरुचिः कथम् ।
कथं नृपासनं योग्यमुत्तमस्य कथं न मे ॥२१॥
कथं मे सुकृतं तुच्छमुत्तमस्योत्तमं कथम् ।

**ध्रुव बोला**—माँ ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, मेरे आगे तुम ठीक-ठीक बताओ । जैसे सुरुचि राजाकी धर्मपत्नी है, वैसे ही तुम भी हो; फिर उन्हें सुरुचि ही क्यों प्यारी है ? माता तुम उन नरेशको क्यों प्रिय नहीं हो ? सुरुचिका पुत्र उत्तम क्यों श्रेष्ठ है ? राजकुमार होनेमें तो हम दोनों एक समान हैं । फिर क्या कारण है कि मैं उत्तम नहीं हूँ ? तुम क्यों मन्दभागिनी हो और सुरुचि क्यों उत्तम कोखवाली है ? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है ? मेरे योग्य क्यों नहीं है ? मेरा पुण्य तुच्छ और उत्तमका पुण्य उत्तम कैसे है ? ॥ १८–२१½ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुनीतिर्नीतिमच्छिशोः ॥२२॥
किंचिदुच्छ्वस्य शनकैः शिशुशोकोपशान्तये ।
स्वभावमधुरां वाणीं वक्तुं समुपचक्रमे ॥२३॥

सुनीति अपने पुत्रके इस नीतियुक्त वचनको सुनकर धीरेसे थोड़ी लंबी साँस खींच बालकका दुःख शान्त करनेके लिये स्वभावतः मधुर वाणीमें बोलने लगी ॥ २२-२३ ॥

सुनीतिरुवाच

अयि तात महाबुद्धे विशुद्धेनान्तरात्मना ।
निवेदयामि ते सर्वं मावमाने मतिं कृथाः ॥२४॥
तया यदुक्तं तत्सर्वं तथ्यमेव न चान्यथा ।
यदि सा महिषी राज्ञो राज्ञीनामतिवल्लभा ॥२५॥
महासुकृतसम्भारैरुत्तमश्चोत्तमोदरे ।
उवास तस्याः पुण्याया नृपसिंहासनोचितः ॥२६॥
आतपत्रं च चन्द्राभं शुभे चापि हि चामरे ।
भद्रासनं तथोच्चं च सिन्धुराश्च मदोत्कटाः ॥२७॥
तुरंगमाश्च तुरगा अनाधिव्याधि जीवितम् ।
निस्सपत्नं शुभं राज्यं प्राप्यं विष्णुप्रसादतः ॥२८॥

**सुनीति बोली**—तात ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो । तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब शुद्ध हृदयसे मैं निवेदन करती हूँ; तुम अपमानकी बात मनमें न लाओ । सुरुचिने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है, अन्यथा नहीं है । यदि वह पटरानी है तो सभी रानियोंसे बढ़कर राजाकी प्यारी है ही । राजकुमार उत्तमने बहुत बड़े पुण्योंका संग्रह करके उस पुण्यवती रानीके उत्तम गर्भमें निवास किया था, अतः वही राजसिंहासनपर बैठनेके योग्य है । चन्द्रमाके समान निर्मल श्वेत छत्र, सुन्दर युगल चँवर, उच्च सिंहासन, मदमत्त गजराज, शीघ्रगामी तुरंग, आधि-व्याधियोंसे रहित जीवन, शत्रुरहित सुन्दर राज्य—ये वस्तुएँ भगवान् विष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं ॥ २४–२८ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य सुनीत्यास्तन्मातुर्वाक्यमनिन्दितम् ।
सौनीतेयो ध्रुवो वाचमाददे वक्तुमुत्तरम् ॥२९॥

**सूतजी बोले**—माता सुनीतिके इस उत्तम वचनको सुनकर सुनीतिकुमार ध्रुवने उन्हें उत्तर देनेके लिये बोलना आरम्भ किया ॥ २९ ॥

ध्रुव उवाच

जनयित्रि सुनीते मे शृणु वाक्यमनाकुलम् ।
उत्तानचरणादन्यन्नास्तीति मे मतिः शुभे ॥३०॥
सिद्धार्थोऽस्म्यम्ब यद्यस्ति कश्चिदाश्रितकामधुक् ।
अद्यैव सकलाराध्यं तमाराध्य जगत्पतिम् ॥३१॥
तत्तदासादितं विद्धि पदमन्यैर्दुरासदम् ।
एकमेव हि साहाय्यं मातर्मे कर्तुमर्हसि ॥३२॥
अनुज्ञां देहि मे विष्णुं यथा चाराधयाम्यहम् ।

**ध्रुव बोला**—जन्मदायिनी माता सुनीते ! आज मेरे शान्तिपूर्वक कहे हुए वचन सुनो । शुभे ! आजतक मैं यही

समझता था कि पिता उत्तानपादसे बढ़कर और कुछ नहीं है। परंतु अम्ब ! यदि अपने आश्रितजनोंकी कामना पूर्ण करनेवाला कोई और भी है तो यह जानकर आज मैं कृतार्थ हो गया। माँ! तुम ऐसा समझो कि उन सर्वाराध्य जगदीश्वरकी आराधना करके जो-जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ है, वह सब मैंने आज ही प्राप्त कर लिया। माता ! तुम्हें मेरी एक ही सहायता करनी चाहिये। केवल आज्ञा दे दो, जिससे मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करूँ ॥ ३०—३२½ ॥

सुनीतिरुवाच

अनुज्ञातुं न शक्नोमि त्वामुत्तानशयाङ्गज ॥३३॥
सप्ताष्टवर्षदेशीयः क्रीडायोग्योऽसि पुत्रक ।
त्वदेकतनया तात त्वदाधारैकजीविता ॥३४॥
लब्धोऽसि कतिभिः कष्टैरिष्टाः सम्प्रार्थ्य देवताः ।
यदा यदा बहिर्यासि रन्तुं त्रिचतुरं पदम् ।
तदा तदा मम प्राणस्तात त्वामुपगच्छति ॥३५॥

**सुनीति बोली**—बेटा ! उत्तानपादनन्दन ! मैं तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकती। मेरे बच्चे ! इस समय तुम्हारी सात-आठ वर्षकी अवस्था है। अभी तो तुम खेलने-कूदनेके योग्य हो। तात ! एकमात्र तुम्हीं मेरी संतान हो; मेरा जीवन एक तुम्हारे ही आधारपर टिका हुआ है। कितने ही कष्ट उठाकर, अनेक इष्ट देवी-देवताओंकी प्रार्थना करके मैंने तुम्हें पाया है। तात ! तुम जब-जब खेलनेके लिये भी तीन-चार कदम बाहर जाते हो, तब-तब मेरे प्राण तुम्हारे पीछे-ही-पीछे लगे रहते हैं ॥ ३३—३५ ॥

ध्रुव उवाच

अद्य यावत् पिता माता त्वं चोत्तानपदो विभुः ।
अद्य प्रभृति मे माता पिता विष्णुर्न संशयः ॥३६॥

**ध्रुव बोला**—माँ ! अबतक तो तुम और राजा उत्तानपाद ही मेरे माता-पिता थे; परंतु आजसे मेरे माता और पिता दोनों भगवान् विष्णु ही हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ३६ ॥

सुनीतिरुवाच

विष्णोराराधने नाहं वारये त्वां सुपुत्रक ।
जिह्वा मे शतधा याति यदि त्वां वारयामि भोः ॥३७॥

**सुनीति बोली**—मेरे सुयोग्य पुत्र ! मैं भगवान विष्णुकी आराधना करनेसे तुम्हें रोकती नहीं। यदि रोकूँ तो मेरी जिह्वाके सैकड़ों टुकड़े हो जायँ ॥ ३७ ॥

इत्यनुज्ञामिव प्राप्य जननीचरणाम्बुजौ ।
परिक्रम्य प्रणम्याथ तपसे च ध्रुवो ययौ ॥३८॥
तयापि धैर्यसूत्रेण सुनीत्या परिगुम्फ्य च ।
तत्रेन्दीवरजा माला ध्रुवस्योपायनीकृता ॥३९॥
मात्रा तन्मार्गरक्षार्थं तदा तदनुगीकृताः ।
परैरवार्यप्रसराः स्वाशीर्वादाः पुरस्कृताः ॥४०॥

इस प्रकार आज्ञा-सी पाकर ध्रुव माताके चरणकमलोंकी परिक्रमा और उन्हें प्रणाम करके तपस्याके लिये प्रस्थित हुआ। सुनीतिने धैर्यपूर्वक सूत्रमें नील कमलकी माला गूँथकर पुत्रको उपहार दिया। मार्गमें पुत्रकी रक्षाके लिये माताने अपने शत-शत आशीर्वाद, जिनका प्रभाव शत्रु भी नहीं रोक सकते थे, उसके पीछे लगा दिये ॥ ३८—४० ॥

सर्वत्रावतु ते पुत्र शङ्खचक्रगदाधरः ।
नारायणो जगद्व्यापी प्रभुः कारुण्यवारिधिः ॥४१॥

[ **वह बोली**—] 'पुत्र ! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दयासागर जगद्व्यापी भगवान् नारायण सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें' ॥ ४१ ॥

सूत उवाच

स्वसौधात् स विनिर्गत्य बालो बालपराक्रमः ।
अनुकूलेन मरुता दर्शिताध्वाविशद्वनम् ॥४२॥
स मातृदैवतोऽभिज्ञः केवलं राजवर्त्मनि ।
न वेद काननाध्वानं क्षणं दध्यौ नृपात्मजः ॥४३॥

**सूतजी बोले**—बालोचित पराक्रम करनेवाले बालक ध्रुवने अपने महलसे निकलकर अनुकूल वायुके द्वारा दिखायी हुई राह पकड़कर उपवनमें प्रवेश किया। माताको ही देवता माननेवाला और केवल राजमार्गको ही जाननेवाला वह राजकुमार वनके मार्गको नहीं जानता था; अतः एक क्षणतक आँखें बंद करके कुछ सोचने लगा ॥ ४२-४३ ॥

पुरोपवनमासाद्य चिन्तयामास सोऽर्भकः ।
किं करोमि क्व गच्छामि को मे साहाय्यदो भवेत्॥४४॥
एवमुन्मील्य नयने यावत्पश्यति स ध्रुवः ।
तावद्ददर्श सप्तर्षीन अतर्कितगतीन वने ॥४५॥

अथ दृष्ट्वा स सप्तर्षीन् सप्तसप्तितेजसः ।
भाग्यसूत्रैरिवाकृष्योपनीतान् प्रमुमोद ह ॥४६॥
तिलकाङ्कितसल्ललाटान् कुशोपग्रहिताङ्गुलीन् ।
कृष्णाजिनोपविष्टांश्च ब्रह्मसूत्रैरलंकृतान् ॥४७॥
उपगम्य विनम्रांसः प्रबद्धकरसम्पुटः ।
ध्रुवो विज्ञापयांचक्रे प्रणम्य ललितं वचः ॥४८॥

नगरके उपवनमें आकर बालक ध्रुव इस प्रकार चिन्ता करने लगा—'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मुझे सहायता देनेवाला होगा ?' ऐसा विचार करते हुए उसने ज्यों-ही आँखें खोलकर देखा, त्यों-ही उस उपवनमें अप्रत्याशित गतिवाले सप्तर्षि उसे दिखायी दिये । उन सूर्यतुल्य तेजस्वी सप्तर्षियोंको, जो मानो भाग्यसूत्रसे ही खिंचकर ले आये गये थे, देखकर ध्रुव बहुत प्रसन्न हुआ । उनके सुन्दर ललाटमें तिलक लगे थे । उन्होंने अँगुलियोंमें कुशकी पवित्री पहन रखी थी तथा यज्ञोपवीतोंसे विभूषित होकर वे काले मृगचर्मपर बैठे हुए थे । उनके पास जाकर ध्रुवने गर्दन झुका दी, दोनों हाथ जोड़ लिये और प्रणाम करके मधुर वाणीमें उन्हें अपना अभिप्राय निवेदित किया ॥ ४४—४८ ॥

ध्रुव उवाच

अवैत मां मुनिवराः सुनीत्युदरसम्भवम् ।
उत्तानपादतनयं ध्रुवं निर्विण्णमानसम् ॥४९॥

ध्रुव बोला—मुनिवरो ! आप मुझे सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानें । इस समय मेरा चित्त जगत्की ओरसे विरक्त है ॥ ४९ ॥

सूत उवाच

तं दृष्ट्वोर्जस्वलं बालं स्वभावमधुराकृतिम् ।
अनर्घ्यनयनेपथ्यं मृदुगम्भीरभाषिणम् ॥५०॥
उपोपवेश्य शिशुकं प्रोचुस्ते विस्मिता भृशम् ।
तवाद्यापि न जानीमो वत्स निर्वेदकारणम् ॥५१॥
अनवाप्ताभिलाषाणां वैराग्यं जायते नृणाम् ।
सप्तद्वीपपते राज्ञः कुमारस्त्वं तथा कथम् ॥५२॥
किमस्माभिरहो कार्यं कस्तवास्ति मनोरथः ।

सूतजी कहते हैं—अमूल्य नीति ही जिसका भूषण है—ऐसे मधुर और गम्भीर भाषण करनेवाले एवं स्वभावतः मनोहर आकृतिवाले उस तेजस्वी बालकको देखकर ऋषियोंने अत्यन्त विस्मित हो उसे अपने पास बिठाया और कहा—'वत्स ! अबतक तुम्हारे वैराग्य या निर्वेदका कारण हम नहीं जान सके । वैराग्य तो उन मनुष्योंको होता है, जिनकी मनःकामनाएँ पूर्ण नहीं हो पातीं । तुम तो सातों द्वीपोंके अधीश्वर सम्राट्के पुत्र हो; तुम अपूर्ण-मनोरथ कैसे हो सकते हो ? हमसे तुम्हें क्या काम है ? तुम्हारी मनोवाञ्छा क्या है ?' ॥ ५०—५२½ ॥

ध्रुव उवाच

मुनयो मम यो बन्धुरुत्तमश्चोत्तमोत्तमः ॥५३॥
पित्रा प्रदत्तं तस्यास्तु तद्भद्रासनमुत्तमम् ।
भवत्कृतं हि साहाय्यं एतदिच्छामि सुव्रताः ॥५४॥
अनन्यनृपभुक्तं यद् यदन्येभ्यः समुच्छ्रितम् ।
इन्द्रादिदुरवापं यत् कथं लभ्येत तत्पदम् ॥५५॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनयो बालकस्य तु ।
यथार्थमेव प्रत्यूचुर्मरीच्याद्यास्तदा ध्रुवम् ॥५६॥

ध्रुव बोला—मुनिगण ! मेरे जो उत्तमोत्तम बन्धु उत्तमकुमार हैं—उनके ही लिये पिताका दिया हुआ शुभ सिंहासन रहे । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वरो ! मैं आपलोगोंसे इतनी ही सहायता चाहता हूँ कि जिस स्थानका किसी दूसरे राजाने उपभोग न किया हो, जो अन्य सभी स्थानोंसे उत्कृष्ट हो और इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह स्थान मुझे किस उपायसे प्राप्त हो सकता है, यह बता दें ।' उस समय उस बालककी ये बातें सुनकर मरीचि आदि ऋषियोंने उसे यथार्थ ही उत्तर दिया ॥ ५३—५६ ॥

मरीचिरुवाच

अनास्वादितगोविन्दपदाम्बुजरजोरसः ।
मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत् फलम् ॥५७॥

मरीचि बोले—जिसने गोविन्द-चरणारविन्दोंके परागके रसका आस्वादन नहीं किया, वह मनोरथ-पथसे अतीत ( ध्यानमें भी न आ सकनेवाले ) परमोज्ज्वल फलको नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ५७ ॥

अत्रिरुवाच

अनर्चिताच्युतपदः पदमासादयेत् कथम् ।
इन्द्रादिदुरवापं यन्मानवैः सुदुरासदम् ॥५८॥

**अत्रि बोले**—जिसने अच्युतके चरणोंकी अर्चना नहीं की है, वह पुरुष उस पदको, जो इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ और मनुष्योंके लिये तो अत्यन्त दुष्प्राप्य है, कैसे पा सकता है ? ॥ ५८ ॥

अङ्गिरा उवाच

न हि दूरे पदं तस्य सर्वासां सम्पदामिह ।
कमलाकान्तकान्ताङ्घ्रिकमलं यः सुशीलयेत् ॥५९॥

**अङ्गिरा बोले**—जो भगवान् कमलाकान्तके कमनीय चरणकमलोंका अनुशीलन ( चिन्तन ) करता है, उसके लिये त्रिभुवनकी सारी सम्पदाओंका स्थान दूर ( दुर्लभ ) नहीं है ॥ ५९ ॥

पुलस्त्य उवाच

यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंततिः ।
परमान्तकमाप्नोति स विष्णुः सर्वदो ध्रुव ॥६०॥

**पुलस्त्य बोले**—ध्रुव ! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकोंकी परम्परा अत्यन्त नाशको प्राप्त हो जाती है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं ॥ ६० ॥

पुलह उवाच

यदाहुः परमं ब्रह्म प्रधानपुरुषात् परम् ।
यन्मायया कृतं सर्वं स विष्णुः कीर्तितोऽर्थदः ॥६१॥

**पुलह बोले**—जिन्हें प्रधान ( प्रकृति ) और पुरुष ( जीव ) से विलक्षण परब्रह्म कहते हैं, जिनकी मायासे समस्त प्रपञ्च रचा गया है, उन भगवान् विष्णुका यदि कीर्तन किया जाय तो वे अपने भक्तके अभीष्ट मनोरथको पूर्ण कर देते हैं ॥ ६१ ॥

क्रतुरुवाच

यो यज्ञपुरुषो विष्णुर्वेदवेद्यो जनार्दनः ।
अन्तरात्मास्य जगतः संतुष्टः किं न यच्छति ॥६२॥

**क्रतु बोले**—जो यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य हैं तथा जो जनार्दन इस समस्त जगत्के अन्तरात्मा हैं, वे प्रसन्न हों तो क्या नहीं दे सकते ? ॥ ६२ ॥

वसिष्ठ उवाच

यद्भ्रूनर्तनवर्तिन्यः सिद्धयोऽष्टौ नृपात्मज ।
समाराध्य हृषीकेशं चतुर्वर्गो न दूरतः ॥६३॥

**वसिष्ठ बोले**—राजकुमार ! जिनकी भौंहोंके नर्तनमात्रमें आठों सिद्धियाँ वर्तमान हैं, उन भगवान् हृषीकेशकी आराधना करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते ॥ ६३ ॥

ध्रुव उवाच

सत्यमुक्तं द्विजेन्द्रा वो विष्णोराराधनं प्रति ।
कथं स भगवानिज्यः स विधिश्चोपदिश्यताम् ॥६४॥
प्रभूतदो भवेद्यो वै दुराराध्यतमो भवेत् ।
बालोऽहं राजपुत्रोऽहं दुःखं नैव मया क्षमम् ॥६५॥

**ध्रुव बोले**—द्विजवरो ! भगवान् विष्णुकी आराधनाके सम्बन्धमें आपलोगोंने जो विचार प्रकट किया, वह सत्य है । अब मुझे यह बताइये कि उन भगवान्की पूजा कैसे करनी चाहिये ? उसकी विधिका मुझे उपदेश कीजिये । जो बहुत कुछ दे सकते हैं, उनकी आराधना भी कठिन ही होगी । मैं राजकुमार हूँ और बालक हूँ; मुझसे विशेष कष्ट नहीं सहा जा सकता ॥ ६४-६५ ॥

मुनय ऊचुः

तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा ।
शयानेनोपविष्टेन ध्येयो नारायणः सदा ॥६६॥
पुत्रान् कलत्रं मित्राणि राज्यं स्वर्गापवर्गकम् ।
वासुदेवं जपन् मर्त्यः सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥६७॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च ।
ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः॥६८॥
पितामहेन चाप्येष महामन्त्र उपासितः ।
मनुना राज्यकामेन वैष्णवेन नृपात्मज ॥६९॥
त्वमप्येतेन मन्त्रेण वासुदेवपरो भव ।
यथाभिलषितामृद्धिं क्षिप्रं प्राप्स्यसि सत्तम ॥७०॥

**मुनिगण बोले**—खड़े होते-चलते, सोते-जागते, लेटते और बैठते हुए प्रतिक्षण भगवान् नारायणका स्मरण करना चाहिये । भगवान् वासुदेवके नामका जप करनेवाला मनुष्य पुत्र, स्त्री मित्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष—सब कुछ पा लेता है—इसमें संशय नहीं है । वासुदेवस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र ( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ) के द्वारा चार भुजाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान और जप करके किसने सिद्धि नहीं प्राप्त कर ली ? राजकुमार ! पितामह

( ब्रह्माजी ) ने भी इस महामन्त्रकी उपासना की थी। विष्णुभक्त मनुने भी राज्यकी कामनासे इस मन्त्रद्वारा भगवान्‌की आराधना की थी। सत्पुरुषशिरोमणे! तुम भी इस मन्त्रद्वारा भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ। इससे बहुत शीघ्र ही अपनी मनोवाञ्छित समृद्धि प्राप्त कर लोगे ॥ ६६–७० ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिताः सर्वे महात्मानो मुनीश्वराः ।
वासुदेवमना भूत्वा ध्रुवोऽपि तपसे ययौ ॥७१॥
ध्रुवः सर्वार्थदं मन्त्रं जपन् मधुवने तपः ।
स चक्रे यमुनातीरे मुनिदिष्टेन वर्त्मना ॥७२॥
श्रद्धान्वितेन जपता च तपःप्रभावात्
साक्षादिवाब्जनयनं ददृशे हृदीशम् ।
दिव्याकृतिं सपदि तेन ततः स एव
हर्षात् पुनः स प्रजजाप नृपात्मभूतः ॥७३॥
क्षुत्तर्षवर्षघनवातमहोष्णतादि-
शारीरदुःखकुलमस्य न किंचनाभूत् ।
मग्ने मनस्यनुपमेयसुखाम्बुराशौ
राज्ञः शिशुर्न च विवेद शरीरवार्ताम् ॥७४॥
विघ्नाश्च तस्य किल शङ्कितदेवसृष्टा
बालस्य तीव्रतपसो विफला बभूवुः ।
शीतातपादिरिव विष्णुमयं मुनिं हि
प्रादेशिका न खलु धर्षयितुं क्षमन्ते ॥७५॥

**सूतजी कहते हैं**—यों कहकर वे सभी महात्मा मुनीश्वर वहीं अन्तर्हित हो गये और ध्रुव भी भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तपस्याके लिये चला गया। द्वादशाक्षर मन्त्र सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। ध्रुव मधुवनमें यमुनाके तटपर मुनियोंकी बतायी हुई पद्धतिसे उस मन्त्रका जप करने लगा। श्रद्धापूर्वक उस मन्त्रका जप करते हुए राजकुमार ध्रुवने तपके प्रभावसे तत्काल ही हृदयमें भगवान् कमलनयनको प्रकट प्रत्यक्षवत् देखा। उनकी आकृति बड़ी दिव्य थी। भगवान्‌के दर्शनसे उसका हर्ष बढ़ गया। अब तो वह राजपुत्र पुनः बड़े उत्साहसे उस मन्त्रका जप करने लगा। उस समय भूख, प्यास, वर्षा, आँधी और अधिक गर्मी आदि दैहिक दुःखोंमेंसे कोई भी उसे नहीं व्यापा। उस राजकुमारका मन अनुपम आनन्द-महासागरमें गोता लगा रहा था। अतः उस समय उसे अपने शरीरकी भी सुध नहीं रह गयी थी। कहते हैं, उसकी तपस्यासे शङ्कित हुए देवताओंने कितने ही विघ्न खड़े किये; परंतु उस तीव्र तपस्वी बालकके लिये वे सभी निष्फल ही सिद्ध हुए। शीत और धूप आदिकी ही तरह ये एकदेशीय विघ्न भी उस विष्णुस्वरूप मुनिको व्यथित नहीं कर पाते थे ॥ ७१–७५ ॥

अथ भक्तजनप्रियः प्रभुः
शिशुना ध्यानबलेन तोषितः ।
वरदः पतगेन्द्रवाहनो
हरिरागात् स्वजनं तमीक्षितुम् ॥७६॥
मणिपिण्डकमौलिराजितो
विलसद्रत्नमहाघनच्छविः ।
स बभावुदयाद्रिमत्सरा-
द्धृतबालार्क इवासिताचलः ॥७७॥
स राजसूनुं तपसि स्थितं तं
ध्रुवं ध्रुवस्निग्धदृगित्युवाच ।
दन्तांशुसंज्ञैरमितप्रवाहैः
प्रक्षालयन् रेणुमिवास्य गात्रे ॥७८॥

कुछ समयके बाद भक्तजनोंके प्रियतम वरदाता भगवान् विष्णु बालक ध्रुवके ध्यान-बलसे संतुष्ट होकर पक्षिराज गरुडपर सवार हो, अपने उस भक्तको देखनेके लिये आये। मणिसमूहद्वारा निर्मित मुकुटसे मण्डित और शोभाशाली कौस्तुभरत्नसे समलंकृत, महामेघके समान श्यामकान्तिवाले वे भगवान् श्रीहरि ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो उदयाचलके प्रति डाह रखनेके कारण अपने शृङ्गपर बालरविको धारण किये साक्षात् कज्जलगिरि प्रकाशित हो रहा हो। निश्चल और स्नेहपूर्ण दृष्टिवाले वे भगवान् अपने दाँतोंकी किरणरूप जलके अमित प्रवाहद्वारा तपस्यामें लगे हुए राजकुमार ध्रुवके शरीरकी धूलिको धोते हुए-से उससे इस प्रकार बोले ॥ ७६–७८ ॥

वरं वरं वत्स वृणीष्व यस्ते
मनोगतस्त्वत्तपसास्मि तुष्टः ।
ध्यानेन ते चेन्द्रियनिग्रहेण
मनोनिरोधेन च दुष्करेण ॥७९॥

'वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्या, ध्यान, इन्द्रिय-निग्रह और दुस्साध्य मनःसंयमसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । अतः तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह उत्तम वर मुझसे माँग लो' ॥ ७९ ॥

शृण्वन् वचस्तत्सकलं गभीर-
मुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।
स्वे चिन्त्यमानं त्विदमेव मूर्तं
पुरःस्थितं ब्रह्म चतुर्भुजं सः ॥८०॥

भगवान्‌की वह सम्पूर्ण गम्भीर वाणी सुनते ही ध्रुवने सहसा आँखें खोल दीं । उस समय उन्हीं चतुर्भुज ब्रह्मको, जिनका वह अपने हृदयमें चिन्तन कर रहा था, उसने सामने मूर्तिमान् होकर खड़ा देखा ॥८०॥

दृष्ट्वा क्षणं राजसुतः सुपूज्यं
पुरस्त्रयीशं किमिह ब्रवीमि ।
किं वा करोमीति ससम्भ्रमः स तु
न चाब्रवीत् किंचन नो चकार ॥८१॥
हर्षाश्रुपूर्णः पुलकाञ्चिताङ्ग-
स्त्रिलोकनाथेति वदन्नथोच्चैः ।
दण्डप्रणामाय पपात भूमौ
प्रवेपमानभ्रु हरेः पुरः स हि ॥८२॥
दण्डवत् प्रणिपत्याथ परितः परिलुण्ठ्य च ।
रुरोद हर्षेण चिरं दृष्ट्वा तं जगतो गुरुम् ॥८३॥
नारदेन सनन्देन सनकेन च संश्रुतम् ।
अन्यैः सनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनां वरम् ॥८४॥
कारुण्यबाष्पनीरार्द्रं पुण्डरीकविलोचनम् ।
ध्रुवमुत्थापयांचक्रे चक्री धृत्वा करेण तम् ॥८५॥
हरिस्तु परिपस्पर्श तदङ्गं धूलिधूसरम् ।
कराभ्यां कोमलाभ्यां स परिष्वज्याह तं हरिः ॥८६॥

उन परम पूजनीय त्रिभुवनपतिको सहसा सामने देख वह राजकुमार सकपका गया और 'मैं यहाँ इनसे क्या कहूँ ! क्या करूँ !' इत्यादि बातें सोचता हुआ क्षणभर न तो कुछ बोला और न कुछ कर ही सका । उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भरे थे, शरीरके रोएँ खड़े हो गये थे । वह भगवान्‌के सामने उच्चस्वरसे 'हे त्रिभुवननाथ !' यों कहता हुआ दण्डवत्-प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर पड़ गया । उस समय उसकी भौंहें काँप रही थीं । दण्डकी भाँति प्रणाम करके जगद्गुरु भगवान्‌की ओर एकटक दृष्टि लगाये वह आनन्दातिरेकसे चारों ओर लोट-पोट होकर देरतक रोता रहा । नारद, सनन्दन, सनक और सनत्कुमार आदि तथा अन्य योगी जिन योगीश्वरका श्रवण-कीर्तन एवं स्तवन किया करते हैं और जिनके नेत्र करुणाके आँसुओंसे भीगे हुए थे, उन्हीं कमललोचन भगवान्‌को आज ध्रुवने प्रत्यक्ष देखा । उस समय चक्रधर भगवान्‌ने अपने हाथसे पकड़कर ध्रुवको उठा लिया । इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों कोमल हाथोंसे उसके धूलिधूसरित शरीरको सब ओरसे पोंछा और उसे हृदयसे लगाकर कहा ॥ ८१–८६ ॥

वरं वरय भो बाल यत्ते मनसि वर्त्तते ।
तद्ददामि न संदेहो नादेयं विद्यते तव ॥८७॥

'बच्चा ! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा है, उसके अनुसार वर माँग लो । मैं निस्संदेह वह सब तुम्हें दे दूँगा । तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है' ॥ ८७ ॥

ततो वरं राजशिशुर्ययाचे
विष्णुं वरं ते स्तवशक्तिमेव ।
तं मूर्तविज्ञाननिभेन देवः
पस्पर्श शङ्खेन मुखेऽमलेन ॥८८॥
अथ सुरमुनिदत्तज्ञानचन्द्रेण सम्यग्
विमलितमिव चित्तं पूर्णमेव ध्रुवस्य ।
त्रिभुवनगुरुशङ्खस्पर्शजज्ञानभाना-
नुदयति नितरान्तः साधु तुष्टाव हृष्टः ॥८९॥

तब राजकुमारने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि 'मुझे आपकी स्तुति करनेकी शक्ति प्राप्त हो ।' यह सुनकर भगवान्‌ने मूर्तिमान् विज्ञानके समान निर्मल शङ्खसे ध्रुवके मुखको छुआ दिया । मरीचि आदि देवर्षियोंके दिये हुए ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे क्षालित होकर ध्रुवका चित्त पूर्णतया निर्मल हो गया था । फिर त्रिभुवनगुरु भगवान्‌के शङ्ख-स्पर्शसे उसके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी सूर्यका उदय हो जानेपर उसमें पूर्ण प्रकाश हो गया । इससे वह आनन्दित होकर भगवान्‌की सुन्दर स्तुति करने लगा ॥ ८८-८९ ॥

ध्रुव उवाच

अखिलमुनिजननिवहनमितचरणः । खरकदन-

( ब्रह्माजी ) ने भी इस महामन्त्रकी उपासना की थी। विष्णुभक्त मनुने भी राज्यकी कामनासे इस मन्त्रद्वारा भगवान्‌की आराधना की थी। सत्पुरुषशिरोमणे! तुम भी इस मन्त्रद्वारा भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ। इससे बहुत शीघ्र ही अपनी मनोवाञ्छित समृद्धि प्राप्त कर लोगे ॥ ६६–७० ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिताः सर्वे महात्मानो मुनीश्वराः ।
वासुदेवमना भूत्वा ध्रुवोऽपि तपसे ययौ ॥७१॥
ध्रुवः सर्वार्थदं मन्त्रं जपन् मधुवने तपः ।
स चक्रे यमुनातीरे मुनिदिष्टेन वर्त्मना ॥७२॥
श्रद्धान्वितेन जपता च तपःप्रभावात्
साक्षादिवाब्जनयनं ददृशे हृदीशम् ।
दिव्याकृतिं सपदि तेन ततः स एव
हर्षात् पुनः स प्रजजाप नृपात्मभूतः ॥७३॥
क्षुत्तर्षवर्षघनवातमहोष्णतादि-
शारीरदुःखकुलमस्य न किंचनाभूत् ।
मग्ने मनस्यनुपमेयसुखाम्बुराशौ
राज्ञः शिशुर्न च विवेद शरीरवार्ताम् ॥७४॥
विघ्नाश्च तस्य किल शङ्कितदेवसृष्टा
बालस्य तीव्रतपसो विफला बभूवुः ।
शीतातपादिरिव विष्णुमयं मुनिं हि
प्रादेशिका न खलु धर्षयितुं क्षमन्ते ॥७५॥

**सूतजी कहते हैं**—यों कहकर वे सभी महात्मा मुनीश्वर वहीं अन्तर्हित हो गये और ध्रुव भी भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तपस्याके लिये चला गया। द्वादशाक्षर मन्त्र सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। ध्रुव मधुवनमें यमुनाके तटपर मुनियोंकी बतायी हुई पद्धतिसे उस मन्त्रका जप करने लगा। श्रद्धापूर्वक उस मन्त्रका जप करते हुए राजकुमार ध्रुवने तपके प्रभावसे तत्काल ही हृदयमें भगवान् कमलनयनको प्रकट प्रत्यक्षवत् देखा। उनकी आकृति बड़ी दिव्य थी। भगवान्‌के दर्शनसे उसका हर्ष बढ़ गया। अब तो वह राजपुत्र पुनः बड़े उत्साहसे उस मन्त्रका जप करने लगा। उस समय भूख, प्यास, वर्षा, आँधी और अधिक गर्मी आदि दैहिक दुःखोंमेंसे कोई भी उसे नहीं व्यापा। उस राजकुमारका मन अनुपम आनन्द-महासागरमें गोता लगा रहा था। अतः उस समय उसे अपने शरीरकी भी सुध नहीं रह गयी थी। कहते हैं, उसकी तपस्यासे शङ्कित हुए देवताओंने कितने ही विघ्न खड़े किये; परंतु उस तीव्र तपस्वी बालकके लिये वे सभी निष्फल ही सिद्ध हुए। शीत और धूप आदिकी ही तरह ये एकदेशीय विघ्न भी उस विष्णुस्वरूप मुनिको व्यथित नहीं कर पाते थे ॥ ७१–७५ ॥

अथ भक्तजनप्रियः प्रभुः
शिशुना ध्यानबलेन तोषितः ।
वरदः पतगेन्द्रवाहनो
हरिरागात् स्वजनं तमीक्षितुम् ॥७६॥
मणिपिण्डकमौलिराजितो
विलसद्रत्नमहाघनच्छविः ।
स बभावुदयाद्रिमत्सरा-
द्धृतबालार्क इवासिताचलः ॥७७॥
स राजसूनुं तपसि स्थितं तं
ध्रुवं ध्रुवस्निग्धदृगित्युवाच ।
दन्तांशुसंङ्घैरमितप्रवाहैः
प्रक्षालयन् रेणुमिवास्य गात्रे ॥७८॥

कुछ समयके बाद भक्तजनोंके प्रियतम वरदाता भगवान् विष्णु बालक ध्रुवके ध्यान-बलसे संतुष्ट होकर पक्षिराज गरुडपर सवार हो, अपने उस भक्तको देखनेके लिये आये। मणिसमूहद्वारा निर्मित मुकुटसे मण्डित और शोभाशाली कौस्तुभरत्नसे समलंकृत, महामेघके समान श्यामकान्तिवाले वे भगवान् श्रीहरि ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो उदयाचलके प्रति डाह रखनेके कारण अपने शृङ्गपर बालरविको धारण किये साक्षात् कज्जलगिरि प्रकाशित हो रहा हो। निश्चल और स्नेहपूर्ण दृष्टिवाले वे भगवान् अपने दाँतोंकी किरणरूप जलके अमित प्रवाहद्वारा तपस्यामें लगे हुए राजकुमार ध्रुवके शरीरकी धूलिको धोते हुए-से उससे इस प्रकार बोले ॥ ७६–७८ ॥

वरं वरं वत्स वृणीष्व यस्ते
मनोगतस्त्वत्तपसास्मि तुष्टः ।
ध्यानेन ते चेन्द्रियनिग्रहेण
मनोनिरोधेन च दुष्करेण ॥७९॥

'वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्या, ध्यान, इन्द्रिय-निग्रह और दुस्साध्य मनःसंयमसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । अतः तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह उत्तम वर मुझसे माँग लो' ॥ ७९ ॥

शृण्वन् वचस्तत्सकलं गभीर-
मुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।
स्वे चिन्त्यमानं त्विदमेव मूर्तं
पुरःस्थितं ब्रह्म चतुर्भुजं सः ॥८०॥

भगवान्‌की वह सम्पूर्ण गम्भीर वाणी सुनते ही ध्रुवने सहसा आँखें खोल दीं । उस समय उन्हीं चतुर्भुज ब्रह्मको, जिनका वह अपने हृदयमें चिन्तन कर रहा था, उसने सामने मूर्तिमान् होकर खड़ा देखा ॥८०॥

दृष्ट्वा क्षणं राजसुतः सुपूज्यं
पुरस्त्रयीशं किमिह ब्रवीमि ।
किं वा करोमीति ससम्भ्रमः स तु
न चाब्रवीत् किंचन नो चकार ॥८१॥
हर्षाश्रुपूर्णः पुलकाञ्चिताङ्ग-
स्त्रिलोकनाथेति वदन्नथोच्चैः ।
दण्डप्रणामाय पपात भूमौ
प्रवेपमानभ्रु हरेः पुरः स हि ॥८२॥
दण्डवत् प्रणिपत्याथ परितः परिलुण्ठ्य च ।
रुरोद हर्षेण चिरं दृष्ट्वा तं जगतो गुरुम् ॥८३॥
नारदेन सनन्देन सनकेन च संश्रुतम् ।
अन्यैः सनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनां वरम् ॥८४॥
कारुण्यबाष्पनीरार्द्रं पुण्डरीकविलोचनम् ।
ध्रुवमुत्थापयांचक्रे चक्री धृत्वा करेण तम् ॥८५॥
हरिस्तु परिपस्पर्श तदङ्गं धूलिधूसरम् ।
कराभ्यां कोमलाभ्यां स परिष्वज्याह तं हरिः ॥८६॥

उन परम पूजनीय त्रिभुवनपतिको सहसा सामने देख वह राजकुमार सकपका गया और 'मैं यहाँ इनसे क्या कहूँ ! क्या करूँ !' इत्यादि बातें सोचता हुआ क्षणभर न तो कुछ बोला और न कुछ कर ही सका । उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भरे थे, शरीरके रोएँ खड़े हो गये थे । वह भगवान्‌के सामने उच्चस्वरसे 'हे त्रिभुवननाथ !' यों कहता हुआ दण्डवत्-प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर पड़ गया । उस समय उसकी भौंहें काँप रही थीं । दण्डकी भाँति प्रणाम करके जगद्गुरु भगवान्‌की ओर एकटक दृष्टि लगाये वह आनन्दातिरेकसे चारों ओर लोट-पोट होकर देरतक रोता रहा । नारद, सनन्दन, सनक और सनत्कुमार आदि तथा अन्य योगी जिन योगीश्वरका श्रवण-कीर्तन एवं स्तवन किया करते हैं और जिनके नेत्र करुणाके आँसुओंसे भीगे हुए थे, उन्हीं कमललोचन भगवान्‌को आज ध्रुवने प्रत्यक्ष देखा । उस समय चक्रधर भगवान्‌ने अपने हाथसे पकड़कर ध्रुवको उठा लिया । इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों कोमल हाथोंसे उसके धूलिधूसरित शरीरको सब ओरसे पोंछा और उसे हृदयसे लगाकर कहा ॥ ८१—८६ ॥

वरं वरय भो बाल यत्ते मनसि वर्त्तते ।
तद्ददामि न संदेहो नादेयं विद्यते तव ॥८७॥

'बच्चा ! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा है, उसके अनुसार वर माँग लो । मैं निस्संदेह वह सब तुम्हें दे दूँगा । तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है' ॥ ८७ ॥

ततो वरं राजशिशुर्ययाचे
विष्णुं वरं ते स्तवशक्तिमेव ।
तं मूर्तविज्ञाननिभेन देवः
पस्पर्श शङ्खेन मुखेऽमलेन ॥८८॥
अथ सुरमुनिदत्तज्ञानचन्द्रेण सम्यग्
विमलितमिव चित्तं पूर्णमेव ध्रुवस्य ।
त्रिभुवनगुरुशङ्खस्पर्शजज्ञानभाना-
नुदयति नितरान्तः साधु तुष्टाव हृष्टः ॥८९॥

तब राजकुमारने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि 'मुझे आपकी स्तुति करनेकी शक्ति प्राप्त हो ।' यह सुनकर भगवान्‌ने मूर्तिमान् विज्ञानके समान निर्मल शङ्खसे ध्रुवके मुखको छुआ दिया । मरीचि आदि देवर्षियोंके दिये हुए ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे क्षालित होकर ध्रुवका चित्त पूर्णतया निर्मल हो गया था । फिर त्रिभुवनगुरु भगवान्‌के शङ्ख-स्पर्शसे उसके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी सूर्यका उदय हो जानेपर उसमें पूर्ण प्रकाश हो गया । इससे वह आनन्दित होकर भगवान्‌की सुन्दर स्तुति करने लगा ॥ ८८-८९ ॥

ध्रुव उवाच

अखिलमुनिजननिवहनमितचरणः । खरकदन-

**करः । चपलचरितः । देवाराधितपादजलः । सजलजलधरश्यामः शमितसौभपतिशाल्वधामा । अभिरामरामातिविनयकृतनवरसरसापहृतेन्द्रियसुररमणीविहितान्तःकरणानन्दः । अनादिनिधनः । अधननिजद्विजमित्रोद्धरणधीरः । अवधीरितसुरनाथनाथितविपक्षपक्षः । ऋक्षराजबिलप्रवेशापहृतस्यमन्तकापमार्जितनिजापवाददुरितहृतत्रैलोक्यभारः । द्वारकावासनिरतः । स्वरितमधुरवेणुवादनश्रवणामृतप्रकटितातीन्द्रियज्ञानः । यमुनातटचरः । द्विजधेनुभृङ्गगणैस्त्यक्तनिजनिजाहारः । संसारदुस्तरपारावारसमुत्तारणाङ्घ्रिपोतः । स्वप्रतापानलहुतकालयवनः । वनमालाधरवरमणिकुण्डलालंकृतश्रवणः । नानाप्रसिद्धाभिधानः । निगमविबुधमुनिजनवचनमनोऽगोचरः । कनकपिशङ्गकौशेयवासोभगवान् भृगुपदकौस्तुभविभूषितोरःस्थलः । स्वदयिताक्रूरनिजजननीगोकुलपालकचतुर्भुजशङ्खचक्रगदापद्मतुलसीनवदलदामहारकेयूरकटकमुकुटालंकृतः । सुनन्दनादिभागवतोपासितविश्वरूपः । पुराणपुरुषोत्तमः । उत्तमश्लोकः । लोकावासो वासुदेवः । श्रीदेवकीजठरसम्भूतः । भूतपतिविरञ्चिनतचरणारविन्दः । वृन्दावनकृतकेलिगोपिकाजनश्रमापहः । सततं सम्पादितसुजनकामः । कुन्दनिभशङ्खधरमिन्दुनिभवक्त्रं सुन्दरसुदर्शनमुदारतरहासं विद्वज्जनवन्दितमिदं ते रूपमतिहृद्यमखिलेश्वरं नतोऽस्मि ।**

**ध्रुव बोला**—समस्त मुनिगण जिनके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं, जो खर राक्षस अथवा गर्दभरूपधारी धेनुकासुरका संहार करनेवाले हैं, जिनकी बाललीलाएँ चपलतासे पूर्ण हैं, देवगण जिनके चरणोदक ( गङ्गाजी ) की आराधना करते हैं, सजल मेघके समान जिनका श्याम वर्ण है, सौभ विमानके अधिपति शाल्वके धाम ( तेज ) को जिन्होंने सदाके लिये शान्त कर दिया है, जिन्होंने सुन्दर गोपवनिताओंके अत्यन्त विनयवश नूतन प्रेमरसमय रासलीलाको प्रकट किया और उससे मोहित होनेवाली देववनिताओंके अन्तःकरणमें भी आनन्दका संचार किया, जिनका आदि और अन्त नहीं है, जिन्होंने अपने निर्धन मित्र सुदामा नामक ब्राह्मणका धीरतापूर्वक दैन्यदुःखसे उद्धार किया, देवराज इन्द्रकी प्रार्थनासे जिन्होंने उनके शत्रुपक्षको पराजित किया, ऋक्षराज जाम्बवान्की गुहामें प्रवेश करके खोयी हुई स्यमन्तक मणिको लाकर जिन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलङ्करूप दुरितको दूर करके त्रिभुवनका भार हल्का किया है, जो द्वारकापुरीमें नित्य निवास करते हैं, जो अपनी मधुर मुरली बजाकर श्रुतिमधुर अतीन्द्रिय-ज्ञानको प्रकट करते तथा यमुनातटपर विचरते हैं, जिनके वंशीनादको सुननेके लिये पक्षी, गौ और भृङ्गगण अपना-अपना आहार त्याग देते हैं, जिनके चरणकमल दुस्तर संसार-सागरसे पार करनेके लिये जहाजरूप हैं, जिन्होंने अपनी प्रतापाग्निमें कालयवनको होम दिया है, जो वनमालाधारी हैं, जिनके श्रवण सुन्दर मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, जिनके अनेक प्रसिद्ध नाम हैं, जो वेदवाणी तथा देवता और मुनियोंके भी मन-वाणीके अगोचर हैं, जो भगवान् सुवर्णके समान पीत रेशमी वस्त्र धारण करते हैं, जिनका वक्षःस्थल भृगुजीके चरण-चिह्न तथा कौस्तुभमणिसे अलंकृत है, जो अपने प्रिय भक्त अक्रूर, माता देवकी और गोकुलके पालक हैं तथा जो अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये नूतन तुलसीदलकी माला, मुक्ताहार, केयूर, कड़ा और मुकुट आदिसे विभूषित हैं, सुनन्दन आदि भगवद्भक्त जिन विश्वरूप हरिकी उपासना करते हैं, जो पुराण-पुरुषोत्तम हैं, पुण्ययशवाले हैं तथा समस्त लोकोंके आवास-स्थान वासुदेव हैं, जो देवकीके उदरसे प्रकट हुए हैं, भूतनाथ शिव तथा ब्रह्माजीने जिनके चरणारविन्दोंपर मस्तक झुकाया है, जो वृन्दावनमें की गयी लीलासे थकी हुई गोपियोंके श्रमको दूर करनेवाले हैं, सज्जनोंके मनोरथोंको जो सर्वदा पूर्ण किया करते हैं, ऐसी महिमावाले हे सर्वेश्वर ! जो कुन्दके समान उज्ज्वल शङ्ख धारण करते हैं, जिसका चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, सुन्दर नेत्र हैं तथा अत्यन्त मनोहर मुसकान है, ऐसे अत्यन्त हृदयहारी आपके इस रूपको, जो ज्ञानियोंद्वारा वन्दित है, म प्रणाम करता हूँ ।

**स्थानाभिकामी तपसि स्थितोऽहं**
**त्वां दृष्टवान् साधुमुनीन्द्रगुह्यम् ।**
**काचं विचिन्वन्निव दिव्यरत्नं**
**स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरान्न याचे ॥९०॥**

अपूर्वदृष्टे तव पादपद्मे
दृष्ट्वा दृढं नाथ नहि त्यजामि ।
कामान् न याचे स हि कोऽपि मूढो
यः कल्पवृक्षात् तुषमात्रमिच्छेत् ॥९१॥
त्वां मोक्षबीजं शरणं प्रपन्नः
शक्नोमि भोक्तुं न बहिस्सुखानि ।
रत्नाकरे देव सति स्वनाथे
विभूषणं काचमयं न युक्तम् ॥९२॥
अतो न याचे वरमीश युष्मत्-
पादाब्जभक्तिं सततं ममास्तु ।
इमं वरं देववर प्रयच्छ
पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥९३॥

मैं उत्तम स्थान प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्यामें प्रवृत्त हुआ और बड़े-बड़े मुनीश्वरोंके लिये भी जिनका दर्शन पाना असम्भव है, उन्हीं आप परमेश्वरका दर्शन पा गया—ठीक उसी तरह, जैसे काँचकी खोज करनेवाला कोई मनुष्य भाग्यवश दिव्य रत्न हस्तगत कर ले। स्वामिन्! मैं कृतार्थ हो गया; अब मैं कोई वर नहीं माँगता। हे नाथ! जिनका दर्शन अपूर्व है—पहले कभी उपलब्ध नहीं हुआ है, उन आपके चरणकमलोंका दर्शन पाकर अब मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता। मैं अब भोगोंकी याचना नहीं करूँगा; ऐसा कोई मूर्ख ही होगा, जो कल्पवृक्षसे केवल भूसी पाना चाहेगा? देव! आज मैं मोक्षके कारणभूत आप परमेश्वरकी शरणमें आ पड़ा हूँ, अब बाह्य विषय-सुखोंको मैं नहीं भोग सकता। जब रत्नोंकी खान समुद्र अपना मालिक हो जाय, तब काँचका भूषण पहनना कभी उचित नहीं हो सकता। अतः देव! अब मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता; आपके चरण-कमलोंमें मेरी सदा भक्ति बनी रहे। देववर! मुझे यही वर दीजिये। मैं बारंबार आपसे यही प्रार्थना करता हूँ ॥ ९०—९३ ॥

श्रीसूत उवाच

इत्यात्मसंदर्शनलब्धदिव्य-
ज्ञानं वदन्तं भगवाञ्जगाद ॥९४॥

**श्रीसूतजी कहते हैं**—इस प्रकार अपने दर्शनमात्रसे दिव्य ज्ञान प्राप्त करके स्तुति करते हुए ध्रुवको देखकर भगवान्ने उससे कहा ॥ ९४ ॥

श्रीभगवानुवाच

आराध्य विष्णुं किमनेन लब्धं
मा भूज्जनेऽपीत्थमसाधुवादः ।
स्थानं परं प्राप्नुहि यन्मतं ते
कालेन मां प्राप्स्यसि शुद्धभावः ॥९५॥
आधारभूतः सकलग्रहाणां
कल्पद्रुमः सर्वजनैश्च वन्द्यः ।
मम प्रसादात्तव सा च माता
ममान्तिके या च सुनीतिरार्या ॥९६॥

**श्रीभगवान् बोले**—'ध्रुवने विष्णुकी आराधना करके क्या पा लिया?' इस तरहका अपवाद लोगोंमें न फैल जाय। इसके लिये तुम अपने अभीष्ट सर्वोत्तम स्थानको ग्रहण करो, पुनः समय आनेपर शुद्धभाव हो तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। मेरे प्रसादसे समस्त ग्रहोंके आधारभूत, कल्पवृक्ष और सब लोगोंके वन्दनीय होकर तुम और तुम्हारी माता आर्या सुनीति मेरे निकट निवास करोगे ॥ ९५-९६ ॥

श्रीसूत उवाच

तं साधयित्वेति वरैर्मुकुन्दः
स्वमालयं दृश्यवपुर्जगाम ।
त्यक्त्वा शनैर्दिव्यवपुः स्वभक्तं
मुहुः परावृत्य समीक्षमाणः ॥९७॥
तावच्च सद्यः सुरसिद्धसंघः
श्रीविष्णुतद्भक्तसमागमं तम् ।
दृष्ट्वाथ वर्षन् सुरपुष्पवृष्टिं
तुष्टाव हर्षाद् ध्रुवमव्ययं च ॥९८॥
श्रियाभिमत्या च सुनीतिरद्य-
विभाति दैवैरपि वन्द्यमानः ।
योऽयं नृणां कीर्तिदर्शनाख्या-
मायुर्यशो वर्धयति श्रियं च ॥९९॥

**श्रीसूतजी कहते हैं**—इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रकट हो, उपर्युक्त वरदानोंसे ध्रुवका मनोरथ पूर्ण करके, भगवान् मुकुन्द धीरेसे अपना वह दिव्य रूप छिपा, बारंबार घूमकर उस भक्तको और देखते हुए अपने वैकुण्ठधामको चले गये। इसी बीचमें देवताओंका समुदाय भगवान् विष्णु और उनके भक्तके उस

समागमको देख हर्षके मारे तत्काल दिव्य पुष्प बरसाने और उस अविनाशी ध्रुवका स्तवन भी करने लगा। सुनीतिकुमार ध्रुव आज श्री और सम्मान—दोनोंसे सम्पन्न होकर देवताओंका भी वन्दनीय हो, शोभा पा रहा है। यह अपने दर्शन तथा गुणकीर्तनसे मनुष्योंकी आयु, यश तथा लक्ष्मीकी भी वृद्धि करता रहेगा॥ ९७–९९॥

इत्थं ध्रुवः प्राप पदं दुरापं
हरेः प्रसादान्न च चित्रमेतत् ।
तस्मिन् प्रसन्ने द्विजराजपत्रे
न दुर्लभं भक्तजनेषु किंचित् ॥१००॥
सूर्यमण्डलमानात्तु द्विगुणं सोममण्डलम् ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे तस्मान्नक्षत्रमण्डलम् ॥१०१॥
द्वे लक्षेऽपि बुधस्यापि स्थानं नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥१०२॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तावन्माने व्यवस्थितः।
लक्षद्वयं तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥१०३॥
सौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे तु व्यवस्थितः ।
तस्माच्छनैश्चरादूर्ध्वं लक्षे सप्तर्षिमण्डलम् ॥१०४॥
सप्तर्षिमण्डलादूर्ध्वमेकं लक्षं ध्रुवः स्थितः ।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य सत्तम ॥१०५॥

इस प्रकार ध्रुव भगवान् विष्णुके प्रसादसे दुर्लभ पद पा गया—यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। उन गरुडवाहन भगवान्‌के प्रसन्न हो जानेपर भक्तोंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। सूर्यमण्डलका जितना मान है, उससे दूना चन्द्रमण्डलका मान है। चन्द्रमण्डलसे पूरे दो लाख योजन दूर ऊपर नक्षत्रमण्डल है, नक्षत्रमण्डलसे भी दो लाख योजन ऊँचे बुधका स्थान है और बुधके भी स्थानसे उतनी ही दूरीपर शुक्रकी स्थिति है। शुक्रसे भी दो लाख योजन दूर मङ्गल है और मङ्गलसे दो लाख योजनपर देवपुरोहित बृहस्पतिका निवास है। बृहस्पतिसे भी दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। इन शनैश्चरसे दो लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है। सप्तर्षि-मण्डलसे एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित है। साधुशिरोमणे! वह समस्त ज्योतिर्मण्डलका केन्द्र है॥ १००–१०५॥

स्वभावात् तपति विप्रेन्द्र अधश्चोर्ध्वं च रश्मिभिः ।
कालसंख्यां त्रिलोकस्य स करोति युगे युगे ॥१०६॥
जनस्तपस्तथा सत्यमेतांल्लोकान् द्विजोत्तम ।
ब्रह्मणा मुनिशार्दूल विष्णुभक्तिविवर्धितः ॥१०७॥
ऊर्ध्वगतैर्द्विजश्रेष्ठ रश्मिभिस्तपते रविः ।
अधोगतैश्च भूर्लोकं द्योतते दीर्घदीधितिः ॥१०८॥

विप्रवर! सूर्यदेव स्वभावतः अपनी किरणोंद्वारा नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें ताप पहुँचाते हैं। वे ही प्रत्येक युगमें त्रिभुवनकी कालसंख्या निश्चित करते हैं। द्विजोत्तम! मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके द्वारा विष्णुभक्तिसे अभ्युदयको प्राप्त होकर सूर्य अपनी ऊर्ध्वगत किरणोंसे ऊपरके जन, तप तथा सत्य लोकोंमें गर्मी पहुँचाते हैं और अधोगत किरणोंसे भूलोकको प्रकाशित करते हैं॥ १०६–१०८॥

सर्वपापहरः सूर्यः कर्ता त्रिभुवनस्य च ।
छत्रवत् प्रतिपश्येत मण्डलान्मण्डलं परम् ॥१०९॥
आदित्यमण्डलाधस्तात् भुवर्लोकं प्रतिष्ठितम् ।
त्रैलोक्यस्यैश्वरत्वं च विष्णुदत्तं शतक्रतोः ॥११०॥
लोकपालैः स सहितो लोकान् रक्षति धर्मतः ।
वसेत् स्वर्गे महाभाग देवेन्द्रः स तु कीर्तिमान्॥१११॥
ततोऽधस्ताद्भुवे चेदं पातालं विद्धि सत्तम ।
न तत्र तपते सूर्यो न रात्रिर्न निशाकरः ॥११२॥
दिव्यस्वरूपमास्थाय तपन्ति सततं जनाः ।
पातालस्था द्विजश्रेष्ठ दीप्यमानाः स्वतेजसा ॥११३॥
स्वर्लोकात्तु महर्लोकः कोटिमात्रे व्यवस्थितः ।
ततो योजनमात्रेण द्विगुणो मण्डलेन तु ॥११४॥
जनलोकः स्थितो विप्र पञ्चमो मुनिसेवितः ।
तत्रोपरि तपोलोकश्चतुर्भिः कोटिभिः स्थितः ॥११५॥
सत्यलोकोऽष्टकोटीभिस्तपोलोकोपरिस्थितः ।
सर्वे छत्राकृतिर्ज्ञेया भुवनोपरिसंस्थिताः ॥११६॥
ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणश्च व्यवस्थितः ।
वाराहे तस्य माहात्म्यं कथितं लोकचिन्तकैः ॥११७॥

ततः परं द्विजश्रेष्ठ स्थितः परमपूरुषः ।
ब्रह्माण्डात् परमः साक्षान्निर्लेपः पुरुषःस्थितः ॥११८॥
पशुपाशैर्विमुच्येत तपोज्ञानसमन्वितः ।

समस्त पापोंको हरनेवाले सूर्यदेव त्रिभुवनकी सृष्टि करते हैं। वे छत्रकी भाँति स्थित हो एक मण्डलसे दूसरे मण्डलको दर्शन देते और प्रकाशित करते हैं। सूर्यमण्डलके नीचे भुवर्लोक प्रतिष्ठित है। तीनों भुवनोंका आधिपत्य भगवान् विष्णुने शतक्रतु इन्द्रको दे रक्खा है। वे समस्त लोकपालोंके साथ धर्मपूर्वक लोकोंकी रक्षा करते हैं। महाभाग ! वे यशस्वी देवेन्द्र स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। मुने ! इन सात लोकोंसे नीचे यह प्रभापूर्ण पाताल-लोक स्थित है, ऐसा आप जानें। वहाँ न सूर्यका ताप है, न चन्द्रमाका प्रकाश; [ न दिन है ] न रात। द्विजश्रेष्ठ ! पातालवासी जन दिव्य रूप धारण करके सदा अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए तपते हैं। स्वर्गलोकसे करोड़ योजन ऊपर महर्लोक स्थित है। हे विप्र ! उससे दूने दो करोड़ योजनपर मुनिसेवित जनलोक, जो पाँचवाँ लोक है, स्थित है। उससे चार करोड़ योजन ऊपर तपोलोककी स्थिति है। तपोलोकसे ऊपर आठ करोड़ योजनपर सत्यलोक ( ब्रह्मलोक ) स्थित है। ये सभी भुवन एक-दूसरेके ऊपर छत्रकी भाँति स्थित हैं। ब्रह्मलोकसे सोलह करोड़ योजनपर विष्णुलोककी स्थिति है। लोकचिन्तकोंने वाराहपुराणमें उसके माहात्म्यका वर्णन किया है। द्विजश्रेष्ठ ! इसके आगे परम पुरुषकी स्थिति है, जो ब्रह्माण्डसे विलक्षण साक्षात् परमात्मा हैं। इस प्रकार जाननेवाला मनुष्य तप और ज्ञानसे युक्त होकर पशुपाश ( अविद्या-बन्धन ) से मुक्त हो जाता है ॥ १०९-११८½ ॥

इति ते संस्थितिः प्रोक्ता भूगोलस्य मयानघ ।
यस्तु सम्यगिमां वेत्ति स याति परमां गतिम् ॥११९॥
लोकस्य संस्थानकरोऽप्रमेयो
विष्णुर्नृसिंहो नरदेवपूजितः ।
युगे युगे विष्णुरनादिमूर्तिमा-
नास्थाय विश्वं परिपाति दुष्टहा ॥१२०॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥*

अनघ ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूगोलकी स्थिति बतलायी। जो पुरुष सम्यक् प्रकारसे इसका ज्ञान रखता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। मनुष्यों और देवताओंसे पूजित नृसिंहस्वरूप अप्रमेय भगवान् विष्णु लोककी रक्षा करनेवाले हैं। वे अनादिमूर्तिमान् परमेश्वर प्रत्येक युगमें शरीर धारणकर दुष्टोंका वध करके विश्वका पालन करते हैं ॥ ११९-१२० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

## बत्तीसवाँ अध्याय

### सहस्रानीक-चरित्र; श्रीनृसिंह-पूजनका माहात्म्य

भरद्वाज उवाच

सहस्रानीकस्य हरेरवतारांश्च शार्ङ्गिणः ।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि तन्मे वद महामते ॥ १ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी ! अब मैं सहस्रानीकका चरित्र और भगवान् विष्णुके अवतारोंकी कथा सुनना चाहता हूँ; महामते ! कृपा करके वह मुझसे कहिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि चरितं तस्य धीमतः ।
सहस्रानीकस्य हरेरवतारांश्च मे शृणु ॥ २ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन् ! बहुत अच्छा; अब मैं बुद्धिमान् सहस्रानीकके चरित्रका और भगवान्के अवतारोंका वर्णन करूँगा, सुनिये ॥ २ ॥

सहस्रानीकोऽभिषिक्तो निजराज्ये द्विजोत्तमैः ।
पालयामास धर्मेण राज्यं स तु नृपात्मजः ॥ ३ ॥
तस्य पालयतो राज्यं राजपुत्रस्य धीमतः ।
भक्तिर्बभूव देवेशे नरसिंहे सुरोत्तमे ॥ ४ ॥
तं द्रष्टुमागतः साक्षाद्विष्णुभक्तो भृगुः पुरा ।
अर्घ्यपाद्यासनै राजा तमभ्यर्च्याब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥
पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ साम्प्रतं तव दर्शनात् ।
त्वद्दर्शनमपुण्यानां कलावस्मिन् सुदुर्लभम् ॥ ६ ॥

नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य देवदेवं सनातनम् ।
आराधयितुमिच्छामि विधानं तत्र मे वद ॥ ७ ॥
अवतारानशेषांश्च देवदेवस्य चक्रिणः ।
श्रोतुमिच्छामि सकलांस्तान् पुण्यानपि मे वद ॥ ८ ॥

राजकुमार सहस्रानीकको जब उत्तम ब्राह्मणोंने उसके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया, तब वे धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे । राज्यके पालनमें लगे हुए बुद्धिमान् राजकुमारकी देवेश्वर, देवश्रेष्ठ भगवान् नृसिंहमें भक्ति हो गयी । पूर्वकालमें एक बार उन विष्णुभक्त नरेशका दर्शन करनेके लिये स्वयं भृगुजी आये । राजाने अर्घ्य, पाद्य और आसनादिके द्वारा भृगुजीका सम्मान करके उनसे यह कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! इस समय मैं आपके दर्शनसे पवित्र हो गया । जिन्होंने पुण्य नहीं किया है, ऐसे मनुष्योंके लिये इस कलियुगमें आपका दर्शन परम दुर्लभ है । मैं सनातन देवदेव नरसिंहकी स्थापना करके उनकी आराधना करना चाहता हूँ; आप कृपया मुझे इसका विधान बतावें । तथा मैं देवदेव श्रीहरिके सम्पूर्ण अवतारोंको भी सुनना चाहता हूँ; अतः आप उन सभी पुण्यावतारोंकी कथा मुझसे कहिये' ॥ ३–८ ॥

भृगुरुवाच

शृणु भूपालपुत्र त्वं न हि कश्चित् कलौ युगे ।
हरौ भक्तिं करोत्यत्र नृसिंहे चातिभक्तिमान् ॥ ९ ॥
स्वभावाद्यस्य भक्तिः स्यान्नरसिंहे सुरोत्तमे ।
तस्यारयः प्रणश्यन्ति कार्यसिद्धिश्च जायते ॥१०॥
त्वमतीव हरेर्भक्तः पाण्डुवंशोऽपि सत्तमः ।
तेन ते निखिलं वक्ष्ये शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥११॥

भृगुजी बोले—राजकुमार ! सुनो; इस कलियुगमें कोई भी भगवान् नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखकर उनकी आराधना नहीं कर रहा है । देववर भगवान् नृसिंहमें जिसकी स्वभावतः भक्ति हो जाती है, उसके सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं और उसे प्रत्येक कार्यमें सिद्धि प्राप्त होती है । इस पाण्डुवंशमें तुम ही श्रेष्ठ पुरुष और भगवान्के अत्यन्त भक्त हो; अतः तुमसे मैं तुम्हारी पूछी हुई सब बातें बताऊँगा; एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ९–११ ॥

यः कुर्याच्छोभनं वेश्म नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१२॥
प्रतिमां लक्षणोपेतां नरसिंहस्य कारयेत् ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१३॥
प्रतिष्ठां नरसिंहस्य यः करोति यथाविधि ।
निष्कामो नरशार्दूल देहबाधात् प्रमुच्यते ॥१४॥
नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य यः पूजामाचरेन्नरः ।
तस्य कामाः प्रसिध्यन्ति परमं पदमाप्नुयात् ॥१५॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे विष्णुमाराध्य ते पुरा ।
स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्य प्रसादतः ॥१६॥
ये ये नृपवरा राजन् मांधातृप्रमुखा नृपाः ।
ते ते विष्णुं समाराध्य स्वर्गलोकमितो गताः ॥१७॥
यस्तु पूजयते नित्यं नरसिंहं सुरेश्वरम् ।
स स्वर्गमोक्षभागी स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥
तस्मादेकमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया ।
अर्चनान्नरसिंहस्य प्राप्स्यसे स्वाभिवाञ्छितम् ॥१९॥
विधिवत्स्थापयेद्यस्तु कारयित्वा जनार्दनम् ।
न तु निर्गमनं तस्य विष्णुलोकाद् भवेन्नृप ॥२०॥
नरो नृसिंहं तमनन्तविक्रमं
सुरासुरैरर्चितपादपङ्कजम् ।
संस्थाप्य भक्त्या विधिवच्च पूजयेत्
प्रयाति साक्षात् परमेश्वरं हरिम् ॥२१॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरिते*
*द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥*

जो भक्तिपूर्वक नृसिंहदेवका सुन्दर मन्दिर निर्माण कराता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है। जो भगवान् नृसिंहकी सुन्दर लक्षणोंसे युक्त प्रतिमा बनवाता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पाकर विष्णुलोकको जाता है। नरश्रेष्ठ ! जो निष्कामभावसे नृसिंहदेवकी विधिवत् प्रतिष्ठा करता है, वह दैहिक दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। जो भगवान् नृसिंहकी स्थापना करके सदा उनकी पूजा करता है, उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा वह परम पदको प्राप्त कर लेता है । ब्रह्मादि सभी देवता पूर्वकालमें भगवान् विष्णुकी आराधना करके उनके प्रसादसे अपने-अपने लोकको प्राप्त हुए थे । राजन् ! मांधाता आदि जो-जो प्रधान नरेश हो गये हैं, वे सभी

भगवान् विष्णुकी आराधना करके यहाँसे स्वर्गलोकको चले गये। जो सुरेश्वर नृसिंहका प्रतिदिन पूजन करता है, वह स्वर्ग और मोक्षका भागी होता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये तुम भी प्रतिज्ञापूर्वक एकचित्त होकर, जीवनपर्यन्त भगवान् नृसिंहकी पूजा करते हुए अपना मनोरथ प्राप्त करोगे। नृप! जो भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा बनवाकर विधिवत् उसकी स्थापना करता है, उसका विष्णुलोकसे कभी निष्क्रमण नहीं होता। यदि मनुष्य उन अनन्त विक्रमशाली भगवान् नरसिंहकी, जिनके चरण-कमलोंकी देवता तथा असुर, दोनों ही पूजा करते हैं, विधिवत् स्थापना करके भक्तिपूर्वक पूजा करे तो वह साक्षात् परमेश्वर भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है॥ १२—२१॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें सहस्रानीक-चरित्रके अन्तर्गत बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

# तैंतीसवाँ अध्याय

## भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ू देने और उसको लीपनेका महान् फल—राजा जयध्वजकी कथा

राजोवाच

हरेरर्चाविधिं पुण्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
त्वत्प्रसादाद्विशेषेण भगवन् प्रब्रवीहि मे॥ १॥
सम्मार्जनकरो यश्च नरसिंहस्य मन्दिरे।
यत्पुण्यं लभते तद्वदुपलेपनकृन्नरः॥ २॥
शुद्धोदकेन यत्पुण्यं स्नापिते केशवे भवेत्।
क्षीरस्नानेन यत्पुण्यं दध्ना च मधुना तथा।
घृतस्नानेन यत्पुण्यं पञ्चगव्येन यद् भवेत्॥ ३॥
क्षालिते चोष्णतोयेन प्रतिमायां च भक्तितः।
कर्पूरागुरुतोयेन मिश्रेण स्नापितेन च॥ ४॥
अर्घ्यदानेन यत्पुण्यं पाद्याचमनदानके।
मन्त्रेण स्नापिते यच्च वस्त्रदानेन यद्भवेत्॥ ५॥

**राजा बोले**—भगवन्! मैं आपके प्रसादसे भगवान्‌के पूजनकी पावन विधिको विशेषरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ; कृपया आप मुझे विस्तारसे बतायें। भगवान् नृसिंहके मन्दिरमें जो झाड़ू देता है वह, तथा जो उसे लीपता-पोतता है, वह पुरुष किस पुण्यको प्राप्त करता है? केशवको शुद्ध जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है तथा दूध, दही, मधु, घी एवं पञ्चगव्यद्वारा स्नान करानेसे क्या पुण्य होता है? भगवान्‌की प्रतिमाको गर्म जलसे भक्तिपूर्वक स्नान करानेपर तथा कपूर और अगर मिले हुए जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? भगवान्‌को अर्घ्य देनेसे, पाद्य और आचमन अर्पण करनेसे, मन्त्रोच्चारणपूर्वक नहलानेसे और वस्त्र-दान करनेसे क्या पुण्य होता है?॥ १—५॥

श्रीखण्डकुङ्कुमाभ्यां तु अर्चिते, किं फलं भवेत्।
पुष्पैरभ्यर्चिते यच्च यत्फलं धूपदीपयोः॥ ६॥
नैवेद्यैर्यत्फलं प्रोक्तं प्रदक्षिणकृते तु यत्।
नमस्कारकृते यच्च फलं यत्स्तोत्रगीतयोः॥ ७॥
तालवृन्तप्रदानेन चामरस्य च यद्भवेत्।
ध्वजप्रदाने यद्विष्णोः शङ्खदानेन यद्भवेत्॥ ८॥
एतच्चान्यच्च यत्किंचिदज्ञानान्न प्रचोदितम्।
तत्सर्वं कथय ब्रह्मन् भक्तस्य मम केशवे॥ ९॥

चन्दन और केसरद्वारा पूजा करनेपर तथा फूलोंसे पूजा करनेपर क्या फल होता है? तथा धूप और दीप देनेका क्या फल है? नैवेद्य निवेदन करनेका और प्रदक्षिणा करनेका क्या फल है? इसी प्रकार नमस्कार करनेसे एवं स्तुति और यशोगान करनेसे कौन-सा फल प्राप्त होता है? भगवान् विष्णुके लिये पंखा दान करने, चँवर प्रदान करने, ध्वजाका दान करने और शङ्ख-दान करनेसे क्या फल होता है? ब्रह्मन्! मैंने जो कुछ पूछा है, वह तथा अज्ञानवश मैंने जो नहीं पूछा है, वह सब भी मुझसे कहिये; क्योंकि भगवान् केशवके प्रति मेरी हार्दिक भक्ति है॥ ६—९॥

सूत उवाच

इति सम्प्रेरितो विप्रस्तेन राज्ञा भृगुस्तदा।
मार्कण्डेयं नियुज्याथ कथने स गतो मुनिः॥ १०॥
सोऽपि तस्मिन् मुदायुक्तो हरिभक्त्या विशेषतः।
राज्ञे प्रवक्तुमारेभे भृगुणा चोदितो मुनिः॥ ११॥

**सूतजी बोले**—राजाके इस प्रकार पूछनेपर वे ब्रह्मर्षि

भृगुमुनि मार्कण्डेयजीको उत्तर देनेके लिये नियुक्त करके स्वयं चले गये। भृगुजीकी प्रेरणासे मुनिवर मार्कण्डेयजीने राजापर उनकी हरिभक्तिसे विशेष प्रसन्न होकर उनके प्रति इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ १०-११ ॥

मार्कण्डेय उवाच

राजपुत्र शृणुष्वेदं हरिपूजाविधिं क्रमात् ।
विष्णुभक्तस्य वक्ष्यामि तवाहं पाण्डुवंशज ॥१२॥
नरसिंहस्य नित्यं च यः सम्मार्जनमारभेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥१३॥
गोमयेन मृदा तोयैर्यः करोत्युपलेपनम् ।
स चाक्षयफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥१४॥
अत्रार्थे यत्पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तिर्भवति सत्तम ॥१५॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—पाण्डुकुलनन्दन राजकुमार ! भगवान् विष्णुकी इस पूजा-विधिको क्रमशः सुनो; तुम विष्णुके भक्त हो, अतः मैं तुम्हें यह सब बताऊँगा। जो भगवान् नरसिंहके मन्दिरमें नित्य झाड़ू लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें आनन्दित होता है। जो गोबर, मिट्टी तथा जलसे वहाँकी भूमि लीपता है, वह अक्षय फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सत्तम ! इस विषयमें एक प्राचीन सत्य इतिहास है, जिसे सुनकर सब पापोंसे मुक्ति मिल जाती है ॥१२—१५॥

पुरा युधिष्ठिरो राजा पञ्चभिर्भ्रातृभिर्युतः ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र काननं विचचार ह ॥१६॥
शूलकण्टकनिष्क्रान्तास्ततस्ते पञ्च पाण्डवाः ।
नारदोऽपि गतो नाकं जुष्ट्वेदं तीर्थमुत्तमम् ॥१७॥
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रस्थितस्तीर्थमुत्तमम् ।
दर्शनं मुनिमुख्यस्य तीर्थधर्मोपदेशिनः ॥१८॥
चिन्तयति च धर्मात्मा क्रोधपैशुन्यवर्जितः ।
दानवो बहुरोमा च तथा स्थूलशिरा नृप ॥१९॥
पाण्डवान् गच्छतो वीक्ष्य दानवो द्रौपदीच्छया ।
कृत्वा भूप मुने रूपं बहुरोमाऽऽगतस्तदा ॥२०॥
प्रणिधानं विधायाथ आसीनः कुशविष्टरे ।
बिभ्रत् कमण्डलुं पार्श्वे दर्भसूचीं तथा करे ॥२१॥
अक्षमालां जपन्मन्त्रं स्वनासाग्रं निरीक्षयन् ।
स दृष्टः पाण्डवैस्तत्र रेवायां वनचारिभिः ॥२२॥

राजेन्द्र ! पूर्वकालमें राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा अपने पाँच भाइयोंके साथ वनमें विचरते थे। घूमते-घूमते वे पाँचों पाण्डव शूल और कण्टकमय मार्गको पार करके एक उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थित हुए। उसके पहले भगवान् नारदजी भी उस उत्तम तीर्थका सेवन करके स्वर्गलोकको लौट गये थे। क्रोध और पिशुनतासे रहित धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर उस उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थान करके तीर्थधर्मका उपदेश करनेवाले किसी मुनिवरके दर्शनकी बात सोच रहे थे, इसी बीचमें बहुरोमा तथा स्थूलशिरा नामक दानव वहाँ आये। भूपाल ! पाण्डवोंको जाते देख द्रौपदीका अपहरण करनेकी इच्छासे बहुरोमा नामक दानव मुनिका रूप धारण करके वहाँ आया। वह कुशके आसनपर बैठकर ध्यानमग्न हो गया। उसके पार्श्वमें कमण्डलु था और हाथमें उसने कुशकी पवित्री पहन रक्खी थी। वह नासिकाके अग्रभागका अवलोकन करता हुआ रुद्राक्षकी मालासे मन्त्र-जप कर रहा था। नर्मदा-तटवर्ती वनमें भ्रमण करते हुए पाण्डवोंने वहाँ उसे देखा ॥१६—२२॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तं प्रणम्य सहानुजः ।
जगाद वचनं दृष्ट्वा भाग्येनासि महामुने ॥२३॥
तीर्थानि रुद्रदेहायाः सुगोप्यानि निवेदय ।
मुनीनां दर्शनं नाथ श्रुतं धर्मोपदेशकम् ॥२४॥

तदनन्तर उसे देखकर राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित प्रणाम करके उससे यह बात कही—'महामुने ! भाग्यसे आप यहाँ विद्यमान हैं। इस 'रुद्रदेहा' ( रेवा ) के समीपवर्ती परम गोपनीय तीर्थोंको हमें बताइये। नाथ ! हमने सुना है कि मुनियोंका दर्शन धर्मका उपदेश करनेवाला होता है ॥ २३-२४ ॥

यावन्मुनिमुवाचेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
तावत्स्थूलशिराः प्राप्तो मुनिरूपधरोऽपरः ॥२५॥
जल्पन्नित्यातुरं वाक्यं को नामास्त्यत्र रक्षकः।
भयातुरं नरो जीवं यो रक्षेच्छरणागतम् ॥२६॥
तस्यानन्तफलं स्याद्धि किं पुनर्मां द्विजोत्तमम् ।
एकतो मेदिनीदानं मेरुभूधरदक्षिणम् ॥२७॥

अन्यतो ह्यार्तजीवानां प्राणसंक्षयवारणम् ।
द्विजं धेनुं स्त्रियं बालं पीड्यमानं च दुर्जनैः ॥२८॥
उपेक्षेत नरो यस्तु स च गच्छति रौरवम् ।
अथ मां हृतसर्वस्वं प्राणत्यागपरायणम् ॥२९॥
को रक्षति नरो वीरः पराभूतं हि दानवैः ।
गृहीत्वा चाक्षमालां मे तथा शुभकमण्डलुम् ॥३०॥
निहतोऽहं कराघातैस्तथा खाटो मनोहरः ।
गृहीतं मम सर्वस्वं दानवेन दुरात्मना ॥३१॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर जबतक उस मायावी मुनिसे बात कर ही रहे थे, तबतक ही स्थूलशिरा नामक दूसरा दानव मुनिरूप धारण किये वहाँ आ पहुँचा । वह बड़े ही आतुरभावसे इस प्रकार पुकार रहा था—'अहो ! यहाँ कौन हमारी रक्षा करनेवाला है ? जो मनुष्य शरणमें आये हुए किसी भी भय-पीडितकी रक्षा करता है, वह अनन्त पुण्यफलका भागी होता है; फिर जो मुझ उत्तम ब्राह्मणकी रक्षा करेगा, उसके पुण्य-फलका तो कहना ही क्या है । एक ओर मेरुपर्वतकी दक्षिणापूर्वक सम्पूर्ण पृथिवीका दान और दूसरी ओर पीड़ित प्राणियोंके प्राण-संकटका निवारण—दोनों बराबर हैं । जो पुरुष दुष्टोंद्वारा सताये जाते हुए ब्राह्मण, गौ, स्त्री और बालकोंकी उपेक्षा करता है, वह रौरव नरकमें पड़ता है । मेरा सर्वस्व लूट लिया गया है । मैं दानवोंसे अपमानित होकर प्राण त्याग देनेको उद्यत हूँ । इस समय कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो मेरी रक्षा कर सके ? दुष्ट दानवने मेरी स्फटिककी माला, सुन्दर कमण्डलु और मनोहर खाट छीनकर मुझे थप्पड़से मारा है और सर्वस्व लूट लिया है ॥ २५—३१ ॥

इत्याकर्ण्य वचः क्लीबं पाण्डवा जातसम्भ्रमाः ।
यान्ति रोमाञ्चिता भूयो विधायाग्निं च तं मुनिम् ॥३२॥
विमुच्य द्रौपदीं तत्र मुनेः पार्श्वे महात्मनः ।
ततो दूरतरं प्राप्ताः संरम्भात्ते च पाण्डवाः ॥३३॥

इस प्रकारके कातर वचन सुनकर पाण्डव हड़बड़ा गये । वे रोमाञ्चित हो, आग जलाकर उस मुनिके पीछे चले । द्रौपदीको उन लोगोंने पहलेवाले महात्मा मुनिके पास ही छोड़ दिया और स्वयं रोषसे भरकर वहाँसे बहुत दूर निकल गये ॥ ३२-३३ ॥

ततो युधिष्ठिरोऽवोचत् किं च नो नात्र दृश्यते ।
कृष्णासंरक्षणार्थाय व्रज व्यावर्त्य चार्जुन ॥३४॥
ततोऽर्जुनो विनिष्क्रान्तो बन्धुवाक्यप्रणोदितः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा सत्यां वाचमकल्पयत् ॥३५॥
निरीक्ष्य मण्डलं भानोस्तदा सुगहने वने ।
मम सत्याच्च सुकृताद् धर्मसम्भाषणात् प्रभो ॥३६॥
तथ्यं शंसन्तु त्रिदशा मम संशयभाजिनः ।

तदनन्तर युधिष्ठिरने कहा—हमें तो यहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता । अर्जुन ! तुम द्रौपदीकी रक्षाके लिये यहाँसे लौट जाओ । तब भाईके वचनसे प्रेरित होकर अर्जुन वहाँसे चल दिये । राजन् ! फिर राजा युधिष्ठिरने उस गहन वनके भीतर सूर्यमण्डलकी ओर देखकर यह सत्य वचन कहा—'मेरी सत्यवादिता, पुण्यकर्म तथा धर्मपूर्वक भाषण करनेसे संतुष्ट होकर देवगण संशयमें पड़े हुए मुझको सत्य बात बतला दें ॥ ३४—३६½ ॥

ततोऽम्बरेऽभवद्वाणी तदा भूपाशरीरिणी ॥३७॥
दानवोऽयं महाराज मुनिः स्थूलशिराः स्थितः ।
नासावुपद्रुतः केन मायैषास्य दुरात्मनः ॥३८॥

राजन् ! युधिष्ठिरके यों कहनेपर आकाशमें इस प्रकारका शब्द हुआ, यद्यपि वहाँ बोलनेवाला कोई व्यक्ति नहीं था—'महाराज ! यह [ जो आपके पास खड़ा है, वह मुनि नहीं ] दानव है । 'स्थूलशिरा' नामक मुनि तो सुखपूर्वक हैं, उनपर किसीके द्वारा कोई उपद्रव नहीं है । यह तो इस दुष्टकी माया है ॥ ३७-३८ ॥

ततो भीमः कराघातैर्नश्यमानं हि दानवम् ।
संरम्भात्कुपितोऽत्यर्थं मौलिदेशे जघान तम् ॥३९॥
सोऽपि रूपं निजं प्राप्य रौद्रं भीममताडयत् ।
तत्र युद्धं प्रववृते दारुणं भीमदैत्ययोः ॥४०॥
कष्टाद्बभञ्ज भीमोऽपि तस्य स्थूलं शिरो वने ।

तब भीमने अत्यन्त क्रोधसे युक्त हो उस भागते हुए दानवके मस्तकपर बड़े वेगसे मुष्टिप्रहार किया । फिर तो दानवने भी अपना रौद्ररूप धारण किया और भीमको मुक्का मारा । इस प्रकार भीम और दानवमें वहाँ दारुण संग्राम छिड़ गया । भीमने उस वनमें बड़े कष्टसे उसके स्थूल मस्तकका छेदन किया ॥ ३९-४०½ ॥

अर्जुनोऽपि समायातो नैव पश्यति तं मुनिम् ॥४१॥
तथा च द्रौपदीं भूयः साध्वीं कान्तां च वल्लभाम् ।
ततो वृक्षं समारुह्य यावत्पश्यति चार्जुनः ॥४२॥
तावद्विधाय तां स्कन्धे शीघ्रं धावति दानवः ।
संहृता याति दुष्टेन रुदती कुररी यथा ॥४३॥
कुर्वती भीमभीमेति धर्मपुत्रेति वादिनी ।
तां दृष्ट्वा स ययौ वीरः शब्दैः संनादयन् दिशः ॥
पादन्यासोरुवेगेन प्रभग्नाः पादपा भृशम् ।
ततो दैत्योऽपि तां तन्वीं विहायाशु पलायितः॥४५॥
तथापि चार्जुनो तस्य कोपान्मुञ्चति नासुरम् ।
पतितो मेदिनीपृष्ठे तावदेव चतुर्भुजः ॥४६॥
पीते च वाससी बिभ्रत् शङ्खचक्रायुधानि च ।
ततः स विस्मयाक्रान्तो नत्वा पार्थो वचोऽवदत्॥४७॥

इधर, अर्जुन भी जब मुनिके आश्रमपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें न तो वह मुनि दिखायी दिया और न प्राणप्रिया साध्वी भार्या द्रौपदी ही दीख पड़ी। तब अर्जुनने वृक्षपर चढ़कर ज्यों ही इधर-उधर दृष्टि डाली, त्यों-ही देखा कि एक दानव द्रौपदीको अपने कंधेपर बिठाकर बड़ी शीघ्रतासे भागा जा रहा है और उस दुष्टके द्वारा हरी गयी द्रौपदी कुररीकी भाँति 'हा धर्मपुत्र! हा भीम!' इत्यादि रटती हुई विलाप कर रही है। द्रौपदीको उस अवस्थामें देखकर वीर अर्जुन अपनी आवाजसे दिशाओंको गुँजाते हुए चले। उस समय उनके बड़े वेगसे पैर रखनेके कारण अनेकानेक वृक्ष गिर गये। तब वह दैत्य भी उस तन्वङ्गीको छोड़कर अकेला ही वेगसे भागा; तथापि अर्जुनने क्रोधके कारण उस असुरका पीछा न छोड़ा। भागते-भागते वह दानव एक जगह पृथ्वीपर गिर पड़ा और गिरते-ही चार भुजाओंसे युक्त हो, शङ्ख तथा चक्र आदि धारण किये पीताम्बरधारी विष्णुके रूपमें दीख पड़ा। तब कुन्तीनन्दन अर्जुन बड़े ही विस्मित हुए और प्रणाम करके बोले ॥ ४१-४७ ॥

अर्जुन उवाच

कथं कृतैषा भगवंस्त्वया मायात्र वैष्णवी ।
ममाप्यपकृतं नाथ तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥४८॥
नूनमज्ञानभावेन कर्मैतद्दारुणं मया ।
तत्क्षन्तव्यं जगन्नाथ चैतन्यं मानवे कुतः ॥४९॥

**अर्जुनने कहा**—भगवन्! आपने यहाँ वैष्णवी माया क्यों फैला रक्खी थी? मैंने भी जो आपका अपकार किया है, उसके लिये हे नाथ! मेरे अपराधको क्षमा करें; आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ! अज्ञानके कारण ही मैंने यह दारुण कर्म किया है; इसलिये इसे क्षमा कर दें। भला, एक साधारण मनुष्यमें इतनी समझ कहाँ हो सकती है, जिससे आपको अन्य वेषमें भी पहचान ले ॥ ४८-४९ ॥

चतुर्भुज उवाच

नाहं कृष्णो महाबाहो बहुरोमास्मि दानवः ।
उपयातो हरेर्देहं पूर्वकर्मप्रभावतः ॥५०॥

**चतुर्भुज बोला**—महाबाहो! मैं विष्णु नहीं, बहुरोमा नामक दानव हूँ। मैंने अपने पूर्वकर्मके प्रभावसे भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच

बहुरोमन् पूर्वजातिं कर्म मे शंस तत्त्वतः ।
केन कर्मविपाकेन विष्णोः सारूप्यमाप्तवान् ॥५१॥

**अर्जुन बोले**—बहुरोमन्! तुम अपने पूर्वजन्म और कर्मका ठीक-ठीक वर्णन करो। तुमने किस कर्मके परिणामसे विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है? ॥ ५१ ॥

चतुर्भुज उवाच

शृण्वर्जुन महाभाग सहितो भ्रातृभिर्मम ।
चरितं चित्रमत्यर्थं शृण्वतां मुदवर्धनम् ॥५२॥
अहमासं पुरा राजा सोमवंशसमुद्भवः ।
जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ॥५३॥
विष्णोर्देवालये नित्यं सम्मार्जनपरायणः ।
उपलेपरतश्चैव दीपदाने समुद्यतः ॥५४॥
वीतिहोत्र इति ख्यात आसीत् साधुपुरोहितः ।
मम तच्चरितं दृष्ट्वा विप्रो विस्मयमागतः ॥५५॥

**चतुर्भुज बोला**—महाभाग अर्जुन! आप अपने भाइयोंके साथ मेरे अत्यन्त विचित्र चरित्रको सुनिये; यह श्रोताओंके आनन्दको बढ़ानेवाला है। मैं पूर्वजन्ममें चन्द्रवंशमें उत्पन्न जयध्वज नामसे विख्यात राजा था। उस समय सदा ही मैं भगवान् नारायणके भजनमें लगा रहता और उनके मन्दिरमें झाड़ू लगाया करता था। प्रतिदिन उस मन्दिरको लीपता और [ रात्रिमें ] वहाँ दीप जलाया करता था। उन दिनों वीति-

होत्र नामक एक साधु ब्राह्मण मेरे यहाँ पुरोहित थे। प्रभो! वे मेरे इस कार्यको देखकर बहुत विस्मित हुए ॥ ५२–५५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिदुपविष्टं तं राजानं विष्णुतत्परम् ।
अपृच्छद्वीतिहोत्रस्तं वेदवेदाङ्गपारगः ॥५६॥
राजन् परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण ।
विष्णुभक्तिमतां पुंसां श्रेष्ठोऽसि पुरुषर्षभ ॥५७॥
सम्मार्जनपरो नित्यं उपलेपरतस्तथा ।
तन्मे वद महाभाग त्वया किं विदितं फलम् ॥५८॥
कर्माण्यन्यानि सन्त्येव विष्णोः प्रियतराणि वै ।
तथापि त्वं महाभाग एतयोः सततोद्यतः ॥५९॥
सर्वात्मना महापुण्यं जनेश विदितं तव ।
तद्ब्रूहि यद्यगुह्यं च प्रीतिर्मयि तवास्ति चेत् ॥६०॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—एक दिन वेद-वेदाङ्गोंके पूर्ण विद्वान् पुरोहित वीतिहोत्रजीने बैठे हुए उन विष्णुभक्त राजासे इस प्रकार प्रश्न किया—'परम धर्मज्ञ भूपाल! हरिभक्तिपरायण नरश्रेष्ठ! आप विष्णुभक्त पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं; क्योंकि आप भगवान्‌के मन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू तथा लेप दिया करते हैं। अतः महाभाग! आप मुझे बताइये कि भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ू देने और वहाँ लीपने-पोतनेका कौन-सा उत्तम फल आप जानते हैं। यद्यपि भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय लगनेवाले अन्य कर्म भी हैं ही, तथापि महाभाग! आप इन्हीं दो कर्मोंमें सदा सर्वथा लगे रहते हैं। नरेश्वर! यदि आपको इनसे होनेवाला महान् पुण्यरूप फल ज्ञात हो और वह छिपानेयोग्य न हो तथा यदि आपका मुझपर प्रेम हो तो अवश्य ही उस फलको मुझे बताइये' ॥ ५६–६० ॥

जयध्वज उवाच

शृणुष्व विप्रशार्दूल ममैव चरितं पुरा ॥६१॥
जातिस्मरत्वाज्जानामि श्रोतॄणां विस्मयावहम् ।
पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र रैवतो नाम वाडवः ॥६२॥
अयाज्ययाजकोऽहं वै सदैव ग्रामयाजकः ।
पिशुनो निष्ठुरश्चैव अपण्यानां च विक्रयी ॥६३॥
निषिद्धकर्माचरणात् परित्यक्तः स्वबन्धुभिः ।
महापापरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥६४॥
परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्तुहिंसकः ।
मद्यपानरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥६५॥
एवं पापरतो नित्यं बहुशो मार्गरोधकृत् ।

**जयध्वज बोले**—विप्रवर! इस विषयमें आप मेरा ही पूर्वजन्मका चरित्र सुनें। मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है, इसीसे मैं सब जानता हूँ। मेरा चरित्र श्रोताओंको आश्चर्यमें डालनेवाला है। विप्रेन्द्र! पूर्वजन्ममें मैं रैवत नामका ब्राह्मण था। जिनको यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है, उनसे भी मैं सदा ही यज्ञ कराता था और अनेकों गाँवोंका पुरोहित था। इतना ही नहीं, मैं दूसरोंकी चुगली खानेवाला, निर्दय और नहीं बेचनेयोग्य वस्तुओंका विक्रय करनेवाला था। निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेके कारण मेरे बान्धवोंने मुझे त्याग दिया था। मैं महान् पापी और सदा ही ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाला था। परायी स्त्री और पराये धनका लोभी था, प्राणियोंकी हिंसा किया करता था। सदा ही मद्य पीता और ब्राह्मणोंसे द्वेष रखता था। इस प्रकार मैं प्रतिदिन पापमें लगा रहता और बहुधा लूटपाट भी करता था ॥ ६१–६५½ ॥

कदाचित् कामचारोऽहं गृहीत्वा ब्राह्मणस्त्रियः ॥६६॥
शून्यं पूजादिभिर्विष्णोर्मन्दिरं प्राप्तवान्निशि ।
स्ववस्त्रप्रान्ततो ब्रह्मन् कियदंशः स मार्जितः ॥६७॥
प्रदीपः स्थापितस्तत्र सुरतार्थाद् द्विजोत्तम ।
तेनापि मम दुष्कर्म निःशेषं क्षयमागतम् ॥६८॥
एवं स्थितं विष्णुगृहे मया भोगेच्छया द्विज ।
तदैव दीपकं दृष्ट्वा आगताः पुरपालकाः ॥६९॥
चौर्यार्थं परदूतोऽयमित्युक्त्वा मामपातयन् ।
खड्गेन तीक्ष्णधारेण शिरश्छित्त्वा च ते गताः ॥७०॥
दिव्यं विमानमारुह्य प्रमुदाससमन्वितम् ।
गन्धर्वैर्गीयमानोऽहं स्वर्गलोकं तदा गतः ॥७१॥

एक दिन रातमें स्वेच्छाचारिताके कारण मैं कुछ ब्राह्मण-पत्नियोंको पकड़कर एक सूने ठाकुर-मन्दिरमें ले गया। उस मन्दिरमें कभी पूजा नहीं होती थी। [ यों ही खँडहर-सा पड़ा रहता था। ] वहाँ स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी इच्छासे मैंने अपने वस्त्रके किनारेसे उस मन्दिरका कुछ भाग बुहारकर साफ किया और हे द्विजोत्तम! [ प्रकाशके लिये ] दीप जलाकर रख दिया। [ यद्यपि मैंने अपनी पाप-वासना पूर्ण करनेके

लिये ही मन्दिरमें झाड़ू लगायी और दीप जलाया था, तथापि ] उससे भी मेरा सारा पापकर्म नष्ट हो गया । ब्राह्मण ! इस प्रकार जब मैं उस विष्णुमन्दिरमें भोगकी इच्छासे ठहरा हुआ था, उसी समय वहाँ दीपक देखकर नगरके रक्षक आ पहुँचे और यह कहकर कि 'यह किसी शत्रुका दूत है, यहाँ चोरी करने आया है', उन्होंने मुझे पृथ्वीपर गिरा दिया तथा तीखी धारवाली तलवारसे मेरा मस्तक काटकर वे चले गये । तब मैं भगवान्‌के पार्षदोंसे युक्त दिव्य विमानपर आरूढ हो, गन्धर्वोंद्वारा अपना यशोगान सुनता हुआ स्वर्गलोकको चला गया ॥ ६६—७१ ॥

चतुर्भुज उवाच

**तत्र स्थित्वा ब्रह्मकल्पं शतं साग्रं द्विजोत्तमाः ।**
**दिव्यभोगसमायुक्तो दिव्यरूपसमन्वितः ॥७२॥**
**जातोऽहं पुण्ययोगाद्धि सोमवंशसमुद्भवः ।**
**जयध्वज इति ख्यातो राजा राजीवलोचनः ॥७३॥**
**तत्रापि कालवशतो मृतः स्वर्गमवाप्तवान् ।**
**इन्द्रलोकमनुप्राप्य रुद्रलोकं ततो गतः ॥७४॥**
**रुद्रलोकाद्ब्रह्मलोकं गच्छता नारदो मुनिः ।**
**दृष्टश्च नमितो नैव गर्वान्मे हसितश्च सः ॥७५॥**
**कुपितः शप्तवान् मां स राक्षसो भव भूपते ।**
**इति शापं समाकर्ण्य दत्तं तेन द्विजन्मना ॥७६॥**
**प्रसादितो मया भूप प्रसादं कृतवान् मुनिः ।**
**यदा रेवामठे राजन् धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥७७॥**
**भार्यापहारं नयतः शापमोक्षो भविष्यति ।**
**सोऽहमर्जुन भूपाल धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥७८॥**
**विष्णोः सारूप्यमगमं यामि वैकुण्ठमद्य वै ।**

**चतुर्भुज पुरुष कहता है**—इस प्रकार मैंने दिव्यरूप धारणकर, दिव्य भोगोंसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास किया । फिर उसी पुण्यके भोगसे चन्द्रवंशमें उत्पन्न जयध्वज नामसे विख्यात कमलके समान नेत्रोंवाला राजा हुआ । उस जन्ममें भी कालवश मृत्युको प्राप्त होनेपर मैं स्वर्गलोकमें आया । फिर यहाँसे रुद्रलोकको प्राप्त हुआ । एक बार रुद्रलोकसे ब्रह्मलोकको जाते समय मैंने नारदमुनिको देखा, परंतु देखनेपर भी उन्हें प्रणाम नहीं किया और उनकी हँसी उड़ाने लगा । इससे कुपित होकर उन्होंने शाप दिया—'राजन् ! तू राक्षस हो जा ।' उन ब्राह्मणके दिये हुए इस शापको सुनकर मैंने क्षमा माँगकर [ किसी तरह ] उन्हें प्रसन्न किया । तब मुनिने मुझपर शापानुग्रहके रूपमें कृपा की । [ उन्होंने कहा— ] 'राजन् ! जिस समय बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी भार्याका हरण करके तुम रेवा-तटवर्ती मठमें चले जाओगे, उस समय तुम्हें शापसे मुक्ति मिल जायगी ।' भूपाल ! धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! अर्जुन ! मैं वही राजा जयध्वज हूँ । इस समय भगवान् विष्णुके सारूप्यको प्राप्त हुआ हूँ । अब मैं निश्चय ही वैकुण्ठधामको जाऊँगा ॥ ७२—७८½ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**इत्युक्त्वा गरुडारूढो धर्मपुत्रस्य पश्यतः ॥७९॥**
**गतवान् विष्णुभवनं यत्र विष्णुः श्रिया सह ।**
**सम्मार्जनोपलेपाभ्यां महिमा तेन वर्णितः ॥८०॥**
**अवशेनापि यत्कर्म कृत्वेमां श्रियमागतः ।**
**भक्तिमद्भिः प्रशान्तैश्च किं पुनः सम्यगर्चनात् ॥८१॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—यह कहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरके देखते-ही-देखते वे राजा जयध्वज गरुडपर आरूढ हो विष्णुधामको चले गये, जहाँ लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं । इसीसे विष्णुमन्दिरके बुहारने और लीपनेसे बड़ी महत्ता प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है । [ राजा जयध्वजने पूर्वजन्ममें ] कामके वशीभूत होकर भी जिस कर्मको करनेसे ऐसी दिव्य सम्पत्ति प्राप्त कर ली, उसीको यदि भक्तिमान् और शान्त पुरुष करे तथा भलीभाँति भगवान्‌का पूजन करे तो उनको प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें क्या कहना है ! ॥ ७९—८१ ॥

सूत उवाच

**मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा पाण्डुवंशसमुद्भवः ।**
**सहस्रानीकभूपालो हरिपूजारतोऽभवत् ॥८२॥**
**तस्माच्छृणुत विप्रेन्द्रा देवो नारायणोऽव्ययः ।**
**ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः ॥८३॥**
**अर्चयध्वं जगन्नाथं भूयो भूयो वदाम्यहम् ।**
**ततुं यदीच्छथ द्विजा दुस्तरं भवसागरम् ॥८४॥**
**येऽर्चयन्ति हरिं भक्ताः प्रणतार्तिहरं हरिम् ।**
**ते वन्द्यास्ते प्रपूज्याश्च नमस्याश्च विशेषतः ॥८५॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरिते मार्कण्डेयेनोपदिष्टसम्मार्जनोपफलं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥*

**सूतजी बोले**—मार्कण्डेयजीके उपर्युक्त वचन सुनकर पाण्डुवंशमें उत्पन्न राजा सहस्रानीक भगवान्‌के पूजनमें संलग्न हो गये । इसलिये विप्रवृन्द ! आपलोग यह सुन लें कि अविनाशी भगवान् नारायण जानकर अथवा अनजानमें भी पूजा करनेवाले अपने भक्तोंको मुक्ति प्रदान करते हैं । द्विजो ! मैं यह बारंबार कहता हूँ कि यदि आपलोग दुस्तर भवसागरके पार जाना चाहते हैं तो भगवान् जगन्नाथकी पूजा करें । जो भक्त प्रणतजनोंका कष्ट दूर करनेवाले भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं, वे वन्दनीय, पूजनीय और विशेषरूपसे नमस्कार करनेयोग्य हैं ॥ ८२–८५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरित्रके प्रसङ्गमें मार्कण्डेयमुनिद्वारा उपदिष्ट 'मन्दिरमें झाड़ू देने और उसके लीपनेकी महिमाका वर्णन' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

## चौंतीसवाँ अध्याय

### भगवान् विष्णुके पूजनका फल

श्रीसहस्रानीक उवाच

पुनरेव द्विजश्रेष्ठ मार्कण्डेय महामते ।
निर्माल्यापनयाद्विष्णोर्यत्पुण्यं तद्वदस्व मे ॥ १ ॥

**सहस्रानीकने पूछा**—महामते द्विजवर मार्कण्डेयजी ! अब पुनः यह बताइये कि भगवान् विष्णुके निर्माल्य ( चन्दन-पुष्प आदि ) को हटानेसे कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

निर्माल्यमपनीयाथ तोयेन स्नाप्य केशवम् ।
नरसिंहाकृतिं राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २ ॥
सर्वतीर्थफलं प्राप्य यानारूढो दिवं व्रजेत् ।
श्रीविष्णोः सदनं प्राप्य मोदते कालमक्षयम् ॥ ३ ॥
आगच्छ नरसिंहेति आवाह्याक्षतपुष्पकैः ।
एतावतापि राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
दत्त्वाऽऽसनमथार्घ्यं च पाद्यमाचमनीयकम् ।
देवदेवस्य विधिना सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
स्नाप्य तोयेन पयसा नरसिंहं नराधिप ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥
स्नाप्य दध्ना सकृद्यस्तु निर्मलः प्रियदर्शनः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥ ७ ॥
यः करोति हरेरर्चां मधुना स्नापयन्नरः ।
अग्निलोके स मोदित्वा पुनर्विष्णुपुरे वसेत् ॥ ८ ॥
घृतेन स्नपनं यस्तु स्नानकाले विशेषतः ।
नरसिंहाकृतेः कुर्याच्छङ्खभेरीनिनादितम् ॥ ९ ॥
पापकञ्चुकमुन्मुच्य यथा जीर्णमहिस्त्वचम् ।
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते ॥१०॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—राजन् ! नृसिंहस्वरूप भगवान् केशवको निर्माल्य हटाकर जलसे स्नान करानेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्तकर, विमानपर आरूढ हो स्वर्गको चला जाता है और वहाँसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होकर अक्षयकालपर्यन्त आनन्दका उपभोग करता है । 'भगवन् नरसिंह ! आप यहाँ पधारें'—इस प्रकार अक्षत और पुष्पोंके द्वारा यदि भगवान्‌का आवाहन करे तो राजेन्द्र ! इतनेसे भी वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । देवदेव नृसिंहको विधिपूर्वक आसन, पाद्य ( पैर धोनेके लिये जल ), अर्घ्य ( हाथ धोनेके लिये जल ) और आचमनीय ( कुल्ला करनेके लिये जल ) अर्पण करनेसे भी सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है । नराधिप ! भगवान् नृसिंहको दूध और जलसे स्नान कराकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो एक बार भी भगवान्‌को दहीसे स्नान कराता है, वह निर्मल एवं सुन्दर शरीर धारणकर सुरवरोंसे पूजित होता हुआ विष्णुलोकको जाता है । जो मनुष्य मधुसे भगवान्‌को नहलाता हुआ उनकी पूजा करता है, वह अग्निलोकमें आनन्दोपभोग करके पुनः विष्णुपुर ( वैकुण्ठधाम ) में निवास करता है । जो स्नानकालमें श्रीनरसिंहके विग्रहको शङ्ख और नगारेका शब्द कराते हुए विशेषरूपसे घीसे स्नान कराता है, वह पुरुष पुरानी केंचुलको छोड़नेवाले साँपकी भाँति पाप-कञ्चुकको त्यागकर, दिव्य विमानपर आरूढ हो, विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २–१० ॥

पञ्चगव्येन देवेशं यः स्नापयति भक्तितः ।
मन्त्रपूर्वं महाराज तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥११॥
यश्च गोधूमकैश्चूर्णैरुद्वर्त्योष्णेन वारिणा ।
प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥१२॥
पादपीठं तु यो भक्त्या बिल्वपत्रैर्निघर्षितम् ।
उष्णाम्बुना च प्रक्षाल्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१३॥
कुशपुष्पोदकैः स्नात्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
रत्नोदकेन सावित्रं कौबेरं हेमवारिणा ।
नरसिंहं तु संस्नाप्य कर्पूरागुरुवारिणा ॥१४॥
इन्द्रलोके स मोदित्वा पश्चाद्विष्णुपुरे वसेत् ।
पुण्योदकेन गोविन्दं स्नाप्य भक्त्या नरोत्तम ॥१५॥
सावित्रं लोकमासाद्य विष्णुलोके महीयते ।
वस्त्राभ्यामर्चनं भक्त्या परिधाप्य हरिं हरेः ॥१६॥
सोमलोके रमित्वा च विष्णुलोके महीयते ।

महाराज ! जो देवेश्वर भगवान्‌को भक्तिपूर्वक मन्त्रपाठ करते हुए पञ्चगव्यसे स्नान कराता है, उसका पुण्य अक्षय होता है । जो गेहूँके आटेसे देवदेवेश्वर भगवान्‌को उबटन लगाकर गरम जलसे उन्हें नहलाता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है । जो भगवान्‌के पादपीठ ( पैर रखनेके पीढ़े, चौकी या चरणपादुका ) को भक्तिपूर्वक बिल्वपत्रसे रगड़कर गरम जलसे धोता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । कुश और पुष्पमिश्रित जलसे भगवान्‌को स्नान कराकर मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, रत्नयुक्त जलसे स्नान करानेपर सूर्यलोकको और सुवर्णयुक्त जलसे नहलानेपर कुबेरलोकको प्राप्त करता है । जो कपूर और अगुरुमिश्रित जलसे भगवान् नृसिंहको नहलाता है, वह पहले इन्द्रलोकमें सुखोपभोग करके फिर विष्णुधाममें निवास करता है । जो पुरुषश्रेष्ठ तीर्थोंके पवित्र जलसे गोविन्दको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है, वह आदित्यलोकको प्राप्त करके पुनः विष्णुलोकमें पूजित होता है । जो भक्तिपूर्वक भगवान्‌को युगल वस्त्र पहनाकर उनकी पूजा करता है, वह चन्द्रलोकमें सुखभोग करके पुनः विष्णुधाममें सम्मानित होता है ॥ ११–१६½ ॥

कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्दमैरच्युताकृतिम् ॥१७॥
आलिप्य भक्त्या राजेन्द्र कल्पकोटिं वसेद्दिवि ।
मल्लिकामालतीजातिकेतक्यशोकचम्पकैः ॥१८॥
पुंनागनागबकुलैः पद्मैरुत्पलजातिभिः ।
तुलसीकरवीरैश्च पालाशैः सानुकुम्बकैः ॥१९॥
एतैरन्यैश्च कुसुमैः प्रशस्तैरच्युतं नरः ।
अर्चयेद्दशसुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥२०॥
मालां कृत्वा यथालाभमेतेषां विष्णुमर्चयेत् ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥२१॥
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके स मोदते ।
नरसिंहं तु यो भक्त्या बिल्वपत्रैरखण्डितैः ॥२२॥
निश्छिद्रैः पूजयेद्यस्तु तुलसीभिः समन्वितम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ॥२३॥
काञ्चनेन विमानेन विष्णुलोके महीयते ।

राजेन्द्र ! जो कुङ्कुम ( केसर ), अगरु और चन्दनके अनुलेपनसे भगवान्‌के विग्रहको भक्तिपूर्वक अनुलिप्त करता है, वह करोड़ों कल्पोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है । जो मनुष्य मल्लिका, मालती, जाती, केतकी, अशोक, चम्पा, पुंनाग, नाग केसर, बकुल ( मौलसिरी ), उत्पल जातिके कमल, तुलसी, कनेर, पलाश—इनसे तथा अन्य उत्तम पुष्पोंसे भगवान्‌की पूजा करता है, वह प्रत्येक पुष्पके बदले दस सुवर्ण मुद्रा दान करनेका फल प्राप्त करता है । जो यथाप्राप्त उपर्युक्त पुष्पोंकी माला बनाकर उससे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह सैकड़ों और हजारों करोड़ कल्पोंतक दिव्य विमानपर आरूढ हो विष्णुलोकमें आनन्दित होता है । जो छिद्ररहित अखण्डित बिल्वपत्रों और तुलसीदलोंसे भक्तिपूर्वक श्रीनृसिंहका पूजन करता है, वह सब पापोंसे सर्वथा मुक्त हो, सब प्रकारके भूषणोंसे भूषित होकर, सोनेके विमानपर आरूढ हो विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १७–२३½ ॥

माहिषाख्यं गुग्गुलं च आज्ययुक्तं सशर्करम् ॥२४॥
धूपं ददाति राजेन्द्र नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
धूपितैः सर्वदिग्भ्यस्तु सर्वपापविवर्जितः ॥२५॥
अप्सरोगणसंकीर्णविमानेन विराजते ।
वायुलोके स मोदित्वा पश्चाद्विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२६॥
घृतेन वाथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ।
विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२७॥

विहाय पापकलिलं सहस्रादित्यसप्रभः ।
ज्योतिष्मता विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
हविः शाल्योदनं विद्वानाज्ययुक्तं सशर्करम् ।
निवेद्य नरसिंहाय यावकं पायसं तथा ॥२९॥
समास्तन्दुलसंख्याया यावतीस्तावतीर्नृप ।
विष्णुलोके महाभोगान् भुञ्जन्नास्ते स वैष्णवः ॥३०॥
बलिना वैष्णवेनाथ तृप्ताः सन्तो दिवौकसः ।
शान्तिं तस्य प्रयच्छन्ति श्रियमारोग्यमेव च ॥३१॥

राजेन्द्र ! जो माहिष गुग्गुल, घी और शक्करसे तैयार की हुई धूपको भगवान् नरसिंहके लिये भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह सब दिशाओंमें धूप करनेसे सब पापोंसे रहित हो अप्सराओंसे पूर्ण विमानद्वारा वायुलोकमें विराजमान होता है और वहाँ आनन्दोपभोगके पश्चात् पुनः विष्णुधाममें जाता है। जो मनुष्य विधिपूर्वक भक्तिके साथ घी अथवा तेलसे भगवान् विष्णुके लिये दीप प्रज्वलित करता है, उस पुण्यका फल सुनिये। वह पाप-पङ्कसे मुक्त होकर हजारों सूर्यके समान कान्ति धारणकर ज्योतिर्मय विमानसे विष्णुलोकको जाता है। जो विद्वान् हविष्य, घी-शक्करसे युक्त अगहनीका चावल, जौकी लपसी और खीर भगवान् नरसिंहको निवेदन करता है, वह वैष्णव चावलोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें महान् भोगोंका उपभोग करता है। भगवान् विष्णु-सम्बन्धी बलिसे सम्पूर्ण देवता तृप्त होकर पूजा करनेवालेको शान्ति, लक्ष्मी तथा आरोग्य प्रदान करते हैं ॥ २४–३१ ॥

प्रदक्षिणेन चैकेन देवदेवस्य भक्तितः ।
कृतेन यत्फलं नृणां तच्छृणुष्व नृपात्मज ॥३२॥
पृथ्वीप्रदक्षिणफलं प्राप्य विष्णुपुरे वसेत् ।
नमस्कारः कृतो येन भक्त्या वै माधवस्य च ॥३३॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं फलं तेनाप्तमञ्जसा ।
स्तोत्रैर्जपैश्च देवाग्रे यः स्तौति मधुसूदनम् ॥३४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।
गीतवाद्यादिकं नाट्यं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥३५॥
यः कारयति वै विष्णोः स याति मन्दिरं नरः ।
पर्वकाले विशेषेण कामगः कामरूपवान् ॥३६॥
सुसंगीतविद्भिश्चैव सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।
महार्हमणिचित्रेण विमानेन विराजता ॥३७॥
स्वर्गात् स्वर्गमनुप्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
ध्वजं तु विष्णवे यस्तु गरुडेन समन्वितम् ॥३८॥
दद्यात्सोऽपि ध्वजाकीर्णविमानेन विराजता ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥३९॥

राजकुमार ! भक्तिपूर्वक देवदेव विष्णुकी एक बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, उसे सुनिये। वह सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करके वैकुण्ठधाममें निवास करता है। जिसने कभी भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मीपतिको नमस्कार किया है, उसने अनायास ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल प्राप्त कर लिया। जो स्तोत्र और जपके द्वारा मधुसूदनकी उनके समक्ष होकर स्तुति करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। जो भगवान्के मन्दिरमें शङ्ख, तुरही आदि बाजोंके शब्दसे युक्त गाना-बजाना और नाटक कराता है, वह मनुष्य विष्णुधामको प्राप्त होता है। विशेषतः पर्वके समय उक्त उत्सव करनेसे मनुष्य कामरूप होकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है और सुन्दर संगीत जाननेवाली अप्सराओंसे शोभायमान बहुमूल्य मणियोंसे जड़े हुए देदीप्यमान विमानके द्वारा एक स्वर्गसे दूसरे स्वर्गको प्राप्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो भगवान् विष्णुके लिये गरुडचिह्नसे युक्त ध्वजा अर्पण करता है, वह भी ध्वजामण्डित जगमगाते हुए विमानपर आरूढ़ हो, अप्सराओंसे सेवित होकर, विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥३२–३९ ॥

सुवर्णाभरणैर्दिव्यैर्हारकेयूरकुण्डलैः ।
मुकुटाभरणाद्यैश्च यो विष्णुं पूजयेन्नृप ॥४०॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ।
इन्द्रलोके वसेद्धीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४१॥
यो गां पयस्विनीं विष्णोः कपिलां सम्प्रयच्छति ।
आराध्य तमथाग्रे तु यत्किंचिद्द्रव्यमुत्तमम् ॥४२॥
तद्दत्त्वा नरसिंहाय विष्णुलोके महीयते ।
पितरस्तस्य मोदन्ते श्वेतद्वीपे चिरं नृप ॥४३॥
एवं यः पूजयेद्राजन् नरसिंहं नरोत्तमः ।
तस्य स्वर्गापवर्गौ तु भवतो नात्र संशयः ॥४४॥

नरेश्वर ! जो सुवर्णके बने हुए दिव्य हार, केयूर, कुण्डल और मुकुट आदि आभरणोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह बुद्धिमान् सब पापोंसे मुक्त और सब आभूषणोंसे भूषित होकर जबतक चौदह इन्द्र राज्य करते हैं, तबतक ( अर्थात् पूरे एक कल्पतक ) इन्द्रलोकमें निवास करता है । जो विष्णुकी आराधना करके उनके लिये दुधार कपिला गौ दान करता है और उन भगवान् नृसिंहके समक्ष उसका उत्तम दूध थोड़ा-सा भी अर्पण करता है, वह विष्णुलोकमें सम्मानित होता है तथा राजन् ! उसके पितर चिरकालतक श्वेतद्वीपमें आनन्द भोगते हैं । भूपाल ! इस प्रकार जो नरश्रेष्ठ नरसिंह-स्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥४०—४४॥

**यत्रैवं पूज्यते विष्णुर्नरसिंहो नरैर्नृप ।**
**न तत्र व्याधिदुर्भिक्षराजचौरादिकं भयम् ॥४५॥**
**नरसिंहं समाराध्य विधिनानेन माधवम् ।**
**नानास्वर्गसुखं भुक्त्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥४६॥**
**नित्यं सर्पिस्तिलैर्होमो ग्रामे यस्मिन् प्रवर्तते ।**
**न भवेत्तस्य ग्रामस्य भयं वा तत्र कुत्रचित् ॥४७॥**
**अनावृष्टिर्महामारी दोषा नो दाहका नृप ।**
**नरसिंहं समाराध्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥४८॥**
**कारयेल्लक्षहोमं तु ग्रामे यत्र पुराधिपः ।**
**कृते तस्मिन्मयोक्ते तु आगच्छति न तद्भयम् ॥४९॥**
**दृष्टोपसर्गमरणं प्रजानामात्मनश्च हि ।**
**सम्यगाराधनीयं तु नरसिंहस्य मन्दिरे ॥५०॥**

नृप ! जहाँ मनुष्योंद्वारा इस प्रकार भगवान् नरसिंहका पूजन होता है, वहाँ रोग, अकाल और राजा तथा चोर आदिका भय नहीं होता । इस विधिसे लक्ष्मीपति नरसिंहकी आराधना करके मनुष्य नाना प्रकारके स्वर्ग-सुख भोगता है और पुनः उसे [ संसारमें जन्म लेकर ] माताका दूध नहीं पीना पड़ता [ वह मुक्त हो जाता है ] । जिस गाँवमें [ भगवान्के मन्दिरके निकट ] प्रतिदिन घी और तिलसे होम होता है, उस गाँवमें अनावृष्टि, महामारी आदि दोष तथा अग्निदाह आदि किसी प्रकारका भय नहीं होता । जिस गाँवमें गाँवका मालिक वेदवेत्ता ब्राह्मणोंद्वारा नरसिंहकी आराधना कराकर एक लक्ष होम कराता है, वहाँ मेरे कथनानुसार यह कार्य सम्पन्न होनेपर महामारी आदि प्रत्यक्ष उपद्रवसे कर्ताका तथा उस गाँवमें रहनेवाली प्रजाका अकालमरण नहीं होता । इसलिये भगवान् नरसिंहके मन्दिरमें भली प्रकारसे आराधना करनी चाहिये ॥ ४५—५० ॥

**शंकरायतने चापि कोटिहोमं नराधिप ।**
**कारयेत् संयतैर्विप्रैः सभोजनसदक्षिणैः ॥५१॥**
**कृते तस्मिन्नृपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः ।**
**उपसर्गादिमरणं प्रजानामुपशाम्यति ॥५२॥**
**दुःस्वप्नदर्शने घोरे ग्रहपीडासु चात्मनः ।**
**होमं च भोजनं चैव तस्य दोषः प्रणश्यति ॥५३॥**
**अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।**
**नरसिंहं समाराध्य लक्षहोमं तु कारयेत् ॥५४॥**
**शान्तिर्भवति राजेन्द्र तस्य तत्स्थानवासिनाम् ।**
**एवमादिफलोपेतं नरसिंहार्चनं नृप ॥५५॥**
**कुरु त्वं भूपतेः पुत्र यदि वाञ्छसि सद्गतिम् ।**
**अतः परतरं नास्ति स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥५६॥**
**नरेन्द्रैः सुकरं कर्तुं देवदेवस्य पूजनम् ।**
**सन्त्यरण्ये ह्यमूल्यानि पत्रपुष्पाणि शाखिनाम् ॥५७॥**
**तोयं नदीतडागेषु देवः साधारणः स्थितः ।**
**मनो नियमयेदेकं विद्यासाधनकर्मणि ॥५८॥**
**मनो नियमितं येन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥५९॥**

नरेश ! इसी प्रकार शंकरजीके मन्दिरमें भी संयमशील ब्राह्मणोंके द्वारा उन्हें भोजन और दक्षिणा देकर एक करोड़की संख्यामें हवन कराना चाहिये । नृपश्रेष्ठ ! उसके करनेपर भगवान् नरसिंहके प्रसादसे प्रजावर्गका आकस्मिक उपद्रव तथा मृत्युभय शान्त हो जाता है । घोर दुःस्वप्न देखनेपर और अपने ऊपर ग्रह-जन्य कष्ट आनेपर होम और ब्राह्मण-भोजन करानेसे उसका दोष मिट जाता है । दक्षिणायन या उत्तरायण आरम्भ होनेपर, विषुव[1]-कालमें, अथवा चन्द्रमा तथा सूर्यका ग्रहण होनेपर भगवान् नरसिंहकी आराधना करके लक्षहोम कराना चाहिये । राजेन्द्र ! यों करनेसे उस स्थानके निवासियोंके विघ्नकी शान्ति हो जाती है । नरेश्वर ! भगवान् नरसिंहकी पूजाके ऐसे अनेकों फल हैं । भूपालनन्दन ! यदि तुम सद्गति चाहते हो तो नृसिंहका पूजन करो । इससे बढ़कर कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जो स्वर्ग और मोक्षरूप फल देनेवाला

---

[1] जिस दिन दिन-रात बराबर हों, वह विषुव-काल कहा गया है । ऐसा समय सालमें दो बार आता है ।

हो । देवदेव नृसिंहका पूजन राजाओंके लिये तो बहुत ही सुकर है। परंतु जो अरण्यमें रहते हैं, उन्हें भी भगवान्‌की पूजाके लिये वृक्षोंके पत्र-पुष्प बिना मूल्य प्राप्त हो सकते हैं। जल नदी और तडाग आदिमें सुलभ है ही और भगवान् नृसिंह भी सबके लिये समान हैं; केवल उन उपासनाके साधनभूत कर्ममें मनकी एकाग्रता चाहिये। जिसने मनका नियमन कर लिया है, मुक्ति उसके हाथमें ही है॥ ५१—५९॥

मार्कण्डेय उवाच

**इत्येवमुक्तं भृगुचोदितेन**
**मया तवेहार्चनमच्युतस्य ।**
**दिने दिने त्वं कुरु विष्णुपूजां**
**वदस्व चान्यत्कथयामि किं ते॥६०॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरिते श्रीविष्णोः पूजाविधिर्नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥*

**मार्कण्डेयजी बोले**—इस प्रकार भृगुजीकी आज्ञासे मैंने तुमसे यहाँ भगवान् विष्णुके पूजनका वर्णन किया है। तुम प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन करो और बोलो, अब मैं तुम्हें और क्या बताऊँ ?॥ ६०॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरित्रके प्रसङ्गमें 'श्रीविष्णुके पूजनकी विधि' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

# पैंतीसवाँ अध्याय

## लक्षहोम और कोटिहोमकी विधि तथा फल

राजोवाच

**अहो महत्त्वया प्रोक्तं विष्ण्वाराधनजं फलम् ।**
**सुप्तास्ते मुनिशार्दूल ये विष्णुं नार्चयन्ति वै ॥ १ ॥**
**त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं ह्येतन्नरसिंहार्चनक्रमम् ।**
**भक्त्या तं पूजयिष्यामि कोटिहोमफलं वद ॥ २ ॥**

**राजा बोले**—अहो! आपने श्रीविष्णुकी आराधनासे होनेवाले बहुत बड़े फलका वर्णन किया। मुनिश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते, वे अवश्य ही [ मोहनिद्रामें ] सोये हुए हैं। मैंने आपकी कृपासे भगवान् नृसिंहके पूजनका यह क्रम सुना; अब मैं भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करूँगा। आप कृपा करके [ लक्ष-होम तथा ] कोटिहोमका फल बताइये॥ १-२॥

मार्कण्डेय उवाच

**इममर्थं पुरा पृष्टः शौनको गुरुणा नृप ।**
**यत्तस्मै कथयामास शौनकस्तद्वदामि ते ॥ ३ ॥**
**शौनकं तु सुखासीनं पर्यपृच्छद् बृहस्पतिः ।**

**मार्कण्डेयजी बोले**—नृप! पूर्वकालमें इसी विषयको बृहस्पतिजीने शौनक ऋषिसे पूछा था, इसके उत्तरमें उनसे शौनकजीने जो कुछ बताया, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ। सुखपूर्वक बैठे हुए शौनकजीसे बृहस्पतिजीने इस प्रकार प्रश्न किया॥ ३½॥

बृहस्पतिरुवाच

**लक्षहोमस्य या भूमिः कोटिहोमस्य या शुभा ॥ ४ ॥**
**तां मे कथय विप्रेन्द्र होमस्य चरिते विधिम् ।**

**बृहस्पतिजी बोले**—विप्रेन्द्र! लक्षहोम और कोटिहोमके लिये जो भूमि प्रशस्त हो, उसको मुझे बताइये और होमकर्मकी विधिका भी वर्णन कीजिये॥ ४½॥

मार्कण्डेय उवाच

**इत्युक्तो गुरुणा सोऽथ लक्षहोमादिकं विधिम् ॥ ५ ॥**
**शौनको वक्तुमारेभे यथावन्नृपसत्तम ।**

**मार्कण्डेयजी बोले**—नृपवर! बृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर शौनकजीने लक्षहोम आदिकी विधिका यथावत् वर्णन आरम्भ किया॥ ५½॥

शौनक उवाच

**प्रवक्ष्यामि यथावत्ते शृणु देवपुरोहित ॥ ६ ॥**
**लक्षहोममहाभूमिं तद्विशुद्धिं विशेषतः ।**
**यज्ञकर्मणि शस्ताया भूमेर्लक्षणमुत्तमम् ॥ ७ ॥**

**शौनकजी बोले**—देवपुरोहित! मैं लक्षहोमके उपयुक्त विस्तृत भूमि और उसकी शुद्धिका विशेषरूपसे यथावत् वर्णन करूँगा, आप सुनें। यज्ञकर्मके लिये प्रशस्त भूमिका उत्तम लक्षण ( संस्कार ) इस प्रकार है॥ ६-७॥

सुसंस्कृतां समां स्निग्धां पूर्वपूर्वमथोत्तमाम् ।
ऊरुमात्रं खनित्वा च शोधयेत्तां विशेषतः ॥ ८ ॥
बहिरच्छतया तत्र मृदाच्छाद्य प्रलेपयेत् ।
प्रमाणं बाहुमात्रं तु सर्वतः कुण्डलक्षणम् ॥ ९ ॥
चतुरस्रं चतुष्कोणं तुल्यसूत्रेण कारयेत् ।
उपरि मेखलां कुर्याच्चतुरस्रां सुविस्तराम् ॥१०॥
चतुरङ्गुलमात्रं तु उच्छ्रितां सूत्रसूत्रिताम् ।

जो भूमि अच्छी तरह संस्कार की हुई हो, बराबर हो और चिकनी हो [ ये सभी बातें हों तो परम उत्तम भूमि है; सभी बातें न संघटित हों तो ] पूर्व-पूर्वकी भूमि उत्तम है । [ अर्थात् चिकनीकी अपेक्षा बराबर भूमि अच्छी है और उससे भी सुसंस्कृत भूमि उत्तम है । ] ऐसी उत्तम भूमिको ऊरु ( कमर ) पर्यन्त खोदकर उसका विशेषरूपसे [ गङ्गाजल एवं पञ्चगव्यादि छिड़ककर ] शोधन करे और कुण्डके बाहर स्वच्छताके लिये मिट्टी [ तथा गोबर ] डालकर लिपाये । कुण्ड सब ओरसे एक हाथ लंबा और उतना ही चौड़ा होना चाहिये—यही कुण्डका लक्षण है । एक हाथका सूत लेकर उसीसे माप करके चारों ओरसे बराबर और चौकोरा कुण्ड बनाना चाहिये । कुण्डके ऊपर सब ओरसे बराबर और खूब विस्तृत मेखला बनवाये । उसकी ऊँचाई भी चार अंगुलकी ही हो और वह सूतसे परिवेष्टित हो ॥ ८—१०½ ॥

ब्राह्मणान् वेदसम्पन्नान् ब्रह्मकर्मसमन्वितान् ॥११॥
आमन्त्रयेद् यथान्यायं यजमानो विशेषतः ।
ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्युस्त्रिरात्रं ते द्विजातयः ॥१२॥

इसके बाद यजमानको चाहिये कि वह ब्राह्मणोचित कर्मका पालन करनेवाले वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको शास्त्रोक्त रीतिसे आमन्त्रित करे । यजमान और उन ब्राह्मणोंको तीन रात्रितक विशेषरूपसे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये ॥११-१२॥

अहोरात्रमुपोष्याथ गायत्रीमयुतं जपेत् ।
ते शुक्लवाससः स्नाता गन्धस्रक्पुष्पधारिणः ॥१३॥
शुचयश्च निराहाराः संतुष्टाः संयतेन्द्रियाः ।
कौशमासनमासीना एकाग्रमनसः पुनः ॥१४॥
आरभेयुश्च ते यत्नात्ततो होममतन्द्रिताः ।
भूमिमालिख्य चाभ्युक्ष्य यत्नादग्निं निधापयेत् ॥१५॥
गृह्योक्तेन विधानेन होमं तत्र च होमयेत् ।
आघारावाज्यभागौ च जुहुयात्पूर्वमेव तु ॥१६॥
यवधान्यतिलैर्मिश्रां गायत्र्या प्रथमाहुतिम् ।
जुहुयादेकचित्तेन स्वाहाकारान्वितां बुधः ॥१७॥
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनिः प्रतिष्ठिता ।
सविता देवता तस्या विश्वामित्रस्तथा ऋषिः ॥१८॥

यजमान एक दिन और एक रात्रि उपवास करके दस हजार गायत्रीका जप करे । [हवन आरम्भ होनेके दिन] विप्रगण भी स्नान करके शुद्ध एवं श्वेत वस्त्र धारण करें । फिर गन्ध, पुष्प और माला धारण करके, पवित्र, संतुष्ट और जितेन्द्रिय होकर, भोजन किये बिना ही कुशके बने हुए आसनपर एकाग्र चित्तसे बैठें । तदनन्तर वे यत्नपूर्वक निरालस्यभावसे हवन आरम्भ करें । पहले गृह्यसूत्रोक्त विधिसे भूमिपर [कुशोंसे] रेखा करके उसे सींचे और वहाँ यत्नसे अग्नि-स्थापन करे । फिर उस अग्निमें हवनीय पदार्थोंका होम करे । सर्वप्रथम आघार और आज्यभाग—ये दो होम करने चाहिये । विद्वान् पुरुष जौ, चावल और तिल [ एवं घृत आदिसे ] मिश्रित प्रथम आहुतिका गायत्री-मन्त्रद्वारा [ अन्तमें ] स्वाहाके उच्चारणपूर्वक एकाग्रचित्तसे हवन करे । गायत्री छन्दोंकी माता और ब्रह्म(वेद)की योनिरूपसे प्रतिष्ठित है । उसके देवता सविता हैं, और ऋषि विश्वामित्रजी हैं । ( इस प्रकार गायत्रीका विनियोग बताया गया । ) ॥ १३—१८ ॥

ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुहुयाच्च तिलान्वितम् ।
यावत्प्रपूर्यते संख्या लक्षं वा कोटिरेव वा ॥१९॥
तावद्धोमं तिलैः कुर्यादच्युतार्चनपूर्वकम् ।
दीनानाथजनेभ्यस्तु यजमानः प्रयत्नतः ॥२०॥
तावच्च भोजनं दद्याद् यावद्धोमं समाचरेत् ।
समाप्ते दक्षिणां दद्याद् ऋत्विग्भ्यः श्रद्धयान्वितः॥२१॥
यथार्हता न लोभेन ततः शान्त्युदकेन च ।
प्रोक्षयेद् ग्राममध्ये तु व्याधितांस्तु विशेषतः ॥२२॥
एवं कृते तु होमस्य पुरस्य नगरस्य च ।
राष्ट्रस्य च महाभाग राज्ञो जनपदस्य च ।
सर्वबाधाप्रशमनी शान्तिर्भवति सर्वदा ॥२३॥

केवल गायत्रीसे हवन कर लेनेके पश्चात् [ **भूर्भुवः स्वः**—इन ] तीन व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रसे

केवल तिलका हवन करे। जबतक हवनकी संख्या एक लाख या एक करोड़ न हो जाय, तबतक भगवान् विष्णुके पूजनपूर्वक तिलद्वारा हवन करते रहना चाहिये और जबतक हवन करे, तबतक यजमानको चाहिये कि वह यत्नपूर्वक दीनों और अनाथोंको भोजन दे। हवन समाप्त होनेपर ऋत्विजोंको श्रद्धापूर्वक लोभ त्यागकर यथोचित दक्षिणा दे। तत्पश्चात् [ प्रथम स्थापित किये हुए ] शान्ति-कलशके जलसे उस ग्राममें रहनेवाले सभी मनुष्यों— विशेषतः रोगियोंको अभिषेक करे। महाभाग! इस प्रकार विधिवत्‌होमका अनुष्ठान करनेपर पुर ( गाँव ), नगर, जनपद ( प्रान्त ) और समस्त राष्ट्रकी सारी बाधाको दूर करनेवाली शान्ति निरन्तर बनी रहती है॥ १९—२३॥

मार्कण्डेय उवाच

**इत्येतच्छौनकप्रोक्तं कथितं नृपनन्दन।**
**लक्षहोमादिकविधिं कार्यं राष्ट्रे सुशान्तिदम्॥२४॥**

**ग्रामे गृहे वा पुरबाह्यदेशे**
**द्विजैरयं यत्नकृतः पुरोविधिः।**
**तत्रापि शान्तिर्भविता नराणां**
**गवां च भृत्यैः सह भूपतेश्च॥२५॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे लक्षहोमविधिर्नाम*
*पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥*

**मार्कण्डेयजी बोले**—नृपनन्दन! इस प्रकार शौनक मुनिका बताया हुआ लक्षहोम-विधिका अनुष्ठान, जो समस्त राष्ट्रमें शुभ शान्ति प्रदान करनेवाला है, मैंने तुम्हें बताया। यदि ब्राह्मणोंद्वारा यह पूर्वोक्त होम-विधि ग्राममें, घरमें अथवा पुरके बाहर प्रयत्नपूर्वक करायी जाय तो वहाँ भी मनुष्योंको, गौओंको और अनुचरोंसहित राजाको पूर्णतया शान्ति प्राप्त हो सकती है॥ २४-२५॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'लक्षहोमविधिका वर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

## छत्तीसवाँ अध्याय

### अवतार-कथाका उपक्रम

मार्कण्डेय उवाच

**अवतारानहं वक्ष्ये देवदेवस्य चक्रिणः।**
**ताञ्शृणुष्व महीपाल पवित्रान् पापनाशनान्॥ १॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—महीपाल! अब मैं देवदेव भगवान् विष्णुके पवित्र एवं पापनाशक अवतारोंका वर्णन करूँगा; उन्हें सुनो॥ १॥

**यथा मत्स्येन रूपेण दत्ता वेदाः स्वयम्भुवे।**
**मधुकैटभौ च निधनं प्रापितौ च महात्मना॥ २॥**
**तथा कौर्मेण रूपेण विष्णुना मन्दरो धृतः।**
**यथा पृथ्वी धृता राजन् वाराहेण महात्मना॥ ३॥**
**तेनैव निधनं प्राप्तो यथा राजन् महाबलः।**
**हिरण्याक्षो महावीर्यो दितिपुत्रो महातनुः॥ ४॥**
**यथा हिरण्यकशिपुस्त्रिदशानामरिः पुरा।**
**नरसिंहेन देवेन प्रापितो निधनं नृप॥ ५॥**
**यथा बद्धो बलिः पूर्वं वामनेन महात्मना।**
**इन्द्रस्त्रिभुवनाध्यक्षः कृतस्तेन नृपात्मज॥ ६॥**
**रामेण भूत्वा च यथा विष्णुना रावणो हतः।**
**सगणाश्चाद्भुता राजन् राक्षसा देवकण्टकाः॥ ७॥**
**यथा परशुरामेण क्षत्रमुत्सादितं पुरा।**
**बलभद्रेण रामेण यथा दैत्यः पुरा हतः॥ ८॥**
**यथा कृष्णेन कंसाद्या हता दैत्याः सुरद्विषः।**
**कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो भवेन्नारायणः प्रभुः॥ ९॥**
**कल्किरूपं समास्थाय यथा म्लेच्छा निपातिताः।**
**समाप्ते तु कलौ भूयस्तथा ते कथयाम्यहम्॥१०॥**

महात्मा भगवान् विष्णुने जिस प्रकार मत्स्यरूप धारणकर [ प्रलयकालीन समुद्रमें खोये हुए ] वेद लाकर ब्रह्माजीको अर्पित किये और मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंको मौतके घाट उतारा; फिर उन भगवान् विष्णुने जिस प्रकार कूर्मरूपसे मन्दराचल पर्वत धारण किया और महाकाय वराह-अवतार लेकर [ अपनी डाढ़ोंपर ] इस पृथ्वीको उठाया तथा राजन्! उन्हींके हाथसे जिस प्रकार महाबली, महापराक्रमी और महाकाय दितिकुमार हिरण्याक्ष मारा गया;

राजन्! फिर उन भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारणकर पूर्वकालमें जिस प्रकार देवताओंके शत्रु हिरण्यकशिपुका वध किया; और राजकुमार! जिस प्रकार उन महात्माने वामनरूप होकर पूर्वकालमें राजा वलिको बाँधा तथा इन्द्रको (फिरसे) त्रिभुवनका अधीश्वर बना दिया; और राजन्! भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रका अवतार धारणकर जिस प्रकार रावणको मारा एवं देवताओंके लिये कण्टकरूप अद्भुत राक्षसोंका उनके गणोंसहित संहार कर दिया; फिर पूर्वकालमें परशुराम अवतार ले, जिस प्रकार क्षत्रियकुलका उच्छेद किया तथा बलभद्ररूपसे जिस प्रकार प्रलम्बादि दैत्योंका वध किया; कृष्णरूप होकर कंस आदि देवशत्रु दैत्योंका जिस तरह संहार किया; इसी प्रकार कलियुग प्राप्त होनेपर जिस प्रकार भगवान् नारायण बुद्धरूप धारण करेंगे; फिर कलियुग समाप्त होनेपर जिस प्रकार वे कल्किरूप धारणकर म्लेच्छोंका नाश करेंगे, वह सब वृत्तान्त उसी प्रकार मैं तुमसे कहूँगा ॥ २–१० ॥

हरेरनन्तस्य पराक्रमं यः
शृणोति भूपाल समाहितात्मा ।
मयोच्यमानं स विमुच्य पापं
प्रयाति विष्णोः पदमत्युदारम् ॥११॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे हरेः प्रादुर्भावानुक्रमणे*
*षट्‌त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥*

भूपाल! जो एकाग्रचित्त होकर मेरेद्वारा बताये जानेवाले अनन्त भगवान् विष्णुके इन पराक्रमोंका श्रवण करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान्‌के अत्यन्त उदार परमपदको प्राप्त होगा ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीहरिके अवतारोंकी अनुक्रमणिका ( गणना ) विषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

# सैंतीसवाँ अध्याय

## मत्स्यावतार तथा मधु-कैटभ-वध

मार्कण्डेय उवाच

नानात्वादवताराणामच्युतस्य महात्मनः ।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं तान् ब्रवीमि समासतः ॥ १ ॥
पुरा किल जगत्स्रष्टा भगवान् पुरुषोत्तमः ।
अनन्तभोगशयने योगनिद्रां समागतः ॥ २ ॥
अथ तस्य प्रसुप्तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
श्रोत्राभ्यामपतत् तोये स्वेदबिन्दुद्वयं नृप ॥ ३ ॥
मधुकैटभनामानौ तस्माज्जातौ महाबलौ ।
महाकायौ महावीर्यौ महाबलपराक्रमौ ॥ ४ ॥
अच्युतस्य प्रसुप्तस्य महत्पद्ममजायत ।
नाभिमध्ये नृपश्रेष्ठ तस्मिन् ब्रह्माभ्यजायत ॥ ५ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—महात्मा भगवान् अच्युतके बहुत-से अवतार हैं, सुतरां उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता; इसलिये मैं उन्हें संक्षेपसे ही कहता हूँ। यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें जगत्‌की सृष्टि करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीरकी शय्यापर योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए थे। नृप! कुछ कालके बाद उन गहरी नींदमें सोये हुए देवदेव शार्ङ्गधन्वा विष्णुके कानोंसे पसीनेकी दो बूँदें निकलकर जलमें गिरीं। उन दोनों बूँदोंसे मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो महाबली, महान् शक्तिशाली, महापराक्रमी और महाकाय थे। नृपश्रेष्ठ! इसी समय उन सोये हुए भगवान्‌की नाभिके बीचमें महान् कमल प्रकट हुआ और उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १–५ ॥

स चोक्तो विष्णुना राजन् प्रजाः सृज महामते ।
तथेत्युक्त्वा जगन्नाथं ब्रह्मापि कमलोद्भवः ॥ ६ ॥

वेदशास्त्रवशाद्यावत् प्रजाः स्रष्टुं समुद्यतः ।
तावत्तत्र समायातौ तावुभौ मधुकैटभौ ॥ ७ ॥

आगत्य वेदशास्त्रार्थविज्ञानं ब्रह्मणः क्षणात् ।
अपहृत्य गतौ घोरौ दानवौ बलदर्पितौ ॥ ८ ॥

ततः पद्मोद्भवो राजन् ज्ञानहीनोऽभवत् क्षणात् ।
दुःखितश्चिन्तयामास कथं स्रक्ष्यामि वै प्रजाः ॥ ९ ॥

चोदितस्त्वं सृजस्वेति प्रजा देवेन तत्कथम् ।
स्रक्ष्येऽहं ज्ञानहीनस्तु अहो कष्टमुपस्थितम् ॥१०॥

इति संचिन्त्य दुःखार्त्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
यत्नतो वेदशास्त्राणि स्मरन्नपि न दृष्टवान् ॥११॥
ततो विषण्णचित्तस्तु तं देवं पुरुषोत्तमम् ।
एकाग्रमनसा सम्यक् शास्त्रेण स्तोतुमारभत् ॥१२॥

राजन् ! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—'महामते ! तुम प्रजाजनोंकी सृष्टि करो।' यह सुन उन कमलोद्भव ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर भगवान् जगन्नाथकी आज्ञा स्वीकार कर ली तथा वेदों और शास्त्रोंकी सहायतासे वे ज्यों-ही सृष्टि-रचनाके लिये उद्यत हुए, त्यों ही उनके पास वे दोनों दैत्य—मधु और कैटभ आये। आते ही वे बलाभिमानी घोर दानव क्षणभरमें ब्रह्माजीके वेद और शास्त्र-ज्ञानको लेकर चले गये। राजन् ! तब ब्रह्माजी एक ही क्षणमें ज्ञानशून्य हो दुखी हो गये और सोचने लगे—"हाय ! अब मैं कैसे प्रजाकी सृष्टि करूँगा ? भगवान्ने मुझे आज्ञा दी कि 'तुम प्रजाकी सृष्टि करो।' परंतु अब तो मैं सृष्टि-विज्ञानसे रहित हो गया, अतः किस प्रकार सृष्टि-रचना करूँगा ? अहो ! मुझपर यह बहुत बड़ा कष्ट आ पहुँचा।" लोकपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्ता करते-करते शोकसे कातर हो गये। वे प्रयत्न-पूर्वक वेद-शास्त्रोंका स्मरण करने लगे, तथापि उन्हें उनकी स्मृति नहीं हुई। तब वे मन-ही-मन अत्यन्त दुखी हो, एकाग्रचित्तसे भगवान् पुरुषोत्तमकी शास्त्रानुकूल विधिसे स्तुति करने लगे ॥ ६—१२ ॥

ब्रह्मोवाच

ॐ नमो वेदनिधये शास्त्राणां निधये नमः ।
विज्ञाननिधये नित्यं कर्मणां निधये नमः ॥१३॥
विद्याधराय देवाय वागीशाय नमो नमः ।
अचिन्त्याय नमो नित्यं सर्वज्ञाय नमो नमः ॥१४॥
अमूर्त्तिस्त्वं महाबाहो यज्ञमूर्तिरधोक्षज ।
साम्नां मूर्त्तिस्त्वमेवाद्य सर्वदा सर्वरूपवान् ॥१५॥
सर्वज्ञानमयोऽसि त्वं हृदि ज्ञानमयोऽच्युत ।
देहि मे त्वं सर्वज्ञानं देवदेव नमो नमः ॥१६॥

**श्रीब्रह्माजी बोले**—जो वेद, शास्त्र, विज्ञान और कर्मोंकी निधि हैं, उन ॐकार-प्रतिपाद्य परमेश्वरको मेरा बार-बार नमस्कार है। समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले वाणीपति भगवान्को प्रणाम है। अचिन्त्य एवं सर्वज्ञ परमेश्वरको नित्य बारंबार नमस्कार है। महाबाहो ! अधोक्षज ! आप निराकार एवं यज्ञस्वरूप हैं। आप ही साममूर्ति एवं सदा सर्वरूपधारी हैं। अच्युत ! आप सर्वज्ञानमय हैं; आप सबके हृदयमें ज्ञानरूपसे विराजमान हैं। देवदेव ! आप मुझे सब प्रकारका ज्ञान दीजिये; आपको बारंबार नमस्कार है ॥ १३—१६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन शङ्खचक्रगदाधरः ।
ब्रह्माणमाह देवेशो दास्ये ते ज्ञानमुत्तमम् ॥१७॥
इत्युक्त्वा तु तदा विष्णुश्चिन्तयामास पार्थिव ।
केनास्य नीतं विज्ञानं केन रूपेण चादधे ॥१८॥
मधुकैटभकृतं सर्वमिति ज्ञात्वा जनार्दनः ।
मात्स्यं रूपं समास्थाय बहुयोजनमायतम् ।
बहुयोजनविस्तीर्णं सर्वज्ञानमयं नृप ॥१९॥
स प्रविश्य जलं तूर्णं क्षोभयामास तद्धरिः ।
प्रविश्य च स पातालं दृष्टवान्मधुकैटभौ ॥२०॥
तौ मोहयित्वा तुमुलं तज्ज्ञानं जगृहे हरिः ।
वेदशास्त्राणि मुनिभिः संस्तुतो मधुसूदनः ॥२१॥
आनीय ब्रह्मणे दत्त्वा त्यक्त्वा तन्मात्स्यकं नृप ।
जगद्धिताय स पुनर्योगनिद्रावशं गतः ॥२२॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवेश्वर विष्णुने उनसे कहा—'मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्रदान करूँगा।' राजन् ! भगवान् विष्णु यों कहकर तब सोचने लगे—'कौन इसका विज्ञान हर ले गया और किस रूपसे उसने उसे धारण कर रखा है ?' भूपाल ! अन्तमें यह जानकर कि यह सब मधु और कैटभकी करतूत है, भगवान् जनार्दनने अनेकों योजन लंबा-चौड़ा पूर्णज्ञानमय मत्स्यरूप धारण किया। फिर मत्स्यरूपधारी हरिने तुरंत ही जलमें प्रविष्ट होकर उसे क्षुब्ध कर डाला और भीतर-ही-भीतर पाताललोकमें पहुँचकर मधु तथा कैटभको देखा। तब मुनियोंद्वारा स्तवन किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने मधु और कैटभ—दोनोंको मोहितकर वह वेदशास्त्रमय ज्ञान ले लिया और उसे ले आकर ब्रह्माजीको दे दिया। राजन् ! तत्पश्चात् वे भगवान् उस मत्स्यरूपको त्यागकर जगत्के हितके लिये पुनः योगनिद्रामें स्थित हो गये ॥ १७—२२ ॥

राजन्! फिर उन भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारणकर पूर्वकालमें जिस प्रकार देवताओंके शत्रु हिरण्यकशिपुका वध किया; और राजकुमार! जिस प्रकार उन महात्माने वामनरूप होकर पूर्वकालमें राजा बलिको बाँधा तथा इन्द्रको (फिरसे) त्रिभुवनका अधीश्वर बना दिया; और राजन्! भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रका अवतार धारणकर जिस प्रकार रावणको मारा एवं देवताओंके लिये कण्टकरूप अद्भुत राक्षसोंका उनके गणोंसहित संहार कर दिया; फिर पूर्वकालमें परशुराम अवतार ले, जिस प्रकार क्षत्रियकुलका उच्छेद किया तथा बलभद्ररूपसे जिस प्रकार प्रलम्बादि दैत्योंका वध किया; कृष्णरूप होकर कंस आदि देवशत्रु दैत्योंका जिस तरह संहार किया; इसी प्रकार कलियुग प्राप्त होनेपर जिस प्रकार भगवान् नारायण बुद्धरूप धारण करेंगे; फिर कलियुग समाप्त होनेपर जिस प्रकार वे कल्किरूप धारणकर म्लेच्छोंका नाश करेंगे, वह सब वृत्तान्त उसी प्रकार मैं तुमसे कहूँगा ॥ २—१० ॥

हरेरनन्तस्य पराक्रमं यः
शृणोति भूपाल समाहितात्मा ।
मयोच्यमानं स विमुच्य पापं
प्रयाति विष्णोः पदमत्युदारम् ॥११॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे हरेः प्रादुर्भावानुक्रमणे*
*षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥*

भूपाल! जो एकाग्रचित्त होकर मेरेद्वारा बताये जानेवाले अनन्त भगवान् विष्णुके इन पराक्रमोंका श्रवण करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान्‌के अत्यन्त उदार परमपदको प्राप्त होगा ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीहरिके अवतारोंकी अनुक्रमणिका ( गणना ) विषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

# सैंतीसवाँ अध्याय

## मत्स्यावतार तथा मधु-कैटभ-वध

मार्कण्डेय उवाच

नानात्वादवताराणामच्युतस्य महात्मनः ।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं तान् ब्रवीमि समासतः ॥ १ ॥
पुरा किल जगत्स्रष्टा भगवान् पुरुषोत्तमः ।
अनन्तभोगशयने योगनिद्रां समागतः ॥ २ ॥
अथ तस्य प्रसुप्तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
श्रोत्राभ्यामपतत् तोये स्वेदबिन्दुद्वयं नृप ॥ ३ ॥
मधुकैटभनामानौ तस्माज्जातौ महाबलौ ।
महाकायौ महावीर्यौ महाबलपराक्रमौ ॥ ४ ॥
अच्युतस्य प्रसुप्तस्य महत्पद्ममजायत ।
नाभिमध्ये नृपश्रेष्ठ तस्मिन् ब्रह्माभ्यजायत ॥ ५ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—महात्मा भगवान् अच्युतके बहुत-से अवतार हैं, सुतरां उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता; इसलिये मैं उन्हें संक्षेपसे ही कहता हूँ। यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें जगत्‌की सृष्टि करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीरकी शय्यापर योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए थे। नृप! कुछ कालके बाद उन गहरी नींदमें सोये हुए देवदेव शार्ङ्गधन्वा विष्णुके कानोंसे पसीनेकी दो बूँदें निकलकर जलमें गिरीं। उन दोनों बूँदोंसे मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो महाबली, महान् शक्तिशाली, महापराक्रमी और महाकाय थे। नृपश्रेष्ठ! इसी समय उन सोये हुए भगवान्‌की नाभिके बीचमें महान् कमल प्रकट हुआ और उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १—५ ॥

स चोक्तो विष्णुना राजन् प्रजाः सृज महामते ।
तथेत्युक्त्वा जगन्नाथं ब्रह्मापि कमलोद्भवः ॥ ६ ॥
वेदशास्त्रवशाद्यावत् प्रजाः स्रष्टुं समुद्यतः ।
तावत्तत्र समायातौ तावुभौ मधुकैटभौ ॥ ७ ॥
आगत्य वेदशास्त्रार्थविज्ञानं ब्रह्मणः क्षणात् ।
अपहृत्य गतौ घोरौ दानवौ बलदर्पितौ ॥ ८ ॥
ततः पद्मोद्भवो राजन् ज्ञानहीनोऽभवत् क्षणात् ।
दुःखितश्चिन्तयामास कथं स्रक्ष्यामि वै प्रजाः ॥ ९ ॥
चोदितस्त्वं सृजस्वेति प्रजा देवेन तत्कथम् ।
स्रक्ष्येऽहं ज्ञानहीनस्तु अहो कष्टमुपस्थितम् ॥१०॥

**इति संचिन्त्य दुःखार्त्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ।**
**यत्नतो वेदशास्त्राणि स्मरन्नपि न दृष्टवान् ॥११॥**
**ततो विषण्णचित्तस्तु तं देवं पुरुषोत्तमम् ।**
**एकाग्रमनसा सम्यक् शास्त्रेण स्तोतुमारभत् ॥१२॥**

राजन् ! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—'महामते ! तुम प्रजाजनोंकी सृष्टि करो ।' यह सुन उन कमलोद्भव ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर भगवान् जगन्नाथकी आज्ञा स्वीकार कर ली तथा वेदों और शास्त्रोंकी सहायतासे वे ज्यों-ही सृष्टि-रचनाके लिये उद्यत हुए, त्यों ही उनके पास वे दोनों दैत्य—मधु और कैटभ आये । आते ही वे बलाभिमानी घोर दानव क्षणभरमें ब्रह्माजीके वेद और शास्त्र-ज्ञानको लेकर चले गये । राजन् ! तब ब्रह्माजी एक ही क्षणमें ज्ञानशून्य हो दुखी हो गये और सोचने लगे—"हाय ! अब मैं कैसे प्रजाकी सृष्टि करूँगा ? भगवान्‌ने मुझे आज्ञा दी कि 'तुम प्रजाकी सृष्टि करो ।' परंतु अब तो मैं सृष्टि-विज्ञानसे रहित हो गया, अतः किस प्रकार सृष्टि-रचना करूँगा ? अहो ! मुझपर यह बहुत बड़ा कष्ट आ पहुँचा ।" लोकपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्ता करते-करते शोकसे कातर हो गये । वे प्रयत्नपूर्वक वेद-शास्त्रोंका स्मरण करने लगे, तथापि उन्हें उनकी स्मृति नहीं हुई । तब वे मन-ही-मन अत्यन्त दुखी हो, एकाग्रचित्तसे भगवान् पुरुषोत्तमकी शास्त्रानुकूल विधिसे स्तुति करने लगे ॥ ६—१२ ॥

ब्रह्मोवाच

**ॐ नमो वेदनिधये शास्त्राणां निधये नमः ।**
**विज्ञाननिधये नित्यं कर्मणां निधये नमः ॥१३॥**
**विद्याधराय देवाय वागीशाय नमो नमः ।**
**अचिन्त्याय नमो नित्यं सर्वज्ञाय नमो नमः ॥१४॥**
**अमूर्त्तिस्त्वं महाबाहो यज्ञमूर्तिरधोक्षज ।**
**साम्नां मूर्त्तिस्त्वमेवाद्य सर्वदा सर्वरूपवान् ॥१५॥**
**सर्वज्ञानमयोऽसि त्वं हृदि ज्ञानमयोऽच्युत ।**
**देहि मे त्वं सर्वज्ञानं देवदेव नमो नमः ॥१६॥**

**श्रीब्रह्माजी बोले**—जो वेद, शास्त्र, विज्ञान और कर्मोंकी निधि हैं, उन ॐकार-प्रतिपाद्य परमेश्वरको मेरा बार-बार नमस्कार है । समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले वाणीपति भगवान्‌को प्रणाम है । अचिन्त्य एवं सर्वज्ञ परमेश्वरको नित्य बारंबार नमस्कार है । महाबाहो ! अधोक्षज ! आप निराकार एवं यज्ञस्वरूप हैं । आप ही साममूर्ति एवं सदा सर्वरूपधारी हैं । अच्युत ! आप सर्वज्ञानमय हैं; आप सबके हृदयमें ज्ञानरूपसे विराजमान हैं । देवदेव ! आप मुझे सब प्रकारका ज्ञान दीजिये; आपको बारंबार नमस्कार है ॥ १३—१६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**इत्थं स्तुतस्तदा तेन शङ्खचक्रगदाधरः ।**
**ब्रह्माणमाह देवेशो दास्ये ते ज्ञानमुत्तमम् ॥१७॥**
**इत्युक्त्वा तु तदा विष्णुश्चिन्तयामास पार्थिव ।**
**केनास्य नीतं विज्ञानं केन रूपेण चादधे ॥१८॥**
**मधुकैटभकृतं सर्वमिति ज्ञात्वा जनार्दनः ।**
**मात्स्यं रूपं समास्थाय बहुयोजनमायतम् ।**
**बहुयोजनविस्तीर्णं सर्वज्ञानमयं नृप ॥१९॥**
**स प्रविश्य जलं तूर्णं क्षोभयामास तद्धरिः ।**
**प्रविश्य च स पातालं दृष्टवान्मधुकैटभौ ॥२०॥**
**तौ मोहयित्वा तुमुलं तज्ज्ञानं जगृहे हरिः ।**
**वेदशास्त्राणि मुनिभिः संस्तुतो मधुसूदनः ॥२१॥**
**आनीय ब्रह्मणे दत्त्वा त्यक्त्वा तन्मात्स्यकं नृप ।**
**जगद्धिताय स पुनर्योगनिद्रावशं गतः ॥२२॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवेश्वर विष्णुने उनसे कहा—'मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्रदान करूँगा ।' राजन् ! भगवान् विष्णु यों कहकर तब सोचने लगे—'कौन इसका विज्ञान हर ले गया और किस रूपसे उसने उसे धारण कर रखा है ?' भूपाल ! अन्तमें यह जानकर कि यह सब मधु और कैटभकी करतूत है, भगवान् जनार्दनने अनेकों योजन लंबा-चौड़ा पूर्णज्ञानमय मत्स्यरूप धारण किया । फिर मत्स्यरूपधारी हरिने तुरंत ही जलमें प्रविष्ट होकर उसे क्षुब्ध कर डाला और भीतर-ही-भीतर पाताललोकमें पहुँचकर मधु तथा कैटभको देखा । तब मुनियोंद्वारा स्तवन किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने मधु और कैटभ—दोनोंको मोहितकर वह वेदशास्त्रमय ज्ञान ले लिया और उसे ले आकर ब्रह्माजीको दे दिया । राजन् ! तत्पश्चात् वे भगवान् उस मत्स्यरूपको त्यागकर जगत्‌के हितके लिये पुनः योगनिद्रामें स्थित हो गये ॥ १७—२२ ॥

**ततः प्रबुद्धौ संक्रुद्धौ तावुभौ मधुकैटभौ ।**
**आगत्य ददृशाते तु शयानं देवमव्ययम् ॥२३॥**
**अयं स पुरुषो धूर्त्त आवां सम्मोह्य मायया ।**
**आनीय वेदशास्त्राणि दत्त्वा शेतेऽत्र साधुवत् ॥२४॥**
**इत्युक्त्वा तौ महाघोरौ दानवौ मधुकैटभौ ।**
**बोधयामासतुस्तूर्णं शयानं केशवं नृप ॥२५॥**
**युद्धार्थमागतावत्र त्वया सह महामते ।**
**आवयोर्देहि संग्रामं युध्यस्वोत्थाय साम्प्रतम् ॥२६॥**

तदनन्तर मोह निवृत्त होनेपर [ वेद-शास्त्रको न देख ] मधु तथा कैटभ—दोनों ही बहुत कुपित हुए और वहाँसे आकर उन्होंने अविनाशी भगवान् विष्णुको सोते देखा । तब वे परस्पर कहने लगे—'यह वही धूर्त पुरुष है, जिसने हम दोनोंको मायासे मोहित करके वेद-शास्त्रोंको ले आकर ब्रह्माको दे दिया और अब यहाँ साधुकी भाँति सो रहा है ।' राजन् ! यों कहकर उन महाघोर दानव मधु और कैटभने वहाँ सोये हुए भगवान् केशवको तत्काल जगाया और कहा—'महामते ! हम दोनों यहाँ तुम्हारे साथ युद्ध करने आये हैं; तुम हमें संग्रामकी भिक्षा दो और अभी उठकर हमसे युद्ध करो' ॥ २३—२६ ॥

**इत्युक्तो भगवांस्ताभ्यां देवदेवो नृपोत्तम ।**
**तथेति चोक्त्वा तौ देवः शार्ङ्गं सज्यमथाकरोत् ॥२७॥**
**ज्याघोषतलघोषेण शङ्खशब्देन माधवः ।**
**खं दिशः प्रदिशश्चैव पूरयामास लीलया ॥२८॥**

नृपवर ! उनके इस प्रकार कहनेपर देवदेव भगवान्ने 'बहुत अच्छा' कहकर अपने शार्ङ्ग धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी । उस समय भगवान् माधवने लीलापूर्वक धनुषकी टंकार और शङ्खनादसे आकाश, दिशाओं और अवान्तर-दिशाओं ( कोणों ) को भर दिया ॥ २७-२८ ॥

**तौ च राजन् महावीर्यौ ज्याघोषं चक्रतुस्तदा ।**
**युयुधाते महाघोरौ हरिणा मधुकैटभौ ॥२९॥**
**कृष्णश्च युयुधे ताभ्यां लीलया जगतः पतिः ।**
**समं युद्धमभूदेवं तेषामस्त्राणि मुञ्चताम् ॥३०॥**
**केशवः शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ।**
**तानि शस्त्राणि सर्वाणि चिच्छेद तिलशस्तदा ॥३१॥**
**तौ युद्ध्वा सुचिरं तेन दानवौ मधुकैटभौ ।**
**हतौ शार्ङ्गविनिर्मुक्तैः शरैः कृष्णेन दुर्मदौ ॥३२॥**
**तयोस्तु मेदसा राजन् विष्णुना कल्पिता मही ।**
**मेदिनीति ततः संज्ञामवापेयं वसुंधरा ॥३३॥**

राजन् ! फिर उन महापराक्रमी महाभयानक मधु और कैटभने भी उस समय अपनी प्रत्यञ्चाको टंकार दी और वे भगवान् विष्णुके साथ युद्ध करने लगे । जगत्पति भगवान् विष्णु भी लीलासे ही उनके साथ युद्ध करने लगे । इस प्रकार परस्पर अस्त्र-शस्त्रका प्रहार करते हुए उन दोनों पक्षोंमें समानरूपसे युद्ध हुआ । भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग धनुषद्वारा छोड़े हुए सर्पके समान तीखे बाणोंसे उन दैत्योंके समस्त अस्त्र-शस्त्र तिलकी भाँति टुकड़े-टुकड़े कर डाले । वे दोनों उन्मत्त दानव-मधु और कैटभ चिरकालतक भगवान्के साथ लड़कर अन्तमें उनके शार्ङ्ग-धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा मारे गये । राजन् ! तब श्रीविष्णु भगवान्ने उन दोनों दैत्योंके मेदेसे इस पृथ्वीका निर्माण किया । इसीसे इस वसुंधराका नाम 'मेदिनी' हुआ ॥ २९—३३ ॥

**एवं कृष्णप्रसादेन वेदाँल्लब्ध्वा प्रजापतिः ।**
**प्रजाः ससर्ज भूपाल वेददृष्टेन कर्मणा ॥३४॥**
**य इदं शृणुयान्नित्यं प्रादुर्भावं हरेर्नृप ।**
**उषित्वा चन्द्रसदने वेदविद्ब्राह्मणो भवेत् ॥३५॥**
**मात्स्यं वपुस्तन्महदद्रितुल्यं**
**विद्यामयं लोकहिताय विष्णुः ।**
**आस्थाय भीमं जनलोकसंस्थैः**
**स्तुतोऽथ यस्तं स्मर भूमिपाल ॥३६॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे मत्स्यप्रादुर्भावो नाम*
*सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥*

भूपाल ! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी कृपासे वेदोंको प्राप्तकर प्रजापति ब्रह्माजीने वेदोक्त विधिसे प्रजाकी सृष्टि की । नृप ! जो भगवान्की इस अवतार-कथाका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह [ शरीर-त्यागके बाद ] चन्द्रलोकमें निवास करके [ पुनः इस लोकमें ] वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है । भूमिपाल ! जो भगवान् विष्णु लोकहितके लिये पर्वतके समान भीमकाय मत्स्यरूप धारणकर जनलोकनिवासियोंद्वारा स्तुत हुए थे, उनका ही तुम सदा स्मरण करो ॥ ३४—३६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मत्स्यावतार' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

# अड़तीसवाँ अध्याय

## कूर्मावतार; समुद्रमन्थन और मोहिनी-अवतार

मार्कण्डेय उवाच

**पुरा देवासुरे युद्धे देवा दैत्यैः पराजिताः ।**
**सर्वे ते शरणं जग्मुः क्षीराब्धितनयापतिम् ॥ १ ॥**
**स्तोत्रेण तुष्टुवुः सर्वे समाराध्य जगत्पतिम् ।**
**कृताञ्जलिपुटा राजन् ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ २ ॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें जब देवगण दैत्योंद्वारा पराजित हो गये, तब वे सभी मिलकर क्षीरसागरनन्दिनी श्रीलक्ष्मीजीके पति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। राजन् ! वहाँ ब्रह्मा आदि सभी देवता जगदीश्वरकी आराधना करके हाथ जोड़ निम्नाङ्कित स्तोत्रसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ १-२ ॥

देवा ऊचुः

**नमस्ते पद्मनाभाय लोकनाथाय शार्ङ्गिणे ।**
**नमस्ते पद्मनाभाय सर्वदुःखापहारिणे ॥ ३ ॥**
**नमस्ते विश्वरूपाय सर्वदेवमयाय च ।**
**मधुकैटभनाशाय केशवाय नमो नमः ॥ ४ ॥**
**दैत्यैः पराजिता देव वयं युद्धे बलान्वितैः ।**
**जयोपायं हि नो ब्रूहि करुणाकर ते नमः ॥ ५ ॥**

**देवगण बोले**—जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन शार्ङ्गधनुषधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है । सम्पूर्ण विश्व और सारे देवता जिनके स्वरूप हैं, उन मधुकैटभनाशक केशवको बारंबार प्रणाम है । करुणाकर ! भगवन् ! हम सभी देवता बलवान् दैत्योंद्वारा युद्धमें हरा दिये गये हैं, हमें विजय प्राप्त करनेका कोई उपाय बतलाइये; आपको नमस्कार है॥ ३—५॥

मार्कण्डेय उवाच

**इति स्तुतो तदा देवैर्देवदेवो जनार्दनः ।**
**तानब्रवीद्धरिर्देवांस्तेषामेवाग्रतः स्थितः ॥ ६ ॥**

**मार्कण्डेयजी बोले**—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तवन किये जानेपर देवदेव भगवान् जनार्दनने उनके समक्ष प्रकट होकर कहा ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

**गत्वा तत्र सुराः सर्वे संधिं कुरुत दानवैः ।**
**मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ॥ ७ ॥**
**सर्वौषधीः समानीय प्रक्षिप्याब्धौ त्वरान्विताः ।**
**दानवैः सहिता भूत्वा मथ्नध्वं क्षीरसागरम् ॥ ८ ॥**
**अहं च तत्र साहाय्यं करिष्यामि दिवौकसः ।**
**भविष्यत्यमृतं तत्र तत्पानाद्बलवत्तराः ॥ ९ ॥**
**भविष्यन्ति क्षणाद्देवा अमृतस्य प्रभावतः ।**
**यूयं सर्वे महाभागास्तेजिष्ठा रणविक्रमाः ॥१०॥**
**इन्द्राद्यास्तु महोत्साहास्तल्लब्ध्वामृतमुत्तमम् ।**
**ततो हि दानवाञ्जेतुं समर्था नात्र संशयः ॥११॥**

**श्रीभगवान् बोले**—देवगण ! तुम सब लोग वहाँ ( समुद्र-तटपर ) जाकर दानवोंके साथ संधि कर लो और मन्दराचलको मथानी बनाकर वासुकि नागसे रस्सीका काम लो । फिर शीघ्रतापूर्वक समस्त ओषधियोंको लाकर समुद्रमें डालो और दानवोंके साथ मिलकर ही क्षीरसागरका मन्थन करो । देवताओ ! इस कार्यमें मैं भी तुमलोगोंकी सहायता करूँगा । समुद्रसे अमृत प्रकट होगा, जिसको पान करके उसके प्रभावसे देवता क्षणभरमें ही अत्यन्त बलशाली हो जायँगे । महाभागो ! उस उत्तम अमृतको प्राप्तकर इन्द्रादि तुम सभी देवता अत्यन्त तेजस्वी, रणमें पराक्रम दिखानेवाले और महान् उत्साहसे सम्पन्न हो जाओगे। तदनन्तर तुमलोग दानवोंको जीतनेमें समर्थ हो सकोगे—इसमें संशय नहीं है ॥ ७—११ ॥

**इत्युक्ता देवदेवेन देवाः सर्वे जगत्पतिम् ।**
**प्रणम्यागत्य निलयं संधिं कृत्वाथ दानवैः ॥१२॥**
**क्षीराब्धेर्मन्थने सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ।**
**बलिना चोद्धृतो राजन् मन्दराख्यो महागिरिः ॥१३॥**
**क्षीराब्धौ क्षेपितश्चैव तेनैकेन नृपोत्तम ।**
**सर्वौषधींश्च प्रक्षिप्य देवदैत्यैः पयोनिधौ ॥१४॥**
**वासुकिश्चागतस्तत्र राजन्नारायणाज्ञया ।**
**सर्वदेवहितार्थाय विष्णुश्च स्वयमागतः ॥१५॥**

देवदेव भगवान्‌के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सभी देवता उन जगदीश्वरको प्रणाम करके अपने स्थानपर आये और दानवोंके साथ संधि करके क्षीरसागरके मन्थनके लिये उत्तम उद्योग करने लगे। राजन्! बलिने अकेले ही 'मन्दर' नामक महान् पर्वतको उखाड़कर समुद्रमें डाल दिया तथा नृपोत्तम! देवता और दैत्योंने समस्त ओषधियोंको लाकर समुद्रमें डाला। राजन्! भगवान् नारायणकी आज्ञासे वासुकिनाग वहाँ आये और समस्त देवताओंका हित-साधन करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु भी वहाँ पधारे॥ १२—१५॥

**तत्र विष्णुं समासाद्य ततः सर्वे सुरासुराः ।**
**सर्वे ते मैत्रभावेन क्षीराब्धेस्तटमाश्रिताः ॥१६॥**
**मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वाथ वासुकिम् ।**
**ततो मथितुमारब्धं नृपते तरसामृतम् ॥१७॥**
**विष्णुना मुखभागे तु योजिता दानवास्तदा ।**
**देवताः पुच्छभागे तु मथनाय नियोजिताः ॥१८॥**
**एवं च मथनात्तत्र मन्दरोऽधः प्रविश्य च ।**
**आधारेण विना राजन् तं दृष्ट्वा सहसा हरिः ॥१९॥**
**सर्वलोकहितार्थाय कूर्मरूपमधारयत् ।**
**आत्मानं सम्प्रवेश्याथ मन्दरस्य गिरेरधः ॥२०॥**
**प्रविश्य धृतवान् शैलं मन्दरं मधुसूदनः ।**
**उपर्याक्रान्तवाञ्शैलं पृथग्रूपेण केशवः ॥२१॥**
**चकर्ष नागराजं च देवैः सार्धं जनार्दनः ।**
**ततस्ते त्वरया युक्ता ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥२२॥**
**यावच्छक्त्या नृपश्रेष्ठ बलवन्तः सुरासुराः ।**

तदनन्तर सभी देवता और असुरगण वहाँ भगवान् विष्णुके पास आये और सब लोग मित्रभावसे एकत्र होकर क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए। नृप! उस समय मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको रस्सी बनाकर अमृत निकालनेके उद्देश्यसे अत्यन्त वेगपूर्वक समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ। भगवान् विष्णुने उस समय समुद्र-मन्थनके लिये दानवोंको वासुकिके मुखकी ओर और देवताओंको पुच्छभागकी ओर नियुक्त किया। राजन्! इस प्रकार मन्थन आरम्भ होनेपर नीचे कोई आधार न होनेके कारण मन्दराचल जलके भीतर प्रविष्ट होकर डूब गया। पर्वतको डूबा देख भगवान् मधुसूदन विष्णुने समस्त लोकोंके हितके लिये सहसा कूर्मरूप धारण किया और उस रूपमें अपनेको मन्दराचलके नीचे प्रविष्ट करके, आधाररूप हो, उस मन्दर पर्वतको धारण किया तथा दूसरे रूपसे वे भगवान् केशव पर्वतको ऊपरसे भी दबाये रहे और एक अन्यरूपसे वे भगवान् जनार्दन देवताओंके साथ रहकर नागराज वासुकिको खींचते भी रहे। तब वे बलवान् देवता तथा असुर पूर्णशक्ति लगाकर बड़े वेगसे क्षीरसागरका मन्थन करने लगे॥ १६—२२½॥

**मथ्यमानात्ततस्तस्मात् क्षीराब्धेरभवन्नृप ॥२३॥**
**कालकूटमिति ख्यातं विषमत्यन्तदुस्सहम् ।**
**तं नागा जगृहुः सर्वे तच्छेषं शंकरोऽग्रहीत् ॥२४॥**
**नारायणाज्ञया तेन नीलकण्ठत्वमाप्तवान् ।**
**ऐरावतश्च नागेन्द्रो हरिश्चोच्चैःश्रवाः पुनः ॥२५॥**
**द्वितीयावर्तनाद्राजन्नुत्पन्नाविति नः श्रुतम् ।**
**तृतीयावर्तनाद् राजन्नप्सराश्च सुशोभना ॥२६॥**
**चतुर्थात् पारिजातश्च उत्पन्नः स महाद्रुमः ।**
**पञ्चमाद्धि हिमांशुस्तु प्रोत्थितः क्षीरसागरात् ॥२७॥**
**तं भवः शिरसा धत्ते नारीवत् स्वस्तिकं नृप ।**
**नानाविधानि दिव्यानि रत्नान्याभरणानि च ॥२८॥**
**क्षीरोदधेरुत्थिताश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ।**
**एतान् दृष्ट्वा तथोत्पन्नानत्याश्चर्यसमन्वितान् ॥२९॥**
**अभवञ्ज्ञातहर्षास्ते तत्र सर्वे सुरासुराः ।**

नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर उस मथे जाते हुए क्षीरसागरसे अत्यन्त दुस्सह 'कालकूट' नामक विष प्रकट हुआ। उस विषको सभी सर्पोंने ग्रहण कर लिया। उनसे बचे हुए विषको भगवान् विष्णुकी आज्ञासे शंकरजीने पी लिया। इससे कण्ठमें काला दाग पड़ जानेके कारण उनकी 'नीलकण्ठ' संज्ञा हुई। इसके बाद द्वितीय बारके मन्थनसे ऐरावत गजराज और उच्चैःश्रवा घोड़ा——ये दोनों प्रकट हुए, यह बात हमारे सुननेमें आयी है। तृतीय आवृत्तिसे परम सुन्दरी अप्सरा (उर्वशी)का आविर्भाव हुआ और चौथी बार महान् वृक्ष पारिजात प्रकट हुआ। पाँचवीं आवृत्तिमें क्षीरसागरसे चन्द्रमा प्रकट हुए। नरेश्वर! चन्द्रमाको भगवान् शिव अपने मस्तकपर धारण करते हैं; ठीक उसी तरह जैसे नारी ललाटमें स्वस्तिक ( बेंदी या आभूषण ) धारण करती है। इसी प्रकार क्षीरसागरसे नाना प्रकारके दिव्य रत्न, आभूषण और हजारों गन्धर्व प्रकट हुए। इन अत्यन्त विस्मयजनक वस्तुओं-

को उस प्रकार उत्पन्न देख सभी देवता और असुर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३–२९½ ॥

देवपक्षे ततो मेघाः स्वल्पं वर्षन्ति संस्थिताः ॥३०॥
कृष्णाज्ञया च वायुश्च सुखं वाति सुरान् प्रति ।
विषनिःश्वासवातेन वासुकेश्चापरे हताः ॥३१॥
निस्तेजसोऽभवन् दैत्या निर्वीर्याश्च महामते ।

तदनन्तर भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मेघगण देवताओंके दलमें स्थित हो मन्द-मन्द वर्षा करने लगे और देव-वृन्दको सुख देनेवाली वायु बहने लगी। [ इस कारण देवता थके नहीं। ] किंतु महामते ! वासुकिके विषमिश्रित श्वासकी वायुसे कितने ही दैत्य मर गये और जो बचे, वे भी तेज एवं पराक्रमसे हीन हो गये ॥ ३०-३१½ ॥

ततः श्रीरुत्थिता तस्मात् क्षीरोदाद्धृतपङ्कजा ॥३२॥
विभ्राजमाना राजेन्द्र दिशः सर्वाः स्वतेजसा ।
ततस्तीर्थोदकैः स्नाता दिव्यवस्त्रैरलंकृता ॥३३॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गी सुमनोभिः सुभूषणैः ।
देवपक्षं समासाद्य स्थित्वा क्षणमरिंदम ॥३४॥
हरिवक्षःस्थलं प्राप्ता ततः सा कमलालया ।

तत्पश्चात् उस समुद्रसे हाथमें कमल धारण किये हुए श्रीलक्ष्मीजी प्रकट हुईं। राजेन्द्र ! वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशमान कर रही थीं। शत्रुसूदन ! उन्होंने तीर्थके जलसे स्नान किया, शरीरमें दिव्य गन्धका अनुलेप लगाया और वे कमलालया लक्ष्मी दिव्य वस्त्र, पुष्पहार और सुन्दर भूषणोंसे विभूषित हो देवपक्षमें जाकर क्षणभर खड़ी रहीं; फिर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान हुईं ॥ ३२–३४½ ॥

ततोऽमृतघटं पूर्णं दुग्ध्वा तु पयसो निधेः ॥३५॥
धन्वन्तरिः समुत्तस्थौ ततः प्रीताः सुरा नृप ।
दैत्याः श्रिया परित्यक्ता दुःखितास्तेऽभवन्नृप॥३६॥
नीत्वामृतघटं पूर्णं ते च जग्मुर्यथासुखम् ।
ततः स्त्रीरूपमकरोद् विष्णुर्देवहिताय वै ॥३७॥
आत्मानं नृपशार्दूल सर्वलक्षणसंयुतम् ।
ततो जगाम भगवान् स्त्रीरूपेणासुरान् प्रति ॥३८॥
दिव्यरूपां तु तां दृष्ट्वा मोहितास्ते सुरद्विषः ।
सुधापूर्णघटं ते तु मोहैः संस्थाप्य सत्तम ॥३९॥
कामेन पीडिता ह्यासन्नसुरास्तत्र तत्क्षणात् ।
मोहयित्वा तु तानेवमसुरानवनीपते ॥४०॥
अमृतं तु समादाय देवेभ्यः प्रददौ हरिः ।
तत्पीत्वा तु ततो देवा देवदेवप्रसादतः ॥४१॥
बलवन्तो महावीर्या रणे जग्मुस्ततोऽसुरान् ।
जित्वा रणेऽसुरान् देवाः स्वानि राज्यानि चक्रिरे॥४२॥
एतत्ते कथितं राजन् प्रादुर्भावो हरेरयम् ।
कूर्माख्यः पुण्यदो नृणां शृण्वतां पठतामपि ॥४३॥

नरेश्वर ! इसके बाद क्षीरसागरसे अमृतपूर्ण घटका दोहन करके हाथमें लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए। उनके प्राकट्यसे देवता बहुत प्रसन्न हुए। किंतु राजन् ! लक्ष्मीद्वारा त्याग दिये जानेके कारण असुरगण बहुत दुखी हुए और उस भरे हुए अमृतघटको लेकर इच्छानुसार चल दिये। नृपवर ! तब भगवान् विष्णुने देवताओंका हित करनेके लिये अपनेको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त स्त्रीरूपमें प्रकट किया। इसके बाद भगवान् उस नारीरूपसे ही असुरोंकी ओर गये। उस दिव्य रूपवाली नारीको देख दैत्यगण मोहित हो गये। साधुशिरोमणे ! वे असुर तत्काल मोहके वशीभूत हो कामपीड़ित हो गये और उन्होंने मोहवश वह अमृतका घड़ा भूमिपर रख दिया। अवनीपते ! इस प्रकार असुरोंको मोहित करके भगवान्‌ने वह अमृत ले देवताओंको दे दिया। देवदेव भगवान्‌की कृपासे अमृत पीकर बली और महावीर्यवान् हो देवता संग्राममें आ डटे और असुरोंको युद्धमें जीतकर उन्होंने अपने राज्यपर अधिकार कर लिया। राजन् ! भगवान्‌के इस 'कूर्म' नामक अवतारकी कथा मैंने तुमसे कह दी। यह पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको पुण्य देनेवाली है ॥ ३५–४३ ॥

आविष्कृतं कौर्ममनन्तवर्चसं
नारायणेनाद्भुतकर्मकारिणा ।
दिवौकसानां तु हिताय केवलं
रूपं परं पावनमेव कीर्तितम् ॥४४॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे कूर्मप्रादुर्भावो नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥*

अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् नारायणने केवल देवताओंके हितके लिये अनन्त तेजस्वी परमपावन कूर्मरूप प्रकट किया था, सो इस प्रसङ्गका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'कूर्मावतार'नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

# उन्तालीसवाँ अध्याय

## वाराह-अवतार; हिरण्याक्षवध

मार्कण्डेय उवाच

**अतः परं हरेः पुण्यं प्रादुर्भावं नराधिप ।**
**वाराहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ १ ॥**

मार्कण्डेयजी कहते हैं—नरेश्वर ! इसके बाद मैं भगवान् विष्णुके 'वराह' नामक पावन अवतारका वर्णन करूँगा—तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १ ॥

**अवान्तरलये प्राप्ते ब्रह्मणस्तु दिनक्षये ।**
**त्रैलोक्यमखिलं व्याप्य तिष्ठन्त्यम्भांसि सत्तम ॥ २ ॥**
**त्रैलोक्येऽखिलसत्त्वानि यानि राजेन्द्र तानि वै ।**
**ग्रस्त्वा विष्णुस्ततः शेते तस्मिन्नेकार्णवे जले ॥ ३ ॥**
**अनन्तभोगशयने सहस्रफणशोभिते ।**
**रात्रिं युगसहस्रान्तां ब्रह्मरूपी जगत्पतिः ॥ ४ ॥**
**दितेः पुत्रो महानासीत् कश्यपादिति नः श्रुतम् ।**
**हिरण्याक्ष इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ५ ॥**
**पाताले निवसन् दैत्यो देवानुपरुरोध सः ।**
**यज्विनामपकाराय यतते स तु भूतले ॥ ६ ॥**

सत्तम ! ब्रह्माजीका दिन बीत जानेपर जब अवान्तर प्रलय होता है, तब सम्पूर्ण त्रिलोकीको व्याप्त करके केवल जल-ही-जल रह जाता है । राजेन्द्र ! उस समय त्रिभुवनमें जो भी प्राणी हैं, उन सबका ग्रास करके ब्रह्मस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु उस एकार्णव जलके भीतर सहस्रों फणोंसे सुशोभित शेषनागकी शय्यापर सहस्र युगोंतक चलनेवाली रात्रिमें शयन करते हैं । पूर्वकालमें कश्यपजीसे दितिके पुत्ररूपमें 'हिरण्याक्ष' नामक महान् दैत्य उत्पन्न हुआ था, ऐसी बात हमने सुनी है । वह महान् बलवान् और पराक्रमी था । वह दैत्य पातालमें निवास करता था और स्वर्गके देवताओंपर आक्रमण करके उनकी पुरीपर घेरा डाल देता था । इतना ही नहीं, वह पृथ्वीपर यज्ञ करनेवाले मनुष्योंका भी अपकार करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था ॥ २–६ ॥

**अथ भूम्युपरि स्थित्वा मर्त्या यक्ष्यन्ति देवताः ।**
**तेन तेषां बलं वीर्यं तेजश्चापि भविष्यति ॥ ७ ॥**
**इति मत्वा हिरण्याक्षः कृते सर्गे तु ब्रह्मणा ।**
**भूमेर्या धारणाशक्तिस्तां नीत्वा स महासुरः ॥ ८ ॥**
**विवेश तोयमध्ये तु रसातलतलं नृप ।**
**विना शक्त्या च जगती प्रविवेश रसातलम् ॥ ९ ॥**

एक बार उसने सोचा—'मर्त्यलोकमें रहनेवाले पुरुष पृथ्वीपर रहकर देवताओंका यजन करेंगे, इससे उनका बल, वीर्य और तेज बढ़ जायगा ।' यह सोचकर महान् असुर हिरण्याक्षने ब्रह्माजीद्वारा सृष्टि-रचना की जानेपर उसे धारण करनेके लिये भूमिकी जो धारणा-शक्ति थी, उसे लेकर जलके भीतर-ही-भीतर रसातलमें चला गया । आधारशक्तिसे रहित होकर यह पृथ्वी भी रसातलमें ही चली गयी ॥७–९॥

**निद्रावसाने सर्वात्मा क्व स्थिता मेदिनीति वै ।**
**संचिन्त्य ज्ञात्वा योगेन रसातलतलं गताम् ॥१०॥**
**अथ वेदमयं रूपं वाराहं वपुरास्थितम् ।**
**वेदपादं यूपदंष्ट्रं चितिवक्त्रं नराधिप ॥११॥**
**व्यूढोरस्कं महाबाहुं पृथुवक्त्रं नराधिप ।**
**अग्निजिह्वं स्रुचं तुण्डं चन्द्रार्कनयनं महत् ॥१२॥**
**पूर्तेष्टिधर्मश्रवणं दिव्यं तं सामनिःस्वनम् ।**
**प्राग्वंशकायं हविर्नासं कुशदर्भतनूरुहम् ॥१३॥**
**सर्वं वेदमयं तच्च पुण्यसूक्तमहासटम् ।**
**नक्षत्रताराहारं च प्रलयावर्तभूषणम् ॥१४॥**

योगनिद्राका अन्त होनेपर जब सर्वात्मा श्रीहरिने विचार किया कि 'पृथ्वी कहाँ है ?', तब उन्होंने योगबलसे यह जान लिया

कि 'वह रसातलको चली गयी है'। नराधिप! तब उन्होंने वेदमय लंबा-चौड़ा दिव्य वराह-शरीर धारण किया, जिसके चारों वेद ही चरण थे, यूप ( पशु-बन्धनके लिये बना हुआ काष्ठस्तम्भ ) ही दाढ़ था और चिति ( श्येनचित् आदि ) मुख। मुखमण्डल स्थूल और छाती चौड़ी थी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं, अग्नि ही जिह्वा और स्रुक् ( स्रुवा ) ही थूथुन थी। चन्द्रमा और सूर्य विशाल नेत्र थे, पूर्त ( बावली आदि खुदवाना ) और इष्ट-धर्म ( यज्ञ-यागादि ) उनके कान थे, साम ही स्वर था। प्राग्वंश ( पत्नीशाला या यजमान-गृह ) ही शरीर था, हवि ही नासिका था, कुश-दर्भ ही रोमावलियाँ थे। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण शरीर वेदमय था, पवित्र वैदिक सूक्त ही उनके बड़े-बड़े अयाल थे। नक्षत्र और तारे उनके हार थे तथा प्रलयकालीन आवर्त ( भँवर ) ही उनके लिये भूषणका काम दे रहे थे ॥ १०—१४ ॥

**इत्थं कृत्वा तु वाराहं प्रविवेश वृषाकपिः ।**
**रसातलं नृपश्रेष्ठ सनकाद्यैरभिष्टुतः ॥१५॥**
**प्रविश्य च हिरण्याक्षं युद्धे जित्वा वृषाकपिः ।**
**दंष्ट्राग्रेण ततः पृथ्वीं समुद्धृत्य रसातलात् ॥१६॥**
**स्तूयमानोऽमरगणैः स्थापयामास पूर्ववत् ।**
**संस्थाप्य पर्वतान् सर्वान् यथास्थानमकल्पयत् ॥१७॥**
**विहाय रूपं वाराहं तीर्थे कोकेतिविश्रुते ।**
**वैष्णवानां हितार्थाय क्षेत्रं तद्गुह्यमुत्तमम् ॥१८॥**
**ब्रह्मरूपं समास्थाय पुनः सृष्टिं चकार सः ।**
**विष्णुः पाति जगत्सर्वमेवम्भूतो युगे युगे ।**
**हन्ति चान्ते जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः ॥१९॥**

नृपश्रेष्ठ! भगवान् विष्णुने ऐसे वाराहरूपको धारणकर रसातलमें प्रवेश किया। उस समय सनकादि योगीजन उनकी स्तुति करते थे। वहाँ आकर भगवान्‌ने युद्धमें हिरण्याक्षको मारकर उसपर विजय पायी और अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे पृथ्वीको उठाकर वे रसातलसे ऊपर ले आये। फिर देवगण उनकी स्तुति करने लगे और उन्होंने पूर्ववत् पृथ्वीको स्थापित किया। पृथ्वीको स्थिर करनेके पश्चात् उसपर यथास्थान पर्वतोंका संनिवेश किया। तदनन्तर वैष्णवोंके हितके लिये कोकामुख तीर्थमें वाराहरूपका त्याग किया। वह वाराह-क्षेत्र उत्तम एवं गुप्त तीर्थ है। फिर ब्रह्माजीका रूप धारणकर उन्होंने सृष्टि-रचना की। इस प्रकार भगवान् विष्णु युग-युगमें अवतार लेकर सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करते हैं। फिर वे जनार्दन रुद्ररूप धारणकर अन्तकालमें समस्त लोकोंका संहार करते हैं ॥ १५—१९ ॥

**वेदान्तवेद्यस्य हरेर्वृषाकपेः**
**कथामिमां यश्च शृणोति मानवः ।**
**दृढां मतिं यज्ञतनौ विवेश्य वै**
**विहाय पापं स नरो हरिं व्रजेत् ॥२०॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे वाराहप्रादुर्भावो नाम*
*एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥*

जो मनुष्य वेदान्तवेद्य भगवान् विष्णुकी इस कथाको श्रवण करता है, वह भगवान् यज्ञमूर्तिमें अपनी सुदृढ़ बुद्धि लगाकर समस्त पापोंसे मुक्त हो, उन भगवान् हरिको ही प्राप्त करता है ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वाराहावतार' नामक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

## चालीसवाँ अध्याय

### नृसिंहावतार; हिरण्यकशिपुकी वरदान-प्राप्ति और उससे सताये हुए देवोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति

मार्कण्डेय उवाच

**वाराहः कथितो ह्येवं प्रादुर्भावो हरेस्तव ।**
**साम्प्रतं नारसिंहं तु प्रवक्ष्यामि निबोध मे ॥ १ ॥**

**श्रीमार्कण्डेयजी बोले**—राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके वराह-अवतारका वर्णन किया। अब 'नृसिंहावतार'का वर्णन करूँगा; सुनो ॥ १ ॥

**दितेः पुत्रो महानासीद्धिरण्यकशिपुः पुरा ।**
**तपस्तेपे निराहारो बहुवर्षसहस्रकम् ॥ २ ॥**
**तपतस्तस्य संतुष्टो ब्रह्मा तं प्राह दानवम् ।**
**वरं वरय दैत्येन्द्र यस्ते मनसि वर्तते ॥ ३ ॥**
**इत्युक्तो ब्रह्मणा दैत्यो हिरण्यकशिपुः पुरा ।**
**उवाच नत्वा देवेशं ब्रह्माणं विनयान्वितः ॥ ४ ॥**

पूर्वकालमें दितिका पुत्र हिरण्यकशिपु महान् प्रतापी हुआ। उसने अनेक सहस्र वर्षोंतक निराहार रहते हुए तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो ब्रह्माजीने उस दानवसे कहा—'दैत्येन्द्र! तुम्हारे मनको जो प्रिय लगे, वही वर माँग लो।' दैत्य हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर उन देवेश्वरसे विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा ॥ २-४ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

यदि त्वं वरदानाय प्रवृत्तो भगवन्मम ।
यद्यद्वृणोम्यहं ब्रह्मंस्तत्तन्मे दातुमर्हसि ॥ ५ ॥
न शुष्केण न चार्द्रेण न जलेन न वह्निना ।
न काष्ठेन न कीटेन पाषाणेन न वायुना ॥ ६ ॥
नायुधेन न शूलेन न शैलेन न मानुषैः ।
न सुरैरसुरैर्वापि न गन्धर्वैर्न राक्षसैः ॥ ७ ॥
न किंनरैर्न यक्षैस्तु विद्याधरभुजंगमैः ।
न वानरैर्मृगैर्वापि नैव मातृगणैरपि ॥ ८ ॥
नाभ्यन्तरे न बाह्ये तु नान्यैर्मरणहेतुभिः ।
न दिने न च नक्तं मे त्वत्प्रसादाद् भवेन्मृतिः ॥ ९ ॥
इति वै देवदेवेशं वरं त्वत्तो वृणोम्यहम् ।

हिरण्यकशिपु बोला—ब्रह्मन्! भगवन्! यदि आप मुझे वर देनेको उद्यत हैं तो मैं जो-जो माँगता हूँ, वह सब देनेकी कृपा करें। मैं न सूखी वस्तुसे मरूँ न गीलीसे; न जलसे न आगसे; न काठसे न कीड़ेसे और न पत्थर या हवासे ही मेरी मृत्यु हो। न शूल अथवा किसी और शस्त्रसे न पर्वतसे; न मनुष्योंसे न देवता, असुर, गन्धर्व अथवा राक्षसोंसे ही मरूँ। न किंनरोंसे न यक्ष, विद्याधर अथवा भुजंगोंसे; न वानर तथा अन्य पशुओंसे और न दुर्गा आदि मातृगणोंसे ही मेरी मृत्यु हो। मैं न घरके भीतर मरूँ न बाहर; न दिनमें मरूँ न रातमें तथा आपकी कृपासे मृत्युके हेतुभूत अन्य कारणोंसे भी मेरी मृत्यु न हो। देवदेवेश्वर! मैं आपसे यही वर माँगता हूँ ॥ ५-९३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो दैत्यराजेन ब्रह्मा तं प्राह पार्थिव ॥१०॥
तपसा तव तुष्टोऽहं महता तु वरानिमान् ।
दुर्लभानपि दैत्येन्द्र ददामि परमाद्भुतान् ॥११॥
अन्येषां नेदृशं दत्तं न तैरित्थं तपः कृतम् ।
त्वत्प्रार्थितं मया दत्तं सर्वं ते ह्यस्तु दैत्यप ॥१२॥
गच्छ भुङ्क्ष्व महाबाहो तपसामूर्जितं फलम् ।
इत्येवं दैत्यराजस्य हिरण्यकशिपोः पुरा ॥१३॥
दत्त्वा वरान् ययौ ब्रह्मा ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ।
सोऽपि लब्धवरो दैत्यो बलवान् बलदर्पितः ॥१४॥
देवान् सिंहान् रणे जित्वा दिवः प्राच्यावयद् भुवि ।
दिवि राज्यं स्वयं चक्रे सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥१५॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके यों कहनेपर ब्रह्माजीने उससे कहा—'दैत्येन्द्र! तुम्हारे महान् तपसे संतुष्ट होकर मैं इन परम अद्भुत वरोंको दुर्लभ होनेपर भी तुम्हें दे रहा हूँ। दूसरे किसीको मैंने ऐसा वर नहीं दिया है और न दूसरोंने ऐसी तपस्या ही की है। दैत्यपते! तुम्हारे माँगे हुए सभी वर मैंने तुम्हें दे दिये; वे सब तुम्हें प्राप्त हों। महाबाहो! अब जाओ और अपने तपके बढ़े हुए उत्कृष्ट फलको भोगो।' इस प्रकार पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अभीष्ट वर देकर ब्रह्माजी अपने परम उत्तम लोकको चले गये। उस बलवान् दैत्यने भी वर पाकर बलसे उन्मत्त हो श्रेष्ठ देवताओंको युद्धमें जीतकर उन्हें स्वर्गसे पृथ्वीपर गिरा दिया तथा वह स्वयं स्वर्गलोकमें रहकर वहाँका सर्वशक्तिसम्पन्न राज्य भोगने लगा ॥ १०-१५ ॥

देवा अपि भयात्तस्य रुद्राश्चैवर्षयो नृप ।
विचेरुरवनौ सर्वे बिभ्राणा मानुषीं तनुम् ॥१६॥
प्राप्तत्रैलोक्यराज्योऽसौ हिरण्यकशिपुः प्रजाः ।
आहूय सर्वा राजेन्द्र वाक्यं चेदमभाषत ॥१७॥
न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं सुरान् प्रति ।
युष्माभिरहमेवाद्य त्रैलोक्याधिपतिः प्रजाः ॥१८॥
ममैव पूजां कुरुत यज्ञदानादिकर्मणा ।
ताश्च सर्वास्तथा चक्रुर्दैत्येन्द्रस्य भयान्नृप ॥१९॥
यत्रैवं क्रियमाणेषु त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
अधर्मयुक्तं सकलं बभूव नृपसत्तम ॥२०॥
स्वधर्मलोपात् सर्वेषां पापे मतिरजायत ।
गते काले तु महति देवाः सेन्द्रा बृहस्पतिम् ॥२१॥

नीतिज्ञं सर्वशास्त्रज्ञं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ।
हिरण्यकशिपोरस्य विनाशं मुनिसत्तम ॥२२॥
त्रैलोक्यहारिणः शीघ्रं वधोपायं वदस्व नः ।

नरेश्वर ! इन्द्रादि देवता, रुद्र तथा ऋषिगण भी उसके भयसे मनुष्यरूप धारणकर पृथ्वीपर विचरते थे । राजेन्द्र ! त्रिभुवनका राज्य प्राप्त कर लेनेपर हिरण्यकशिपुने समस्त प्रजाओंको बुलाकर उनसे यह वाक्य कहा—'प्रजागण ! तुमलोग देवताओंके लिये यज्ञ, होम और दान न करो । अब मैं ही त्रिभुवनका अधीश्वर हूँ; अतः यज्ञ और दानादि कर्मोंद्वारा मेरी ही पूजा करो ।' राजन् ! यह सुनकर वे सभी प्रजाएँ उसके भयसे वैसा ही करने लगीं । नृपश्रेष्ठ ! वहाँ ऐसा व्यवहार चालू होनेपर चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिभुवन अधर्मपरायण हो गया । स्वधर्मका लोप हो जानेसे सबकी बुद्धि पापमें प्रवृत्त हो गयी । इस तरह बहुत समय बीतनेपर इन्द्रसहित सब देवताओंने मिलकर समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता तथा नीतिवेत्ता बृहस्पतिजीसे विनयपूर्वक पूछा—'मुनिश्रेष्ठ ! त्रिलोकीका राज्य छीननेवाले इस हिरण्यकशिपुके विनाशका समय और उसका उपाय हमें शीघ्र बताइये' ॥ १६—२२½ ॥

बृहस्पतिरुवाच

शृणुध्वं मम वाक्यानि स्वपदप्राप्तये सुराः ॥२३॥
प्रायो हिरण्यकशिपुः क्षीणभागो महासुरः ।
शोको नाशयति प्रज्ञां शोको नाशयति श्रुतम् ॥२४॥
शोको मतिं नाशयति नास्ति शोकसमो रिपुः ।
सोढुं शक्योऽग्निसम्बन्धः शस्त्रस्पर्शश्च दारुणः ॥२५॥
न तु शोकभवं दुःखं संसोढुं नृप शक्यते ।
कालान्निमित्ताच्च वयं लक्ष्यामस्तत्क्षयं सुराः ॥२६॥
बुधाश्च सर्वे सर्वत्र स्थिता वक्ष्यन्ति नित्यशः ।
अचिरादेव दुष्टोऽसौ नश्यत्येव परस्परम् ॥२७॥
देवानां तु परामृद्धिं स्वपदप्राप्तिलक्षणाम् ।
हिरण्यकशिपोर्नाशं शकुनानि वदन्ति मे ॥२८॥
यत एवमतो देवाः सर्वे गच्छत माचिरम् ।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं प्रसुप्तो यत्र केशवः ॥२९॥
युष्माभिः संस्तुतो देवः प्रसन्नो भवति क्षणात् ।
स हि प्रसन्नो दैत्यस्य वधोपायं वदिष्यति ॥३०॥

बृहस्पतिजी बोले—देवताओ ! तुमलोग अपने स्थानकी प्राप्तिके लिये मेरे ये वाक्य सुनो—'इस महान् असुर हिरण्यकशिपुके पुण्यका अंश प्रायः क्षीण हो चुका है । [ इसे अपने भाई हिरण्याक्षकी मृत्युसे बहुत शोक हुआ है । ] यह शोक बुद्धिको नष्ट और शास्त्रज्ञानको चौपट कर देता है, विचारशक्तिको भी क्षीण कर डालता है; अतः शोकके समान कोई शत्रु नहीं है । नरेश्वर ! अपने शरीरपर अग्निका स्पर्श और दारुण शस्त्र-प्रहार भी सहा जा सकता है, परंतु शोकजन्य दुःखका सहन नहीं किया जा सकता । देवताओ ! इस शोकसे और कालरूप निमित्तसे हम हिरण्यकशिपुका नाश निकट देख रहे हैं । इसके अतिरिक्त सभी विद्वान् सर्वत्र परस्पर यही कहा करते हैं कि दुष्ट हिरण्यकशिपु अब शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है । मेरे शकुन भी यही बताते हैं कि देवताओंको अपने पद—स्वर्ग-साम्राज्यकी प्राप्तिरूप महती समृद्धि मिलनेवाली है और हिरण्यकशिपुका नाश होना चाहता है । चूँकि ऐसा ही होनेवाला है, इसलिये तुम सभी देवता क्षीरसागरके उत्तरतटपर, जहाँ भगवान् विष्णु शयन करते हैं, शीघ्र ही जाओ । तुमलोगोंके भलीभाँति स्तवन करनेपर वे भगवान् क्षणभरमें ही प्रसन्न हो जायँगे और प्रसन्न होनेपर वे ही उस दैत्यके वधका उपाय बतायेंगे ॥ २३—३० ॥

इत्युक्तास्तेन देवास्ते साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ।
प्रीत्या च परया युक्ता गन्तुं चक्रुरथोद्यमम् ॥३१॥
पुण्ये तिथौ शुभे लग्ने पुण्यं स्वस्ति च मङ्गलम् ।
कारयित्वा मुनिवरैः प्रस्थितास्ते दिवौकसः ॥३२॥
नाशाय दुष्टदैत्यस्य स्वभूत्यै च नृपोत्तम ।
ते शर्वमग्रतः कृत्वा क्षीराब्धेरुत्तरं तटम् ॥३३॥
तत्र गत्वा सुराः सर्वे विष्णुं जिष्णुं जनार्दनम् ।
अस्तुवन् विविधैः स्तोत्रैः पूजयन्तः प्रतस्थिरे ॥३४॥
भवोऽपि भगवान् भक्त्या भगवन्तं जनार्दनम् ।
अस्तुवन्नामभिः पुण्यैरेकाग्रमनसा हरिम् ॥३५॥

श्रीबृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर सभी देवता कहने लगे—'भगवन् ! आपने बहुत अच्छा कहा, बहुत अच्छा कहा ।' और वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जानेका उद्योग करने लगे । नृपवर ! वे देवगण किसी पुण्यतिथिको शुभ लग्नमें मुनिवरोंद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठ कराकर दुष्ट दैत्य (हिरण्यकशिपु)के विनाश और अपनी ऐश्वर्य-वृद्धिके

लिये महादेवजीको आगे करके क्षीरसागरके उत्तरतटकी ओर प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर सभी देवता विजयशील जनार्दन भगवान् विष्णुका नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तवन-पूजन करते हुए वहाँ खड़े रहे। भगवान् शंकर भी भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्तसे भगवान् जनार्दनके पवित्र नामोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३१—३५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्देवो यज्ञेशो यज्ञपालकः ।
प्रभविष्णुर्ग्रसिष्णुश्च लोकात्मा लोकपालकः ॥३६॥
केशवः केशिहा कल्पः सर्वकारणकारणम् ।
कर्मकृद् वामनाधीशो वासुदेवः पुरुष्टुतः ॥३७॥
आदिकर्ता वराहश्च माधवो मधुसूदनः ।
नारायणो नरो हंसो विष्णुसेनो हुताशनः ॥३८॥
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् श्रीमानायुष्मान् पुरुषोत्तमः ।
वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः ॥३९॥
नरसिंहो महाभीमो वज्रदंष्ट्रो नखायुधः ।
आदिदेवो जगत्कर्ता योगेशो गरुडध्वजः ॥४०॥
गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता भूपतिर्भुवनेश्वरः ।
पद्मनाभो हृषीकेशो विभुर्दामोदरो हरिः ॥४१॥
त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मेशः प्रीतिवर्धनः ।
वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपवल्लभः ॥४२॥
भक्तिप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यकीर्तिर्ध्रुवः शुचिः ।
कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा शान्तिवर्धनः ॥४३॥
संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञो मन्दारगिरिकेतनः ।
बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः ॥४४॥
भूतावासो गुहावासः श्रीनिवासः श्रियःपतिः ।
तपोवासो दमो वासः सत्यवासः सनातनः ॥४५॥
पुरुषः पुष्कलः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः ।
पूर्णः पूर्तिः पुराणज्ञः पुण्यज्ञः पुण्यवर्द्धनः ॥४६॥
शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी लाङ्गली मुशली हली ।
किरीटी कुण्डली हारी मेखली कवची ध्वजी ॥४७॥
जिष्णुर्जेता महावीरः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ।
शान्तः शान्तिकरः शास्ता शंकरः शंतनुस्तुतः ॥४८॥
सारथिः सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ।
सावनः साहसी सत्त्वः सम्पूर्णांशः समृद्धिमान् ॥४९॥
स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिनाशनः ।
मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराब्धिकृतकेतनः ॥५०॥
स्तुतः सुरासुरैरीशः प्रेरकः पापनाशनः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारस्त्वमग्नयः ॥५१॥
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देव त्वं सुधा पुरुषोत्तम ।
नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च ॥५२॥
अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज ।

**श्रीमहादेवजी बोले**—विष्णु, जिष्णु, विभु, देव, यज्ञेश, यज्ञपालक, प्रभविष्णु, ग्रसिष्णु, लोकात्मा, लोकपालक, केशव, केशिहा, कल्प, सर्वकारणकारण, कर्मकृत्, वामनाधीश, वासुदेव, पुरुष्टुत, आदिकर्ता, वराह, माधव, मधुसूदन, नारायण, नर, हंस, विष्णुसेन, हुताशन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, श्रीमान्, आयुष्मान्, पुरुषोत्तम, वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, नरसिंह, महाभीम, वज्रदंष्ट्र, नखायुध, आदिदेव, जगत्कर्ता, योगेश, गरुडध्वज, गोविन्द, गोपति, गोप्ता, भूपति, भुवनेश्वर, पद्मनाभ, हृषीकेश, विभु, दामोदर, हरि, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मेश, प्रीतिवर्धन, वामन, दुष्टदमन, गोविन्द, गोपवल्लभ, भक्तिप्रिय, अच्युत, सत्य, सत्यकीर्ति, ध्रुव, शुचि, कारुण्य, करुण, व्यास, पापहा, शान्तिवर्धन, संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञ, मन्दारगिरिकेतन, बदरीनिलय, शान्त, तपस्वी, वैद्युतप्रभ, भूतावास, गुहावास, श्रीनिवास, श्रियःपति, तपोवास, दम, वास, सत्यवास, सनातन पुरुष, पुष्कल, पुण्य, पुष्कराक्ष, महेश्वर, पूर्ण, पूर्ति, पुराणज्ञ, पुण्यज्ञ, पुण्यवर्धन, शङ्खी, चक्री, गदी, शार्ङ्गी, लाङ्गली, मुशली, हली, किरीटी, कुण्डली, हारी, मेखली, कवची, ध्वजी, जिष्णु, जेता, महावीर, शत्रुघ्न, शत्रुतापन, शान्त, शान्तिकर, शास्ता, शंकर, शंतनुस्तुत, सारथि, सात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम, सावन, साहसी, सत्त्व, सम्पूर्णांश, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिनाशन, मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, क्षीराब्धिकृतकेतन, सुरासुरैःस्तुत, प्रेरक और पापनाशन आदि नामोंसे कहे जानेवाले परमेश्वर! आप ही यज्ञ, वषट्कार, ॐकार तथा आहवनीयादि अग्निरूप हैं। पुरुषोत्तम! देव! आप ही स्वाहा, स्वधा और सुधा हैं

आप सनातन देवदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। गरुड़ध्वज! आप प्रमाणोंके अविषय तथा अनन्त हैं॥ २६-५२½॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतैर्नामभिर्दिव्यैः संस्तुतो मधुसूदनः ॥५३॥
उवाच प्रकटीभूत्वा देवान् सर्वानिदं वचः ।

मार्कण्डेयजी बोले—इन दिव्य नामोंद्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने प्रत्यक्ष प्रकट होकर सम्पूर्ण देवताओंसे यह वचन कहा॥ ५३½॥

श्रीभगवानुवाच

युष्माभिः संस्तुतो देवा नामभिः केवलैः शुभैः ॥५४॥
अत एव प्रसन्नोऽस्मि किमर्थं करवाणि वः ।

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुमलोगोंने केवल कल्याणकारी नामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है, अतः मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; कहो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करूँ?॥ ५४½॥

देवा ऊचुः

देवदेव हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ॥५५॥
त्वमेव जानासि हरे किं तस्मात् परिपृच्छसि ।

देवता बोले—हे देवदेव! हे हृषीकेश! हे कमलनयन! हे लक्ष्मीपते! हे हरे! आप तो सब कुछ जानते हैं; फिर हमसे क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५५½॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मदागमनं सर्वं जानाम्यसुरसूदनाः ॥५६॥
हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शंकरेण तु ।
पुण्यनामशतेनैव संस्तुतोऽहं भवेन च ॥५७॥
एतेन यस्तु मां नित्यं त्वयोक्तेन महामते ।
तेनाहं पूजितो नित्यं भवामीह त्वया यथा ॥५८॥
प्रीतोऽहं गच्छ देव त्वं कैलासशिखरं शुभम् ।
त्वया स्तुतो हनिष्यामि हिरण्यकशिपुं भव ॥५९॥
गच्छध्वमधुना देवाः कालं कंचित् प्रतीक्षताम् ।
यदास्य तनयो धीमान् प्रह्लादो नाम वैष्णवः ॥६०॥
तस्य द्रोहं यदा दैत्यः करिष्यति सुरांस्तदा ।
हनिष्यामि वरैर्गुप्तमजेयं देवदानवैः ।
इत्युक्त्वा विष्णुना देवा नत्वा विष्णुं ययुर्नृप ॥६१॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोर्नामस्तोत्रं नाम*
*चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥*

श्रीभगवान् बोले—असुरनाशक देवताओ! तुमलोगोंके आनेका सारा कारण मुझे ज्ञात है। जगत्का कल्याण करनेवाले महादेवजीने तथा तुमने हिरण्यकशिपु दैत्यका नाश करानेके लिये मेरे एक सौ पुण्यनामोंद्वारा मेरा स्तवन किया है। महामते शिव! तुम्हारे कहे हुए इन सौ नामोंसे जो मेरा नित्य स्तवन करेगा, उस पुरुषद्वारा मैं उसी प्रकार प्रतिदिन पूजित होऊँगा, जैसे इस समय तुम्हारेद्वारा हुआ हूँ। देव शम्भो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अब तुम अपने शुभ कैलासशिखरको जाओ। तुमने मेरी स्तुति की है, अतः तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं हिरण्यकशिपुका वध करूँगा। देवताओ! अब तुम भी जाओ और कुछ कालतक प्रतीक्षा करो। जब इस हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक बुद्धिमान् विष्णुभक्त पुत्र होगा और जिस समय यह दैत्य प्रह्लादसे द्रोह करेगा, उस समय वरोंसे रक्षित होकर देवताओं और दानवोंसे भी नहीं जीते जा सकनेवाले इस असुरका मैं अवश्य वध कर डालूँगा। राजन्! भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर देवगण उन्हें प्रणाम करके चले गये॥ ५६-६१॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'विष्णुका नाममय स्तोत्र' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

* * *

## इकतालीसवाँ अध्याय

### प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरि-भक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्विग्नता

सहस्रानीक उवाच

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
प्रादुर्भावं नृसिंहस्य यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
वद प्रह्लादचरितं विस्तरेण ममानघ ।
धन्या वयं महायोगिंस्त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ २ ॥
सुधां पिबामो दुर्लभ्यां धन्याः श्रीशकथाभिधाम् ।

**सहस्रानीकने कहा**—सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता महाप्राज्ञ मार्कण्डेयजी ! आप भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भावकी कथा यथोचितरूपसे कहें। अनघ ! भक्तवर प्रह्लादजीका चरित्र मुझे विस्तारपूर्वक सुनायें। महायोगिन् ! महामुने ! हमलोग धन्य हैं; क्योंकि आपकी कृपासे हमें भगवान् विष्णुकी कथारूप दुर्लभ सुधाका पान करनेका अवसर मिला है ॥ १-२½ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा हिरण्यकशिपोस्तपोऽर्थं गच्छतो वनम् ॥ ३ ॥
दिग्दाहो भूमिकम्पश्च जातस्तस्य महात्मनः ।
वारितो बन्धुभिर्भृत्यैर्मित्रैश्च हितकारिभिः ॥ ४ ॥
शकुना विगुणा राजञ्जातास्तच्च न शोभनम् ।
त्रैलोक्याधिपतिस्त्वं हि सर्वे देवाः पराजिताः॥ ५ ॥
तवास्ति न भयं सौम्य किमर्थं तप्यते तपः ।
प्रयोजनं न पश्यामो वयं बुद्ध्या समन्विताः ॥ ६ ॥
यो भवेन्न्यूनकामो हि तपश्चर्यां करोति सः ।

**श्रीमार्कण्डेयजी बोले**—पूर्वकालमें एक समय वह महाकाय हिरण्यकशिपु जब तपस्या करनेके लिये वनमें जानेको उद्यत हुआ, उस समय समस्त दिशाओंमें दाह और भूकम्प होने लगा। यह देखकर उसके हितकारी बन्धुओं, मित्रों और भृत्योंने उसे मना किया—'राजन् ! इस समय बुरे शकुन हो रहे हैं। इनका फल अच्छा नहीं है। सौम्य ! आप त्रिभुवनके एकच्छत्र स्वामी हैं, समस्त देवताओंपर आपने विजय प्राप्त की है, आपको किसीसे भय भी नहीं है; फिर किसलिये तप करना चाहते हैं ? हम सभी लोग जब अपनी बुद्धिसे विचारते हैं, तब कोई भी प्रयोजन नहीं दिखायी देता [ जिसके लिये आपको तप करनेकी आवश्यकता हो ]; क्योंकि जिसकी कामना अपूर्ण होती है, वही तपस्या करता है' ॥ ३—६½ ॥

एवं तैर्वार्यमाणोऽपि दुर्मदो मदमोहितः ॥ ७ ॥
यातः कैलासशिखरं द्वित्रैर्मित्रैः परीवृतः ।
तस्य संतप्यमानस्य तपः परमदुष्करम् ॥ ८ ॥
चिन्ता जाता महीपाल विरिञ्चेः पद्मजन्मनः ।
कि करोमि कथं दैत्यस्तपसो विनिवर्तते ॥ ९ ॥
इति चिन्ताकुलस्यैव ब्रह्मणोऽङ्कसमुद्भवः ।
प्रणम्य प्राह भूपाल नारदो मुनिसत्तमः ॥१०॥

अपने बन्धुजनोंके इस प्रकार मना करनेपर भी वह दुर्मद एवं मदमत्त दैत्य अपने दो-तीन मित्रोंको साथ लेकर [ तपके लिये ] कैलास-शिखरको चला ही गया। महीपाल ! वहाँ जाकर जब वह परम दुष्कर तपस्या करने लगा, तब पद्मयोनि ब्रह्माजीको उसके कारण बड़ी चिन्ता हो गयी। वे सोचने लगे—'अहो ! अब क्या करूँ ? वह दैत्य कैसे तपसे निवृत्त हो ?' भूपाल ! इस चिन्तासे ब्रह्माजी जब व्याकुल हो रहे थे, उसी समय उनके अङ्गसे उत्पन्न मुनिवर नारदजीने उन्हें प्रणाम करके कहा ॥ ७—१० ॥

नारद उवाच

किमर्थं खिद्यते तात नारायणपरायण ।
येषां मनसि गोविन्दस्ते वै नार्हन्ति शोचितुम् ॥११॥
अहं तं वारयिष्यामि तप्यन्तं दितिनन्दनम् ।
नारायणो जगत्स्वामी मतिं मे सम्प्रदास्यति ॥१२॥

**नारदजी बोले**—पिताजी ! आप तो भगवान् नारायणके आश्रित हैं, फिर आप क्यों खेद कर रहे हैं ? जिनके हृदयमें भगवान् गोविन्द विराजमान हैं, उन्हें इस प्रकार सोच नहीं करना चाहिये। तपस्यामें प्रवृत्त हुए उस दैत्य हिरण्यकशिपुको मैं उससे निवृत्त करूँगा। जगदीश्वर भगवान् नारायण मुझे इसके लिये सुबुद्धि देंगे ॥ ११-१२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वाऽऽनम्य पितरं वासुदेवं हृदि स्मरन् ।
प्रयातः पर्वतेनैव सार्धं स मुनिपुंगवः ॥१३॥
कलविङ्कौ तु तौ भूत्वा कैलासं पर्वतोत्तमम् ।
यत्रास्ते दितिजश्रेष्ठो द्वित्रैर्मित्रैः परीवृतः ॥१४॥
कृतस्नानो मुनिस्तत्र वृक्षशाखासमाश्रितः ।
शृण्वतस्तस्य दैत्यस्य प्राह गम्भीरया गिरा ॥१५॥
नमो नारायणायेति पुनः पुनरुदारधीः ।
त्रिवारं प्रजपित्वा वै नारदो मौनमाश्रितः ॥१६॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कलविङ्कस्य सादरम् ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः क्रुद्धश्चापं समाददे ॥१७॥
बाणं धनुषि संधाय यावन्मुञ्चति तौ प्रति ।
तावदुड्डीय तौ भूप गतौ नारदपर्वतौ ॥१८॥

सोऽपि क्रोधपरीताङ्गो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
त्यक्त्वा तमाश्रमं भूयो नगरं स्वं महीपते ॥१९॥

मार्कण्डेयजी बोले—अपने पितासे इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-मन भगवान् वासुदेवका स्मरण करते हुए वे पर्वत मुनिके साथ वहाँसे चल दिये। वे दोनों मुनि कलविङ्क पक्षीका रूप धारणकर उस उत्तम कैलास पर्वतपर आये, जहाँ दैत्यश्रेष्ठ हिरण्यकशिपु अपने दो-तीन मित्रोंके साथ रहता था। वहाँ स्नान करके नारद मुनि वृक्षकी शाखापर बैठ गये और उस दैत्यके सुनते-सुनते गम्भीर वाणीमें भगवन्नामका उच्चारण करने लगे। उदारबुद्धि नारद लगातार तीन बार 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका उच्चस्वरसे उच्चारणकर मौन हो गये। भूपाल! कलविङ्कके द्वारा किये गये उस आदरयुक्त नामकीर्तनको सुनकर हिरण्यकशिपुने कुपित हो धनुष उठाया और उसपर बाणका संधान करके ज्यों ही उन दोनों पक्षियोंके प्रति छोड़ने लगा, त्यों ही नारद और पर्वत मुनि उड़कर अन्यत्र चले गये। महीपते! तब हिरण्यकशिपु भी क्रोधसे भर गया और उसी समय वह उस आश्रमको त्यागकर अपने नगरको चला आया ॥ १३—१९ ॥

तस्यापि भार्या सुश्रोणी कयाधूर्नाम नामतः ।
तदा रजस्वला भूत्वा स्नाताभूद्दैवयोगतः ॥२०॥
रात्रावेकान्तसमये तया पृष्टः स दैत्यराट् ।
स्वामिन् यदा तपश्चर्यां कर्तुं गेहाद्वनं गतः ॥२१॥
तदा त्वयोक्तं वर्षाणामयुतं मे तपस्त्विदम् ।
तत्किमर्थं महाराज साम्प्रतं त्यक्तवान् व्रतम् ॥२२॥
तथ्यं कथय मे नाथ स्नेहात्पृच्छामि दैत्यप ।

वहाँ उसी समय उसकी कयाधू नामकी सुन्दरी पत्नी दैवयोगसे रजस्वला होकर ऋतु-स्नाता हुई थी। रात्रिमें एकान्तवासके समय कयाधूने दैत्यराजसे पूछा—"स्वामिन्! आप जिस समय तप करनेके लिये घरसे वनको गये थे, उस समय तो आपने यह कहा था कि 'मेरी यह तपस्या दस हजार वर्षोंतक चलेगी।' फिर महाराज! आपने अभी क्यों उस व्रतको त्याग दिया? स्वामिन्! दैत्यराज! मैं प्रेमपूर्वक आपसे यह प्रश्न करती हूँ, कृपया मुझे सच-सच बताइये" ॥ २०—२२½ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

शृणु चार्वङ्गि मे तथ्यां वाचं व्रतविनाशिनीम् ॥२३॥
क्रोधस्यातीव जननीं देवानां मुदवर्द्धनीम् ।
कैलासशिखरे देवि महदानन्दकानने ॥२४॥
व्याहरन्तौ शुभां वाणीं नमो नारायणेति च ।
वारद्वयं त्रयं चेति व्याहृतं वचनं शुभे ॥२५॥
तेन मे मनसि क्रोधो जातोऽतीव वरानने ।
कोदण्डे शरमाधाय यावन्मुञ्चामि भामिनि ॥२६॥
तावत्तौ पक्षिणौ भीतौ गतौ देशान्तरं त्वहम् ।
त्यक्त्वा व्रतं समायातो भाविकार्यबलेन वै ॥२७॥

हिरण्यकशिपु बोला—सुन्दरि! सुनो, मैं वह बात तुम्हें सच-सच सुनाता हूँ, जिसके कारण मेरे व्रतका भङ्ग हुआ है। वह बात मेरे क्रोधको अत्यन्त बढ़ानेवाली और देवताओंको आनन्द देनेवाली थी। देवि! कैलासशिखरपर जो महान् आनन्द-कानन है, उसमें दो पक्षी 'ॐ नमो नारायणाय' इस शुभवाणीका उच्चारण करते हुए आ गये। शुभे! उन्होंने [ मुझे सुना-सुनाकर ] दो बार, तीन बार उक्त वचनको दुहराया। वरानने! पक्षियोंके उस शब्दको सुनकर मेरे मनमें बड़ा क्रोध हुआ और भामिनि! उन्हें मारनेके लिये धनुषपर बाण चढ़ाकर ज्यों ही मैंने छोड़ना चाहा, त्यों ही वे दोनों पक्षी भयभीत हो उड़कर अन्यत्र चले गये। तब मैं भी भावीकी प्रबलतासे अपना व्रत त्यागकर यहाँ चला आया ॥ २३—२७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्यमाने वचने वीर्यद्रावोऽभवत्तदा ।
ऋतुकाले तु सम्प्राप्ते जातो गर्भस्तदैव हि ॥२८॥
पुनः प्रवर्धमानस्य गर्भे गर्भस्य धीमतः ।
नारदस्योपदेशेन वैष्णवः समजायत ॥२९॥
तदग्रे कथयिष्यामि भूप श्रद्धापरो भव ।
तस्य सूनुरभूद्भक्तः प्रह्लादो जन्मवैष्णवः ॥३०॥
सोऽवर्धतासुरकुले निर्मलो मलिनाश्रये ।
यथा कलौ हरेर्भक्तिः पाशसंसारमोचनी ॥३१॥
स वर्द्धमानो विरराज बालैः
सह श्रीनाथपदेषु भक्त्या ।
बालोऽल्पदेहो महतीं महात्मा
विस्तारयन् भाति स विष्णुभक्तिम् ॥३२॥

यथा चतुर्थं युगमाप्तधर्म-
कामार्थमोक्षं किल कीर्तिदं हि ।
स बाललीलासु सहान्यडिम्भैः
प्रहेलिकाक्रीडनकेषु नित्यम् ॥३३॥
कथाप्रसङ्गेषु च कृष्णमेव
प्रोवाच यस्मात् स हि तत्स्वभावः ।
इत्थं शिशुत्वेऽपि विचित्रकारी
व्यवर्द्धतेशस्मरणामृताशः ॥३४॥

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—[ हिरण्यकशिपु अपनी पत्नीके साथ ] जब इस प्रकार बातें कर रहा था, उसी समय उसका वीर्य स्खलित हुआ; पत्नीका ऋतुकाल तो प्राप्त था ही, तत्काल गर्भ स्थापित हो गया। माताके उदरमें बढ़ते हुए उस गर्भसे बुद्धिमान् नारदजीके उपदेशके कारण विष्णुभक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। भूप! इस प्रसङ्गको आगे कहूँगा; इस समय जो प्रसङ्ग चल रहा है, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो। हिरण्यकशिपुका वह भक्त पुत्र प्रह्लाद जन्मसे ही वैष्णव हुआ। जैसे पापपूर्ण कलियुगमें संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली भगवान् श्रीहरिकी भक्ति बढ़ती रहती है, उसी प्रकार उस मलिन कर्म करनेवाले असुर-वंशमें भी प्रह्लाद निर्मल भावसे रहकर दिनोंदिन बढ़ने लगा। वह बालक त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णुके चरणोंमें बढ़ती हुई भक्तिके साथ ही स्वयं भी बढ़ता हुआ शोभा पा रहा था। शरीर छोटा होनेपर भी उस बालकका हृदय महान् था; वह विष्णुभक्तिका प्रसार करता हुआ उसी तरह शोभा पाता था, जैसे चौथा युग ( कलियुग ) [ महत्त्वमें सब युगोंसे छोटा होकर भी ] भगवद्भजनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला तथा यशका विस्तार करनेवाला होता है। प्रह्लाद अन्य बालकोंके साथ खेलते, पहेली बुझाते और खिलौने आदिसे मनोरञ्जन करते समय तथा बात-चीतके प्रसङ्गमें भी सदा भगवान् विष्णुकी ही चर्चा करता था; क्योंकि उसका स्वभाव भगवन्मय हो गया था। इस प्रकार शैशव-कालमें भी विचित्र कार्य करनेवाला वह प्रह्लाद भगवत्स्मरणरूपी अमृतका पान करता हुआ दिन-दिन बढ़ने लगा ॥ २८—३४॥

तं पद्मवक्त्रं दैत्येन्द्रः कदाचित्स्त्रीवृतः खलः ।
बालं गुरुगृहायातं ददर्श स्वायतेक्षणम् ॥३५॥
गृहीत्वा तु करे पुत्रं पट्टिका या सुशोभना ।
मूर्ध्नि चक्राङ्किता पट्टी कृष्णनामाङ्किताऽऽदरात्॥३६॥
तमाहूय मुदाविष्टो लालयन् प्राह पुत्रकम् ।
पुत्र ते जननी नित्यं सुधीर्मे त्वा प्रशंसति ॥३७॥
अथ तद्वद यत्किंचिद् गुरुवेश्मनि शिक्षितम् ।
विचार्यानन्दजननं सम्यगायाति तद्वद ॥३८॥

एक दिन बहुत-सी स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए दुष्ट दैत्यराज हिरण्यकशिपुने गुरुजीके घरसे आये हुए कमल-से मुखवाले अपने बालक पुत्र प्रह्लादको देखा; उसकी आँखें बड़ी-बड़ी और सुन्दर थीं तथा वह हाथमें पट्टी लिये हुए था। उसकी पट्टी बड़ी सुन्दर थी, उसके सिरेपर चक्रका चिह्न बना हुआ था और पट्टीपर आदरपूर्वक श्रीकृष्णका नाम लिखा गया था। उसे देख हिरण्यकशिपुको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने पुत्रको पास बुलाकर उसे प्यार करते हुए कहा—'बेटा! तुम्हारी बुद्धिमती माता मुझसे तुम्हारी बड़ी प्रशंसा किया करती है। अतः तुमने गुरुजीके घर जो कुछ सीखा है, वह मुझसे कहो। पहले सोच लो, जो तुम्हें बहुत आनन्ददायी प्रतीत होता हो और भलीभाँति याद हो, वही पाठ सुनाओ' ॥ ३५—३८ ॥

अथाह पितरं हर्षात् प्रह्लादो जन्मवैष्णवः ।
गोविन्दं त्रिजगद्वन्द्यं प्रभुं नत्वा ब्रवीमि ते ॥३९॥
इति शत्रोः स्तवं श्रुत्वा पुत्रोक्तं स्त्रीवृतः खलः ।
क्रुद्धोऽपि तं वञ्चयितुं जहासोच्चैः प्रहृष्टवत् ॥४०॥
आलिङ्ग्य तनयं प्राह शृणु बाल हितं वचः ।
राम गोविन्द कृष्णेति विष्णो माधव श्रीपते ॥४१॥
एवं वदन्ति ये सर्वे ते पुत्र मम वैरिणः ।
शासितास्तु मयेदानीं त्वयेदं क्व श्रुतं वचः ॥४२॥

यह सुनकर जन्मसे ही विष्णुकी भक्ति करनेवाले प्रह्लादने प्रसन्नतापूर्वक पितासे कहा—'त्रिभुवनके वन्दनीय भगवान् गोविन्दको प्रणाम करके मैं अपना पढ़ा हुआ पाठ आपको सुनाता हूँ।' अपने पुत्रके मुखसे इस प्रकार शत्रुकी स्तुति सुनकर स्त्रियोंसे घिरा हुआ वह दुष्ट दैत्य यद्यपि बहुत क्रुद्ध हुआ, तथापि प्रह्लादसे उस क्रोधको छिपानेके लिये वह प्रसन्न पुरुषकी भाँति जोर-जोरसे हँसने लगा। फिर पुत्रको गलेसे लगाकर बोला—"बच्चा! मेरा हितकर वचन

सुनो—बेटा ! जो लोग 'राम, कृष्ण, गोविन्द, विष्णो, माधव, श्रीपते !' इस प्रकार कहा करते हैं, वे सभी मेरे शत्रु हैं; ऐसे लोग मेरे द्वारा शासित—दण्डित हुए हैं। तुमने यह हरिनामकीर्तन इस अवस्थामें कहाँ सुन लिया ?" ॥ ३९–४२ ॥

पितुर्वचनमाकर्ण्य धीमानभयसंयुतः ।
प्रह्लादः प्राह हे आर्य मैवं ब्रूयाः कदाचन ॥४३॥
सर्वैश्वर्यप्रदं मन्त्रं धर्मादिपरिवर्धनम् ।
कृष्णेति यो नरो ब्रूयात् सोऽभयं विन्दते पदम् ॥४४॥
कृष्णनिन्दासमुत्थस्य अघस्यान्तो न विद्यते ।
राम माधव कृष्णेति स्मर भक्त्याऽऽत्मशुद्धये ॥४५॥
गुरवेऽपि ब्रवीम्येतद्यतो हितकरं परम् ।
शरणं व्रज सर्वेशं सर्वपापक्षयंकरम् ॥४६॥

पिताकी बात सुनकर बुद्धिमान् प्रह्लाद निर्भय होकर बोला—आर्य ! आपको कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। जो मनुष्य सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको देनेवाले तथा धर्म आदिकी वृद्धि करनेवाले 'कृष्ण' इस मन्त्रका उच्चारण करता है, वह अभय पदको प्राप्त कर लेता है। भगवान् कृष्णकी निन्दासे होनेवाले पापका कहीं अन्त नहीं है; अतः अब आप अपनी शुद्धिके लिये भक्तिपूर्वक 'राम, माधव और कृष्ण' इत्यादि नाम लेते हुए भगवान्का स्मरण करें। जो बात मैं आपसे कह रहा हूँ, वह सबसे बढ़कर हितसाधक है, इसीलिये मेरे गुरुजन होनेपर भी आपसे मैं निवेदन करता हूँ कि आप समस्त पापोंका क्षय करनेवाले सर्वेश्वर भगवान् विष्णुकी शरणमें जायँ ॥ ४३–४६ ॥

अथाह प्रकटक्रोधः सुरारिर्भर्त्सयन् सुतम् ।
केनायं बालको नीतो दशामेतां सुमध्यमाम् ॥४७॥
धिग् धिग्धाहेति दुष्पुत्र किं मे कृतमघं महत् ।
याहि याहि दुराचार पापिष्ठ पुरुषाधम ।
उक्त्वेति परितो वीक्ष्य पुनराह शिशोर्गुरुम् ॥४८॥
बद्ध्वा चानीयतां दैत्यैः क्रूरैः क्रूरपराक्रमैः ।

प्रह्लादके यों कहनेपर देवशत्रु हिरण्यकशिपु अपने क्रोधको रोक न सका, उसने रोषको प्रकट करके पुत्रको फटकारते हुए कहा—'हाय ! हाय ! किसने इस बालकको अत्यन्त मध्यम कोटिकी अवस्थाको पहुँचा दिया ? रे दुष्ट पुत्र ! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है ! तूने क्यों मेरा महान् अपराध किया ? ओ दुराचारी नीच पुरुष ! अरे पापिष्ठ ! तू यहाँसे चला जा, चला जा।' यों कहकर उसने अपने चारों ओर निहारकर फिर कहा—'नृशंस पराक्रमी क्रूर दैत्य जायँ और इसके गुरुको बाँधकर यहाँ ले आयें' ॥४७-४८½॥

इति श्रुत्वा ततो दैत्यास्तमानीय न्यवेदयन् ।
धीमानूचे खलं भूपं देवान्तक परीक्षताम् ॥४९॥
लीलयैव जितं देव त्रैलोक्यं निखिलं त्वया ।
असकृन्न हि रोषेण किं क्रुद्धस्याल्पके मयि ॥५०॥

यह सुन दैत्योंने प्रह्लादके गुरुको वहाँ लाकर उपस्थित कर दिया। बुद्धिमान् गुरुने उस दुष्ट दैत्यराजसे विनयपूर्वक कहा—देवान्तक ! थोड़ा विचार तो कीजिये। आपने समस्त त्रिभुवनको अनायास ही अनेकों बार पराजित किया है, खेल-खेलमें ही सबको जीता है, रोषसे कभी काम नहीं लिया। फिर मुझ-जैसे तुच्छ प्राणीपर क्रोध करनेसे क्या लाभ होगा ? ॥ ४९-५० ॥

इति सामवचः श्रुत्वा द्विजोक्तं प्राह दैत्यराट् ।
विष्णुस्तवं मम सुतं पाप बालमपीपठः ॥५१॥
उक्त्वेति तनयं प्राह राजा साम्नामलं सुतम् ।
ममात्मजस्य किं जाड्यं तव चैतद्द्विजैः कृतम् ॥५२॥
विष्णुपक्षैर्ध्रुवं धूर्तैर्मूढ नित्यं परित्यज ।
त्यज द्विजप्रसङ्गं हि द्विजसङ्गो ह्यशोभनः ॥५३॥
अस्मत्कुलोचितं तेजो यैर्द्विजैस्तु तिरोहितम् ।
यस्य यत्संगतिः पुंसो मणिवत्स्यात्स तद्गुणः ॥५४॥
स्वकुलर्द्ध्यै ततो धीमान् स्वयूथानेव संश्रयेत् ।
मत्सुतस्योचितं त्यक्त्वा विष्णुपक्षीयनाशनम् ॥५५॥
स्वयमेव भजन् विष्णुं मन्द किं त्वं न लज्जसे ।
विश्वनाथस्य मे सूनुर्भूत्वान्यं नाथमिच्छसि ॥५६॥
शृणु वत्स जगत्तत्त्वं कश्चिन्नास्ति निजः प्रभुः ।
यः शूरः स श्रियं भुङ्क्ते स प्रभुः स महेश्वरः ॥५७॥

ब्राह्मणके इस शान्त वचनको सुनकर दैत्यराज बोला—'अरे पापी ! तूने मेरे बालक पुत्रको विष्णुका स्तोत्र पढ़ा दिया है।' गुरुसे यों कहकर राजा हिरण्यकशिपुने अपने निर्दोष पुत्रके प्रति सान्त्वनापूर्वक कहा—"बेटा ! तू मेरा आत्मज है,

तुझमें यह जड-बुद्धि कैसे आ सकती है ? यह तो इन ब्राह्मणोंकी ही करतूत है। मूर्ख बालक! आजसे तू सदा विष्णुके पक्षमें रहनेवाले धूर्त ब्राह्मणोंका साथ छोड़ दे; ब्राह्मणमात्रका सङ्ग त्याग दे; ब्राह्मणोंकी संगति अच्छी नहीं होती; क्योंकि इन ब्राह्मणोंने ही तेरे उस तेजको छिपा दिया, जो हमारे कुलके लिये सर्वथा उचित था। जिस पुरुषको जिसकी संगति मिल जाती है, उसमें उसीके गुण आने लगते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मणि कीचड़में पड़ी हो तो उसमें उसके दुर्गन्ध आदि दोष आ जाते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह अपने कुलकी समृद्धिके लिये आत्मीय जनोंका ही आश्रय ले। बुद्धिहीन बालक! मेरे पुत्रके लिये तो उचित कर्तव्य यह है कि वह विष्णुके पक्षमें रहनेवाले लोगोंका नाश करे; परंतु तू इस उचित कार्यको त्यागकर इसके विपरीत स्वयं ही विष्णुका भजन कर रहा है! बता तो सही, क्या यों करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? अरे! मुझ सम्पूर्ण जगत्के सम्राट्का पुत्र होकर तू दूसरेको अपना स्वामी बनाना चाहता है ? बेटा! मैं तुझे संसारका तत्त्व बताता हूँ, सुन; यहाँ कोई भी अपना स्वामी नहीं है। जो शूरवीर है, वही लक्ष्मीका उपभोग करता है तथा वही प्रभु है, वही महेश्वर है ॥ ५१—५७ ॥

**स देवः सकलाध्यक्षो यथाहं त्रिजगज्जयी ।**
**त्यज जाड्यमतः शौर्यं भजस्व स्वकुलोचितम् ॥५८॥**
**अन्येऽपि त्वां हनिष्यन्ति वदिष्यन्ति जनास्त्विदम् ।**
**असुरोऽयं सुरान् स्तौति मार्जार इव मूषकान् ॥५९॥**
**द्वेष्यान् शिखीव फणिनो दुर्निमित्तमिदं ध्रुवम् ।**
**लब्ध्वापि महदैश्वर्यं लाघवं यान्त्यबुद्धयः ॥६०॥**
**यथायं मत्सुतः स्तुत्यः स्तावकान् स्तौति नीचवत् ।**
**रे मूढ दृष्ट्वाप्यैश्वर्यं मम ब्रूषे पुरो हरिम् ॥६१॥**
**असदृशस्य तु हरेः स्तुतिरेषा विडम्बना ।**

"वही सबका अध्यक्ष देवता है, जैसा कि तीनों लोकोंपर विजय पानेवाला मैं हूँ। इसलिये तू अपनी यह जडता त्याग दे और अपने कुलके लिये उचित वीरताका आश्रय ले। तेरी यह कायरता देखकर दूसरे लोग भी तुझे मारेंगे और कहेंगे कि 'अरे! यह असुर होकर भी देवताओंकी उसी प्रकार स्तुति करता है, जैसे बिल्ली चूहेकी स्तुति करे और मोर अपने द्वेषपात्र सर्पोंकी प्रार्थना करे। ऐसा करना अवश्य ही अनिष्टका सूचक है। मूर्ख प्राणी महान् ऐश्वर्य पाकर भी [ अपने खोटे कर्मोंके द्वारा ] नीचे गिर जाते हैं, जैसे मेरा पुत्र प्रह्लाद, जो स्वयं स्तुतिके योग्य था, आज नीच जनोंकी भाँति उन लोगोंकी स्तुति कर रहा है, जो स्वयं हमारी स्तुति करनेवाले हैं। रे मूर्ख! तू मेरा ऐश्वर्य देखकर भी मेरे सामने ही हरिका नाम ले रहा है ? वह हरि इस सम्मानके योग्य नहीं है, उसकी स्तुति विडम्बना मात्र है" ॥ ५८—६१½ ॥

**इत्युक्त्वा तनयं भूप जातक्रोधो भयानकः ॥६२॥**
**जिह्मं निरीक्ष्य च प्राह तद्गुरुं कम्पयन् रुषा ।**
**याहि याहि द्विजपशो साधु शाधि सुतं मम ॥६३॥**

**प्रसाद इत्येव वदन् स विप्रो**
**जगाम गेहं खलराजसेवी ।**
**विष्णुं विसृज्यान्वसरच्च दैत्यं**
**किं वा न कुर्युर्भरणाय लुब्धाः ॥६४॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे नृसिंहप्रादुर्भावे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥*

भूप! अपने पुत्रसे इस प्रकार कहकर वह इतना कुपित हुआ कि उसका स्वरूप भयानक हो गया; फिर प्रह्लादके गुरुको टेढ़ी नजरसे देखकर उन्हें अपने रोषसे कँपाता हुआ बोला—'मूर्ख ब्राह्मण! यहाँसे चला जा; चला जा। अबकी बार मेरे पुत्रको अच्छी शिक्षा देना।' दुष्ट राजाकी सेवा करनेवाला वह ब्राह्मण 'बड़ी कृपा हुई' यों कहता हुआ घर चला गया और विष्णुका भजन त्यागकर दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) का अनुसरण करने लगा। सच है, लोभी मनुष्य अपना पेट पालनेके लिये क्या नहीं कर सकते ? ॥ ६२—६४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहावतार' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

# बयालीसवाँ अध्याय

## प्रह्लादपर हिरण्यकशिपुका कोप और प्रह्लादका वध करनेके लिये उसके द्वारा किये गये अनेक प्रयत्न

मार्कण्डेय उवाच

सोऽप्याशु नीतो गुरुवेश्म दैत्यै-
र्दैत्येन्द्रसूनुर्हरिभक्तिभूषणः ।
अशेषविद्यानिवहेन साकं
कालेन कौमारमवाप योगी ॥ १ ॥
प्रायेण कौमारमवाप्य लोकः
पुष्णाति नास्तिक्यमसद्गतिं च ।
तस्मिन् वयःस्थस्य बहिर्विरक्ति-
र्भवत्यभूच्चित्रमजे च भक्तिः ॥ २ ॥
अथ सम्पूर्णविद्यं तं कदाचिद्दितिजेश्वरः ।
आनाय्य प्रणतं प्राह प्रह्लादं विदितेश्वरम् ॥ ३ ॥

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—भगवान् विष्णुकी भक्ति ही जिनका भूषण है, वे दैत्यराजकुमार योगी प्रह्लादजी शीघ्र ही सारथिके साथ गुरुके घर भेजे गये। वहाँ वे कालक्रमसे सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञानके साथ कुमारावस्थाको प्राप्त हुए। संसारके अन्य लोग कौमार अवस्थाको पाकर प्रायः नास्तिक-विचार और बुरे आचार-व्यवहारके पोषक बन जाते हैं, परंतु उसी उम्रमें प्रह्लादको बाह्य विषयोंसे वैराग्य हुआ और भगवान्में उनकी भक्ति हो गयी—यह अद्भुत बात है। तदनन्तर जब प्रह्लादने गुरुके यहाँ अपनी पढ़ाई समाप्त कर ली, तब एक दिन दैत्यराजने उन्हें अपने पास बुलवाया और ईश्वर-तत्त्वके ज्ञाता प्रह्लादको अपने सामने प्रणाम करके खड़े देख उनसे कहा ॥ १—३ ॥

साध्वज्ञाननिधेर्बाल्यान्मुक्तोऽसि सुरसूदन ।
इदानीं भ्राजसे भास्वान् नीहारादिव निर्गतः ॥ ४ ॥
बाल्ये वयं च त्वमिव द्विजैर्जाड्याय मोहिताः ।
वयसा वर्धमानेन पुत्रकैवं सुशिक्षिताः ॥ ५ ॥
तदद्य त्वयि धुर्येऽहं संत्यक्तकण्टकां धुरम् ।
विन्यस्य त्वां चिरधृतां सुखी पश्यन् श्रियं तव ॥ ६ ॥
यदा यदा हि नैपुण्यं पिता पुत्रस्य पश्यति ।
तदा तदाऽऽधिं त्यक्त्वा तु महत्सौख्यमवाप्नुयात्॥७॥
गुरुख्यातीव नैपुण्यं ममाग्रेऽवर्णयत्तव ।
न चित्रं पुत्र तच्छ्रोतुं किं तु मे वाञ्छतः श्रुती ॥ ८ ॥
नेत्रयोः शत्रुदारिद्र्यं श्रोत्रयोः सुतसूक्तयः ।
युद्धव्रणं च गात्रेषु मायिनां च महोत्सवः ॥ ९ ॥

सुरसूदन ! तुम अज्ञानकी निधिरूपा बाल्यावस्थासे मुक्त हो गये—यह बहुत अच्छा हुआ। इस समय तुम कुहिरेसे निकले हुए सूर्यकी भाँति अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे हो। पुत्र ! बचपनमें तुम्हारी ही तरह हमें भी जड-बुद्धि सिखानेके लिये ब्राह्मणोंने मोहित कर रक्खा था; किंतु अवस्था बढ़नेपर जब हम समझदार हुए, तब इस प्रकार अपने कुलके अनुरूप सुन्दर शिक्षा ग्रहण कर सके थे। अतः शत्रुरूपी काँटोंसे मुक्त इस राज्य-शासनके भारको, जिसे मैंने बहुत दिनोंसे धारण कर रखा है, अब तुझ सामर्थ्यवान् पुत्रपर रखकर मैं तुम्हारी राज्य-लक्ष्मीको देखते हुए सुखी होना चाहता हूँ। पिता जब-जब अपने पुत्रकी निपुणता देखता है, तब-तब अपनी मानसिक चिन्ता त्यागकर महान् सुखका अनुभव करता है। तुम्हारे गुरुने भी मेरे समक्ष तुम्हारी योग्यताका बड़ा बखान किया है। यह तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आज मेरे कान तुम्हारी कुछ बातें सुनना चाहते हैं। नेत्रोंके सामने शत्रुकी दरिद्रता देखना, कानोंमें पुत्रकी सुन्दर वाणीका पड़ना और अङ्गोंमें युद्धके आघातसे घाव होना—यह सब ऐश्वर्यवान् वीरों अथवा मायावी दैत्योंके लिये महान् उत्सवके समान है ॥ ४—९ ॥

श्रुत्वेति निकृतिप्रज्ञं दैत्याधिपवचस्ततः ।
जगाद योगी निश्शङ्कं प्रह्लादः प्रणतो गुरुम् ॥१०॥

उस समय दैत्यराजके ये शठतापूर्ण वचन सुनकर योगी प्रह्लादने पिताको प्रणाम करके निर्भीकतापूर्वक कहा—॥ १० ॥

सूक्तयः श्रोत्रयोः सत्यं महाराज महोत्सवः ।
किंतु ता वैष्णवीर्वाचो मुक्त्वा नान्या विचारयेत्॥११॥

**नीतिः सूक्तिः कथाः श्राव्याः श्राव्यंकाव्यं च तद्वचः ।**
**यत्र संसृतिदुःखौघकक्षाग्निर्गीयते हरिः ।।१२।।**
**अचिन्त्यः स्तूयते यत्र भक्त्या भक्तेप्सितप्रदः ।**
**अर्थशास्त्रेण किं तात यत्र संसृतिसंततिः ।।१३।।**
**शास्त्रश्रमेण किं तात येनात्मैव विहंस्यते ।**
**वैष्णवं वाङ्मयं तस्माच्छ्राव्यं सेव्यं च सर्वदा ।।१४।।**
**मुमुक्षुभिर्भवक्लेशान्नो चेन्नैव सुखी भवेत् ।**

'महाराज ! आपका यह कथन सत्य है कि अच्छी बातें सुनना कानोंके लिये महान् उत्सवके समान है; किंतु वे बातें भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली हों, तभी ऐसा होता है । उनको छोड़कर दूसरी बातें सुननेका विचार भी नहीं करना चाहिये । जो संसारके दुःखसमुदायरूपी तृणोंको भस्म करनेके लिये अग्निके समान हैं, उन भगवान् विष्णुका जिसमें गुणगान किया जाता हो, वही वचन नीतियुक्त है, वही सूक्ति ( सुन्दर वाक्य ) है, वही सुनने योग्य कथा और श्रवण करने योग्य काव्य है । जिसमें भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाले अचिन्त्य परमेश्वरका भक्तिपूर्वक स्तवन किया जाता हो, वही शास्त्र है । तात ! उस अर्थशास्त्रसे क्या लाभ, जिसमें संसार-चक्रमें डालनेवाली ही बातें कही गयी हैं । पिताजी ! उस शास्त्रमें परिश्रम करनेसे क्या सिद्ध होगा, जिससे आत्माका ही हनन होता है; इस लिये मुमुक्षु पुरुषोंको सदा वैष्णव शास्त्रोंका ही श्रवण और सेवन करना चाहिये । अन्यथा सांसारिक कष्टसे छुटकारा नहीं मिलता और न मनुष्य सुखी ही हो पाता है ।। ११–१४½ ।।

**इति तस्य वचः शृण्वन् हिरण्यकशिपुस्तदा ।।१५।।**
**जज्वाल दैत्यराट् तप्तसर्पिरद्भिरिवाधिकम् ।**
**प्रह्लादस्य गिरं पुण्यां जनसंसृतिनाशिनीम् ।।१६।।**
**नामृष्यतासुरः क्षुद्रो घूको भानुप्रभामिव ।**
**परितो वीक्ष्य सम्प्राह क्रुद्धो दैत्यभटानिदम् ।।१७।।**

जिस प्रकार तपाया हुआ घी जलके छींटे पड़नेसे और अधिक प्रज्वलित हो उठता है, वैसे ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु प्रह्लादकी उपर्युक्त बातें सुनकर क्रोधसे जल उठा । जैसे उल्लू सूर्यकी प्रभा नहीं देख सकता, उसी प्रकार वह क्षुद्र असुर जीवके संसार-बन्धनको नष्ट करनेवाली प्रह्लादकी पवित्र वाणी न सह सका । उस क्रोधीने चारों ओर देखकर दैत्य वीरोंसे कहा ।। १५–१७ ।।

**हन्यतामेष कुटिलः शस्त्रपातैः सुभीषणैः ।**
**उत्कृत्त्योत्कृत्त्य मर्माणि रक्षितास्तु हरिः स्वयम्।।१८।।**
**पश्यत्विदानीमेवैष हरिसंस्तवजं फलम् ।**
**काकोलकङ्कगृध्रेभ्यो ह्यस्याङ्गं संविभज्यताम् ।।१९।।**

'अरे ! इस कुटिलको शस्त्रोंके भयंकर आघातसे मार डालो, इसके मर्मस्थानोंके टुकड़े-टुकड़े कर दो; आज इसका भगवान् स्वयं आकर इसकी रक्षा करे । विष्णुकी स्तुति करनेका फल यह आज इसी समय अपनी आखोंसे देखे । इसका अङ्ग-अङ्ग काटकर कौओं, काँकों और गिद्धोंको बाँट दो' ।। १८-१९ ।।

**अथोद्धृतास्त्रा दैतेयास्तर्जयन्तः प्रगर्जितैः ।**
**अच्युतस्य प्रियं भक्तं तं जघ्नुः पतिनोदिताः**
**प्रह्लादोऽपि प्रभुं नत्वा ध्यानवज्रं समाददे ।**
**अकृत्रिमरसं भक्तं तमित्थं ध्याननिश्चलम् ।।२१।।**
**ररक्ष भगवान् विष्णुः प्रह्लादं भक्तदुःखहृत् ।**
**अथालब्धपदान्यस्य गात्रे शस्त्राणि रक्षसाम् ।।२२।।**
**नीलाब्जशकलानीव पेतुश्छिन्नान्यनेकधा ।**
**किं प्राकृतानि शस्त्राणि करिष्यन्ति हरिप्रिये ।।२३।।**
**तापत्रयमहास्त्रौघः सर्वोऽप्यस्माद् बिभेति वै ।**
**पीडयन्ति जनांस्तावद् व्याधयो राक्षसा ग्रहाः ।।२४।।**
**यावद् गुहाशयं विष्णुं सूक्ष्मं चेतो न विन्दति ।**
**ते तु भग्नास्त्रशकलैः प्रतीपोत्थैरितस्ततः ।।२५।।**
**हन्यमाना न्यवर्तन्त सद्यः फलदैरिव ।**
**न चित्रं विबुधानां तदज्ञानां विस्मयावहम् ।।२६।।**

तब अपने स्वामी हिरण्यकशिपुद्वारा प्रेरित दैत्यगण अपनी विकट गर्जनासे डराते हुए, हाथमें शस्त्र लेकर भगवान्के प्रिय भक्त उन प्रह्लादजीको मारने लगे । प्रह्लादने भी भगवान्को नमस्कार करके ध्यानरूपी वज्र ग्रहण किया । तब भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् विष्णु स्वभावतः प्रेम करनेवाले भक्त प्रह्लादको इस प्रकार ध्यानमें स्थिर देख उसकी रक्षा करने लगे । फिर तो राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्र प्रह्लादके शरीरमें स्पर्श किये बिना ही नील-कमलके

टुकड़ोंकी भाँति खण्ड-खण्ड होकर गिर जाने लगे। भला, ये प्राकृत शस्त्र भगवान्‌के प्रिय भक्तका क्या कर सकते हैं। उससे तो सम्पूर्ण त्रितापरूपी महान् अस्त्रसमूह भी भय मानता है। व्याधि, राक्षस और ग्रह—ये तभीतक मनुष्योंको पीडा पहुँचाते हैं, जबतक उनका चित्त हृदय-गुहामें सूक्ष्मरूपसे स्थित भगवान् विष्णुको नहीं प्राप्त कर लेता। भक्तके अपमानका मानो तत्काल फल देनेवाले वे भग्न अस्त्र-खण्ड उलटे चलकर दैत्योंका संहार करने लगे। इनसे पीडित होनेके कारण वे दैत्य इधर-उधर भाग गये। विद्वानोंकी दृष्टिमें ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, अज्ञानी जनोंको ही इस घटनासे विस्मय हो सकता है ॥ २०—२६ ॥

**वैष्णवं बलमालोक्य राजा नूनं भयं दधौ।**
**पुनस्तस्य वधोपायं चिन्तयन् स सुदुर्मतिः ॥२७॥**
**समादिशत् समाहूय दंदशूकान् सुदुर्विषान्।**
**अशस्त्रवधयोग्योऽयमस्मयो हरितोषकृत् ॥२८॥**
**तस्माद् भवद्भिरचिराद् हन्यतां गरलायुधाः।**
**हिरण्यकशिपोः श्रुत्वा वचनं ते भुजंगमाः।**
**तस्याज्ञां जगृहुर्मूर्ध्ना प्रहर्षादेशवर्तिनः ॥२९॥**

वैष्णवोंका बल देखकर राजा हिरण्यकशिपुको अवश्य ही महान् भय हुआ; किंतु उस दुर्बुद्धिने पुनः प्रह्लादके वधका उपाय सोचते हुए, अत्यन्त भयंकर विषवाले सर्पोंको बुलाकर उन्हें आदेश दिया—'गरलायुधो[1] ! विष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह निश्शङ्क बालक किसी शस्त्रसे नहीं मारा जा सकता; अतः तुम सभी मिलकर इसे अति शीघ्र मार डालो।' हिरण्यकशिपुकी यह बात सुनकर उसकी आज्ञा माननेवाले सभी सर्पोंने उसके आदेशको हर्षपूर्वक शिरोधार्य किया ॥ २७—२९ ॥

**अथ ज्वलद्दशनकरालदंष्ट्रिण**
**स्फुटस्फुरद्दशनसहस्रभीषणाः।**
**अकर्षका हरिमहिस्वकर्षका**
**हरिप्रियं द्रुततरमापतन्रुषा ॥३०॥**
**गरायुधास्त्वचमपि भेत्तुमल्पिकां**
**वपुष्यजस्मृतिबलदुर्भिदाकृतेः।**
**अलं न ते हरिवपुषं तु केवलं**
**विदश्य तं निजदशनैर्विना कृताः ॥३१॥**
**ततः स्रवत्क्षतजविषण्णमूर्तयो**
**द्विधाकृताद्भुतदशना भुजंगमाः।**
**समेत्य ते दितिजपतिं व्यजिज्ञपन्**
**विनिःश्वसत्प्रचलफणा भुजंगमाः ॥३२॥**

तदनन्तर जिनके दाँत विषसे जल रहे हैं तथा जिनकी दाढ़ें विकराल हैं, जो स्फुट दिखायी देनेवाले हजारों चमकीले दाँतोंके कारण भयानक जान पड़ते हैं, ऐसे सर्पगण क्रोधसे फुफकारते हुए बड़े वेगसे उस हरिभक्तके ऊपर टूट पड़े। भगवान्‌के स्मरणके बलसे जिनका आकार दुर्भेद्य हो गया था, उन प्रह्लादजीके शरीरका थोड़ा-सा चमड़ा भी काटनेमें वे विषधर सर्प समर्थ न हो सके। इतना ही नहीं, जिनका शरीर भगवन्मय हो गया था, उन प्रह्लादजीको केवल डँसने-मात्रसे वे सर्प अपने सारे दाँत खो बैठे। तदनन्तर रक्तकी धारा बहनेसे जिनका आकार विषादग्रस्त हो रहा है, जिनके अद्भुत दाँतोंके दो-दो टुकड़े हो गये हैं तथा बार-बार उच्छ्वास लेनेके कारण जिनके फन चञ्चल हो रहे हैं, उन भुजंगमोंने परस्पर मिलकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुको सूचित किया—॥ ३०—३२ ॥

**प्रभो महीध्रानपि भस्मशेषां-**
**स्तस्मिन्नशक्तास्तु तदैव वध्याः।**
**महानुभावस्य तवात्मजस्य**
**वधे नियुक्त्वा दशनैर्विना कृताः ॥३३॥**
**इत्थं द्विजिह्वाः कठिनं निवेद्य**
**ययुर्विसृष्टाः प्रभुणाकृतार्थाः।**
**विचिन्तयन्तः पृथुविस्मयेन**
**प्रह्लादसामर्थ्यनिदानमेव ॥३४॥**

'प्रभो ! हम पर्वतोंको भी भस्म करनेमें समर्थ हैं, यदि उनमें हमारी शक्ति न चले तो आप तत्काल हमारा वध कर सकते हैं। परंतु आपके महानुभाव पुत्रका वध करनेमें लगाये जाकर तो हम अपने दाँतोंसे भी हाथ धो बैठे।' इस प्रकार बड़ी कठिनाईसे निवेदन करके स्वामी हिरण्यकशिपुके आदेश देनेपर भी अपने कार्यमें असफल हुए वे सर्प अत्यन्त आश्चर्यके साथ प्रह्लादके अद्भुत सामर्थ्यका क्या कारण है, इसका विचार करते हुए चले गये ॥ ३३-३४ ॥

---

[1] विष ही जिनका शस्त्र है, उन्हें 'गरलायुध' (सर्प) कहा है।

मार्कण्डेय उवाच

अथासुरेशः सचिवैर्विचार्य
निश्चित्य सूनुं तमदण्डसाध्यम् ।
आहूय साम्ना प्रणतं जगाद
वाक्यं सदा निर्मलपुण्यचित्तम्
प्रह्लाद दुष्टोऽपि निजाङ्गजातो
न वध्य इत्यद्य कृपा ममाभूत् ॥३५॥

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—इसके बाद असुरराज हिरण्यकशिपुने मन्त्रियोंके साथ विचारकर अपने पुत्रको दण्डसे अजेय मानकर उसे शान्तिपूर्वक अपने पास बुलाया और जब वह आकर प्रणाम करके खड़ा हो गया, तब उस निर्मल एवं पवित्र हृदयवाले अपने पुत्रसे कहा—'प्रह्लाद ! अपने शरीरसे यदि दुष्ट पुत्र भी उत्पन्न हो जाय तो वह वधके योग्य नहीं है, यह सोचकर अब तुझपर मुझे दया आ गयी है' ॥ ३५ ॥

ततस्तूर्णं समागत्य दैत्यराजपुरोहिताः ।
मूढाः प्राञ्जलयः प्राहुर्द्विजाः शास्त्रविशारदाः ॥३६॥
त्रैलोक्यं कम्पते देव भृशं त्वय्यभिकाङ्क्षिणि ।
प्रह्लादस्त्वां न जानाति क्रुद्धं स्वल्पो महाबलम् ॥३७॥
तदलं देव रोषेण दयां कर्तुं त्वमर्हसि ।
पुत्रः कुपुत्रतामेति न मातापितरौ कदा ॥३८॥

तत्पश्चात् तुरंत ही वहाँ दैत्यराजके पुरोहित आये । शास्त्रविशारद होनेपर भी वे मूढ ही रह गये थे । उन ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर कहा—'देव ! तुम्हारी युद्धविषयक इच्छा होते ही सारा त्रिभुवन थरथर काँपने लगता है । यह अल्प बलवाला प्रह्लाद कुपित हुए आप महान् बलशालीको नहीं जानता । अतः देव ! आपको क्रोधका परित्याग करके इसपर दया करनी चाहिये; क्योंकि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, परंतु माता-पिता कभी कुमाता अथवा कुपिता नहीं होते' ॥ ३६-३८ ॥

उक्त्वेति कुटिलप्रज्ञं दैत्यं दैत्यपुरोहिताः ।
आदाय तदनुज्ञातं प्रह्लादं धीधनं ययुः ॥३९॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे*

*द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥*

दैत्यराजके पुरोहितोंने उस दुर्बुद्धि दैत्य हिरण्यकशिपुसे यों कहकर उसकी आज्ञासे प्रह्लादको साथ लेकर अपने भवनको चले गये ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीनरसिंहावतारविषयक' बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

## तैंतालीसवाँ अध्याय

### प्रह्लादजीका दैत्यपुत्रोंको उपदेश देना; हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे प्रह्लादका समुद्रमें डाला जाना तथा वहीं उन्हें भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन होना

मार्कण्डेय उवाच

अथ स गुरुगृहेऽपि वर्तमानः
सकलविदच्युतसक्तपुण्यचेताः ।
जड इव विचचार बाह्यकृत्ये
सततमनन्तमयं जगत्प्रपश्यन् ॥ १ ॥
सहगुरुकुलवासिनः कदाचि-
च्छ्रुतिविरता ह्यवदन् समेत्य बालाः ।
तव चरितमहो विचित्रमेतत्
क्षितिपतिपुत्र यतोऽस्य भोगलुब्धः ।
हृदि किमपि विचिन्त्य हृष्टरोमा
भवसि सदा च वदाङ्ग यद्यगुह्यम् ॥ २ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—तदनन्तर सकल शास्त्रोंके ज्ञाता प्रह्लादजी गुरुके घरमें रहकर भी अपने पवित्र मनको भगवान् विष्णुमें लगाये रहनेके कारण सम्पूर्ण जगत्‌को नारायणका स्वरूप समझकर बाह्य—लौकिक कर्मोंमें जडकी भाँति व्यवहार करते हुए विचरते थे । एक दिन, उनके साथ ही गुरुकुलमें निवास करनेवाले छात्र-बालक पाठ-श्रवण बंद करके, एकत्र हो, प्रह्लादसे कहने लगे—'राजकुमार ! अहो ! आपका चरित्र बड़ा ही विचित्र है; क्योंकि आपने विषय-भोगोंका लोभ त्याग दिया है । प्रिय ! आप अपने हृदयमें किसी अनिर्वचनीय वस्तुका चिन्तन करके सदा पुलकित रहते हैं । यदि वह वस्तु छिपानेयोग्य न हो तो हमें भी बताइये' ॥ १-२ ॥

इति गदितवतः स मन्त्रिपुत्रा-
नवददिदं नृप सर्ववत्सलत्वात् ।
शृणुत सुमनसः सुरारिपुत्रा
यदहमनन्यरतिर्वदामि पृष्टः ॥ ३ ॥
धनजनतरुणीविलासरम्यो
भवविभवः किल भाति यस्तमेनम् ।
विमृशत सुबुधैरुतैष सेव्यो
द्रुतमथ वा परिवर्ज्य एव दूरात् ॥ ४ ॥
प्रथममिह विचार्यतां यदम्बा-
जठरगतैरनुभूयते सुदुःखम् ।
सुकुटिलतनुभिस्तदग्नितप्तै-
र्विविधपुराजननानि संस्मरद्भिः ॥ ५ ॥

नृप ! प्रह्लादजी सबपर स्नेह करनेवाले थे, अतः इस प्रकार पूछते हुए मन्त्रिकुमारोंसे वे यों बोले—"हे दैत्यपुत्रो ! एकमात्र भगवान्‌में अनुराग रखनेवाला मैं तुम्हारे पूछनेपर जो कुछ भी बता रहा हूँ, उसे तुमलोग प्रसन्नचित्त होकर सुनो। यह जो धन, जन और स्त्री-विलास आदिसे अत्यन्त रमणीय प्रतीत होनेवाला सांसारिक वैभव दृष्टिगोचर हो रहा है, इसपर विचार करो। क्या यह लोक-वैभव विद्वानोंके सेवन करनेयोग्य है या जल्दी-जल्दी दूरसे ही त्याग देनेयोग्य ? अहो ! जिनके अङ्ग गर्भाशयमें टेढ़े-मेढ़े पड़े हैं, जो जठरानलकी ज्वालासे संतप्त हो रहे हैं तथा जिन्हें अपने अनेक पूर्वजन्मोंका स्मरण हो रहा है, वे माताके गर्भमें पड़े हुए जीव जिस महान् कष्टका अनुभव करते हैं, पहले उसपर तो विचार करो ॥ ३—५ ॥

कारागृहे दस्युरिवास्मि बद्धो
जरायुणा विट्कृमिमूत्रगेहे ।
पश्यामि गर्भेऽपि सकृन्मुकुन्द-
पादाब्जयोरस्मरणेन कष्टम् ॥ ६ ॥
तस्मात्सुखं गर्भशयस्य नास्ति
बाल्ये तथा यौवनवार्द्धके वा ।
एवं भवो दुःखमयः सदैव
सेव्यः कथं दैत्यसुताः प्रबुद्धैः ।
एवं भवेऽस्मिन् परिमृग्यमाणा
वीक्षामहे नैव सुखांशलेशम् ॥ ७ ॥
यथा यथा साधु विचारयाम-
स्तथा तथा दुःखतरं च विद्मः ।
तस्माद्भवेऽस्मिन् किल चारुरूपे
दुःखाकरे नैव पतन्ति सन्तः ॥ ८ ॥
पतन्त्यथोऽतत्त्वविदः सुमूढा
वह्नौ पतंगा इव दर्शनीये ।
यद्यस्ति नान्यच्छरणं सुखाय
युक्तं तदैतत्पतनं सुखाभे ॥ ९ ॥
अविन्दतामन्नमहो कृशानां
युक्तं हि पिण्याकतुषादिभक्षणम् ।
अस्ति त्वजं श्रीपतिपादपद्म-
द्वन्द्वार्चनप्राप्यमनन्तमाद्यम् ॥१०॥

"गर्भमें पड़ा हुआ दुखी जीव कहता है—'हाय ! कारागारमें बँधे हुए चोरकी भाँति मैं विष्ठा, कृमियों और मूत्रसे भरे हुए इस [देहरूपी] घरमें जरायु ( झिल्ली ) से बँधा पड़ा हूँ। मैंने जो एक बार भी भगवान् मुकुन्दके चरणारविन्दोंका स्मरण नहीं किया, उसीके कारण होनेवाले कष्टको आज मैं इस गर्भमें भोग रहा हूँ।' अतः गर्भमें सोनेवाले जीवको बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें भी सुख नहीं है। दैत्यकुमारो ! जब इस प्रकार यह संसार सदा दुःखमय है, तब विज्ञ पुरुष इसका सेवन कैसे कर सकते हैं ? इस तरह इस संसारमें ढूँढ़नेपर हमें सुखका लेशमात्र भी दिखायी नहीं देता। हम जैसे-जैसे इसपर ठीक विचार करते हैं, वैसे-ही-वैसे इस जगत्‌को अत्यन्त दुःखमय समझते हैं। इसलिये ऊपरसे सुन्दर दिखायी देनेवाले इस दुःखपूर्ण संसारमें साधु पुरुष आसक्त नहीं होते। जो तत्त्वज्ञानसे रहित अत्यन्त मूढ़ लोग हैं, वे ही देखनेमें सुन्दर दीपकपर गिरकर नष्ट होनेवाले पतंगोंकी भाँति सांसारिक भोगोंमें आसक्त होते हैं। यदि सुखके लिये कोई दूसरा सहारा न होता, तब तो सुखमय-से प्रतीत होनेवाले इस जगत्‌में आसक्त होना उचित था—जैसे अन्न न पानेके कारण जो अत्यन्त दुबले हो रहे हैं, उनके लिये खली-भूसी आदि खा लेना ठीक हो सकता है; परंतु भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल चरणारविन्दोंकी सेवासे प्राप्त होनेवाला आदि, अविनाशी, अजन्मा एवं नित्य सुख ( परमात्मा )

तो है ही; फिर इस क्षणिक संसारका आश्रय क्यों लिया जाय ? ॥ ६—१० ॥

अक्लेशतः प्राप्यमिदं विसृज्य
महासुखं योऽन्यसुखानि वाञ्छेत् ।
राज्यं करस्थं स्वमसौ विसृज्य
भिक्षामटेद्दीनमनाः सुमूढः ॥११॥
तच्चार्च्यते श्रीपतिपादपद्म-
द्वन्द्वं न वस्त्रैर्न धनैः श्रमैर्न ।
अनन्यचित्तेन नरेण किंतु
उच्चार्यते केशव माधवेति ॥१२॥
एवं भवं दुःखमयं विदित्वा
दैत्यात्मजाः साधु हरिं भजध्वम् ।
एवं जनो जन्मफलं लभेत
नो चेद्भवाब्धौ प्रपतेदधोऽधः ॥१३॥
तस्माद्भवेऽस्मिन् हृदि शङ्खचक्र-
गदाधरं देवमनन्तमीड्यम् ।
स्मरन्तु नित्यं वरदं मुकुन्दं
सद्भक्तियोगेन निवृत्तकामाः ॥१४॥
अनास्तिकत्वात् कृपया भवद्भ्यो
वदामि गुह्यं भवसिन्धुसंस्थाः ।
सर्वेषु भूतेषु च मित्रभावं
भजन्त्वयं सर्वगतो हि विष्णुः ॥१५॥

"जो बिना कष्टके ही प्राप्त होनेयोग्य इस महान् सुख ( परमेश्वर ) को त्यागकर अन्य तुच्छ सुखोंकी इच्छा करता है, वह दीनहृदय मूर्ख पुरुष मानो हाथमें आये हुए अपने राज्यको त्यागकर भीख माँगता है । भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल-चरणारविन्दोंका यथार्थ पूजन वस्त्र, धन और परिश्रमसे नहीं होता; किंतु मनुष्य यदि अनन्यचित्त होकर 'केशव' 'माधव' आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करे तो वही उनकी वास्तविक पूजा है । दैत्यकुमारो ! इस प्रकार संसारको दुःखमय जानकर भगवान्का ही भलीभाँति भजन करो । इस प्रकार करनेसे ही मनुष्यका जन्म सफल हो सकता है; नहीं तो ( भगवद्भजन न करनेके कारण ) अज्ञानी पुरुष भवसागरमें ही नीचेसे और नीचे स्तरमें ही गिरता रहता है । इसलिये इस संसारमें समस्त कामनाओंसे रहित हो तुम सभी लोग अपने हृदयके भीतर विराजमान शङ्ख-चक्र-गदाधारी, वरदाता, अविनाशी स्तवनीय भगवान् मुकुन्दका सच्चे भक्तिभावसे सदा चिन्तन करो । भवसागरमें पड़े हुए दैत्यपुत्रो ! तुमलोग नास्तिक नहीं हो, इसलिये दयावश मैं तुमसे यह गोपनीय बात बतलाता हूँ—समस्त प्राणियोंके प्रति मित्रभाव रक्खो; क्योंकि सबके भीतर भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं" ॥ ११—१५ ॥

दैत्यपुत्रा ऊचुः

प्रह्लाद त्वं वयं चापि बालभावान्महामते ।
पण्डामर्कात्परं मित्रं गुरुं चान्यं न विद्महे ॥१६॥
त्वयैतच्छिक्षितं कुत्र तथ्यं नो वद निस्तुषम् ।

**दैत्यपुत्र बोले**—महाबुद्धिमान् प्रह्लादजी ! बचपनसे लेकर आजतक आप और हम भी षण्डामर्कके सिवा दूसरे किसी गुरु तथा मित्रको नहीं जान सके । फिर आपने यह ज्ञान कहाँ सीखा ? हमसे पर्दा न रखकर सच्ची बात बताइये ॥ १६½ ॥

प्रह्लाद उवाच

यदा तातः प्रयातो मे तपोऽर्थं काननं महत् ॥१७॥
तदा चेन्द्रः समागत्य पुरं तस्य रुरोध ह ।
मृतं विज्ञाय दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं तदा ॥१८॥
इन्द्रो मे जननीं गृह्य प्रयातो मन्मथाग्निना ।
दह्यमानो महाभागां मार्गे गच्छति सत्वरम् ॥१९॥
तदा मां गर्भगं ज्ञात्वा नारदो देवदर्शनः ।
आगत्येन्द्रं जगादोच्चैर्मूढ मुञ्च पतिव्रताम् ॥२०॥
अस्या गर्भे स्थितो योऽसौ स वै भागवतोत्तमः ।
तच्छ्रुत्वा नारदवचो मातरं प्रणिपत्य मे ॥२१॥
विष्णुभक्त्या प्रमुच्याथ गतः स्वं भुवनं हरिः ।
नारदस्तां समानीय आश्रमं स्वं शुभव्रतः ॥२२॥
मामुद्दिश्य महाभागामेतद्वै कथितं तदा ।
तथा मे विस्मृतं नैव बालाभ्यासाद्‌नोः सुताः ॥२३॥
विष्णोश्चानुग्रहेणैव नारदस्योपदेशतः ।

**प्रह्लादजी बोले**—कहते हैं, जिस समय मेरे पिताजी तपस्या करनेके लिये महान् वनमें चले गये, उसी समय इन्द्रने वहाँ आकर पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मरा हुआ

समझकर उनके इस नगरको घेर लिया । इन्द्र कामाग्निसे पीडित हो मेरी महाभागा माताजीको पकड़कर यहाँसे चल दिये । वे मार्गमें बड़ी तेजीसे पैर बढ़ाते हुए चले जा रहे थे । इसी समय देवदर्शन नारदजी मुझे माताके गर्भमें स्थित जान सहसा वहाँ पहुँचे और चिल्लाकर इन्द्रसे बोले—'मूर्ख ! इस पतिव्रताको छोड़ दो । इसके गर्भमें जो बालक है, वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ है ।' नारदजीका कथन सुनकर इन्द्रने विष्णुभक्तिके कारण मेरी माताको प्रणाम करके छोड़ दिया और वे अपने लोकको चले गये । फिर शुभ संकल्पवाले नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममें ले आये और मेरे उद्देश्यसे मेरी महाभागा माताके प्रति इस पूर्वोक्त ज्ञानका वर्णन किया । दानवो ! बाल्यकालके अभ्यास, भगवान्‌की कृपा तथा नारदजीका उपदेश होनेसे वह ज्ञान मुझे भूला नहीं है ॥ १७—२३½ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**एकदा गुप्तचर्यायां गतोऽसौ राक्षसाधिपः ॥२४॥**
**शृणोति रात्रौ नगरे जय रामेति कीर्तनम् ।**
**अवैत्पुत्रकृतं सर्वं बलवान् दानवेश्वरः ॥२५॥**
**अथाहूयाह दैत्येन्द्रः क्रोधान्धः स पुरोहितान् ।**
**रे रे क्षुद्रद्विजा यूयमासन्नमृत्युतां गताः ॥२६॥**
**प्रह्लादोऽयं मृषालापान् वक्त्यन्यान् पाठयत्यपि ।**
**इति निर्भर्त्स्य तान् विप्रान् श्वसन् राजाविशद् गृहम् ॥**
**न च पुत्रवधे चिन्तां जहौ स्ववधकारिणीम् ।**
**आसन्नमरणोऽमर्षात्कृत्यमेकं विमृश्य सः ॥२८॥**
**अकृत्यमेव दैत्यादीनाहूयोपादिशद्रहः ।**
**अद्य क्षपायां प्रह्लादं प्रसुप्तं दुष्टमुल्बणैः ॥२९॥**
**नागपाशैर्दृढं बद्ध्वा मध्ये निक्षिपताम्बुधेः ।**

**मार्कण्डेयजी बोले**—एक दिन राक्षसराज हिरण्यकशिपु रात्रिके समय गुप्तरूपसे नगरमें घूम रहा था । उस समय उसे 'जय राम'का कीर्तन सुनायी देने लगा । तब बलवान् दानवराजने यह सब अपने पुत्रकी ही करतूत समझी । तब उस दैत्यराजने क्रोधान्ध होकर पुरोहितोंको बुलाया और कहा—'नीच ब्राह्मणो ! जान पड़ता है, तुमलोग मरनेके लिये अत्यधिक उत्सुक हो गये हो । तुम्हारे देखते-देखते यह प्रह्लाद स्वयं तो व्यर्थकी बातें बकता ही है, दूसरोंको भी यही सिखाता है ।' इस प्रकार उन ब्राह्मणोंको फटकारकर राजा हिरण्यकशिपु लंबी साँसें खींचता हुआ घरमें आया । उस समय भी वह पुत्रवधके विषयमें होनेवाली चिन्ताको, जो उसका ही नाश करनेवाली थी, नहीं छोड़ सका । उसकी मृत्यु निकट थी; अतः उसने अमर्षवश एक ऐसा काम सोचा, जो वास्तवमें न करने योग्य ही था । हिरण्यकशिपुने दैत्यादिकोंको बुलाया और उनसे एकान्तमें कहा—'देखो, आज रातमें प्रह्लाद जब गाढ़ी नींदमें सो जाय, उस समय उस दुष्टको भयंकर नागपाशोंद्वारा खूब कसकर बाँध दो और बीच समुद्रमें फेंक आओ' ॥ २४—२९½ ॥

**तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय ददृशुस्तमुपेत्य ते ॥३०॥**
**रात्रिप्रियं समाधिस्थं प्रबुद्धं सुप्तवत् स्थितम् ।**
**संछिन्नरागलोभादिमहाबन्धं क्षपाचराः ॥३१॥**
**बबन्धुस्तं महात्मानं फल्गुभिः सर्परज्जुभिः ।**
**गरुडध्वजभक्तं तं बद्ध्वाहिभिरबुद्धयः ॥३२॥**
**जलशायिप्रियं नीत्वा जलराशौ निचिक्षिपुः ।**
**बलिनस्तेऽचलान् दैत्या तस्योपरि निधाय च ॥३३॥**
**शशंसुस्तं प्रियं राज्ञे द्रुतं तान् सोऽप्यमानयत् ।**

उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन दैत्योंने प्रह्लादजीके पास जाकर उन्हें देखा । वे रात्रिके ही प्रेमी थे (क्योंकि रातमें ही उन्हें ध्यान लगानेकी सुविधा रहती थी) । प्रह्लादजी समाधिमें स्थित होकर जाग रहे थे, फिर भी खूब सोये हुएके समान स्थित थे । उन्होंने राग और लोभ आदिके महान् बन्धनोंको काट डाला था, तो भी उन महात्मा प्रह्लादको निशाचरोंने तुच्छ नागपाशोंसे बाँध दिया । जिनकी ध्वजामें साक्षात् गरुडजी विराजमान हैं, उन भगवान्‌के भक्त प्रह्लादको उन मूर्खोंने सर्पोंद्वारा बाँधा और जलशायीके प्रियजनको ले जाकर जलराशि समुद्रमें डाला । तदनन्तर उन बली दैत्योंने प्रह्लादके ऊपर पर्वतकी चट्टानें रख दीं और तुरंत ही जाकर राजा हिरण्यकशिपुको यह प्रिय संवाद कह सुनाया । उसे सुनकर उस दैत्यराजने भी उन सबका सम्मान किया ॥ ३०—३३½ ॥

**प्रह्लादं चाब्धिमध्यस्थं तमौर्वाग्निमिवापरम् ॥३४॥**

**ज्वलन्तं तेजसा विष्णोर्ग्राहा भूरिभियात्यजन् ।**
**स चाभिन्नचिदानन्दसिन्धुमध्ये समाहितः ॥३५॥**
**न वेद बद्धमात्मानं लवणाम्बुधिमध्यगम् ।**
**अथ ब्रह्मामृताम्भोधिमये स्वस्मिन् स्थिते मुनौ ॥३६॥**
**ययौ क्षोभं द्वितीयाब्धिप्रवेशादिव सागरः ।**
**क्लेशात् क्लेशान्निवोढूय प्रह्लादमथ वीचयः ॥३७॥**
**निन्युस्तीरेऽप्लवाम्भोधेः गुरूक्तय इवाम्बुधेः ।**
**ध्यानेन विष्णुभूतं तं भगवान् वरुणालयः ॥३८॥**
**विन्यस्य तीरे रत्नानि गृहीत्वा द्रष्टुमाययौ ।**
**तावद् भगवताऽऽदिष्टः प्रहृष्टः पन्नगाशनः ॥३९॥**
**बन्धनाहीन् समभ्येत्य भक्षयित्वा पुनर्ययौ ।**

बीच समुद्रमें पड़े हुए प्रह्लादको भगवान्‌के तेजसे दूसरे बडवानलकी भाँति प्रज्वलित देख अत्यन्त भयके कारण ग्राहोंने उन्हें दूरसे ही त्याग दिया । प्रह्लाद भी अपनेसे अभिन्न चिदानन्दमय समुद्र ( परमेश्वर ) में समाहित होनेके कारण यह न जान सके कि 'मैं बाँधकर खारे पानीके सागरमें डाल दिया गया हूँ ।' मुनि ( प्रह्लाद ) जब ब्रह्मानन्दामृतके समुद्ररूप अपने आत्मामें स्थित हो गये, उस समय समुद्र इस प्रकार क्षुब्ध हो उठा, मानो उसमें दूसरे महासागरका प्रवेश हो गया हो । फिर समुद्रकी लहरें प्रह्लादको धीरे-धीरे कठिनाईसे ठेलकर उस नौकारहित सागरके तटकी ओर ले गयीं—ठीक उसी प्रकार, जैसे ज्ञानी गुरुके वचन क्लेशोंका उन्मूलन करके शिष्यको भवसागरसे पार पहुँचा देते हैं । ध्यानके द्वारा विष्णुस्वरूप हुए उन प्रह्लादजीको तीरपर पहुँचाकर भगवान् वरुणालय ( समुद्र ) बहुत-से रत्न ले उनका दर्शन करनेके लिये आये । इतनेमें ही भगवान्‌की आज्ञा पाकर सर्पभक्षी गरुडजी वहाँ आ पहुँचे और बन्धनभूत सर्पोंको अत्यन्त हर्षपूर्वक खाकर चले गये ॥ ३४—३९½ ॥

**अथाबभाषे प्रह्लादं गम्भीरध्वनिरर्णवः ॥४०॥**
**प्रणम्य दिव्यरूपः सन् समाधिस्थं हरेः प्रियम् ।**
**प्रह्लाद भगवद्भक्त पुण्यात्मन्नर्णवोऽस्म्यहम् ॥४१॥**
**चक्षुर्भ्यामथ मां दृष्ट्वा पावयार्थिनमागतम् ।**
**इत्यम्बुधिगिरः श्रुत्वा स महात्मा हरेः प्रियः ॥४२॥**
**उद्वीक्ष्य सहसा देवं तं नत्वाऽऽहासुरात्मजः ।**
**कदाऽऽगतं भगवता तमथाम्बुधिरब्रवीत् ॥४३॥**

तत्पश्चात् गम्भीर घोषवाला दिव्यरूपधारी समुद्र समाधिनिष्ठ भगवद्भक्त प्रह्लादको प्रणाम करके यों बोला—'भगवद्भक्त प्रह्लाद ! पुण्यात्मन् ! मैं समुद्र हूँ । अपने पास आये हुए मुझ प्रार्थीको अपने नेत्रों-द्वारा देखकर पवित्र कीजिये ।' समुद्रके ये वचन सुनकर भगवान्‌के प्रिय भक्त महात्मा असुर-नन्दन प्रह्लादने सहसा उनकी ओर देखकर प्रणाम किया और कहा—'श्रीमान् कब पधारे ?' तब उनसे समुद्रने कहा ॥ ४०—४३ ॥

**योगिन्नज्ञातवृत्तस्त्वमपराद्धं तवासुरैः ।**
**बद्धस्त्वमहिभिर्दैत्यैर्मयि क्षिप्तोऽद्य वैष्णव ॥४४॥**
**ततस्तूर्णं मया तीरे न्यस्तस्त्वं फणिनश्च तान् ।**
**इदानीमेव गरुडो भक्षयित्वा गतो महान् ॥४५॥**
**महात्मन्ननुगृह्णीष्व त्वं मां सत्संगमार्थिनम् ।**
**गृहाणेमानि रत्नानि पूज्यस्त्वं मे हरिर्यथा ॥४६॥**
**यद्यप्येतैर्न ते कृत्यं रत्नैर्दास्याम्यथाप्यहम् ।**
**दीपान्निवेदयत्येव भास्करस्यापि भक्तिमान् ॥४७॥**
**त्वमापत्स्वपि घोरासु विष्णुनैव हि रक्षितः ।**
**त्वादृशा निर्मलात्मानो न सन्ति बहवोऽर्कवत् ॥४८॥**
**बहुना किं कृतार्थोऽस्मि यत्तिष्ठामि त्वया सह ।**
**आलपामि क्षणमपि नेक्षे ह्येतत्फलोपमाम् ॥४९॥**

'योगिन् ! आपको यह बात ज्ञात नहीं है, असुरोंने आपका बड़ा अपराध किया है । वैष्णव ! आपको साँपोंसे बाँधकर दैत्योंने आज मेरे भीतर फेंक दिया; तब मैंने तुरंत ही आपको किनारे लगाया और उन साँपोंको अभी-अभी महात्मा गरुडजी भक्षण करके गये हैं । महात्मन् ! मैं सत्सङ्गका अभिलाषी हूँ, आप मुझपर अनुग्रह करें और इन रत्नोंको भेंटरूपमें स्वीकार करें । मेरे लिये आप भगवान् विष्णुके समान ही पूज्य हैं । यद्यपि आपको इन रत्नोंकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मैं तो इन्हें आपको दूँगा ही; क्योंकि भगवान् सूर्यका भक्त उन्हें दीप निवेदन करता ही है । घोर आपत्तियोंमें भी भगवान् विष्णुने ही आपकी रक्षा की है । सूर्यकी भाँति आप-जैसे शुद्ध-चित्त महात्मा संसारमें अधिक नहीं हैं । बहुत क्या कहूँ ?

आज मैं कृतार्थ हो गया; क्योंकि आज मुझे आपके साथ स्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ । इस समय क्षणभर भी जो आपके साथ बातचीत कर रहा हूँ, इससे प्राप्त होनेवाले फलकी उपमा मैं कहीं नहीं देखता' ॥ ४४–४९ ॥

इत्यब्धिना स्तुतः श्रीशमाहात्म्यवचनैः स्वयम् ।
ययौ लज्जां प्रहर्षं च प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥५०॥
प्रतिगृह्य स रत्नानि वत्सलः प्राह वारिधिम् ।
महात्मन् सुतरां धन्यः शेते त्वयि हि स प्रभुः ॥५१॥
कल्पान्तेऽपि जगत्कृत्स्नं ग्रसित्वा स जगन्मयः ।
त्वय्येवैकार्णवीभूते शेते किल महात्मनि ॥५२॥
लोचनाभ्यां जगन्नाथं द्रष्टुमिच्छामि वारिधे ।
त्वं पश्यसि सदा धन्यस्तत्रोपायं प्रयच्छ मे ॥५३॥

इस प्रकार समुद्रने साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपतिके माहात्म्य-सूचक वचनोंद्वारा जब उनकी स्तुति की, तब भगवान्के प्रिय भक्त प्रह्लादजीको बड़ी लज्जा हुई और हर्ष भी । स्नेही प्रह्लादने समुद्रके दिये हुए रत्न ग्रहणकर उनसे कहा—'महात्मन् ! आप विशेष धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि भगवान् आपके ही भीतर शयन करते हैं । यह प्रसिद्ध है कि जगन्मय प्रभु प्रलय-कालमें भी सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें लीन करके एकार्णवरूपमें स्थित आप महात्मा महासागरमें ही शयन करते हैं । समुद्र ! मैं इन स्थूल नेत्रोंसे भगवान् जगन्नाथका दर्शन करना चाहता हूँ । आप धन्य हैं; क्योंकि सदा भगवान्का दर्शन करते रहते हैं । कृपया मुझे भी उनके दर्शनका उपाय बताइये' ॥ ५०–५३ ॥

उक्त्वेति पादावनतं तूर्णमुत्थाप्य सागरः ।
प्रह्लादं प्राह योगीन्द्र त्वं पश्यसि सदा हृदि ॥५४॥
द्रष्टुमिच्छस्यथाक्षिभ्यां स्तुहि तं भक्तवत्सलम् ।
उक्त्वेति सिन्धुः प्रह्लादमात्मनः स जलेऽविशत् ।५५।

यों कहकर प्रह्लादजी समुद्रके चरणोंपर गिर पड़े । तब समुद्रने उनको शीघ्र ही उठाकर कहा—'योगीन्द्र ! आप तो सदा ही अपने हृदयमें भगवान्का दर्शन करते हैं; तथापि यदि इन नेत्रोंसे भी देखना चाहते हैं तो उन भक्तवत्सल भगवान्का स्तवन कीजिये ।' यों कहकर समुद्रदेव अपने जलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ५४-५५ ॥

गते नदीन्द्रे स्थित्वैको हरिं रात्रौ स दैत्यजः ।
भक्त्यास्तौदिति मन्वानस्तद्दर्शनमसम्भवम् ॥५६॥

समुद्रके चले जानेपर दैत्यनन्दन प्रह्लादजी रात्रिमें वहाँ अकेले ही रहकर भगवान्के दर्शनको एक असम्भव कार्य मानते हुए भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥

प्रह्लाद उवाच

वेदान्तवाक्यशतमारुतसम्प्रवृद्ध-
वैराग्यवह्निशिखया परिताप्य चित्तम् ।
संशोधयन्ति यदवेक्षणयोग्यतायै
धीराः सदैव स कथं मम गोचरः स्यात् ।५७।
मात्सर्यरोषस्मरलोभमोह-
मदादिभिर्वा सुदृढैः सुषड्भिः ।
उपर्युपर्यावरणैः सुबद्ध-
मन्धं मनो मे क्व हरिः क्व वाहम् ॥५८॥
यं धातृमुख्या विबुधा भयेषु
शान्त्यर्थिनः क्षीरनिधेरुपान्तम् ।
गत्वोत्तमस्तोत्रकृतः कथंचित्
पश्यन्ति तं द्रष्टुमहो ममाशा ॥५९॥

**प्रह्लादजी बोले**—धीर पुरुष जिनके दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सदा ही सैकड़ों वेदान्त-वाक्यरूप वायुद्वारा अत्यन्त बढ़ी हुई वैराग्यरूप अग्निकी ज्वालासे अपने चित्तको तपाकर भलीभाँति शुद्ध किया करते हैं, वे भगवान् विष्णु, भला, मेरे दृष्टिपथमें कैसे आ सकते हैं । एकके ऊपर एकके क्रमसे ऊपर-ऊपर जिनका आवरण पड़ा हुआ है—ऐसे मात्सर्य, क्रोध, काम, लोभ, मोह, मद आदि छः सुदृढ़ बन्धनोंसे भलीभाँति बँधा हुआ मेरा मन अंधा ( विवेकशून्य ) हो रहा है । कहाँ भगवान् श्रीहरि और कहाँ मैं ! भय उपस्थित होनेपर उसकी शान्तिके लिये क्षीरसागरके तटपर जाकर ब्रह्मादि देवता उत्तम रीतिसे स्तवन करते हुए किसी प्रकार जिनका दर्शन कर पाते हैं, उन्हीं भगवान्के दर्शनकी मुझ-जैसा दैत्य आशा करे—यह कैसा आश्चर्य है ! ॥ ५७–५९ ॥

अयोग्यमात्मानमितीशदर्शने
स मन्यमानस्तदनाप्तिकातरः ।
उद्वेगदुःखार्णवमग्नमानसः
स्रुताश्रुधारो नृप मूर्च्छितोऽपतत् ॥६०॥

अथ क्षणात्सर्वगतश्चतुर्भुजः
शुभाकृतिर्भक्तजनैकवल्लभः ।
दुःस्थं तमाश्लिष्य सुधामयैर्भुजै-
स्तत्रैव भूपाविरभूद्दयानिधिः ॥६१॥

राजन् ! इस प्रकार अपनेको भगवान्‌का दर्शन पानेके योग्य न मानते हुए प्रह्लादजी उनकी अप्राप्तिके दुःखसे कातर हो उठे । उनका चित्त उद्वेग और अनुतापके समुद्रमें डूब गया । वे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुए मूर्च्छित होकर गिर पड़े । भूप ! फिर तो क्षणभरमें ही भक्तजनोंके एकमात्र प्रियतम सर्वव्यापी कृपानिधान भगवान् विष्णु सुन्दर चतुर्भुज रूप धारणकर दुखी प्रह्लादको अमृतके समान सुखद स्पर्शवाली अपनी भुजाओंसे उठाकर गोदमें लगाते हुए वहाँ प्रकट हो गये ॥ ६०-६१ ॥

स लब्धसंज्ञोऽथ तदङ्गसङ्गा-
दुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श ।
प्रसन्नवक्त्रं कमलायताक्षं
सुदीर्घबाहुं यमुनासवर्णम् ॥६२॥
उदारतेजोमयमप्रमेयं
गदारिशङ्खाम्बुजचारुचिह्नितम् ।
स्थितं समालिङ्ग्य विभुं स दृष्ट्वा
प्रकम्पितो विस्मयभीतिहर्षैः ॥६३॥
तत् स्वप्नमेवाथ स मन्यमानः
स्वप्नेऽपि पश्यामि हरिं कृतार्थम् ।
इति प्रहर्षार्णवमग्नचेताः
स्वानन्दमूर्च्छां स पुनश्च भेजे ॥६४॥
ततः क्षितावेव निविश्य नाथः
कृत्वा तमङ्के स्वजनैकबन्धुः ।
शनैर्विधुन्वन् करपल्लवेन
स्पृशन् मुहुर्मातृवदालिलिङ्ग ॥६५॥

उनके अङ्गस्पर्शसे होशमें आनेपर प्रह्लादने सहसा नेत्र खोलकर भगवान्‌को देखा । उनका मुख प्रसन्न था । नेत्र कमलके समान सुन्दर और विशाल थे । भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं और शरीर यमुनाजलके समान श्याम था । वे परम तेजस्वी और अपरिमित ऐश्वर्यशाली थे । गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म आदि सुन्दर चिह्नोंसे पहचाने जा रहे थे । इस प्रकार अपनेको अङ्कमें लगाये हुए भगवान्‌को खड़ा देख प्रह्लाद भय, विस्मय और हर्षसे काँप उठे । वे इस घटनाको स्वप्न ही समझते हुए सोचने लगे—'अहा ! स्वप्नमें भी मुझे पूर्णकाम भगवान्‌का दर्शन तो मिल गया !' यह सोचकर उनका चित्त हर्षके महासागरमें गोता लगाने लगा और वे पुनः स्वरूपानन्दमयी मूर्च्छाको प्राप्त हो गये । तब अपने भक्तोंके एकमात्र बन्धु भगवान् पृथ्वीपर ही बैठ गये और पाणिपल्लवसे धीरे-धीरे उन्हें हिलाने लगे । स्नेहमयी माताकी भाँति प्रह्लादके गात्रका स्पर्श करते हुए उन्हें बार-बार छातीसे लगाने लगे ॥ ६२–६५ ॥

ततश्चिरेण प्रह्लादः सम्मुखोन्मीलितेक्षणः ।
आलुलोके जगन्नाथं विस्मयाविष्टचेतसा ॥६६॥
ततश्चिरात्तं सम्भाव्य धीरः श्रीशाङ्कशायिनम् ।
आत्मानं सहसोत्तस्थौ सद्यः सभयसम्भ्रमः ॥६७॥
प्रणामायापतच्चोर्व्यां प्रसीदेति वदन्मुहुः ।
सम्भ्रमात् स बहुज्ञोऽपि नान्यां पूजोक्तिमस्मरत् ॥६८॥
तमथाभयहस्तेन गदाशङ्खारिशृक् प्रभुः ।
गृहीत्वा स्थापयामास प्रह्लादं स दयानिधिः ॥६९॥
कराब्जस्पर्शनाह्लादगलदश्रुं सवेपथुम् ।
भूयोऽथाह्लादयन् स्वामी तं जगादेति सान्त्वयन् ॥७०॥

कुछ देरके बाद प्रह्लादने भगवान्‌के सामने आँखें खोलकर विस्मितचित्तसे उन जगदीश्वरको देखा । फिर बहुत देरके बाद अपनेको भगवान् लक्ष्मीपतिकी गोदमें सोया हुआ अनुभवकर वे भय और आवेगसे युक्त हो सहसा उठ गये तथा 'भगवन् ! प्रसन्न होइये' यों बार-बार कहते हुए उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर गिर पड़े । बहुज्ञ होनेपर भी उन्हें उस समय घबराहटके कारण अन्य स्तुतिवाक्योंका स्मरण न हुआ । तब गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले दयानिधि भगवान्‌ने प्रह्लादको अपने भक्तभयहारी हाथसे पकड़कर खड़ा किया । भगवान्‌के कर-कमलोंका स्पर्श होनेसे अत्यन्त आनन्दके आँसू बहाते और काँपते हुए प्रह्लादको और अधिक आनन्द देनेके लिये प्रभुने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा ॥ ६६–७० ॥

सभयं सम्भ्रमं वत्स मद्गौरवकृतं त्यज ।
नैवं प्रियो मे भक्तेषु स्वाधीनप्रणयी भव ॥७१॥

नित्यं सम्पूर्णकामस्य जन्मानि विविधानि मे ।
भक्तसर्वेष्टदानाय तस्मात् किं ते प्रियं वद ॥७२॥

'वत्स ! मेरे प्रति गौरव-बुद्धिसे होनेवाले इस भय और घबराहटको त्याग दो । मेरे भक्तोंमें तुम्हारे समान कोई भी मुझे प्रिय नहीं है, तुम स्वाधीनप्रणयी हो जाओ [ अर्थात् यह समझो कि तुम्हारा प्रेमी मैं तुम्हारे वशमें हूँ ] । मैं नित्य पूर्णकाम हूँ, तथापि भक्तोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये मेरे अनेक अवतार हुआ करते हैं; अतः तुम भी बताओ, तुम्हें कौन-सी वस्तु प्रिय है ?' ॥ ७१-७२ ॥

अथ व्यजिज्ञपद्विष्णुं प्रह्लादः प्राञ्जलिर्नमन् ।
सलौल्यमुत्फुल्लदृशा पश्यन्नेवं च तन्मुखम् ॥७३॥
नाप्ययं वरदानाय कालो नैष प्रसीद मे ।
त्वद्दर्शनामृतास्वादादन्तरात्मा न तृप्यति ॥७४॥
ब्रह्मादिदेवैर्दुर्लक्ष्यं त्वामेव पश्यतः प्रभो ।
तृप्तिं नेष्यति मे चित्तं कल्पायुतशतैरपि ॥७५॥
नैवमेतद्व्यतृप्तस्य त्वां दृष्ट्वान्यद् वृणोति किम् ।

तदनन्तर खिले हुए नेत्रोंसे भगवान्‌के मुखको सतृष्ण-भावसे देखते हुए प्रह्लादने हाथ जोड़ नमस्कारपूर्वक उनसे यों निवेदन किया—'भगवन् ! यह वरदानका समय नहीं है, केवल मुझपर प्रसन्न होइये । इस समय मेरा मन आपके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करनेसे तृप्त नहीं हो रहा है । प्रभो ! ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी जिनका दर्शन पाना कठिन है, ऐसे आपका दर्शन करते हुए मेरा मन दस लाख वर्षोंमें भी तृप्त न होगा । इस प्रकार आपके दर्शनसे अतृप्त रहनेवाले मुझ सेवकका चित्त आपके दर्शनके बाद और क्या माँग सकता है ?' ॥ ७३–७५½ ॥

ततः स्मितसुधापूरैः पूरयन् स प्रियं प्रियात् ॥७६॥
योजयन् मोक्षलक्ष्म्यैव तं जगाद जगत्पतिः ।
सत्यं मद्दर्शनादन्यद् वत्स नैवास्ति ते प्रियम् ॥७७॥
किंचित्ते दातुमिष्टं मे मत्प्रियार्थं वृणीष्व तत् ।

तब मुस्कानमयी सुधाका स्रोत बहाते हुए उन जगदीश्वरने अपने परम प्रिय भक्त प्रह्लादको मोक्ष-लक्ष्मीसे संयुक्त-सा करते हुए उससे कहा—'वत्स ! यह सत्य है कि तुम्हें मेरे दर्शनसे बढ़कर दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है; किंतु मेरी इच्छा तुम्हें कुछ देनेकी है । अतः तुम मेरा प्रिय करनेके लिये ही मुझसे कुछ माँग लो' ॥ ७६-७७½ ॥

प्रह्लादोऽथाब्रवीद्धीमान् देव जन्मान्तरेष्वपि ॥७८॥
दासस्तवाहं भूयासं गरुत्मानिव भक्तिमान् ।
अथाह नाथः प्रह्लादं संकटं खल्विदं कृतम् ॥७९॥
अहं तवात्मदानेच्छुस्त्वं तु भृत्यत्वमिच्छसि ।
वरानन्यांश्च वरय धीमन् दैत्येश्वरात्मज ॥८०॥

तब बुद्धिमान् प्रह्लादने कहा—'देव ! मैं जन्मान्तरोंमें भी गरुडजीकी भाँति आपमें ही भक्ति रखनेवाला आपका दास होऊँ !' यह सुनकर भगवान्‌ने कहा—'यह तो तुमने मेरे लिये कठिन समस्या रख दी—मैं तो तुम्हें स्वयं अपने आपको दे देना चाहता हूँ और तुम मेरी दासता चाहते हो ! बुद्धिमान् दैत्यराजकुमार ! दूसरे-दूसरे वर माँगो' ॥ ७८–८० ॥

प्रह्लादोऽपि पुनः प्राह भक्तकामप्रदं हरिम् ।
प्रसीद सास्तु मे नाथ त्वद्भक्तिः सात्त्विकी स्थिरा ॥८१॥
अनयाथ च त्वां नौमि नृत्यामि त्वत्परः सदा ।

तब प्रह्लादने भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुसे पुनः कहा—'नाथ ! आप प्रसन्न हों; मुझे तो यही चाहिये कि आपमें मेरी सात्त्विक भक्ति सदा स्थिर रहे । यही नहीं, इस भक्तिसे युक्त होकर मैं आपका स्तवन किया करूँ और आपके ही परायण रहकर सदा नाचा करूँ' ॥ ८१½ ॥

अथाभितुष्टो भगवान् प्रियमाह प्रियंवदम् ॥८२॥
वत्स यद्यदभीष्टं ते तत्तदस्तु सुखी भव ।
अन्तर्हिते च मय्यत्र मा खिद त्वं महामते ॥८३॥
त्वच्चित्तान्नापयास्यामि क्षीराब्धेरिव सुप्रियात् ।
पुनर्द्वित्रिदिनैस्त्वं मां द्रष्टा दुष्टवधोद्यतम् ॥८४॥
अपूर्वाविष्कृताकारं नृसिंहं पापभीषणम् ।
उत्तवेत्यतः प्रणमतः पश्यतश्चातिलालसम् ॥८५॥
अतुष्टस्यैव तस्येशो माययान्तर्दधे हरिः ।

भगवान्‌ने संतुष्ट होकर प्रिय भाषण करनेवाले प्रिय भक्त प्रह्लादसे तब कहा—'वत्स ! तुम्हें जो-जो अभीष्ट हो, वह सब

प्राप्त हो; तुम सुखी रहो। एक बात और है—महामते! यहाँसे मेरे अन्तर्धान हो जानेपर भी तुम खेद न करना। मैं अपने परमप्रिय स्थान क्षीरसागरकी भाँति तुम्हारे शुद्धचित्तसे कभी अलग न होऊँगा। तुम दो-ही-तीन दिनोंके बाद मुझे दुष्ट हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये उद्यत अपूर्व शरीर धारण किये नृसिंहरूपमें, जो पापियोंके लिये भयानक है, पुनः प्रकट देखोगे।' यों कहकर भगवान् हरि, अपनेको प्रणाम करके अत्यन्त ललचायी हुई दृष्टिसे देखते रहनेपर भी तृप्त न होनेवाले उस भक्त प्रह्लादके सामने ही मायासे अन्तर्धान हो गये ॥ ८२–८५½ ॥

ततो हठाददृष्ट्वा तं सर्वतो भक्तवत्सलम् ॥८६॥
हाहेत्यश्रुप्लुतः प्रोच्य ववन्दे स चिरादिति।
श्रूयमाणेऽथ परितः प्रतिबुद्धजनस्वने ॥८७॥
उत्थायाब्धितटाद्धीमान् प्रह्लादः स्वपुरं ययौ ॥८८॥

अथ दितिजसुतश्चिरं प्रहृष्टः
स्मृतिबलतः परितस्तमेव पश्यन्।
हरिमनुजगतिं त्वलं च पश्यन्
गुरुगृहमुत्पुलकः शनैरवाप ॥८९॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे*
*त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥*

तत्पश्चात् वे सहसा सब ओर दृष्टि डालनेपर भी जब भक्तवत्सल भगवान्‌को न देख सके, तब आँसू बहाते हुए उच्चस्वरसे हाहाकार करके बड़ी देरतक भगवान्‌की वन्दना करते रहे। फिर जब प्रातःकाल जगे हुए जन्तुओंकी वाणी सब ओर सुनायी देने लगी, तब बुद्धिमान् प्रह्लाद समुद्र-तटसे उठकर अपने नगरको चले गये। इसके बाद दैत्यनन्दन प्रह्लादजी परम प्रसन्न होकर अपने स्मरणबलसे संसारमें सब ओर भगवान्‌का ही दर्शन करते हुए तथा भगवान् एवं मनुष्यकी गतिको भलीभाँति समझते हुए रोमाञ्चित होकर धीरे-धीरे गुरुके घर गये ॥ ८६–८९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें नरसिंहावतारविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

# चौवालीसवाँ अध्याय

## नृसिंहका प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिपुका वध

मार्कण्डेय उवाच

अथागतं ते प्रह्लादं दृष्ट्वा दैत्याः सुविस्मिताः।
शशंसुर्दैत्यपतये यैः क्षिप्तः स महार्णवे ॥ १ ॥
स्वस्थं तमागतं श्रुत्वा दैत्यराड्विस्मयाकुलः।
आहूयतां च इत्याह क्रोधान्मृत्युवशे स्थितः ॥ २ ॥
तथासुरैर्दुरानीतः समासीनं स दिव्यदृक्।
आसन्नमृत्युं दैत्येन्द्रं ददर्शात्यूर्जितश्रियम् ॥ ३ ॥
नीलांशुमिश्रमाणिक्यद्युतिच्छन्नविभूषणम्।
सधूमाग्निमिव व्याप्तमुच्चासनचितिस्थितम् ॥ ४ ॥
दंष्ट्रोत्कटैर्घोरतरैर्घनच्छविभिरुद्भटैः।
कुमार्गदर्शिभिर्दैत्यैर्यमदूतैरिवावृतम् ॥ ५ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—तदनन्तर प्रह्लादको [ कुशलपूर्वक समुद्रसे ] लौटा देखकर, जिन्होंने उन्हें महासागरमें डाला था, वे दैत्य बड़े विस्मित हुए और उन्होंने तुरंत यह समाचार दैत्यराज हिरण्यकशिपुको दिया। उन्हें स्वस्थ लौटा सुन दैत्यराज विस्मयसे व्याकुल हो उठा और क्रोधवश मृत्युके अधीन होकर बोला—'उसे यहाँ बुला लाओ।' असुरोंके द्वारा बुरी तरहसे पकड़कर लाये जानेपर दिव्यदृष्टिवाले प्रह्लादने सिंहासनपर बैठे हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुको देखा। उसकी मृत्यु निकट थी, उसका तेज बहुत बढ़ा हुआ था। उसके आभूषण नीलप्रभायुक्त माणिक्योंकी कान्तिसे आच्छन्न थे, अतएव वह धूमयुक्त फैली हुई अग्निके समान शोभित हो रहा था। वह ऊँचे सिंहासन-मञ्चपर विराजमान था और उसे मेघके समान काले, दाढ़ोंके कारण विकराल, अत्यन्त भयानक, कुमार्गदर्शी एवं यमदूतोंके समान क्रूर दैत्य घेरे हुए थे ॥ १–५ ॥

दूरात् प्रणम्य पितरं प्राञ्जलिस्तु व्यवस्थितः।
अथाहाकारणक्रोधः स खलो भर्त्सयन् सुतम् ॥ ६ ॥
भगवत्प्रियमत्युच्चैर्मृत्युमेवाश्रयन्निव।
मूढ रे शृणु मद्वाक्यमेतदेवान्तिमं ध्रुवम् ॥ ७ ॥

इतो न त्वां प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ।
उक्त्वेति द्रुतमाकृष्य चन्द्रहासासिमद्भुतम् ॥ ८ ॥
सम्भ्रमाद्वीक्षितः सर्वैश्चालयन्नाह तं पुनः ।
क्व चास्ति मूढ ते विष्णुः स त्वामद्य प्ररक्षतु ॥ ९ ॥
त्वयोक्तं स हि सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ।
यदि पश्यामि तं विष्णुमधुना स्तम्भमध्यगम् ॥१०॥
तर्हि त्वां न वधिष्यामि भविष्यसि द्विधान्यथा।

प्रह्लादजीने दूरसे ही हाथ जोड़कर पिताको प्रणाम किया और खड़े हो गये । तब मृत्युके निकट पहुँचनेवालेकी भाँति अकारण ही क्रोध करनेवाले उस दुष्टने भगवद्भक्त पुत्रको उच्चस्वरसे डाँटते हुए कहा—'अरे मूर्ख ! तू मेरा यह अन्तिम और अटल वचन सुन; इसके बाद मैं तुझसे कुछ न कहूँगा; इसे सुनकर तेरी जैसी इच्छा हो, वही करना ।' यह कहकर उसने शीघ्र ही चन्द्रहास नामक अपनी अद्भुत तलवार खींच ली । उस समय सब लोग उसकी ओर आश्चर्यपूर्वक देखने लगे । उसने तलवार चलाते हुए पुनः प्रह्लादसे कहा—'रे मूढ़ ! तेरा विष्णु कहाँ है ? आज वह तेरी रक्षा करे ! तूने कहा था कि वह सर्वत्र है । फिर इस खंभेमें क्यों नहीं दिखायी देता ? यदि तेरे विष्णुको इस खंभेके भीतर देख लूँगा, तब तो तुझे नहीं मारूँगा; यदि ऐसा न हुआ तो इस तलवारसे तेरे दो टुकड़े कर दिये जायँगे' ॥ ६–१०½ ॥

प्रह्लादोऽपि तथा दृष्ट्वा दध्यौ तं परमेश्वरम् ॥११॥
पुरोक्तं तद्वचः स्मृत्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः ।
तावत्प्रस्फुटितस्तम्भो वीक्षितो दैत्यसूनुना ॥१२॥
आदर्शरूपो दैत्यस्य खड्गतो यः प्रतिष्ठितः ।
तन्मध्ये दृश्यते रूपं बहुयोजनमायतम् ॥१३॥
अतिरौद्रं महाकायं दानवानां भयंकरम् ।
महानेत्रं महावक्त्रं महादंष्ट्रं महाभुजम् ॥१४॥
महानखं महापादं कालाग्निसदृशाननम् ।
कर्णान्तकृतविस्तारवदनं चातिभीषणम् ॥१५॥

प्रह्लादने भी ऐसी बात देखकर उन परमेश्वरका ध्यान किया और पहले कहे हुए उनके वचनको याद करके हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया । इतनेमें ही दैत्यनन्दन प्रह्लादने देखा कि वह दर्पणके समान स्वच्छ खंभा, जो अभीतक खड़ा था, दैत्यराजकी तलवारके आघातसे फट पड़ा तथा उसके भीतर अनेक योजन विस्तारवाला, अत्यन्त रौद्र एवं महाकाय नरसिंह-रूप दिखायी दिया, जो दानवोंको भयभीत करनेवाला था । उसके बड़े-बड़े नेत्र, विशाल मुख, बड़ी-बड़ी दाढ़ें और लंबी-लंबी भुजाएँ थीं । उसके नख बहुत बड़े और पैर विशाल थे । उसका मुख कालाग्निके समान देदीप्यमान था, जबड़े कानतक फैले हुए थे और वह बहुत भयानक दिखायी देता था ॥ ११–१५ ॥

कृत्वेत्थं नारसिंहं तु ययौ विष्णुस्त्रिविक्रमः ।
नरसिंहः स्तम्भमध्यान्निर्गत्य प्रणनाद च ॥१६॥
निनादश्रवणाद्दैत्या नरसिंहमवेष्टयन् ।
तान् हत्वा सकलांस्तत्र स्वपौरुषपराक्रमात् ॥१७॥
बभञ्ज च सभां दिव्यां हिरण्यकशिपोर्नृप ।
वारयामासुरभ्येत्य नरसिंहं महाभटाः ॥१८॥
ते तु राजन् क्षणादेव नरसिंहेन वै हताः ।
ततः शस्त्राणि वर्षन्ति नरसिंहे प्रतापिनि ॥१९॥

इस प्रकार नरसिंहरूप धारणकर त्रिविक्रम भगवान् विष्णु खंभेके भीतरसे निकल पड़े और लगे बड़े जोर-जोरसे दहाड़ने । नरेश्वर ! यह गर्जना सुनकर दैत्योंने भगवान् नरसिंहको घेर लिया । तब उन्होंने अपने पौरुष एवं पराक्रमसे उन सबको मौतके घाट उतारकर हिरण्यकशिपुका दिव्य सभाभवन नष्ट कर दिया । राजन् ! उस समय जिन महाभटोंने निकट आकर नृसिंहजीको रोका, उन सबको उन्होंने क्षणभरमें मार डाला । तत्पश्चात् प्रतापी नरसिंह भगवान्पर असुर सैनिक अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १६–१९ ॥

स तु क्षणेन भगवान् हत्वा तद्बलमोजसा ।
ननाद च महानादं दिशः शब्देन पूरयन् ॥२०॥
तान्मृतानपि विज्ञाय पुनरन्यान्महासुरः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि हेतिहस्तान् समादिशत् ॥२१॥
तेऽप्यागत्य च तं देवं रुरुधुः सर्वतोदिशम् ।
हत्वा तानखिलान् युद्धे युध्यमानो ननाद सः ॥२२॥
पुनः सभां बभञ्जासौ हिरण्यकशिपोः शुभाम् ।
तान् हतानपि विज्ञाय क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२३॥

ततो हिरण्यकशिपुर्निश्चक्राम महाबलः ।
उवाच च महीपाल दानवान् बलदर्पितान् ॥२४॥
हन्यतां हन्यतामेष गृह्यतां गृह्यतामयम् ।
इत्येवं वदतस्तस्य प्रमुखे तु महासुरान् ॥२५॥
युध्यमानान् रणे हत्वा नरसिंहो ननाद च ।
ततोऽतिदुद्रुवुर्दैत्या हतशेषा दिशो दश ॥२६॥

भगवान् नृसिंहने क्षणभरमें ही अपने तेजसे समस्त दैत्य-सेनाका संहार कर दिया और दिशाओंको अपनी गर्जनासे गुँजाते हुए वे भयंकर सिंहनाद करने लगे। उपर्युक्त दैत्योंको मरा जान महासुर हिरण्यकशिपुने पुनः हाथमें शस्त्र लिये हुए अठासी हजार असुर सैनिकोंको नृसिंहदेवसे लड़नेकी आज्ञा दी। उन असुरोंने भी आकर भगवान्‌को सब ओरसे घेर लिया। तब युद्धमें लड़ते हुए भगवान् उन सभीका वध करके पुनः सिंहनाद करने लगे। उन्होंने हिरण्यकशिपुके दूसरे सुन्दर सभाभवनको भी पुनः नष्ट कर दिया। राजन्! अपने भेजे हुए इन असुरोंको भी मारा गया जान क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके महाबली हिरण्यकशिपु स्वयं बाहर निकला और बलाभिमानी दानवोंसे बोला—'अरे, इसे पकड़ो-पकड़ो; मार डालो, मार डालो। इस प्रकार कहते हुए हिरण्यकशिपुके सामने ही युद्ध करनेवाले उन सभी महान् असुरोंका रणमें संहार करके भगवान् नृसिंह गर्जने लगे। तब मरनेसे बचे हुए दैत्य दसों दिशाओंमें वेगपूर्वक भाग चले ॥ २०–२६ ॥

तावद्धता युध्यमाना दैत्याः कोटिसहस्रशः ।
नरसिंहेन यावच्च नभोभागं गतो रविः ॥२७॥
शस्त्रास्त्रवर्षचतुरं हिरण्यकशिपुं जवात् ।
प्रगृह्य तु बलाद्राजन् नरसिंहो महाबलः ॥२८॥
संध्याकाले गृहद्वारि स्थित्वोरौ स्थाप्य तं रिपुम् ।
वज्रतुल्यमहोरस्कं हिरण्यकशिपुं रुषा ।
नखैः किसलयमिव दारयत्याह सोऽसुरः ॥२९॥

जबतक सूर्यदेव अस्ताचलको नहीं चले गये, तबतक भगवान् नृसिंह अपने साथ युद्ध करनेवाले हजारों करोड़ दैत्योंका संहार करते रहे। राजन्! किंतु जब सूर्य डूबने लगे, तब महाबली भगवान् नृसिंहने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करनेमें कुशल हिरण्यकशिपुको बड़े वेगसे बलपूर्वक पकड़ लिया। फिर संध्याके समय घरके दरवाजेपर बैठकर, उस वज्रके समान कठोर विशाल वक्षवाले शत्रु हिरण्यकशिपुको अपनी जाँघोंपर गिराकर जब भगवान् नृसिंह रोषपूर्वक नखोंसे पत्तेकी भाँति उसे विदीर्ण करने लगे, तब उस महान् असुरने जीवनसे निराश होकर कहा ॥ २७–२९ ॥

यत्राखण्डलदन्तिदन्तमुसला-
न्याखण्डितान्याहवे
धारा यत्र पिनाकपाणिपरशो-
राकुण्ठतामागमत् ।
तन्मे तावदुरो नृसिंहकरजै-
र्व्यादीर्यते साम्प्रतं
दैवे दुर्जनतां गते तृणमपि
प्रायोऽप्यवज्ञायते ॥३०॥

'हाय! युद्धके समय देवराज इन्द्रके वाहन गजराज ऐरावतके मूसल-जैसे दाँत जहाँ टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, जहाँ पिनाकपाणि महादेवके फरसेकी तीखी धार भी कुण्ठित हो गयी थी, वही मेरा वक्षःस्थल इस समय नृसिंह-के नखोंद्वारा फाड़ा जा रहा है। सच है, जब भाग्य खोटा हो जाता है, तब तिनका भी प्रायः अनादर करने लगता है' ॥ ३० ॥

एवं वदति दैत्येन्द्रे ददार नरकेसरी ।
हृदयं दैत्यराजस्य पद्मपत्रमिव द्विपः ॥३१॥
शकले द्वे तिरोभूते नखरन्ध्रे महात्मनः ।
ततःक्व यातो दुष्टोऽसाविति देवोऽतिविस्मितः॥३२॥
निरीक्ष्य सर्वतो राजन् वृथैतत्कर्म मेऽभवत् ।

दैत्यराज हिरण्यकशिपु इस प्रकार कह ही रहा था कि भगवान् नृसिंहने उसका हृदयदेश विदीर्ण कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे हाथी कमलके पत्तेको अनायास ही छिन्न-भिन्न कर देता है। उसके शरीरके दोनों टुकड़े महात्मा नृसिंहके नखोंके छेदमें घुसकर छिप गये। राजन्! तब भगवान् सब ओर देखकर अत्यन्त विस्मित हो सोचने लगे—'अहो! वह दुष्ट कहाँ चला गया? जान पड़ता है, मेरा यह सारा उद्योग ही व्यर्थ हो गया' ॥ ३१-३२½ ॥

इति संचिन्त्य राजेन्द्र नरसिंहो महाबलः ॥३३॥
व्यधूनयत्करावुच्चैस्ततस्ते शकले नृप ।
नखरन्ध्रान्निपतिते भूमौ रेणुसमे हरेः ॥३४॥
दृष्ट्वा व्यतीतसंरोषो जहास परमेश्वरः ।
पुष्पवर्षं च वर्षन्तो नरसिंहस्य मूर्धनि ॥३५॥
देवाः सब्रह्मकाः सर्वे आगताः प्रीतिसंयुताः ।
आगत्य पूजयामासुर्नरसिंहं परं प्रभुम् ॥३६॥

राजेन्द्र ! महाबली नृसिंह इस प्रकार चिन्तामें पड़कर अपने दोनों हाथोंको बड़े जोरसे झाड़ने लगे । राजन् ! फिर तो वे दोनों टुकड़े उन भगवान्‌के नख-छिद्रसे निकलकर भूमिपर गिर पड़े, वे कुचलकर धूलिकणके समान हो गये थे । यह देख रोषहीन हो वे परमेश्वर हँसने लगे । इसी समय ब्रह्मादि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो वहाँ आये और भगवान् नरसिंहके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । पास आकर उन सबने उन परम प्रभु नरसिंहदेवका पूजन किया ॥ ३३–३६ ॥

ब्रह्मा च दैत्यराजानं प्रह्लादमभिषेचयत् ।
धर्मे रतिः समस्तानां जनानामभवत्तदा ॥३७॥
इन्द्रोऽपि सर्वदेवैस्तु हरिणा स्थापितो दिवि ।
नरसिंहोऽपि भगवान् सर्वलोकहिताय वै ॥३८॥
श्रीशैलशिखरं प्राप्य विश्रुतः सुरपूजितः ।
स्थितो भक्तहितार्थाय अभक्तानां क्षयाय च ॥३९॥

तदनन्तर ब्रह्माजीने प्रह्लादको दैत्योंके राजाके पदपर अभिषिक्त किया । उस समय समस्त प्राणियोंका धर्ममें अनुराग हो गया । सम्पूर्ण देवताओंसहित भगवान् विष्णुने इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर स्थापित किया । भगवान् नृसिंह भी सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये श्रीशैलके शिखरपर जा पहुँचे । वहाँ देवताओंसे पूजित हो वे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए । वे भक्तोंका हित और अभक्तोंका नाश करनेके लिये वहीं रहने लगे ॥ ३७–३९ ॥

इत्येतन्नरसिंहस्य माहात्म्यं यः पठेन्नरः ।
शृणोति वा नृपश्रेष्ठ मुच्यते सर्वपातकैः ॥४०॥
नरो वा यदि वा नारी शृणोत्याख्यानमुत्तमम् ।
वैधव्याद्दुःखशोकाच्च दुष्टसङ्गात्प्रमुच्यते ॥४१॥
दुश्शीलोऽपि दुराचारो दुष्प्रजो दोषकर्मकृत् ।
अधर्मिष्ठोऽनभोगी च शृण्वन् शुद्धो भवेन्नरः ॥४२॥

नृपश्रेष्ठ ! जो मनुष्य भगवान् नरसिंहके इस माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । नर हो या नारी—जो भी इस उत्तम आख्यानको सुनता है, वह दुष्टोंका सङ्ग करनेके दोषसे, दुःखसे, शोकसे एवं वैधव्यके कष्टसे छुटकारा पा जाता है । जो दुष्ट स्वभाववाला, दुराचारी, दुष्ट संतानवाला, दूषित कर्मोंका आचरण करनेवाला, अधर्मात्मा और विषयभोगी हो, वह मनुष्य भी इसका श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥४०–४२॥

हरिः सुरेशो नरलोकपूजितो
　　हिताय लोकस्य चराचरस्य ।
कृत्वा विरूपं च पुराऽऽत्ममायया
　　हिरण्यकं दुःखकरं नखैश्छिनत् ॥४३॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥*

मनुष्यलोकपूजित देवेश्वर भगवान् हरिने पूर्वकालमें चराचर जगत्‌के हितके लिये अपनी मायासे भयानक आकारवाला नरसिंह रूप धारण करके दुःखदायी दैत्य हिरण्यकशिपुको नखोंद्वारा नष्ट कर दिया था ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहका प्राद्धुर्भाव' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

# पैंतालीसवाँ अध्याय

## वामन-अवतारकी कथा

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् समासेन वामनस्य पराक्रमम् ।
बलियागे हता येन पुरा दैत्याः सहस्रशः ॥ १ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—राजन् ! जिन्होंने पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें सहस्रों दैत्योंका संहार किया था, उन भगवान् वामनका चरित्र संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥

विरोचनसुतः पूर्वं महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यं बुभुजे जित्वा देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ २ ॥
ततः कृशतरा देवा बभूवुस्तेन खण्डिताः ।
इन्द्रं कृशतरं दृष्ट्वा नष्टराज्यं नृपोत्तम ॥ ३ ॥
अदितिर्देवमाता या सातप्यत्परमं तपः ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ ४ ॥
ततः स्तुत्याभिसंतुष्टो देवदेवो जनार्दनः ।
स्थित्वा तत्पुरतो वाचमुवाच मधुसूदनः ॥ ५ ॥
तव पुत्रो भविष्यामि सुभगे बलिबन्धनः ।
इत्युक्त्वा तां गतो विष्णुः स्वगृहं सा समाययौ ॥ ६ ॥

पहलेकी बात है, विरोचनका पुत्र बलि महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो, इन्द्र आदि समस्त देवताओंको जीतकर त्रिभुवनका राज्य भोग रहा था। नृपवर! उसके द्वारा खण्डित हुए देवतालोग बहुत दुबले हो गये थे। राज्य नष्ट हो जानेसे इन्द्र और अधिक कृश हो गये थे। उन्हें इस दशामें देखकर देवमाता अदितिने बहुत बड़ी तपस्या की। उन्होंने भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके अभीष्ट वाणीद्वारा उनका स्तवन किया। अदितिकी स्तुतिसे प्रसन्न हो देवाधिदेव मधुसूदन जनार्दन उनके सम्मुख उपस्थित हो बोले—'सौभाग्यशालिनि! मैं बलिको बाँधनेके लिये तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' उनसे यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये और अदिति भी अपने घर चली गयीं ॥ २–६ ॥

ततः कालेन सा गर्भमवाप नृप कश्यपात् ।
अजायत स विश्वेशो भगवान् वामनाकृतिः ॥ ७ ॥
तस्मिञ्जाते समागत्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तत्र चकार वै ॥ ८ ॥
कृतोपनयनो देवो ब्रह्मचारी सनातनः ।
अदितिं चाप्यनुज्ञाप्य यज्ञशालां बलेर्ययौ ॥ ९ ॥
गच्छतः पादविक्षेपाच्चचाल सकला मही ।
यज्ञभागान्न गृह्णन्ति दानवाश्च बलेर्मखात् ॥१०॥
प्रशान्ताश्चाग्नयस्तत्र ऋत्विजो मन्त्रतश्च्युताः।
विपरीतमिदं दृष्ट्वा शुक्रमाह महाबलः ॥११॥
न गृह्णन्ति मुने कस्माद्धविर्भागं महासुराः ।
कस्माच्च वह्नयः शान्ताः कस्माद्भूश्चलति द्विज ॥१२॥
कस्माच्च मन्त्रतो भ्रष्टा ऋत्विजः सकला अमी ।
इत्युक्तो बलिना शुक्रो दानवेन्द्रं वचोऽब्रवीत् ॥१३॥

राजन्! तदनन्तर समय आनेपर अदितिने कश्यपजीसे गर्भ धारण किया। उस गर्भसे वामनरूपमें साक्षात् भगवान् जगन्नाथ ही प्रकट हुए। वामनजीका अवतार होनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी वहाँ आये। उन्होंने उनके जातकर्मादि सम्पूर्ण समयोचित संस्कार सम्पन्न किये। उपनयन-संस्कारके बाद वे सनातन भगवान् ब्रह्मचारी होकर अदितिकी आज्ञा ले राजा बलिकी यज्ञशालामें गये। चलते समय उनके चरणोंके आघातसे पृथ्वी काँप उठती थी। दानवगण बलिके यज्ञसे हविष्य-ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गये। वहाँकी आग बुझ गयी। ऋत्विक्गण मन्त्रोच्चारणमें त्रुटि करने लगे। यह विपरीत कार्य देखकर महाबली बलिने शुक्राचार्यसे कहा—'मुने! ये महान् असुरगण यज्ञका भाग क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं? अग्नि क्यों शान्त हो रही है? विप्रवर! यह पृथ्वी क्यों डगमगा रही है तथा ये सम्पूर्ण ऋत्विज् मन्त्रभ्रष्ट क्यों हो रहे हैं?' बलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यने उस दानवराजसे कहा ॥ ७–१३ ॥

शुक्र उवाच

हे बले शृणु मे वाक्यं त्वया देवा निराकृताः ।
तेषां राज्यप्रदानाय अदित्यामच्युतोऽसुर ॥१४॥
देवदेवो जगद्योनिः संजातो वामनाकृतिः ।
स त्वागच्छति ते यज्ञं तत्पादन्यासकम्पिता ॥१५॥
चलतीयं मही सर्वा तेनाद्यासुरभूपते ।
तत्संनिधानादसुरा न गृह्णन्ति हविर्मखे ॥१६॥
तवाग्नयोऽपि वै शान्ता वामनागमनाद्धि भोः ।
ऋत्विजश्च न भासन्ते होममन्त्रो बलेऽधुना ॥१७॥
असुराणां श्रियो हन्ति सुराणां भूतिरुत्तमा ।

**शुक्र बोले**—असुरराज बलि! तुम मेरी बात सुनो। तुमने देवताओंको जीतकर स्वर्गसे निकाल दिया है; उन्हें पुनः उनका राज्य देनेके लिये जगत्के उत्पत्तिस्थान देवदेव भगवान् विष्णु अदितिके गर्भसे वामनरूपमें प्रकट हुए हैं।

असुरराज ! वे ही तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं, अतः उन्हींके पादविन्यास ( पाँव रखने ) से कम्पित हो यह सारी पृथ्वी आज हिलने लगी है तथा उन्हींके निकट आ जानेके कारण असुरगण आज यज्ञमें हविष्य ग्रहण नहीं कर रहे हैं। बले ! वामनके आगमनसे ही तुम्हारे यज्ञकी आग भी बुझ गयी है और ऋत्विज् भी श्रीहीन हो गये हैं । इस समयका होममन्त्र असुरोंकी सम्पत्तिको नष्ट कर रहा है और देवताओंका उत्तम वैभव बढ़ रहा है ॥ १४–१७½ ॥

**इत्युक्तः स बलिः प्राह शुक्रं नीतिमतां वरम् ॥१८॥**
**शृणु ब्रह्मन् वचो मे त्वमागते वामने मखे ।**
**यन्मया चाद्य कर्तव्यं वामनस्यास्य धीमतः ॥१९॥**
**तन्मे वद महाभाग त्वं हि नः परमो गुरुः ।**

उनके इस प्रकार कहनेपर बलिने नीतिज्ञोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यजीसे कहा—'ब्रह्मन् ! महाभाग ! आप मेरी बात सुनें । यज्ञमें वामनजीके पधारनेपर उन बुद्धिमान् वामनजीके लिये मुझे क्या करना चाहिये, वह हमें बताइये; क्योंकि आप मेरे परम गुरु हैं' ॥ १८-१९½ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**इति संचोदितः शुक्रः स राज्ञा बलिना नृप ॥२०॥**
**तमुवाच बलिं वाक्यं ममापि शृणु साम्प्रतम् ।**
**देवानामुपकाराय भवतां संक्षयाय च ॥२१॥**
**स नूनमायाति बले तव यज्ञे न संशयः ।**
**आगते वामने देवे त्वया तस्य महात्मनः ॥२२॥**
**प्रतिज्ञा नैव कर्तव्या ददाम्येतत्तवेति वै ।**

**मार्कण्डेयजी बोले**—नरेश्वर ! राजा बलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यजीने उनसे कहा—"राजन् ! अब मेरी भी राय सुनो । बले ! वे देवताओंका हित करने और तुमलोगोंके विनाशके लिये ही तुम्हारे यज्ञमें पधार रहे हैं, इसमें संदेह नहीं है । अतः जब भगवान् वामन यहाँ आ जायँ, तब उन महात्माके लिये 'मैं आपको यह वस्तु देता हूँ' यों कहकर कुछ देनेकी प्रतिज्ञा न करना" ॥ २०–२२½ ॥

**इति श्रुत्वा वचस्तस्य बलिर्बलवतां वरः ॥२३॥**
**उवाच तां शुभां वाणीं शुक्रमात्मपुरोहितम् ।**
**आगते वामने शुक्र यज्ञे मे मधुसूदने ॥२४॥**
**न शक्यते प्रतिख्यातुं दानं प्रति मया गुरो ।**
**अन्येषामपि जन्तूनामित्युक्तं ते मयाधुना ॥२५॥**
**किं पुनर्वासुदेवस्य आगतस्य तु शार्ङ्गिणः ।**
**त्वया विघ्नो न कर्तव्यो वामनेऽत्रागते द्विज ॥२६॥**
**यद्यद्द्रव्यं प्रार्थयते तत्तद्द्रव्यं ददाम्यहम् ।**
**कृतार्थोऽहं मुनिश्रेष्ठ यद्यागच्छति वामनः ॥२७॥**

उनकी यह बात सुनकर बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिने अपने पुरोहित शुक्राचार्यजीसे यह सुन्दर बात कही—'गुरुदेव शुक्र ! यज्ञमें मधुसूदन भगवान् वामनके पधारनेपर मैं उन्हें कुछ भी देनेसे इनकार नहीं कर सकता । अभी-अभी मैं आपसे कह चुका हूँ कि दूसरे प्राणी भी यदि मुझसे कुछ याचना करेंगे तो मैं उन्हें वह वस्तु देनेसे इनकार नहीं कर सकता; फिर शार्ङ्ग-धनुष धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णु ( वासुदेव ) मेरे यज्ञमें पधारें और मैं उनकी मुँहमाँगी वस्तु उन्हें देनेसे इनकार कर दूँ, यह कैसे सम्भव होगा ? ब्राह्मणदेव ! यहाँ भगवान् वामनके पदार्पण करनेपर आप उनके कार्यमें विघ्न न डालियेगा । वे जो-जो द्रव्य माँगेंगे, वही-वही मैं उन्हें दूँगा । मुनिश्रेष्ठ ! यदि सचमुच ही यहाँ भगवान् वामन पधार रहे हैं तो मैं कृतार्थ हो गया' ॥ २३–२७ ॥

**इत्येवं वदतस्तस्य यज्ञशालां स वामनः ।**
**आगत्य प्रविवेशाथ प्रशशंस बलेर्मखम् ॥२८॥**
**तं दृष्ट्वा सहसा राजन् राजा दैत्याधिपो बलिः ।**
**उपचारेण सम्पूज्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥२९॥**
**यद्यत्प्रार्थयसे मां त्वं देवदेव धनादिकम् ।**
**तत्सर्वं तव दास्यामि मां याचस्वाद्य वामन ॥३०॥**

राजा बलि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय वामनजीने आकर यज्ञशालामें प्रवेश किया और वे उनके उस यज्ञकी प्रशंसा करने लगे । राजन् ! उन्हें देखते ही दैत्याधिपति राजा बलिने सहसा उठकर पूजन-सामग्रियोंसे उनकी पूजा की, फिर इस प्रकार कहा—'देवदेव ! आप धन आदि जो-जो वस्तु माँगेंगे, वह सब मैं आपको दूँगा; इसलिये वामनजी ! आज आप मुझसे याचना कीजिये' ॥ २८–३० ॥

**इत्युक्तो वामनस्तत्र नृपेन्द्र बलिना तदा ।**
**याचयामास देवेशो भूमेर्देहि पदत्रयम् ॥३१॥**

**ममाग्निशरणार्थाय न मेऽर्थेऽस्ति प्रयोजनम् ।**

नृपेन्द्र ! बलिके यों कहनेपर उस समय देवेश्वर भगवान् वामनने उनसे यही याचना की कि मुझे अग्निशालाके लिये केवल तीन पग भूमि दीजिये, मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है' ॥ ३१½ ॥

**इत्युक्तो वामनेनाथ बलिः प्राह च वामनम् ॥३२॥**
**पदत्रयेण चेत्तृप्तिर्मया दत्तं पदत्रयम् ।**

भगवान् वामनके यों कहनेपर बलिने उनसे कहा—'यदि तीन पग भूमिसे ही आपको संतोष है तो तीन पग भूमि मैंने आपको दे दी' ॥ ३२½ ॥

**एवमुक्ते तु बलिना वामनो बलिमब्रवीत् ॥३३॥**
**दीयतां मे करे तोयं यदि दत्तं पदत्रयम् ।**

बलिके द्वारा यों कहे जानेपर भगवान् वामन उनसे बोले—'यदि आपने मुझे तीन पग भूमि दे दी तो मेरे हाथमें संकल्पका जल दीजिये' ॥ ३३½ ॥

**इत्युक्तो देवदेवेन तदा तत्र स्वयं बलिः ॥३४॥**
**सजलं हेमकलशं गृहीत्वोत्थाय भक्तितः ।**
**यावत्स वामनकरे तोयं दातुमुपस्थितः ॥३५॥**
**तावच्छुक्रः कलशगो जलधारां रुरोध ह ।**
**ततश्च वामनः क्रुद्धः पवित्राग्रेण सत्तम ॥३६॥**
**उदके कलशद्वारि तच्छुक्राक्षिमवेधयत् ।**
**ततो व्यपगतः शुक्रो विद्धैकाक्षो नरोत्तम ॥३७॥**

कहते हैं, उस समय वहाँ देवदेव भगवान् वामनजीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर स्वयं राजा बलि जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलशको लेकर भक्तिपूर्वक खड़े हो गये और ज्यों ही वामनजीके हाथमें जल देनेको उद्यत हुए, त्यों ही शुक्राचार्यने [ योग-बलसे ] कलशमें घुसकर गिरती हुई जलधारा रोक दी। सत्तम ! तब वामनजीने क्रुद्ध होकर पवित्र ( कुश )के अग्रभागसे कलशके छेदमें जल निकलनेके मार्गपर स्थित हुए शुक्राचार्यकी एक आँख छेद डाली । नरोत्तम ! एक आँख छिद जानेपर शुक्राचार्य उसमेंसे निकल भागे ॥ ३४–३७ ॥

**तोयधारा निपतिता वामनस्य करे पुनः ।**
**करे निपतिते तोये वामनो ववृधे क्षणात् ॥३८॥**
**पादेनैकेन विक्रान्ता तेनैव सकला मही ।**
**अन्तरिक्षं द्वितीयेन द्यौस्तृतीयेन सत्तम ॥३९॥**
**अनेकान् दानवान् हत्वा हृत्वा त्रिभुवनं बलेः ।**
**पुरंदराय त्रैलोक्यं दत्त्वा बलिमुवाच ह ॥४०॥**
**यस्मात्ते भक्तितो दत्तं तोयमद्य करे मम ।**
**तस्मात्ते साम्प्रतं दत्तं पातालतलमुत्तमम् ॥४१॥**
**तत्र गत्वा महाभाग भुङ्क्ष्व त्वं मत्प्रसादतः ।**
**वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते पुनरिन्द्रो भविष्यसि ॥४२॥**

तत्पश्चात् वामनजीके हाथमें जलकी धारा गिरी। हाथपर जल पड़ते ही वामनजी क्षणभरमें ही बहुत बड़े हो गये। सत्तम ! उन्होंने एक पगसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली, द्वितीय पगसे अन्तरिक्ष लोक तथा तृतीय पगसे स्वर्गलोकको आक्रान्त कर लिया । फिर अनेक दानवोंका संहार करके बलिसे त्रिभुवनका राज्य छीन लिया और यह त्रिलोकी इन्द्रको अर्पितकर पुनः बलिसे कहा—'तुमने भक्तिपूर्वक आज मेरे हाथमें संकल्पका जल अर्पित किया है, इसलिये इस समय मैंने तुम्हें उत्तम पाताल-लोकका राज्य दिया। महाभाग ! वहाँ जाकर तुम मेरे प्रसादसे राज्य भोगो; वैवस्वत मन्वन्तर व्यतीत हो जानेपर तुम पुनः इन्द्र-पदपर प्रतिष्ठित होओगे' ॥३८–४२॥

**प्रणम्य च ततो गत्वा तलं भोगमवाप्तवान् ॥४३॥**
**शुक्रोऽपि स्वर्गमारुह्य प्रसादाद्वामनस्य वै ।**
**समागतस्त्रिभुवनं राजन् देवसमन्वितः ॥ ४४॥**
**यः स्मरेत्प्रातरुत्थाय वामनस्य कथामिमाम् ।**
**सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥४५॥**
**इत्थं पुरा वामनरूपमास्थितो**
**हरिर्बलेर्हृत्य जगत्त्रयं नृप ।**
**कृत्वा प्रसादं च दिवौकसाम्पते-**
**र्दत्त्वा त्रिलोकं स ययौ महोदधिम् ॥४६॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे वामनप्रादुर्भावे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥*

तब बलिने भगवान्‌को प्रणाम करके पातालतलमें जाकर वहाँ उत्तम भोगोंको प्राप्त किया । राजन् ! शुक्राचार्य भी भगवान् वामनकी कृपासे त्रिभुवनकी राजधानी स्वर्गमें आकर सब देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । जो मनुष्य

प्रातःकाल उठकर भगवान् वामनकी इस कथाका स्मरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । नृप ! इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर त्रिभुवनका राज्य बलिसे ले लिया और उसे कृपापूर्वक देवराज इन्द्रको अर्पित कर दिया । तत्पश्चात् वे क्षीरसागरको चले गये ॥ ४३–४६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वामनावतार' विषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

# छियालीसवाँ अध्याय

## परशुरामावतारकी कथा

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम् ।
जामदग्न्यं पुरा येन क्षत्रमुत्सादितं शृणु ॥ १ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—राजन् ! अब मैं भगवान् विष्णुके जामदग्न्य ( परशुराम ) नामक शुभ अवतारका वर्णन करता हूँ, जिसने पूर्वकालमें क्षत्रियवंशका उच्छेद किया था; उस प्रसङ्गको सुनो ॥ १ ॥

पुरा देवगणैर्विष्णुः स्तुतः क्षीरोदधौ नृप ।
ऋषिभिश्च महाभागैर्जमदग्नेः सुतोऽभवत् ॥ २ ॥
पर्शुराम इति ख्यातः सर्वलोकेषु स प्रभुः ।
दुष्टानां निग्रहं कर्तुमवतीर्णो महीतले ॥ ३ ॥
कृतवीर्यसुतः श्रीमान् कार्तवीर्योऽभवत् पुरा ।
दत्तात्रेयं समाराध्य चक्रवर्त्तित्वमाप्तवान् ॥ ४ ॥
स कदाचिन्महाभागो जमदग्न्याश्रमं ययौ ।
जमदग्निस्तु तं दृष्ट्वा चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ ५ ॥
उवाच मधुरं वाक्यं कार्तवीर्यं नृपोत्तमम् ।
मुच्यतामत्र ते सेना अतिथिस्त्वं समागतः ।
वन्यादिकं मया दत्तं भुक्त्वा गच्छ महामते ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! पहलेकी बात है, क्षीरसागरके तटपर देवताओं और महाभाग ऋषियोंने भगवान् विष्णुकी स्तुति की; इससे वे जमदग्नि मुनिके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए । वे भगवान् सम्पूर्ण लोकोंमें 'परशुराम' नामसे विख्यात थे और दुष्ट राजाओंका नाश करनेके लिये ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे । उनके अवतारसे पूर्व राजा कृतवीर्यका पुत्र 'कार्तवीर्य' हुआ था, जिसने दत्तात्रेयजीकी आराधना करके सार्वभौम राज्य प्राप्त कर लिया था । एक समय वह महाभाग नरेश जमदग्नि ऋषिके आश्रमपर गया । उसके साथ चतुरङ्गिणी सेना थी । उस राजाको चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आश्रमपर आया देख जमदग्निने नृपवर कार्तवीर्यसे मधुर वाणीमें कहा—'महामते ! आप मेरे अतिथि होकर यहाँ पधारे हैं; अतः आज अपनी सेनाका पड़ाव यहीं डालिये और मेरे दिये हुए वन्य फल आदिका भोजन करके कल यहाँसे जाइयेगा' ॥ २–६ ॥

प्रमुच्य सेनां मुनिवाक्यगौरवात्
स्थितो नृपस्तत्र महानुभावः ।
आमन्त्र्य राजानमलङ्घ्यकीर्त्ति-
र्मुनिः स धेनुं च दुदोह दोग्ध्रीम् ॥ ७ ॥
हस्त्यश्वशाला विविधा नराणां
गृहाणि चित्राणि च तोरणानि ।
सामन्तयोग्यानि शुभानि राजन्
समिच्छतां यानि सुकाननानि ॥ ८ ॥
गृहं वरिष्ठं बहुभूमिकं पुनः
समन्वितं साधुगुणैरुपस्करैः ।
दुग्ध्वा प्रकल्पन् मुनिराह पार्थिवं
गृहं कृतं ते प्रविशेह राजन् ॥ ९ ॥
इमे च मन्त्रिप्रवरा जनास्ते
गृहेषु दिव्येषु विशन्तु शीघ्रम् ।
हस्त्यश्वजात्यश्च विशन्तु शालां
भृत्याश्च नीचेषु गृहेषु सन्तु ॥ १० ॥

महानुभाव राजा कार्तवीर्य मुनिके वाक्यका गौरव मानकर अपनी सेनाको वहीं ठहरनेका आदेश दे वहाँ रह गया । इधर अलङ्घ्य यशवाले मुनिने राजाको आमन्त्रित करके अपनी कामधेनु गौका दोहन किया । राजन् ! उन्होंने

अनेकानेक गजशाला, अश्वशाला, मनुष्योंके रहनेयोग्य विचित्र गृह और तोरण ( द्वार ) आदिका दोहन किया । सामन्त नरेशोंके रहनेयोग्य सुन्दर भवन, जिनमें बगीचे आदिकी इच्छा रखनेवालोंके लिये सुन्दर उद्यान थे, दोहनद्वारा प्रस्तुत किये । फिर अनेक मंजिलोंका श्रेष्ठ महल, जिसमें सुन्दर एवं उपयोगी सामान संचित थे, गोदोहनके द्वारा उपलब्ध करके मुनिने भूपालसे कहा—'राजन् ! आपके लिये महल तैयार है । आप इसमें प्रवेश कीजिये । आपके ये श्रेष्ठ मन्त्री तथा और लोग भी शीघ्र ही इन दिव्य गृहोंमें प्रवेश करें । विभिन्न जातियोंके हाथी और घोड़े आदि भी गजशाला और अश्वशालामें रहें तथा भृत्यगण भी इन छोटे घरोंमें निवास करें' ॥ ७–१० ॥

इत्युक्तमात्रे मुनिना नृपोऽसौ
गृहं वरिष्ठं प्रविवेश राजा ।
अन्येषु चान्येषु गृहेषु सत्सु
मुनिः पुनः पार्थिवमाबभाषे ॥११॥
स्नानप्रदानार्थमिदं मया ते
प्रकल्पितं स्त्रीशतमुत्तमं नृप ।
स्नाहि त्वमद्यात्र यथाप्रकामं
यथा सुरेन्द्रो दिवि नृत्यगीतैः ॥१२॥

मुनिके इस प्रकार कहते ही राजा कार्तवीर्यने उस उत्तम गृहमें प्रवेश किया । फिर दूसरे लोग दूसरे-दूसरे गृहोंमें प्रविष्ट हुए । इस प्रकार सबके यथास्थान स्थित हो जानेपर मुनिने पुनः राजा कार्तवीर्यसे कहा—'नरेश्वर ! आपको स्नान करानेके लिये मैंने इन सौ उत्तम स्त्रियोंको नियत किया है । जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र अप्सराओंके नृत्य-गीत सुनते हुए स्नान करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन स्त्रियोंके नृत्य-गीतसे आनन्दित हो इच्छानुसार स्नान कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

स स्नातवांस्तत्र सुरेन्द्रवन्नृपो
गीत्यादिशब्दैर्मधुरैश्च वाद्यैः ।
स्नातस्य तस्याशु शुभे च वस्त्रे
ददौ मुनिर्भूप विभूषिते द्वे ॥१३॥
परिधाय वस्त्रं च कृतोत्तरीयः
कृतक्रियो विष्णुपूजां चकार ।
मुनिश्च दुग्ध्वान्नमयं महागिरिं
नृपाय भृत्याय च दत्तवानसौ ॥१४॥
यावत्स राजा बुभुजे सभृत्य-
स्तावच्च सूर्यो गतवान् नृपास्तम् ।
रात्रौ च गीतादिविनोदयुक्तः
शेते स राजा मुनिनिर्मिते गृहे ॥१५॥

भूप ! ( मुनिकी आज्ञासे ) वहाँ राजा कार्तवीर्यने इन्द्रकी भाँति मधुर वाद्यों और गीत आदिके शब्दोंसे आनन्दित होते हुए स्नान किया । स्नान कर लेनेपर मुनिने उन्हें दो सुन्दर सुशोभित वस्त्र दिये । धौतवस्त्र पहन और ऊपरसे चादर ओढ़कर राजाने नित्य-नियम करनेके बाद भगवान् विष्णुकी पूजा की । फिर उन मुनिवरने गौसे अन्नमय महान् पर्वतका दोहन करके राजा तथा राजसेवक-वृन्दको अर्पित किया । नृप ! राजा तथा उनके भृत्यगणोंने जबतक भोजनका कार्य सम्पन्न किया, तबतक सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये । तब उन्होंने रातको भी मुनिके बनाये हुए उस भवनमें गीत आदि विनोदोंसे आनन्दित हो शयन किया ॥ १३–१५ ॥

ततः प्रभाते विमले स्वप्नलब्धमिवाभवत् ।
भूमिभागं ततः कंचिद् दृष्ट्वासौ चिन्तयन्नृपः ॥१६॥
किमियं तपसः शक्तिर्मुनेरस्य महात्मनः ।
सुरभ्या वा महाभाग ब्रूहि मे त्वं पुरोहित ॥१७॥
इत्युक्तः कार्तवीर्येण तमुवाच पुरोहितः ।
मुनेः सामर्थ्यमप्यस्ति सिद्धिश्चेयं हि गोर्नृप ॥१८॥
तथापि सा न हर्तव्या त्वया लोभान्नराधिप ।
यस्त्वेतां हर्तुमिच्छेद् वै तस्य नाशो ध्रुवं भवेत् ॥१९॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होते ही स्वप्नमें मिली हुई सम्पत्तिके समान सब कुछ लुप्त हो गया । फिर वहाँ केवल कोई भूभागमात्र ही अवशिष्ट देख राजाने मन-ही-मन विचार किया और अपने पुरोहितसे पूछा—'महाभाग पुरोहितजी ! यह महात्मा जमदग्नि मुनिके तपकी शक्ति थी या कामधेनु गौकी ? इसे आप मुझे बताइये ।' कार्तवीर्यके इस प्रकार पूछनेपर पुरोहितने उससे कहा—'राजन् ! मुनिमें भी सामर्थ्य है, परंतु यह सिद्धि तो गौकी ही थी । तो भी

नरेश्वर ! आप लोभवश उस गौका अपहरण न करें; क्योंकि जो उसे हर लेनेकी इच्छा करता है, उसका निश्चय ही विनाश हो जाता है' ॥ १६–१९ ॥

अथ मन्त्रिवरः प्राह ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः ।
राजकार्यं न पश्येद्वै स्वपक्षस्यैव पोषणात् ॥२०॥
हे राजंस्त्वयि तिष्ठन्ति गृहाणि विविधानि च ।
तथा सुवर्णपात्राणि शयनादीनि च स्त्रियः ॥२१॥
तां धेनुं प्राप्य राजेन्द्र लीयमानानि तत्क्षणात् ।
अस्माभिस्तत्र दृष्टानि नीयतां धेनुरुत्तमा ॥२२॥
तवेयं योग्या राजेन्द्र यदीच्छसि महामते ।
गत्वाहमानयिष्यामि आज्ञां मे देहि भूभुज ॥२३॥

यह सुनकर राजाके प्रधानमन्त्रीने कहा—'महाराज ! ब्राह्मण ब्राह्मणका ही प्रेमी होता है, वह अपने पक्षका पोषण करनेके कारण राजाके कार्यकी कोई परवा नहीं करता । राजन् ! उस गौको पाकर आपके पास तत्काल गुप्त हो जानेवाले नाना प्रकारके घर, सोनेके पात्र, शय्यादि तथा सुन्दरी स्त्रियाँ—ये सब सामान प्रस्तुत रहेंगे, जिन्हें हमलोगोंने वहाँ प्रत्यक्ष देखा है । इस उत्तम धेनुको आप अवश्य ले चलें । महामते राजेन्द्र ! यह गौ आपके ही योग्य है ! भूपाल ! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं स्वयं जाकर इसे ले आऊँगा । आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये' ॥ २०–२३ ॥

इत्युक्तो मन्त्रिणा राजा तथेत्याह नृपोत्तम ।
सचिवस्तत्र गत्वाथ सुरभिं हर्तुमारभत् ॥२४॥
वारयामास सचिवं जमदग्निः समन्ततः ।
राजयोग्यामिमां ब्रह्मन् देहि राज्ञे महामते ॥२५॥
त्वं तु शाकफलाहारी किं धेन्वा ते प्रयोजनम् ।
इत्युक्त्वा तां बलाद्धृत्वा नेतुं मन्त्री प्रचक्रमे ॥२६॥
पुनः सभार्यः स मुनिर्वारयामास तं नृपम् ।
ततो मन्त्री सुदुष्टात्मा मुनिं हत्वा तु तं नृप ॥२७॥
ब्रह्महा नेतुमारेभे वायुमार्गेण सा गता ।
राजा च क्षुब्धहृदयो ययौ माहिष्मतीं पुरीम् ॥२८॥

नृपवर ! मन्त्रीके इस प्रकार कहनेपर राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर अनुमति दे दी । फिर राजमन्त्री आश्रमपर जाकर गौका अपहरण करने लगा । तब जमदग्निमुनिने उसे सब ओरसे मना किया, किंतु उसने उनकी बात न मानते हुए कहा—'महाबुद्धिमान् ब्राह्मण ! यह गौ राजाके योग्य है; अतः इसे राजाको ही दे दीजिये । आप तो साग और फल खानेवाले हैं; आपको इस गायसे क्या काम है ?' यों कहकर मन्त्री उस गौको बलपूर्वक ले जाने लगा । राजन् ! तब उस मुनिने स्त्रीसहित आकर उसे पुनः रोका । इसपर उस दुष्टात्मा और ब्रह्महत्यारे मन्त्रीने उस मुनिका वध करके गौको ज्यों ही ले जाना चाहा, त्यों ही वह दिव्य गौ आकाशमार्गसे चली गयी और राजा मन-ही-मन क्षुब्ध होकर माहिष्मती नगरीको लौट आया ॥ २४–२८ ॥

मुनिपत्नी सुदुःखार्ता रोदयन्ती भृशं तदा ।
त्रिस्सप्तकृत्वः स्वां कुक्षिं ताडयामास पार्थिव ॥२९॥
तच्छ्रुत्वाऽऽगतो रामो गृहीतपरशुस्तदा ।
पुष्पादीनि गृहीत्वा तु वनान्मातरमब्रवीत् ॥३०॥
अलमम्ब प्रहारेण निमित्ताद् विदितं मया ।
हनिष्यामि दुराचारमर्जुनं दुष्टमन्त्रिणम् ॥३१॥
त्वयैकविंशवारेण यस्मात्कुक्षिश्च ताडिता ।
त्रिस्सप्तकृत्वस्तस्मात्तु हनिष्ये भुवि पार्थिवान् ॥३२॥

राजन् ! उस समय मुनिकी पत्नी दुःखसे पीडित होकर अत्यन्त विलाप करने लगी और प्राणत्याग देनेकी इच्छासे अपनी कुक्षि ( उदर ) में उसने इक्कीस बार मुक्का मारा । माताका विलाप सुनकर परशुरामजी वनसे फूल आदि लेकर हाथमें कुल्हाड़ी लिये उसी समय आये और मातासे बोले—'मा ! इस प्रकार छाती पीटनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं सब कुछ शकुनसे जान गया हूँ । उस दुष्ट मन्त्रीवाले दुराचारी राजा अर्जुनका मैं अवश्य वध करूँगा । मातः ! चूँकि तुमने अपनी कुक्षिमें इक्कीस बार प्रहार किया है, इसलिये मैं इस भूमण्डलके क्षत्रियोंका इक्कीस बार संहार करूँगा' ॥ २९–३२ ॥

इति कृत्वा प्रतिज्ञां स गृहीत्वा परशुं ययौ ।
माहिष्मतीं पुरीं प्राप्य कार्तवीर्यमथाह्वयत् ॥३३॥
युद्धार्थमागतः सोऽथ अनेकाक्षौहिणीयुतः ।
तयोर्युद्धमभूत्तत्र भैरवं लोमहर्षणम् ॥३४॥
पिशिताशिजनानन्दं शस्त्रास्त्रशतसंकुलम् ।

**ततः परशुरामोऽभून्महाबलपराक्रमः ॥३५॥**
**परं ज्योतिरचिन्त्यात्मा विष्णुः कारणमूर्तिमान् ।**
**कार्तवीर्यबलं सर्वमनेकैः क्षत्रियैः सह ॥३६॥**
**हत्वा निपात्य भूमौ तु परमाद्भुतविक्रमः ।**
**कार्तवीर्यस्य बाहूनां वनं चिच्छेद रोषवान् ।**
**छिन्ने बाहुवने तस्य शिरश्चिच्छेद भार्गवः ॥३७॥**

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके फरसा लेकर वे वहाँसे चल दिये और माहिष्मती पुरीमें जाकर उन्होंने राजा कार्तवीर्य अर्जुनको ललकारा। तब वह अनेक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आया। वहाँ उन दोनोंमें महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, जो सैकड़ों अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे व्याप्त तथा मांस खानेवाले प्राणियोंको आनन्द देनेवाला था। उस समय परशुरामजी अपनेमें अचिन्त्यस्वरूप, परम ज्योतिर्मय, कारण-मूर्ति भगवान् विष्णुकी भावना करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो गये। उन्होंने परम आश्चर्यमय पौरुष प्रकट करते हुए कार्तवीर्यकी असंख्य क्षत्रियोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको मारकर भूमिपर गिरा दिया और रोषसे भरकर कार्तवीर्यकी समस्त भुजाएँ काट डालीं। उसके बाहुवनका उच्छेद हो जानेपर भृगुनन्दन परशुरामने उसका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया ॥ ३३—३७ ॥

**विष्णुहस्ताद्वधं प्राप्य चक्रवर्ती स पार्थिवः ।**
**दिव्यरूपधरः श्रीमान् दिव्यगन्धानुलेपनः ॥३८॥**
**दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकमवाप्तवान् ।**
**क्रोधात्परशुरामोऽपि महाबलपराक्रमः ॥ ३९॥**
**त्रिस्सप्तकृत्वो भूम्यां वै पार्थिवान्निजघान सः ।**
**क्षत्रियाणां वधात्तेन भूमेर्भारोऽवतारितः ॥४०॥**
**भूमिश्च सकला दत्ता कश्यपाय महात्मने ।**

इस प्रकार वह चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य श्रीभगवान् विष्णुके हाथसे वधको प्राप्त होकर दिव्यरूप धारण करके, श्रीसम्पन्न एवं दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त होकर, दिव्य विमानपर आरूढ़ हो, विष्णुधामको प्राप्त हुआ। फिर महान् बल और पराक्रमवाले परशुरामजीने भी इस पृथ्वीके क्षत्रियोंका इक्कीस बार संहार किया। इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करके उन्होंने भूमिका भार उतारा और सम्पूर्ण पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको दान कर दी ॥ ३८—४०½ ॥

**इत्येष जामदग्न्याख्यः प्रादुर्भावो मयोदितः ॥४१॥**
**यश्च तच्छृणुयाद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४२॥**
**अवतीर्य भूमौ हरिरेष साक्षात्**
**त्रिस्सप्तकृत्वः क्षितिपान्निहत्य सः ।**
**क्षात्रं च तेजो प्रविभज्य राजन्**
**रामः स्थितोऽद्यापि गिरौ महेन्द्रे ॥४३॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे परशुरामप्रादुर्भावो नाम*
*षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥*

इस प्रकार मैंने तुमसे यह 'जामदग्न्य' ( परशुराम ) नामक अवतारका वर्णन किया। जो भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन्! इस तरह पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके बाद ये साक्षात् भगवान् विष्णुस्वरूप परशुरामजी इक्कीस बार क्षत्रियोंको मारकर, क्षत्रियतेजको छिन्न-भिन्न करके आज भी महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं ॥ ४१—४३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'परशुरामावतार' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

## सैंतालीसवाँ अध्याय

### श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे लेकर विवाहतकके चरित्र

श्रीमार्कण्डेय उवाच

**शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम् ।**
**निहतो रावणो येन सगणो देवकण्टकः ॥ १ ॥**

**श्रीमार्कण्डेयजी बोले**—राजन्! अब मैं भगवान् विष्णुके उस शुभ अवतारका वर्णन करूँगा, जिसके द्वारा देवताओंके लिये कण्टकस्वरूप रावण अपने गणोंसहित मारा गया। तुम [ ध्यान देकर ] सुनो ॥ १ ॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रः पुलस्त्योऽभून्महामुनिः ।
तस्य वै विश्रवा नाम पुत्रोऽभूत्तस्य राक्षसः ॥ २ ॥
तस्माज्जातो महावीरो रावणो लोकरावणः ।
तपसा महता युक्तः स तु लोकानुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
सेन्द्रा देवा जितास्तेन गन्धर्वाः किंनरास्तथा ।
यक्षाश्च दानवाश्चैव तेन राजन् विनिर्जिताः ॥ ४ ॥
स्त्रियश्चैव सुरूपिण्यो हृतास्तेन दुरात्मना ।
देवादीनां नृपश्रेष्ठ रत्नानि विविधानि च ॥ ५ ॥
रणे कुबेरं निर्जित्य रावणो बलदर्पितः ।
तत्पुरीं जगृहे लङ्कां विमानं चापि पुष्पकम् ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीके मानस पुत्र जो महामुनि पुलस्त्यजी हैं, उनके 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ । विश्रवाका पुत्र राक्षस रावण हुआ । समस्त लोकोंको रुलानेवाला महावीर रावण विश्रवासे ही उत्पन्न हुआ था । वह महान् तपसे युक्त होकर समस्त लोकोंपर धावा करने लगा । राजन् ! उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं, गन्धर्वों और किंनरोंको जीत लिया तथा यक्षों और दानवोंको भी अपने वशीभूत कर लिया । नृपश्रेष्ठ ! उस दुरात्माने देवता आदिकी सुन्दरी स्त्रियाँ और नाना प्रकारके रत्न भी हर लिये । बलाभिमानी रावणने युद्धमें कुबेरको जीतकर उनकी पुरी लङ्का और पुष्पक विमानपर भी अधिकार जमा लिया ॥ २—६ ॥

तस्यां पुर्यां दशग्रीवो रक्षसामधिपोऽभवत् ।
पुत्राश्च बहवस्तस्य बभूवुरमितौजसः ॥ ७ ॥
राक्षसाश्च तमाश्रित्य महाबलपराक्रमाः ।
अनेककोटयो राजन् लङ्कायां निवसन्ति ये ॥ ८ ॥
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च विद्याधरगणानपि ।
यक्षांश्चैव ततः सर्वे घातयन्ति दिवानिशम् ॥ ९ ॥
संत्रस्तं तद्भयादेव जगदासीच्चराचरम् ।
दुःखाभिभूतमत्यर्थं सम्बभूव नराधिप ॥१०॥

उस लङ्कापुरीमें दशमुख रावण राक्षसोंका राजा हुआ । उसके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपरिमित बलसे सम्पन्न थे । राजन् ! लङ्कामें जो कई करोड़ महाबली और पराक्रमी राक्षस निवास करते थे, वे सभी रावणका सहारा लेकर देवता, पितर, मनुष्य, विद्याधर और यक्षोंका दिन-रात संहार किया करते थे । नराधिप ! समस्त चराचर जगत् उसके भयसे भीत और अत्यन्त दुखी हो गया था ॥ ७—१० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवाः सेन्द्रा महर्षयः ।
सिद्धा विद्याधराश्चैव गन्धर्वाः किंनरास्तथा ॥११॥
गुह्यका भुजगा यक्षा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा शंकरं च नराधिप ॥१२॥
ते ययुर्हतविक्रान्ताः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम् ।
तत्राराध्य हरिं देवास्तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥१३॥
ब्रह्मा च विष्णुमाराध्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा वासुदेवमथास्तुवत् ॥१४॥

नरेश ! इसी समय जिनका पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था, वे इन्द्रसहित समस्त देवता, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंनर, गुह्यक, सर्प, यक्ष तथा जो अन्य स्वर्गवासी थे, वे ब्रह्मा और शंकरजीको आगे करके क्षीरसागरके उत्तम तटपर गये । वहाँ उस समय देवतालोग भगवान्‌की आराधना करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये । फिर ब्रह्माजीने गन्ध-पुष्प आदि सुन्दर उपचारोंद्वारा भगवान् वासुदेव विष्णुकी आराधना की और हाथ जोड़, प्रणाम करके, वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११—१४ ॥

ब्रह्मोवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नागपर्यङ्कशायिने ।
नमः श्रीकरसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥१५॥
नमस्ते योगनिद्राय योगान्तर्भाविताय च ।
तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१६॥
नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टमात्राय शार्ङ्गिणे ।
नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥१७॥
भक्तार्चितसुपादाय नमो योगप्रियाय वै ।
शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः ॥१८॥
सुकेशाय सुनेत्राय सुललाटाय चक्रिणे ।
सुवक्त्राय सुकर्णाय श्रीधराय नमो नमः ॥१९॥

सुवक्षसे सुनाभाय पद्मनाभाय वै नमः ।
सुभ्रुवे चारुदेहाय चारुदन्ताय शार्ङ्गिणे ॥२०॥
चारुजङ्घाय दिव्याय केशवाय नमो नमः ।
सुनखाय सुशान्ताय सुविद्याय गदाभृते ॥२१॥
धर्मप्रियाय देवाय वामनाय नमो नमः ।
असुरघ्नाय चोग्राय रक्षोघ्नाय नमो नमः ॥२२॥
देवानामार्तिनाशाय भीमकर्मकृते नमः ।
नमस्ते लोकनाथाय रावणान्तकृते नमः ॥२३॥

**ब्रह्माजी बोले**—जो क्षीरसागरमें निवास करते हैं, सर्पकी शय्यापर सोते हैं, जिनके दिव्य चरण भगवती श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलोंद्वारा सहलाये जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है । योग ही जिनकी निद्रा है, योगके द्वारा अन्तःकरणमें जिनका ध्यान किया जाता है और जो गरुडजीके ऊपर आसीन होते हैं, उन आप भगवान् गोविन्दको नमस्कार है । क्षीरसागरकी लहरें जिनके शरीरका स्पर्श करती हैं, जो 'शार्ङ्ग'नामक धनुष धारण करते हैं, जिनके चरण कमलके समान हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है । जिनके सुन्दर चरण भक्तोंद्वारा पूजित हैं, जिन्हें योग प्रिय है तथा जिनके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको बारंबार नमस्कार है । जिनके केश, नेत्र, ललाट, मुख और कान बहुत ही सुन्दर हैं, उन चक्रपाणि भगवान् श्रीधरको प्रणाम है । जिनके वक्षःस्थल और नाभि मनोहर हैं, उन भगवान् पद्मनाभको नमस्कार है । जिनकी भौंहें सुन्दर, शरीर मनोहर और दाँत उज्ज्वल हैं, उन भगवान् शार्ङ्गधन्वाको प्रणाम है । रुचिर पिंडलियोंवाले दिव्यरूपधारी भगवान् केशवको नमस्कार है । जो सुन्दर नखोंवाले, परमशान्त और सद्विद्याओंके आश्रय हैं, उन भगवान् गदाधरको नमस्कार है । धर्मप्रिय भगवान् वामनको बारंबार प्रणाम है । असुर और राक्षसोंके हन्ता उग्र ( नृसिंह ) रूपधारी भगवान्को नमस्कार है । देवताओंकी पीड़ा हरनेके लिये भयंकर कर्म करनेवाले तथा रावणके संहारक आप भगवान् जगन्नाथको प्रणाम है ॥ १५–२३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो हृषीकेशस्तुतोष परमेष्ठिना ।
स्वरूपं दर्शयित्वा तु पितामहमुवाच ह ॥२४॥
किमर्थं तु सुरैः सार्धमागतस्त्वं पितामह ।
यत्कार्यं ब्रूहि मे ब्रह्मन् यदर्थं संस्तुतस्त्वया ॥२५॥
इत्युक्तो देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
सर्वदेवगणैः सार्धं ब्रह्मा प्राह जनार्दनम् ॥२६॥

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हो गये और अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाकर वे भगवान् ब्रह्माजीसे बोले—'पितामह ! तुम देवताओंके साथ किसलिये यहाँ आये हो ? ब्रह्मन् ! जो कार्य आ पड़ा हो और जिसके लिये तुमने मेरी स्तुति की है, वह बताओ ।' समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार प्रश्न किये जानेपर सम्पूर्ण देवगणोंके साथ विराजमान ब्रह्माजीने उन जनार्दनसे कहा ॥ २४–२६ ॥

ब्रह्मोवाच

नाशितं तु जगत्सर्वं रावणेन दुरात्मना ।
सेन्द्राः पराजितास्तेन बहुशो रक्षसा विभो ॥२७॥
राक्षसैर्भक्षिता मर्त्या यज्ञाश्चापि विदूषिताः ।
देवकन्या हृतास्तेन बलाच्छतसहस्रशः ॥२८॥
त्वामृते पुण्डरीकाक्ष रावणस्य वधं प्रति ।
न समर्था यतो देवास्त्वमतस्तद्वधं कुरु ॥२९॥

**ब्रह्माजी बोले**—विभो ! दुरात्मा रावणने समस्त जगत्में भीषण संहार मचा रक्खा है । उस राक्षसने इन्द्रसहित देवताओंको कई बार परास्त किया है । रावणके पार्श्ववर्ती राक्षसोंने असंख्य मनुष्योंको खा लिया और उनके यज्ञोंको दूषित कर दिया है । स्वयं रावणने सैकड़ों-हजारों देवकन्याओंका अपहरण किया है । कमलनयन ! चूँकि आपको छोड़कर दूसरे देवता रावणका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः आप ही उसका वध करें ॥ २७–२९ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ।
शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् यद्वदामि हितं वचः ॥३०॥
सूर्यवंशोद्भवः श्रीमान् राजाऽऽसीद्भुवि वीर्यवान् ।
नाम्ना दशरथख्यातस्तस्य पुत्रो भवाम्यहम् ॥३१॥
रावणस्य वधार्थाय चतुर्धांशेन सत्तम ।
स्वांशैर्वानररूपेण सकला देवतागणाः ॥३२॥

वतार्यन्तां विश्वकर्तः स्यादेवं रावणक्षयः ।
इत्युक्तो देवदेवेन ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३३॥
देवाश्च ते प्रणम्याथ मेरुपृष्ठं तदा ययुः ।
स्वांशैर्वानररूपेण अवतेरुश्च भूतले ॥३४॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णु उनसे यों बोले—'ब्रह्मन्! मैं तुमलोगोंके हितके लिये जो बात कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। पृथ्वीपर सूर्यवंशमें उत्पन्न श्रीमान् दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो पराक्रमी राजा हैं, मैं उन्हींका पुत्र होऊँगा। सत्तम! रावणका वध करनेके लिये मैं अंशतः चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। विश्वस्रष्टा ब्रह्माजी! आप सभी देवताओंको आदेश दें कि वे अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हों। इस प्रकार करनेसे ही रावणका संहार होगा।' देवदेव भगवान्के यों कहनेपर लोक-पितामह ब्रह्माजी तथा अन्य देवता उनको प्रणाम करके मेरुशिखरपर चले गये और पृथ्वीतलपर अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हुए ॥ ३०—३४ ॥

अथापुत्रो दशरथो मुनिभिर्वेदपारगैः ।
इष्टिं तु कारयामास पुत्रप्राप्तिकरीं नृपः ॥३५॥
ततः सौवर्णपात्रस्थं हविरादाय पायसम् ।
वह्निः कुण्डात् समुत्तस्थौ नूनं देवेन नोदितः ॥३६॥
आदाय मुनयो मन्त्राच्चक्रुः पिण्डद्वयं शुभम् ।
दत्ते कौशल्यकैकेय्योर्द्वे पिण्डे मन्त्रमन्त्रिते ॥३७॥
ते पिण्डप्राशने काले सुमित्राया महामते ।
पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु सुभागिन्याः प्रयच्छतः ॥३८॥
ततस्ताः प्राशयामासु राजपत्न्यो यथाविधि ।
पिण्डान् देवकृतान् प्राश्य प्रापुर्गर्भाननिन्दितान् ॥

तदनन्तर पुत्रहीन राजा दशरथने वेदके पारगामी मुनियोंद्वारा पुत्रकी प्राप्ति करानेवाले 'पुत्रेष्टि' नामक यज्ञका अनुष्ठान कराया। तब भगवान्की प्रेरणासे अग्निदेव सुवर्ण-पात्रमें रक्खी हुई होमकी खीर हाथमें लिये कुण्डसे प्रकट हुए। मुनियोंने वह खीर ले ली और मन्त्र पढ़ते हुए उसके दो सुन्दर पिण्ड बनाये। उन्हें मन्त्रसे अभिमन्त्रितकर उन दोनों पिण्डोंको कौसल्या तथा कैकेयीके हाथमें दे दिया। महामते! पिण्ड-भोजनके समय उन दोनों रानियोंने दोनों पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा निकालकर सौभाग्यवती सुमित्राको दे दिया। फिर उन तीनों रानियोंने विधिपूर्वक उन क्षीरपिण्डोंका भोजन किया। उन देवनिर्मित पिण्डोंका भक्षण करनेके कारण उन सभी रानियोंने उत्तम गर्भ धारण किये ॥३५—३९॥

एवं विष्णुर्दशरथाज्जातस्तत्पत्निषु त्रिषु ।
स्वांशैर्लोकहितार्थैव चतुर्धा जगतीपते ॥४०॥
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतः शत्रुघ्न एव च ।
जातकर्मादिकं प्राप्य संस्कारं मुनिसंस्कृतम् ॥४१॥
मन्त्रपिण्डवशाद्योगं प्राप्य चेरुर्यथार्भकाः ।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव सह नित्यं विचेरतुः ॥४२॥
जन्मादिकृतसंस्कारौ पितुः प्रीतिकरौ नृप ।
ववृधाते महावीर्यौ श्रुतिशब्दातिलक्षणौ ॥४३॥
भरतः कैकयो राजन् भ्रात्रा सह गृहेऽवसत् ।
वेदशास्त्राणि बुबुधे शस्त्रशास्त्रं नृपोत्तम ॥४४॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार भगवान् विष्णु लोकहितके लिये ही राजा दशरथसे उनकी तीनों रानियोंके गर्भसे अपने चार अंशोंद्वारा वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार रूप धारण करके प्रकट हुए। मुनियोंद्वारा जातकर्मादि संस्कार हो जानेपर वे मन्त्रयुक्त पिण्डके अनुसार दो-दो एक साथ रहते हुए सामान्य बालकोंकी भाँति विचरने लगे। इनमें राम और लक्ष्मण सदा एक साथ रहते थे। नरपाल! जातकर्मादि संस्कारोंसे सम्पन्न हो, वे दोनों महान् शक्तिशाली भाई पिताकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए बढ़ने लगे। उनके शुभ लक्षण अश्रुतपूर्व एवं वर्णनातीत थे। अथवा वे वेद और व्याकरणादि शास्त्रोंमें पारंगत होनेके शुभलक्षणसे सुशोभित थे। राजन्! कैकेयीनन्दन भरत अपने अनुज शत्रुघ्नके साथ प्रायः घर-पर ही रहते थे। नृपोत्तम! उन्होंने वेदशास्त्र और अस्त्र-विद्या भी सीख ली थी ॥ ४०—४४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु विश्वामित्रो महातपाः ।
यागेन यष्टुमारेभे विधिना मधुसूदनम् ॥४५॥
स तु विघ्नेन यागोऽभूद्राक्षसैर्बहुशः पुरा ।
नेतुं स यागरक्षार्थं सम्प्राप्तो रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
विश्वामित्रो नृपश्रेष्ठ तत्पितुर्मन्दिरं शुभम् ।
दशरथस्तु तं दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय महामतिः ॥४७॥
अर्घ्यपाद्यादिविधिना विश्वामित्रमपूजयत् ।
स पूजितो मुनिः प्राह राजानं राजसंनिधौ ॥४८॥

शृणु राजन् दशरथ यदर्थमहमागतः ।
तत्कार्यं नृपशार्दूल कथयामि तवाग्रतः ॥४९॥
राक्षसैर्नाशितो यागो बहुशो मे दुरासदैः ।
यज्ञस्य रक्षणार्थं मे देहि त्वं रामलक्ष्मणौ ॥५०॥

इन्हीं दिनों महातपस्वी विश्वामित्रजीने यज्ञविधिसे भगवान् मधुसूदनका यजन आरम्भ किया। परंतु पहले उस यज्ञमें बहुत बार राक्षसोंद्वारा विघ्न डाला गया था; नृपश्रेष्ठ ! इसलिये इस बार विश्वामित्रजी यज्ञकी रक्षाके लिये राम तथा लक्ष्मणको ले जानेके निमित्त उनके पिताके सुन्दर महलमें आये। महाबुद्धिमान् दशरथजी उन्हें देखकर उठ खड़े हुए और अर्घ्य-पाद्यादि उपचारोंद्वारा उन्होंने विधिवत् उनकी पूजा की। इस प्रकार उनके द्वारा सम्मानित हो, मुनिने अन्य राजाओंके निकट विराजमान राजा दशरथसे कहा—'राजसिंह महाराज दशरथ ! सुनो—मैं जिस कार्यके लिये आया हूँ, वह तुम्हारे सामने निवेदन करता हूँ। मेरे यज्ञको दुर्धर्ष राक्षसोंने अनेक बार नष्ट किया है; अतः उसकी रक्षाके लिये तुम राम और लक्ष्मणको मुझे दे दो' ॥ ४५–५० ॥

राजा दशरथः श्रुत्वा विश्वामित्रवचो नृप ।
विषण्णवदनो भूत्वा विश्वामित्रमुवाच ह ॥५१॥
बालाभ्यां मम पुत्राभ्यां किं ते कार्यं भविष्यति ।
अहं त्वया सहागत्य शक्त्या रक्षामि ते मखम् ॥५२॥
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरब्रवीत् ।
रामोऽपि शक्नुते नूनं सर्वान्नाशयितुं नृप ॥५३॥
रामेणैव हि ते शक्या न त्वया राक्षसा नृप ।
अतो मे देहि रामं च न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥५४॥

नरेश्वर ! विश्वामित्रजीकी बात सुननेपर राजा दशरथके मुखपर विषाद छा गया। वे उनसे बोले—'भगवन् ! मेरे ये दोनों पुत्र अभी बालक हैं। इनसे आपका कौन-सा कार्य सिद्ध होगा ? मैं स्वयं आपके साथ चलकर यथाशक्ति यज्ञकी रक्षा करूँगा।' राजाकी बात सुनकर मुनि उनसे बोले—'नरपाल ! राम भी उन सब राक्षसोंका नाश कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। सच तो यह है कि रामके द्वारा ही वे राक्षस मारे जा सकते हैं, तुम्हारेद्वारा नहीं; अतः राजन् ! तुम्हें रामको ही मुझे दे देना चाहिये और किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये' ॥ ५१–५४ ॥

इत्युक्तो मुनिना तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
तूष्णीं स्थित्वा क्षणं राजा मुनिवर्यमुवाच ह ॥५५॥
यद्ब्रवीमि मुनिश्रेष्ठ प्रसन्नस्त्वं निबोध मे ।
राजीवलोचनं राममहं दास्ये सहानुजम् ॥५६॥
किं त्वस्य जननी ब्रह्मन् अदृष्ट्वैनं मरिष्यति ।
अतोऽहं चतुरङ्गेण बलेन सहितो मुने ॥५७॥
आगत्य राक्षसान् हन्मीत्येवं मे मनसि स्थितम् ।

बुद्धिमान् विश्वामित्रमुनिके द्वारा यों कहे जानेपर राजा क्षणभरके लिये चुप हो गये और फिर उन मुनीश्वरसे बोले—'मुनिश्रेष्ठ ! मैं जो कह रहा हूँ, उसे आप प्रसन्नतापूर्वक सुनें। मैं कमललोचन रामको लक्ष्मणके सहित आपको दे तो दूँगा, परंतु ब्रह्मन् ! इनकी माता इन्हें देखे बिना मर जायगी। इसलिये मुने ! मेरा ऐसा विचार है कि मैं स्वयं ही चतुरङ्गिणी सेनाके साथ चलकर सब राक्षसोंका वध करूँ' ॥ ५५–५७½ ॥

विश्वामित्रः पुनः प्राह राजानममितौजसम् ॥५८॥
नाज्ञो रामो नृपश्रेष्ठ स सर्वज्ञः समः क्षमः ।
शेषनारायणावेतौ तव पुत्रौ न संशयः ॥५९॥
दुष्टानां निग्रहार्थाय शिष्टानां पालनाय च ।
अवतीर्णौ न संदेहो गृहे तव नराधिप ॥६०॥
न मात्रा न त्वया राजन् शोकः कार्योऽत्र चाण्वपि ।
निःक्षेपे च महाराज अर्पयिष्यामि ते सुतौ ॥६१॥

विश्वामित्रजी यह सुनकर उन अमित-तेजस्वी राजासे पुनः बोले—'नृपश्रेष्ठ ! रामचन्द्र अबोध नहीं हैं; वे सर्वज्ञ, समदर्शी और परम समर्थ हैं। इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण साक्षात् नारायण एवं शेषनाग हैं। नराधिप ! दुष्टोंको दण्ड देने और सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये ही ये दोनों आपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है। राजन् ! इनकी माता तथा आपको इस विषयमें थोड़ी-सी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। महाराज ! ये मेरे पास धरोहरके तौरपर रहेंगे। यज्ञ पूर्ण हो जानेपर मैं इन दोनोंको आपके हाथमें दे दूँगा' ॥ ५८–६१ ॥

इत्युक्तो दशरथस्तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
तच्छापभीतो मनसा नीयतामित्यभाषत ॥६२॥

कृच्छ्रात्पित्रा विनिर्मुक्तं राममादाय सानुजम् ।
ततः सिद्धाश्रमं राजन् सम्प्रतस्थे स कौशिकः ॥६३॥
तं प्रस्थितमथालोक्य राजा दशरथस्तदा ।
अनुव्रज्याब्रवीदेतद् वचो दशरथस्तदा ॥६४॥
अपुत्रोऽहं पुरा ब्रह्मन् बहुभिः काम्यकर्मभिः ।
मुनिप्रसादादधुना पुत्रवानस्मि सत्तम ॥६५॥
मनसा तद्वियोगं तु न शक्ष्यामि विशेषतः ।
त्वमेव जानासि मुने नीत्वा शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥६६॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके यों कहनेपर दशरथजी मन-ही-मन उनके शापसे डरते हुए बोले—'अच्छा, इन्हें ले जाइये ।' राजन्! पिताके द्वारा बड़ी कठिनाईसे छोड़े गये श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले विश्वामित्रमुनि तब अपने सिद्धाश्रमकी ओर प्रस्थित हुए । उन्हें जाते देख उस समय राजा दशरथ कुछ दूर पीछे-पीछे गये और तब मुनिसे इस प्रकार बोले—'साधुश्रेष्ठ! ब्रह्मन्! मैं पहले दीर्घकालतक पुत्रहीन रहा; मुनियोंकी कृपासे अनेक सकाम यज्ञकर्मोंका अनुष्ठान करके अब पुत्रवान् हो सका हूँ । अतः मुने! मैं मनसे भी इन पुत्रोंका अधिक कालतक वियोग नहीं सह सकूँगा, यह बात आप ही जानते हैं; अतः इन्हें ले जाकर फिर यथासम्भव शीघ्र मेरे पास पहुँचा दीजियेगा' ॥ ६२—६६ ॥

इत्येवमुक्तो राजानं विश्वामित्रोऽब्रवीत्पुनः ।
समाप्तयज्ञश्च पुनर्नेष्ये रामं च लक्ष्मणम् ॥६७॥
सत्यपूर्वं तु दास्यामि न चिन्तां कर्तुमर्हसि ।

उनके यों कहनेपर विश्वामित्रजीने पुनः राजासे कहा—'अपना यज्ञ समाप्त हो जानेपर मैं पुनः श्रीराम और लक्ष्मणको यहाँ ले आऊँगा तथा अपने वचनको सत्य करते हुए इन्हें वापस कर दूँगा, आप चिन्ता न करें' ॥६७½॥

इत्युक्तः प्रेषयामास रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥६८॥
अनिच्छन्नपि राजासौ मुनिशापभयान्नृपः ।
विश्वामित्रस्तु तौ गृह्य अयोध्याया ययौ शनैः ॥६९॥

विश्वामित्रजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजाने उनके शापकी आशङ्कासे भयभीत हो, इच्छा न रहते हुए भी, श्रीराम और लक्ष्मणको उनके साथ भेज दिया। विश्वामित्रजी उन दोनों भाइयोंको साथ ले धीरे-धीरे अयोध्यासे बाहर निकले ॥ ६८-६९ ॥

सरय्वास्तीरमासाद्य गच्छन्नेव स कौशिकः ।
तयोः प्रीत्या स राजेन्द्र द्वे विद्ये प्रथमं ददौ ॥७०॥
बलामतिबलां चैव समन्त्रे च ससंग्रहे ।
क्षुत्पिपासापनयने पुनश्चैव महामतिः ॥७१॥
अस्त्रग्राममशेषं तु शिक्षयित्वा तु तौ तदा ।
आश्रमाणि च दिव्यानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥७२॥
दर्शयित्वा उषित्वा च पुण्यस्थानेषु सत्तमः ।
गङ्गामुत्तीर्य शोणस्य तीरमासाद्य पश्चिमम् ॥७३॥

राजेन्द्र! सरयूके तटपर पहुँचकर महामति विश्वामित्रजीने चलते-चलते ही श्रीराम और लक्ष्मणको प्रेमवश पहले 'बला' और 'अतिबला' नामकी दो विद्याएँ प्रदान कीं, जो क्षुधा और पिपासाको दूर करनेवाली हैं । मुनिने उन विद्याओंको मन्त्र और संग्रह ( उपसंहार ) पूर्वक सिखाया। फिर उसी समय उन्हें सम्पूर्ण अस्त्र-समुदायकी शिक्षा देकर वे साधुश्रेष्ठ मुनि श्रीराम और लक्ष्मणको अनेक आत्मज्ञानी मुनीश्वरोंके दिव्य आश्रम दिखाते और पवित्र तीर्थस्थानोंमें निवास करते हुए, गङ्गा नदीको पारकर शोणभद्रके पश्चिम तटपर जा पहुँचे ॥ ७०—७३ ॥

मुनिधार्मिकसिद्धांश्च पश्यन्तौ रामलक्ष्मणौ ।
ऋषिभ्यश्च वरान् प्राप्य तेन नीतौ नृपात्मजौ ॥७४॥
ताटकाया वनं घोरं मृत्योर्मुखमिवापरम् ।
गते तत्र नृपश्रेष्ठ विश्वामित्रो महातपाः ॥७५॥
राममक्लिष्टकर्माणमिदं वचनमब्रवीत् ।
राम राम महाबाहो ताटका नाम राक्षसी ॥७६॥
रावणस्य नियोगेन वसत्यस्मिन् महावने ।
तया मनुष्या बहवो मुनिपुत्रा मृगास्तथा ॥७७॥
निहता भक्षिताश्चैव तस्मात्तां वध सत्तम ।

मार्गमें मुनियों, धर्मात्माओं और सिद्धोंका दर्शन करते हुए तथा ऋषियोंसे वर प्राप्तकर, राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके द्वारा उस ताड़कावनमें ले जाये गये, जो यमराजके दूसरे मुखके समान भयंकर था। नृपश्रेष्ठ! वहाँ पहुँचकर महातपस्वी विश्वामित्रने अनायास ही महान्

कर्म करनेवाले रामसे कहा—'महाबाहो राम ! इस महान् वनमें रावणकी आज्ञासे 'ताड़का' नामकी एक राक्षसी रहती है। उसने बहुत-से मनुष्यों, मुनिपुत्रों और मृगोंको मारकर अपना आहार बना लिया है; अतः सत्तम ! तुम उसका वध करो' ॥ ७४–७७½ ॥

इत्येवमुक्तो मुनिना रामस्तं मुनिमब्रवीत् ॥७८॥
कथं हि स्त्रीवधं कुर्यामहमद्य महामुने ।
स्त्रीवधे तु महापापं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७९॥
इति रामवचः श्रुत्वा विश्वामित्र उवाच तम् ।
तस्यास्तु निधनाद्राम जनाः सर्वे निराकुलाः ॥८०॥
भवन्ति सततं तस्मात्तस्याः पुण्यप्रदो वधः ।

मुनिवर विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर रामने उनसे कहा—'महामुने ! आज मैं स्त्रीका वध कैसे करूँ? क्योंकि बुद्धिमान् लोग स्त्रीवधमें महान् पाप बतलाते हैं।' श्रीरामकी यह बात सुनकर विश्वामित्रने उनसे कहा—'राम ! उस ताड़काको मारनेसे सभी मनुष्य सदाके लिये निर्भय हो जायँगे; इसलिये उसका वध करना तो पुण्यदायक है' ॥ ७८–८०½ ॥

इत्येवं वादिनि मुनौ विश्वामित्रे निशाचरी ॥८१॥
आगता सुमहाघोरा ताटका विवृतानना ।
मुनिना प्रेरितो रामस्तां दृष्ट्वा विवृताननाम् ॥८२॥
उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं
श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां
पत्रिणा सह मुमोच राघवः ॥८३॥
शरं संधाय वेगेन तेन तस्या उरःस्थलम् ।
विपाटितं द्विधा राजन् सा पपात ममार च ॥८४॥

मुनिवर विश्वामित्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि वह महाघोर राक्षसी ताड़का मुँह फैलाये वहाँ आ पहुँची। तब मुनिकी प्रेरणासे रामने उसकी ओर देखा। वह मुँह बाये आ रही थी। उसकी छड़ी-सरीखी एक बाँह ऊपरकी ओर उठी थी। कटिप्रदेशमें मेखला (करधनी) की जगह लिपटी हुई मनुष्यकी अँतड़ी लटक रही थी। इस रूपमें आती हुई उस निशाचरीको देखकर श्रीरामने स्त्रीवधके प्रति होनेवाली घृणा और बाणको एक साथ ही छोड़ दिया। राजन् ! उन्होंने धनुषपर बाण रखकर उसे बड़े वेगसे छोड़ा। उस बाणने ताड़काकी छातीके दो टुकड़े कर दिये। फिर तो वह धरतीपर गिरी और मर गयी ॥ ८१–८४ ॥

घातयित्वा तु तामेवं तावानीय मुनिस्तु तौ ।
प्रापयामास तं तत्र नानाऋषिनिषेवितम् ॥८५॥
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ।
नानानिर्झरतोयाढ्यं विन्ध्यशैलान्तरस्थितम् ॥८६॥
शाकमूलफलोपेतं दिव्यं सिद्धाश्रमं स्वकम् ।
रक्षार्थं तावुभौ स्थाप्य शिक्षयित्वा विशेषतः ॥८७॥
ततश्चारब्धवान् यागं विश्वामित्रो महातपाः ।

इस प्रकार ताड़काका वध करवाकर मुनि श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको अपने उस दिव्य सिद्धाश्रमपर ले आये, जो बहुतसे मुनियोंद्वारा सेवित था। वह आश्रम विन्ध्य पर्वतकी मध्यवर्तिनी उपत्यकामें विद्यमान था। वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष और लतासमूह फैले हुए थे और भाँति-भाँतिके पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह आश्रम अनेकानेक झरनोंके जलसे सुशोभित तथा शाक एवं मूल-फलादिसे सम्पन्न था। वहाँ उन दोनों राजकुमारोंको विशेषरूपसे शिक्षा देकर मुनिने उनको यज्ञकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया। तदनन्तर महान् तपस्वी विश्वामित्रने यज्ञ आरम्भ किया ॥ ८५–८७½ ॥

दीक्षां प्रविष्टे च मुनौ विश्वामित्रे महात्मनि ॥८८॥
यज्ञे तु वितते तत्र कर्म कुर्वन्ति ऋत्विजः ।
मारीचश्च सुबाहुश्च बहवश्चान्यराक्षसाः ॥८९॥
आगता यागनाशाय रावणेन नियोजिताः ।
तानागतान् स विज्ञाय रामः कमललोचनः ॥९०॥
शरेण पातयामास सुबाहुं धरणीतले ।
असृक्प्रवाहं वर्षन्तं मारीचं भल्लकेन तु ॥९१॥
प्रताड्य नीतवानब्धिं यथा पर्णं तु वायुना ।
शेषांस्तु हतवान् रामो लक्ष्मणश्च निशाचरान् ॥९२॥

महात्मा विश्वामित्र ज्यों-ही यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए, उस यज्ञका कार्य चालू हो गया। उसमें ऋत्विज्गण अपना-अपना कार्य करने लगे। तब रावणके द्वारा नियुक्त मारीच, सुबाहु तथा अन्य बहुत-से राक्षसगण यज्ञ नष्ट करनेके लिये वहाँ आये। उन सबको वहाँ आया जान कमलनयन श्रीरामने

बाण मारकर 'सुबाहु'नामक राक्षसको तो धराशायी कर दिया। वह अपने शरीरसे रक्तकी वर्षा-सी करने लगा। इसके बाद 'भल्ल'नामक बाणका प्रहार करके श्रीरामने मारीचको उसी तरह समुद्रके तटपर फेंक दिया, जैसे वायु पत्तेको उड़ाकर दूर फेंक दे। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंने मिलकर शेष सभी राक्षसोंका वध कर डाला ॥ ८८—९२ ॥

रामेण रक्षितमखो विश्वामित्रो महायशाः ।
समाप्य यागं विधिवत् पूजयामास ऋत्विजान्॥९३॥
सदस्यानपि सम्पूज्य यथार्हं च ह्यरिंदम ।
रामं च लक्ष्मणं चैव पूजयामास भक्तितः ॥९४॥
ततो देवगणस्तुष्टो यज्ञभागेन सत्तम ।
ववर्ष पुष्पवर्षं तु रामदेवस्य मूर्धनि ॥९५॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा यज्ञकी रक्षा होती रहनेसे महायशस्वी विश्वामित्रने उस यज्ञको विधिवत् पूर्ण करके ऋत्विजोंका दक्षिणादिसे पूजन किया। शत्रुदमन! उस यज्ञके सदस्योंका भी यथोचित समादर करके विश्वामित्रजीने श्रीराम और लक्ष्मणकी भी भक्तिपूर्वक पूजा एवं प्रशंसा की। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज! तदनन्तर उस यज्ञमें मिले हुए भागसे संतुष्ट देवताओंने भगवान् रामके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ९३—९५ ॥

निवार्य राक्षसभयं कारयित्वा तु तन्मखम् ।
श्रुत्वा नानाकथाः पुण्या रामो भ्रातृसमन्वितः ॥९६॥
तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यत्र तिष्ठति ।
व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्त्रा शप्ता हि सा पुरा ॥९७॥
पाषाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात् ।
अहल्या मुक्तशापा च जगाम गौतमं प्रति ॥९८॥

इस प्रकार भाई लक्ष्मणके साथ विनयशील श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंसे प्राप्त भयका निवारण करके, विश्वामित्रका यज्ञ पूर्ण कराकर, नाना प्रकारकी पावन कथाएँ सुनते हुए मुनिके द्वारा उस स्थानपर लाये गये, जहाँ शिला बनी हुई अहल्या थी। राजेन्द्र! पूर्वकालमें इन्द्रके साथ व्यभिचार करनेसे अपने पति गौतमका शाप प्राप्तकर अहल्या पत्थर हो गयी थी। उस समय रामका दर्शन पाते ही वह शापसे मुक्त हो पुनः अपने पति गौतमके पास चली गयी ॥ ९६—९८ ॥

विश्वामित्रस्ततस्तत्र चिन्तयामास वै क्षणम् ।
कृतदारो मया नेयो रामः कमललोचनः ॥९९॥
इति संचिन्त्य तौ गृह्य विश्वामित्रो महातपाः ।
शिष्यैः परिवृतोऽनेकैर्जगाम मिथिलां प्रति ॥१००॥

तदनन्तर विश्वामित्रजीने वहाँ क्षणभर विचार किया कि मुझे कमललोचन रामचन्द्रजीका विवाह करके इन्हें अयोध्या ले चलना चाहिये। यह सोचकर अनेक शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी विश्वामित्रजी श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले मिथिलाकी ओर चल दिये ॥ ९९-१०० ॥

नानादेशादथायाता जनकस्य निवेशनम् ।
राजपुत्रा महावीर्याः पूर्वं सीताभिकाङ्क्षिणः ॥१०१॥
तान् दृष्ट्वा पूजयित्वा तु जनकश्च यथार्हतः ।
यत्सीतायाः समुत्पन्नं धनुर्माहेश्वरं महत् ॥१०२॥
अर्चितं गन्धमालाभी रम्यशोभासमन्विते ।
रङ्गे महति विस्तीर्णे स्थापयामास तद्धनुः ॥१०३॥

इनके जानेसे पूर्व ही वहाँ सीतासे विवाह करनेकी इच्छावाले अनेक महान् पराक्रमी राजकुमार नाना देशोंसे जनकके यहाँ पधारे थे। उन सबको आया देख राजा जनकने उनका यथोचित सत्कार किया तथा जो सीताके स्वयंवरके लिये ही प्रकट हुआ था, उस महान् माहेश्वर धनुषका चन्दन और पुष्प आदिसे पूजन करके उसे रमणीय शोभासे सम्पन्न सुविस्तृत रङ्गमञ्चपर लाकर रखवाया ॥ १०१—१०३ ॥

उवाच च नृपान् सर्वांस्तदोच्चैर्जनको नृपः ।
आकर्षणादिदं येन धनुर्भग्नं नृपात्मजाः ॥१०४॥
तस्येयं धर्मतो भार्या सीता सर्वाङ्गशोभना ।
इत्येवं श्राविते तेन जनकेन महात्मना ॥१०५॥
क्रमादादाय ते तत्तु सज्यीकर्तुमथाभवन् ।
धनुषा ताडिताः सर्वे क्रमात्तेन महीपते ॥१०६॥
विधूय पतिता राजन् विलज्जास्तत्र पार्थिवाः ।
तेषु भग्नेषु जनकस्तद्धनुस्त्र्यम्बकं नृप ॥१०७॥
संस्थाप्य स्थितवान् वीरो रामागमनकाङ्क्षया ।
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो मिथिलाधिपतेर्गृहम् ॥१०८॥

तब राजा जनकने वहाँ पधारे हुए उन समस्त राजाओंके प्रति उच्चस्वरसे कहा—'राजकुमारो!

जिसके खींचनेसे यह धनुष टूट जायगा, यह सर्वाङ्गसुन्दरी सीता उसीकी धर्मपत्नी हो सकती है। महात्मा जनकके द्वारा ऐसी बात सुनायी जानेपर वे नरेशगण क्रमशः उस धनुषको ले-लेकर चढ़ानेका प्रयत्न करने लगे; परंतु बारी-बारीसे उस धनुषद्वारा ही झटके खाकर काँपते हुए वे दूर गिर जाते थे। राजन्! इससे उन सभी भूपालोंको वहाँ बड़ी लज्जा हुई। नरेश्वर! उन सबके निराश हो जानेपर वीर राजा जनक उस शिव-धनुषको यथास्थान रखवाकर श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षामें वहाँ ही ठहरे रहे। इतनेमें विश्वामित्रजी मिथिला-नरेशके राजभवनमें आ पहुँचे ॥ १०४—१०८ ॥

**जनकोऽपि च तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं गृहागतम् ।**
**रामलक्ष्मणसंयुक्तं शिष्यैश्चाभिगतं तदा ॥१०९॥**
**तं पूजयित्वा विधिवत्प्राज्ञं विप्रानुयायिनम् ।**
**रामं रघुपतिं चापि लावण्यादिगुणैर्युतम् ॥११०॥**
**शीलाचारगुणोपेतं लक्ष्मणं च महामतिम् ।**
**पूजयित्वा यथान्यायं जनकः प्रीतमानसः ॥१११॥**
**हेमपीठे सुखासीनं शिष्यैः पूर्वापरैर्वृतम् ।**
**विश्वामित्रमुवाचाथ किं कर्तव्यं मयेति सः ॥११२॥**

जनकने श्रीराम, लक्ष्मण तथा शिष्योंसे युक्त विश्वामित्रजीको अपने भवनमें आया देख उस समय उनकी विधिवत् पूजा की। फिर ब्राह्मणका अनुसरण करनेवाले तथा लावण्य आदि गुणोंसे लक्षित रघुवंशनाथ बुद्धिमान् श्रीराम एवं शील-सदाचारादि गुणोंसे युक्त महामति लक्ष्मणका भी यथायोग्य पूजन करके जनकजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् सोनेके सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठकर छोटे-बड़े शिष्योंसे घिरे हुए मुनिवर विश्वामित्रसे वे बोले—'भगवन्! अब मुझे क्या करना चाहिये' ॥ १०९—११२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

**इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनिः प्राह महीपतिम् ।**
**एष रामो महाराज विष्णुः साक्षान्महीपतिः ॥११३॥**
**रक्षार्थं विष्टपानां तु जातो दशरथात्मजः ।**
**अस्मै सीतां प्रयच्छ त्वं देवकन्यामिव स्थिताम् ॥११४॥**
**अस्या विवाहे राजेन्द्र धनुर्भङ्गमुदीरितम् ।**
**तदानय भवधनुरर्चयस्व जनाधिप ॥११५॥**

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—राजा जनककी यह बात सुनकर मुनिने उनसे कहा—'महाराज! ये राजा राम साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। (तीनों) लोकोंकी रक्षाके लिये ये दशरथके पुत्ररूपसे प्रकट हुए हैं; अतः देवकन्याके समान सुशोभित होनेवाली सीताका ब्याह तुम इन्हींके साथ कर दो। परंतु राजेन्द्र! नराधिप! तुमने सीताके विवाहमें धनुष तोड़नेकी शर्त रक्खी है; अतः अब उस शिवधनुषको लाकर यहाँ उसकी अर्चना करो' ॥ ११३—११५ ॥

**तथेत्युक्त्वा च राजा हि भवचापं तदद्भुतम् ।**
**अनेकभूभुजां भङ्गि स्थापयामास पूर्ववत् ॥११६॥**
**ततो दशरथसुतो विश्वामित्रेण चोदितः ।**
**तेषां मध्यात्समुत्थाय रामः कमललोचनः ॥११७॥**
**प्रणम्य विप्रान् देवांश्च धनुरादाय तत्तदा ।**
**सज्यं कृत्वा महाबाहुर्ज्याघोषमकरोत्तदा ॥११८॥**
**आकृष्यमाणं तु बलात्तेन भग्नं महद्धनुः ।**
**सीता च मालामादाय शुभां रामस्य मूर्धनि ॥११९॥**
**क्षिप्त्वा संवरयामास सर्वक्षत्रियसंनिधौ ।**
**ततस्ते क्षत्रियाः क्रुद्धा राममासाद्य सर्वतः ॥१२०॥**
**मुमुचुः शरजालानि गर्जयन्तो महाबलाः ।**
**तान्निरीक्ष्य ततो रामो धनुरादाय वेगवान् ॥१२१॥**
**ज्याघोषतलघोषेण कम्पयामास तान्नृपान् ।**
**चिच्छेद शरजालानि तेषां स्वास्त्रै रथांस्ततः ॥१२२॥**
**धनूंषि च पताकाश्च रामश्चिच्छेद लीलया ।**
**संनह्य स्वबलं सर्वं मिथिलाधिपतिस्ततः ॥१२३॥**
**जामातरं रणे रक्षन् पार्ष्णिग्राहो बभूव ह ।**
**लक्ष्मणश्च महावीरो विद्राव्य युधि तान्नृपान्॥१२४॥**
**हस्त्यश्वान्जगृहे तेषां स्यन्दनानि बहूनि च ।**
**वाहनानि परित्यज्य पलायनपरान्नृपान् ॥१२५॥**
**तान्निहन्तुं च धावत्स पृष्ठतो लक्ष्मणस्तदा ।**
**मिथिलाधिपतिस्तं च वारयामास कौशिकः ॥१२६॥**

तब 'बहुत अच्छा' कहकर राजाने अनेक भूपालोंका मान भङ्ग करनेवाले उस अद्भुत शिवधनुषको पूर्ववत् वहाँ रखवाया। तत्पश्चात् कमललोचन दशरथनन्दन राम विश्वा-

मित्रजीके आज्ञा देनेपर राजाओंके बीचसे उठे और ब्राह्मणों तथा देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने वह धनुष उठा लिया। फिर उन महाबाहुने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसकी टंकार की। रामके द्वारा बलपूर्वक खींचे जानेसे वह महान् धनुष सहसा टूट गया। तब सीताजी सुन्दर माला लेकर आयीं और उन सम्पूर्ण क्षत्रियोंके निकट भगवान् रामके गलेमें वह माला डालकर उन्होंने उनका विधिपूर्वक पतिरूपसे वरण किया। इससे वहाँ आये हुए सभी महाबली क्षत्रिय कुपित हो गये और श्रीरामचन्द्रजीपर सब ओरसे आक्रमण एवं गर्जना करते हुए उनपर बाण बरसाने लगे। उन्हें यों करते देख श्रीरामने भी वेगपूर्वक हाथमें धनुष ले प्रत्यञ्चाकी टंकारसे उन सभी नरेशोंको कम्पित कर दिया और अपने अस्त्रोंसे उन सबके बाण तथा रथ काट डाले। इतना ही नहीं, श्रीरामने लीलापूर्वक ही उनके धनुष तथा पताकाएँ भी काट डालीं। तदनन्तर मिथिलानरेश भी अपनी सारी सेना तैयार करके उस संग्राममें जामाता श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पृष्ठपोषक हो गये। इधर, महावीर लक्ष्मणने भी युद्धमें उन राजाओंको मार भगाया तथा उनके हाथी, घोड़े और बहुत-से रथ अपने अधिकारमें कर लिये। अपने वाहन छोड़कर भागे जाते हुए उन राजाओंको मार डालनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे दौड़े। तब उन्हें मिथिलानरेश जनक और विश्वामित्रने मना कर दिया ॥ ११६–१२६ ॥

**जितसेनं महावीरं रामं भ्रात्रा समन्वितम् ।**
**आदाय प्रविवेशाथ जनकः स्वगृहं शुभम् ॥१२७॥**
**दूतं च प्रेषयामास तदा दशरथाय सः ।**
**श्रुत्वा दूतमुखात् सर्वं विदितार्थः स पार्थिवः॥१२८॥**
**सभार्यः ससुतः श्रीमान् हस्त्यश्वरथवाहनः ।**
**मिथिलामाजगामाशु स्वबलेन समन्वितः ॥१२९॥**
**जनकोऽप्यस्य सत्कारं कृत्वा स्वां च सुतां ततः।**
**विधिवत्कृतशुल्कां तां ददौ रामाय पार्थिव ॥१३०॥**
**अपराश्च सुतास्तिस्रो रूपवत्यः स्वलंकृताः ।**
**त्रिभ्यस्तु लक्ष्मणादिभ्यः स्वकन्या विधिवद्ददौ १३१**

राजाओंकी सेनापर विजय पाये हुए महावीर श्रीरामको लक्ष्मणसहित साथ ले राजा जनकने अपने सुन्दर भवनमें प्रवेश किया। उसी समय उन्होंने राजा दशरथके पास एक दूत भेजा। दूतके मुखसे सारी बातें सुनकर राजाको सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। तब श्रीमान् राजा दशरथ अपनी रानियों और पुत्रोंको साथ ले, हाथी, घोड़े और रथ आदि वाहनोंसे सम्पन्न हो, सेनाके साथ तुरंत ही मिथिलामें पधारे। राजन्! जनकने भी राजा दशरथका भलीभाँति सत्कार किया। फिर विधिपूर्वक जिसके पाणिग्रहणकी शर्त पूरी की जा चुकी थी, उस अपनी कन्या सीताको रामके हाथमें दे दिया। तत्पश्चात् अपनी अन्य तीन कन्याओंको भी, जो परमसुन्दरी और आभूषणोंसे अलंकृत थीं, लक्ष्मण आदि तीन भाइयोंके साथ विधिपूर्वक ब्याह दिया ॥ १२७–१३१ ॥

**एवं कृतविवाहोऽसौ रामः कमललोचनः ।**
**भ्रातृभिर्मातृभिः सार्धं पित्रा बलवता सह ॥१३२॥**
**दिनानि कतिचित्तत्र स्थितो विविधभोजनैः ।**
**ततोऽयोध्यापुरीं गन्तुमुत्सुकं ससुतं नृपम् ।**
**दृष्ट्वा दशरथं राजा सीतायाः प्रददौ वसु ॥१३३॥**
**रत्नानि दिव्यानि बहूनि दत्त्वा**
**रामाय वस्त्राण्यतिशोभनानि ।**
**हस्त्यश्वदासानपि कर्मयोग्यान्**
**दासीजनांश्च प्रवराः स्त्रियश्च ॥१३४॥**
**सीतां सुशीलां बहुरत्नभूषितां**
**रथं समारोप्य सुतां सुरूपाम् ।**
**वेदादिघोषैर्बहुमङ्गलैश्च**
**सम्प्रेषयामास स पार्थिवो बली ॥१३५॥**
**प्रेषयित्वा सुतां दिव्यां नत्वा दशरथं नृपम् ।**
**विश्वामित्रं नमस्कृत्य जनकः संनिवृत्तवान् ॥१३६॥**
**तस्य पत्न्यो महाभागाः शिक्षयित्वा सुतां तदा।**
**भर्तृभक्तिं कुरु शुभे श्वश्रूणां श्वशुरस्य च ॥१३७॥**
**श्वश्रूणामर्पयित्वा तां निवृत्ता विविशुः पुरम् ।**

इस प्रकार विवाह कर लेनेके पश्चात् कमललोचन श्रीराम अपने भ्राताओं, माताओं और बलवान् पिताके साथ कुछ दिनोंतक नाना प्रकारके भोजनादिसे सत्कृत हो मिथिलापुरीमें रहे। फिर महाराज दशरथको अपने पुत्रोंके साथ अयोध्या जानेके लिये उत्कण्ठित देख राजा जनकने सीताके लिये बहुत-सा धन और दिव्य रत्न देकर श्रीरामके लिये अत्यन्त

सुन्दर वस्त्र, क्रियाकुशल हाथी, घोड़े और दास दिये एवं दासीके रूपमें बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ भी अर्पित कीं। उन बलवान् भूपालने बहुत-से रत्नमय आभूषणोंद्वारा विभूषित सुन्दरी साध्वी पुत्री सीताको रथपर चढ़ाकर वेदध्वनि तथा अन्य माङ्गलिक शब्दोंके साथ विदा किया। अपनी दिव्य कन्या सीताको विदा कर राजा जनक दशरथजी तथा विश्वामित्र [ एवं वसिष्ठ ] मुनिको प्रणाम करके लौट आये। तब जनककी अति सौभाग्यशालिनी रानियाँ भी अपनी कन्याओंको यह शिक्षा देकर कि 'शुभे! तुम पतिकी भक्ति तथा सास-ससुरकी सेवा करना' उन्हें उनकी सासुओंको सौंप, नगरमें लौट आयीं॥ १३२—१३७½ ॥

**ततस्तु रामं गच्छन्तमयोध्यां प्रबलान्वितम् ॥१३८॥**
**श्रुत्वा परशुरामो वै पन्थानं संरुरोध ह ।**
**तं दृष्ट्वा राजपुरुषाः सर्वे ते दीनमानसाः ॥१३९॥**
**आसीद्दशरथश्चापि दुःखशोकपरिप्लुतः ।**
**सभार्यः सपरीवारो भार्गवस्य भयान्नृप ॥१४०॥**
**ततोऽब्रवीज्जनान् सर्वान् राजानं च सुदुःखितम् ।**
**वसिष्ठश्चोर्जिततपा ब्रह्मचारी महामुनिः ॥१४१॥**

कहते हैं, तदनन्तर यह सुनकर कि 'राम अपनी प्रबल सेनाके साथ अयोध्यापुरीको लौट रहे हैं', परशुरामने उनका मार्ग रोक लिया। उन्हें देखकर सभी राजपुरुषोंका हृदय कातर हो गया। नरेश्वर! परशुरामके भयसे राजा दशरथ भी अपनी स्त्री तथा परिवारके साथ दुःखी और शोकमग्न हो गये। तब उत्कृष्ट तपस्वी ब्रह्मचारी महामुनि वसिष्ठजी दुःखी राजा दशरथ तथा अन्य सब लोगोंसे बोले॥ १३८—१४१ ॥

वसिष्ठ उवाच

**युष्माभिरत्र रामार्थं न कार्यं दुःखमण्वपि ॥१४२॥**
**पित्रा वा मातृभिर्वापि अन्यैर्भृत्यजनैरपि ।**
**अयं हि नृपते रामः साक्षाद्विष्णुस्तु ते गृहे ॥१४३॥**
**जगतः पालनार्थाय जन्मप्राप्तो न संशयः ।**
**यस्य संकीर्त्य नामापि भवभीतिः प्रणश्यति ॥१४४॥**
**ब्रह्म मूर्तं स्वयं यत्र भयादेस्तत्र का कथा ।**
**यत्र संकीर्त्यते रामकथामात्रमपि प्रभो ॥१४५॥**
**नोपसर्गभयं तत्र नाकालमरणं नृणाम् ।**

**वसिष्ठजीने कहा**—तुमलोगोंको यहाँ श्रीरामके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, भाई अथवा अन्य भृत्यजन थोड़ा-सा भी खेद न करें। नरपाल! ये श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। समस्त जगत्की रक्षाके लिये ही इन्होंने तुम्हारे घरमें अवतार लिया है, इसमें संदेह नहीं है। जिनके नाममात्रका कीर्तन करनेसे संसाररूपी भय निवृत्त हो जाता है, वे परमेश्वर ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान हैं, वहाँ भय आदिकी चर्चा भी कैसे की जा सकती है। प्रभो! जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी कथामात्रका भी कीर्तन होता है, वहाँ मनुष्योंके लिये संक्रामक बीमारी और अकालमृत्युका भय नहीं होता॥१४२—१४५½॥

**इत्युक्ते भार्गवो रामो राममाहाग्रतः स्थितम् ॥१४६॥**
**त्यज त्वं रामसंज्ञां तु मया वा संगरं कुरु ।**
**इत्युक्ते राघवः प्राह भार्गवं तं पथि स्थितम् ॥१४७॥**
**रामसंज्ञां कुतस्त्यक्ष्ये त्वया योत्स्ये स्थिरो भव ।**
**इत्युक्त्वा तं पृथक् स्थित्वा रामो राजीवलोचनः ॥१४८॥**
**ज्याघोषमकरोद्वीरो वीरस्यैवाग्रतस्तदा ।**
**ततः परशुरामस्य देहान्निष्क्रम्य वैष्णवम् ॥१४९॥**
**पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत् ।**
**दृष्ट्वा तं भार्गवो रामः प्रसन्नवदनोऽब्रवीत् ॥१५०॥**
**राम राम महाबाहो रामस्त्वं नात्र संशयः ।**
**विष्णुरेव भवाञ्जातो ज्ञातोऽस्यद्य मया विभो ॥१५१॥**
**गच्छ वीर यथाकामं देवकार्यं च वै कुरु ।**
**दुष्टानां निधनं कृत्वा शिष्टांश्च परिपालय ॥१५२॥**
**याहि त्वं स्वेच्छया राम अहं गच्छे तपोवनम् ।**

वसिष्ठजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि भृगुवंशी परशुरामजीने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"राम! तुम अपना यह 'राम' नाम त्याग दो, अथवा मेरे साथ युद्ध करो।' उनके यों कहनेपर रघुकुलनन्दन श्रीरामने मार्गमें खड़े हुए उन परशुरामजीसे कहा—"मैं 'राम' नाम कैसे छोड़ सकता हूँ? तुम्हारे साथ युद्ध ही करूँगा, सँभल जाओ।" उनसे इस प्रकार कहकर कमललोचन श्रीराम अलग खड़े हो गये और उन वीरवरने उस समय वीर परशुरामके सामने ही धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकार की। तब परशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज निकलकर सब प्राणियोंके देखते-देखते श्रीरामके

मुखमें समा गया। उस समय भृगुवंशी परशुरामने श्रीरामकी ओर देख प्रसन्नमुख होकर कहा—"महाबाहु श्रीराम! आप ही 'राम' हैं, अब इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है। प्रभो! आज मैंने आपको पहचाना; आप साक्षात् विष्णु ही इस रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। वीर! अब आप अपने इच्छानुसार जाइये, देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये और दुष्टोंका नाश करके साधु पुरुषोंका पालन कीजिये। श्रीराम! अब आप स्वेच्छानुसार चले जाइये; मैं भी तपोवनको जाता हूँ" ॥ १४६–१५२½ ॥

इत्युक्त्वा पूजितस्तैस्तु मुनिभावेन भार्गवः ।।१५३।।
महेन्द्राद्रिं जगामाथ तपसे धृतमानसः ।
ततस्तु जातहर्षास्ते जना दशरथश्च ह ।।१५४।।
पुरीमयोध्यां सम्प्राप्य रामेण सह पार्थिवः ।
दिव्यशोभां पुरीं कृत्वा सर्वतो भद्रशालिनीम्।।१५५।।
प्रत्युत्थाय ततः पौराः शङ्खतूर्यादिभिः स्वनैः ।
विशन्तं राममागत्य कृतदारं रणेऽजितम् ।।१५६।।
तं वीक्ष्य हर्षिताः सन्तो विविशुस्तेन वै पुरीम् ।

यों कहकर परशुरामजी उन दशरथ आदिके द्वारा मुनिभावसे पूजित हुए और तपस्याके लिये मनमें निश्चय करके महेन्द्राचलको चले गये। तब समस्त बरातियों तथा महाराज दशरथको महान् हर्ष प्राप्त हुआ और वे (वहाँसे चलकर) श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्यापुरीके निकट पहुँचे। उधर सम्पूर्ण पुरवासी मङ्गलमयी अयोध्या नगरीको सब ओरसे दिव्य सजावटसे सुसज्जित करके शङ्ख और दुन्दुभि आदि गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकले। नगरके बाहर आकर वे रणमें अजेय श्रीरामजीको पत्नीसहित नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर आनन्दमग्न हो गये और उन्हींके साथ अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ १५३–१५६½ ॥

तौ दृष्ट्वा स मुनिः प्राप्तौ रामं लक्ष्मणमन्तिके ।।१५७।।
दशरथाय तत्पित्रे मातृभ्यश्च विशेषतः ।
तौ समर्प्य मुनिश्रेष्ठस्तेन राज्ञा च पूजितः ।
विश्वामित्रश्च सहसा प्रतिगन्तुं मनो दधे ।।१५८।।
समर्प्य रामं स मुनिः सहानुजं
सभार्यमग्रे पितुरेकवल्लभम् ।
पुनः पुनः श्राव्य हसन्महामति-
र्जगाम सिद्धाश्रममेवमात्मनः ।।१५९।।

*इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे*
*सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥*

तत्पश्चात् मुनिवर विश्वामित्रने श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाइयोंको अपने निकट आया हुआ देखकर उन्हें उनके पिता दशरथ तथा विशेषरूपसे उनकी माताओंको समर्पित कर दिया। तब राजा दशरथद्वारा पूजित होकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र सहसा लौट जानेके लिये उद्यत हुए। इस प्रकार महामति मुनि विश्वामित्रजीने छोटे भाई लक्ष्मण तथा भार्या सीताके साथ श्रीरामजीको, जो अपने पिताको एकान्त प्रिय थे, समर्पित कर दिया और उनके समक्ष बारंबार उनका गुणगान करके हँसते हुए वे अपने श्रेष्ठ सिद्धाश्रमको चले गये ॥ १५७–१५९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें रामावतारविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

◆

## अड़तालीसवाँ अध्याय

### श्रीराम-वनवास; राजा दशरथका निधन तथा वनमें राम-भरतकी भेंट

मार्कण्डेय उवाच

कृतदारो महातेजा रामः कमललोचनः ।
पित्रे सुमहतीं प्रीतिं जनानामुपपादयन् ॥ १ ॥
अयोध्यायां स्थितो रामः सर्वभोगसमन्वितः ।
प्रीत्या नन्दत्ययोध्यायां रामे रघुपतौ नृप ॥ २ ॥
भ्राता शत्रुघ्नसहितो भरतो मातुलं ययौ ।
ततो दशरथो राजा प्रसमीक्ष्य सुशोभनम् ॥ ३ ॥
युवानं बलिनं योग्यं भूपसिद्ध्यै सुतं कविम् ।
अभिषिच्य राज्यभारं रामे संस्थाप्य वैष्णवम् ॥ ४ ॥
पदं प्राप्तुं महद्यत्नं करिष्यामीत्यचिन्तयत् ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विवाह करनेके पश्चात् महातेजस्वी कमल-लोचन श्रीराम अयोध्यावासियोंका आनन्द बढ़ाते हुए सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हो, पिताके संतोषके लिये अयोध्यामें ही रहने लगे। नरेश्वर! जब रघुकुलनायक श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक अयोध्यामें सानन्द निवास करने लगे, तब उनके भाई भरत शत्रुघ्नको साथ लेकर अपने मामाके यहाँ चले गये। तदनन्तर राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको अप्रतिम सुन्दर, बलिष्ठ, नवयुवक, विद्वान् और राजा बनाये जानेके योग्य समझकर सोचा कि 'अब श्रीरामको राजपदपर अभिषिक्त करके राज्यका भार इन्हें सौंप दूँ और स्वयं भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त करनेके लिये महान् यत्न करूँ' ॥ १–४½ ॥

**संचिन्त्य तत्परो राजा सर्वदिक्षु समादिशत् ॥ ५ ॥**
**प्राज्ञान् भृत्यान् महीपालान्मन्त्रिणश्च त्वरान्वितः ।**
**रामाभिषेकद्रव्याणि ऋषिप्रोक्तानि यानि वै ॥ ६ ॥**
**तानि भृत्याः समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ ।**
**दूतामात्याः समादेशात्सर्वदिक्षु नराधिपान् ॥ ७ ॥**
**आहूय तान् समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ ।**
**अयोध्यापुरमत्यर्थं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ ८ ॥**
**जनाः कुरुत सर्वत्र नृत्यगीतादिनन्दितम् ।**
**पुरवासिजनानन्दं देशवासिमनःप्रियम् ॥ ९ ॥**
**रामाभिषेकं विपुलं श्वो भविष्यति जानथ ।**

यह सोचकर राजा इस कार्यमें तत्पर हो गये और समस्त दिशाओंमें रहनेवाले बुद्धिमान् भृत्यों, अधीनस्थ राजाओं तथा मन्त्रियोंको तुरंत आज्ञा दी—'भृत्यगण! श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके लिये जो-जो सामान मुनियोंने बताये हैं, वे सब एकत्र करके शीघ्र ही आओ। दूतो और मन्त्रियो! तुमलोग भी मेरी आज्ञासे सब दिशाओंके राजाओंको बुलाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र यहाँ आ जाओ। पुरवासी जनो! तुम इस अयोध्यानगरीको उत्तम रीतिसे सजाकर सर्वथा शोभा-सम्पन्न बना दो तथा सर्वत्र नृत्य-गीत आदि उत्सवका ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे यह नगर समस्त पुरवासियोंको आनन्द देनेवाला हो जाय और सम्पूर्ण देशके निवासियोंको मनोहर प्रतीत होने लगे। तुम सब लोग यह जान लो कि कल बड़े समारोहके साथ श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक होगा' ॥ ५–९½ ॥

**श्रुत्वेत्थं मन्त्रिणः प्राहुस्तं नृपं प्रणिपत्य च ॥१०॥**
**शोभनं ते मतं राजन् यदिदं परिभाषितम् ।**
**रामाभिषेकमस्माकं सर्वेषां च प्रियंकरम् ॥११॥**

यह सुनकर मन्त्रियोंने राजाको प्रणाम करके उनसे कहा—'राजन्! आपने हमारे समक्ष अपना जो यह विचार व्यक्त किया है, बहुत ही उत्तम है। श्रीरामका अभिषेक हम सभीके लिये प्रियकारक है' ॥ १०-११ ॥

**इत्युक्तो दशरथस्तैस्तान् सर्वान् पुनरब्रवीत् ।**
**आनीयन्तां द्रुतं सर्वे सम्भारा मम शासनात् ॥१२॥**
**सर्वतः सारभूता च पुरी चेयं समन्ततः ।**
**अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं यागमण्डलम् ॥१३॥**

उनके यों कहनेपर राजा पुनः उन सब लोगोंसे बोले—'अच्छा, अब मेरी आज्ञासे अभिषेकके सभी सामान शीघ्र लाये जायँ और समस्त वसुधाकी सारभूता इस अयोध्यापुरीको भी आज ही सब ओरसे सुसज्जित कर देना चाहिये। साथ ही एक यज्ञमण्डपकी रचना भी परम आवश्यक है' ॥ १२-१३ ॥

**इत्येवमुक्ता राज्ञा ते मन्त्रिणः शीघ्रकारिणः ।**
**तथैव चक्रुस्ते सर्वे पुनःपुनरुदीरिताः ॥१४॥**
**प्राप्तहर्षः स राजा च शुभं दिनमुदीक्षयन् ।**
**कौशल्या लक्ष्मणश्चैव सुमित्रा नागरो जनः ॥१५॥**
**रामाभिषेकमाकर्ण्य मुदं प्राप्यातिहर्षितः ।**
**श्वश्रूश्वशुरयोः सम्यक् शुश्रूषणपरा तु सा ॥१६॥**
**मुदान्विता सिता सीता भर्तुराकर्ण्य शोभनम् ।**

राजाके यों कहने और बार-बार प्रेरणा करनेपर उन सब शीघ्रकारी मन्त्रियोंने उनके कथनानुसार सब कार्य पूर्ण कर दिये। राजा इस शुभ दिनकी प्रतीक्षा करते हुए बड़े ही आनन्दित हुए। कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण तथा अन्य पुरवासी श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकका शुभ समाचार सुनकर आनन्दके मारे फूले नहीं समाये। सास-ससुरकी सेवामें भलीभाँति लगी रहनेवाली सीता भी अपने पतिके लिये इस शुभ संवादको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १४–१६½ ॥

**श्वोभाविन्यभिषेके तु रामस्य विदितात्मनः ॥१७॥**
**दासी तु मन्थरानाम्नी कैकय्याः कुब्जरूपिणी ।**

**स्वां स्वामिनीं तु कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥**
**शृणु राज्ञि महाभागे वचनं मम शोभनम् ।**
**त्वत्पतिस्तु महाराजस्तव नाशाय चोद्यतः ॥१९॥**
**रामोऽसौ कौशलीपुत्रः श्वो भविष्यति भूपतिः ।**
**वसुवाहनकोशादि राज्यं च सकलं शुभे ॥२०॥**
**भविष्यत्यद्य रामस्य भरतस्य न किंचन ।**
**भरतोऽपि गतो दूरं मातुलस्य गृहं प्रति ॥२१॥**
**हा कष्टं मन्दभाग्यासि सापत्न्याद्दुःखिता भृशम् ।**

आत्मतत्त्वके ज्ञाता अथवा सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीरामका अभिषेक दूसरे ही दिन होनेवाला था। इसी बीचमें कैकेयीकी कुबड़ी दासी मन्थराने अपनी स्वामिनी कैकेयीके पास जाकर यह बात कही—'बड़भागिनी रानी ! मैं एक बहुत अच्छी बात सुनाती हूँ, सुनो। तुम्हारे पति महाराज दशरथ अब तुम्हारा नाश करनेपर तुले हुए हैं। शुभे ! वे जो कौशल्या-पुत्र राम हैं, कल ही राजा होंगे। धन, वाहन और कोष आदिके साथ यह सारा राज्य अब रामका हो जायगा; भरतका कुछ भी नहीं रहेगा। देखो, भाग्यकी बात; इस अवसरपर भरत भी बहुत दूर—अपने मामाके घर चले गये हैं। हाय ! यह सब कितने कष्टकी बात है ! तुम मन्दभागिनी हो। अब तुम्हें सौतकी ओरसे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ेगा' ॥ १७—२१½ ॥

**सैवमाकर्ण्य कैकेयी कुब्जामिदमथाब्रवीत् ॥२२॥**
**पश्य मे दक्षतां कुब्जे अद्यैव त्वं विचक्षणे ।**
**यथा तु सकलं राज्यं भरतस्य भविष्यति ॥२३॥**
**रामस्य वनवासश्च तथा यत्नं करोम्यहम् ।**

ऐसी बात सुनकर कैकेयीने कुब्जासे कहा—'बुद्धिमति कुब्जे ! तू मेरी दक्षता तो देख—आज ही मैं ऐसा यत्न करती हूँ, जिससे यह सारा राज्य भरतका हो जाय और रामका वनवास हो' ॥ २२—२३½ ॥

**इत्युक्त्वा मन्थरां सा तु उन्मुच्य स्वाङ्गभूषणम् ॥२४॥**
**वस्त्रं पुष्पाणि चोन्मुच्य स्थूलवासोधराभवत् ।**
**निर्माल्यपुष्पधृक्कष्टा कश्मलाङ्गी विरूपिणी ॥२५॥**
**भस्मधूल्यादिनिर्दिग्धा भस्मधूल्या तथा श्रिते ।**
**भूभागे शान्तदीपे सा संध्याकाले सुदुःखिता ॥२६॥**
**ललाटे श्वेतचैलं तु बद्ध्वा सुष्वाप भामिनी ।**

मन्थरासे यों कहकर कैकेयीने अपने अङ्गोंके आभूषण उतार दिये। सुन्दर वस्त्र और फूलोंके हार भी उतार फेंके और मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर निर्माल्य ( पूजासे उतरे हुए ) पुष्पोंको धारण किया, देहमें राख और धूल लपेट ली और कुरूप वेष बनाकर वह शरीरमें कष्ट और मूर्च्छाका अनुभव करने लगी। वह भामिनी ललाटमें श्वेत वस्त्र बाँध, संध्याके समय दीपक बुझा, अँधेरेमें ही राख और धूलसे भरे भूभागमें अत्यन्त दुःखित हो लेट गयी ॥ २४—२६½ ॥

**मन्त्रिभिः सह कार्याणि सम्मन्त्र्य सकलानि तु ॥२७॥**
**पुण्याहः स्वस्तिमाङ्गल्यैः स्थाप्य रामं तु मण्डले ।**
**ऋषिभिस्तु वसिष्ठाद्यैः सार्धं सम्भारमण्डपे ॥२८॥**
**वृद्धिजागरणीयैश्च सर्वतस्तूर्यनादिते ।**
**गीतनृत्यसमाकीर्णे शङ्खकाहलनिःस्वनैः ॥२९॥**
**स्वयं दशरथस्तत्र स्थित्वा प्रत्यागतः पुनः ।**
**कैकेय्या वेश्मनो द्वारं जरद्भिः परिरक्षितम् ॥३०॥**
**रामाभिषेकं कैकेयीं वक्तुकामः स पार्थिवः ।**
**कैकेयीभवनं वीक्ष्य सान्धकारमथाब्रवीत् ॥३१॥**

इधर मन्त्रियोंके साथ सारे कार्योंके विषयमें मन्त्रणा करके, वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठादि करवाकर, श्रीरामको यज्ञ-सामग्रीसे युक्त मण्डपमें बिठाया और वृद्धि ( नान्दीश्राद्ध ) एवं जागरण-सम्बन्धी कृत्यके लिये उपयुक्त तथा सब ओर शहनाई एवं शङ्ख, काहल आदिके शब्दोंसे निनादित एवं गान और नृत्यके कार्यक्रमोंसे पूर्ण उस मण्डपमें थोड़ी देरतक स्वयं भी ठहरकर राजा दशरथ वहाँसे लौट आये। राजा कैकेयीसे श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकका शुभ समाचार सुनानेकी इच्छासे कैकेयीके भवनके दरवाजेपर पहुँचे, जहाँ बूढ़े सिपाही पहरा देते थे। कैकेयीके घरको अन्धकारयुक्त देख राजाने कहा ॥ २७—३१ ॥

**अन्धकारमिदं कस्मादद्य ते मन्दिरे प्रिये ।**
**रामाभिषेकं हर्षाय अन्त्यजा अपि मेनिरे ॥३२॥**
**गृहालंकरणं कुर्वन्त्यद्य लोका मनोहरम् ।**
**त्वयाद्य न कृतं कस्मादित्युक्त्वा च महीपतिः ॥३३॥**
**ज्वालयित्वा गृहे दीपान् प्रविवेश गृहं नृपः ।**

अशोभनाङ्गीं कैकेयीं स्वपन्तीं पतितां भुवि ॥३४॥
दृष्ट्वा दशरथः प्राह तस्याः प्रियमिदं त्विति ।
आश्लिष्योत्थाय तां राजा शृणु मे परमं वचः ॥३५॥
स्वमातुरधिकां नित्यं यस्ते भक्तिं करोति वै ।
तस्याभिषेकं रामस्य श्वो भविष्यति शोभने ॥३६॥

'प्रिये ! आज तुम्हारे मन्दिरमें अन्धकार क्यों है ? आज तो इस नगरके चाण्डालोंने भी श्रीरामचन्द्रके अभिषेकको आनन्दजनक माना है। सभी लोग अपने घरको सुन्दर ढंगसे सजा रहे हैं। तुमने अपने भवनको क्यों नहीं सुसज्जित किया ?'—यों कहकर राजाने घरमें दीप प्रज्वलित कराये; फिर उसके भीतर प्रवेश किया। वहाँ कैकेयी धरतीपर पड़ी सो रही थी। उसका प्रत्येक अङ्ग अशोभन जान पड़ता था। उसे इस अवस्थामें देख राजाने उठाकर हृदयसे लगाया और उसको प्रिय लगनेवाले ये वचन कहे—'प्रिये ! मेरी उत्तम बात सुनो। सुन्दरि ! जो तुम्हारे प्रति अपनी मातासे भी अधिक प्रेम रखते हैं, उन्हीं श्रीरामचन्द्रका कल राज्याभिषेक होगा' ॥ ३२–३६ ॥

इत्युक्ता पार्थिवेनापि किंचिन्नोवाच सा शुभा ।
मुञ्चन्ती दीर्घमुष्णं च रोषोच्छ्वासं मुहुर्मुहुः ॥३७॥
तस्यावाश्लिष्य हस्ताभ्यां पार्थिवः प्राह रोषिताम् ।
किं ते कैकेयि दुःखस्य कारणं वद शोभने ॥३८॥
वस्त्राभरणरत्नादि यद्यदिच्छसि शोभने ।
तत्त्वं गृह्णीष्व निश्शङ्कं भाण्डारात् सुखिनी भव ॥३९॥
भाण्डारेण मम शुभे श्वोऽर्थसिद्धिर्भविष्यति ।
यदाभिषेकं सम्प्राप्ते रामे राजीवलोचने ॥४०॥
भाण्डागारस्य मे द्वारं मया मुक्तं निरर्गलम् ।
भविष्यति पुनः पूर्णं रामे राज्यं प्रशासति ॥४१॥
बहु मानय रामस्य अभिषेकं महात्मनः ।

राजाके इस प्रकार कहनेपर वह सुन्दरी कुछ भी न बोली। बारंबार क्रोधपूर्वक केवल लंबी-लंबी गरम साँसें छोड़ती रही। राजा अपनी भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके बैठ गये और उस रूठी हुई कैकेयीसे बोले—'सुन्दरी कैकेयि ! बताओ, तुम्हारे दुःखका क्या कारण है ? शुभे ! वस्त्र, आभूषण और रत्न आदि जिन-जिन वस्तुओंकी तुम्हें इच्छा हो, उन सबको बिना किसी आशङ्काके भण्डार-घरसे ले लो; परंतु प्रसन्न हो जाओ। कल्याणि ! कल जब श्रीरामका राज्याभिषेक सम्पन्न हो जायगा, उस समय उस भाण्डारसे मेरे मनोरथकी सिद्धि हो जायगी। इस समय तो मैंने भण्डार-घरका द्वार उन्मुक्त कर रक्खा है। श्रीरामके राज्य-शासन करते समय वह फिर पूर्ण हो जायेगा। प्रिये ! महात्मा श्रीरामके राज्याभिषेकको तुम इस समय अधिक महत्त्व और सम्मान दो' ॥ ३७–४१½ ॥

इत्युक्ता राजवर्य्येण कैकेयी पापलक्षणा ॥४२॥
कुमतिर्निर्घृणा दुष्टा कुब्जया शिक्षिताब्रवीत् ।
राजानं स्वपतिं वाक्यं क्रूरमत्यन्तनिष्ठुरम् ॥४३॥
रत्नादि सकलं यत्ते तन्ममैव न संशयः ।
देवासुरमहायुद्धे प्रीत्या यन्मे वरद्वयम् ॥४४॥
पुरा दत्तं त्वया राजंस्तदिदानीं प्रयच्छ मे ।

महाराज दशरथके इस प्रकार कहनेपर कुब्जाके द्वारा पढ़ायी गयी पापिनी, दुर्बुद्धि, दयाहीना और दुष्टा कैकेयीने अपने पति महाराज दशरथसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक निष्ठुर वचन कहा—'महाराज ! इसमें देह नहीं कि आपके जो रत्न आदि हैं, वे सब मेरे ही हैं; किंतु पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर आपने प्रसन्न हो मुझे जो दो वर दिये थे, उन्हें ही इस समय दीजिये' ॥ ४२–४४½ ॥

इत्युक्तः पार्थिवः प्राह कैकेयीमशुभां तदा ॥४५॥
अदत्तमप्यहं दास्ये तव नान्यस्य वा शुभे ।
किं मे प्रतिश्रुतं पूर्वं दत्तमेव मया तव ॥४६॥
शुभाङ्गी भव कल्याणि त्यज कोपमनर्थकम् ।
रामाभिषेकजं हर्षं भजोत्तिष्ठ सुखी भव ॥४७॥

यह सुनकर राजाने उस अशुभा कैकेयीसे कहा—'शुभे ! और किसीकी बात तो मैं नहीं कहता, परंतु तुम्हारे लिये तो जिसे नहीं देनेको कहा है, वह वस्तु भी दे दूँगा। फिर जिसको देनेके लिये मैंने पहले प्रतिज्ञा कर ली है, वह वस्तु तो दी हुई ही समझो। कल्याणि ! अब सुन्दर वेष धारण करो और यह व्यर्थका कोप छोड़ दो। उठो, श्रीरामके राज्याभिषेकके आनन्दोत्सवमें भाग लो और सुखी हो जाओ' ॥ ४५–४७ ॥

इत्युक्त्वा राजवर्येण कैकेयी कलहप्रिया ।
उवाच परुषं वाक्यं राज्ञो मरणकारणम् ॥४८॥
वरद्वयं पूर्वदत्तं यदि दास्यसि मे विभो ।
श्वोभूते गच्छतु वनं रामोऽयं कोशलात्मजः ॥४९॥
द्वादशाब्दं निवसतु त्वद्वाक्याद्दण्डके वने ।
अभिषेकं च राज्यं च भरतस्य भविष्यति ॥५०॥

नृपश्रेष्ठ दशरथके यों कहनेपर कलहप्रिया कैकेयीने ऐसी कठोर बात कही, जो आगे चलकर राजाकी मृत्युका कारण बन गयी। उसने कहा—'प्रभो ! यदि आप पहलेके दिये हुए दोनों वर मुझे देना चाहते हों तो ( पहला वर मैं यही माँगती हूँ कि ) ये कौशल्यानन्दन श्रीराम कल सवेरा होते ही वनको चले जायँ और आपकी आज्ञासे ये बारह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें निवास करें तथा मेरा दूसरा अभीष्ट वर यह है कि अब राज्य और राज्याभिषेक भरतका होगा' ॥ ४८—५० ॥

इत्याकर्ण्य स कैकेय्या वचनं घोरमप्रियम् ।
पपात भुवि निस्संज्ञो राजा सापि विभूषिता ॥५१॥
रात्रिशेषं नयित्वा तु प्रभाते सा मुदावती ।
दूतं सुमन्त्रमाहैवं राम आनीयतामिति ॥५२॥
रामस्तु कृतपुण्याहः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।
यागमण्डपमध्यस्थः शङ्खतूर्यरवान्वितः ॥५३॥

कैकेयीके इस घोर अप्रिय वचनको सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कैकेयीने ( प्रसन्नतापूर्वक ) अपने आपको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कर लिया। शेष रात बिताकर प्रातःकाल कैकेयीने आनन्दित हो राजदूत सुमन्त्रसे कहा—'श्रीरामको यहाँ बुलाकर लाया जाय।' उस समय राम ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन और स्वस्तिवाचन कराकर, शङ्ख और तूर्य आदि बाजोंका शब्द सुनते हुए यज्ञमण्डपमें विराजमान थे ॥ ५१—५३ ॥

तमासाद्य ततो दूतः प्रणिपत्य पुरःस्थितः ।
राम राम महाबाहो आज्ञापयति ते पिता ॥५४॥
द्रुतमुत्तिष्ठ गच्छ त्वं यत्र तिष्ठति ते पिता ।
इत्युक्तस्तेन दूतेन शीघ्रमुत्थाय राघवः ॥५५॥
अनुज्ञाप्य द्विजान् प्राप्तः कैकेय्या भवनं प्रति ।

दूत सुमन्त्र उस समय श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके सामने खड़े हो गये और बोले—'राम ! महाबाहु श्रीराम ! तुम्हारे पिताजीका आदेश है, जल्दी उठो और जहाँ तुम्हारे पिता विद्यमान हैं, वहाँ चलो।' दूतके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही उठे और ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले कैकेयीके भवनमें जा पहुँचे ॥५४-५५½॥

प्रविशन्तं गृहं रामं कैकेयी प्राह निर्घृणा ॥५६॥
पितुस्तव मतं वत्स इदं ते प्रब्रवीम्यहम् ।
वने वस महाबाहो गत्वा त्वं द्वादशाब्दकम् ॥५७॥
अद्यैव गम्यतां वीर तपसे धृतमानसः ।
न चिन्त्यमन्यथा वत्स आदरात् कुरु मे वचः ॥५८॥

श्रीरामको अपने भवनमें प्रवेश करते देख दयाहीना कैकेयीने कहा—'वत्स ! तुम्हारे पिताका यह विचार मैं तुम्हें बता रही हूँ। महाबाहो ! तुम बारह वर्षोंतक वनमें जाकर रहो। वीर ! वहाँ तपस्या करनेका निश्चय मनमें लिये तुम आज ही चले जाओ। बेटा ! तुम्हें अपने मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे वचनका आदरपूर्वक पालन करो' ॥ ५६—५८ ॥

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं रामः कमललोचनः ।
तथेत्याज्ञां गृहीत्वासौ नमस्कृत्य च तावुभौ ॥५९॥
निष्क्रम्य तद्गृहाद्रामो धनुरादाय वेश्मतः ।
कौशल्यां च नमस्कृत्य सुमित्रां गन्तुमुद्यतः ॥६०॥

कैकेयीके मुखसे पिताका यह वचन सुनकर कमललोचन श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की और उन दोनों—माता-पिताको प्रणाम करके उनके भवनसे निकलकर उन्होंने अपना धनुष सँभाला। फिर कौशल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे घरसे जानेको तैयार हो गये ॥ ५९-६० ॥

तच्छ्रुत्वा तु ततः पौरा दुःखशोकपरिप्लुताः ।
विव्यथुश्चाथ सौमित्रिः कैकेयीं प्रति रोषितः ॥६१॥
ततस्तं राघवो दृष्ट्वा लक्ष्मणं रक्तलोचनम् ।
वारयामास धर्मज्ञो धर्मवाग्भिर्महामतिः ॥६२॥
ततस्तु तत्र ये वृद्धास्तान् प्रणम्य मुनींश्च सः ।
रामो रथं खिन्नसूतं प्रस्थानायारुरोह वै ॥६३॥

आत्मीयं सकलं द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मजः ।
श्रद्धया परया दत्त्वा वस्त्राणि विविधानि च ॥६४॥

यह समाचार सुनते ही समस्त पुरवासी-जन दुःख-शोकमें डूब गये और बड़ी व्यथाका अनुभव करने लगे । इधर सुमित्राकुमार लक्ष्मण कैकेयीके प्रति कुपित हो उठे । परम बुद्धिमान् धर्मज्ञ श्रीरामने लक्ष्मणको क्रोधसे लाल आँखें किये देख धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें शान्त किया । तत्पश्चात् वहाँ जो बड़े-बूढ़े उपस्थित थे, उनको तथा मुनियोंको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी वनकी यात्राके लिये रथपर आरूढ़ हुए । उस रथका सारथि बहुत दुखी था । उस समय राजकुमार श्रीरामने अपने पासके समस्त द्रव्य और नाना प्रकारके वस्त्र अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥ ६१—६४ ॥

तिस्रः श्वश्रूः समामन्त्र्य श्वशुरं च विसंज्ञितम् ।
मुञ्चन्तमश्रुधाराणि नेत्रयोः शोकजानि च ॥६५॥
पश्यती सर्वतः सीता चारुरोह तथा रथम् ।
रथमारुह्य गच्छन्तं सीतया सह राघवम् ॥६६॥
दृष्ट्वा सुमित्रा वचनं लक्ष्मणं चाह दुःखिता ।
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ॥६७॥
अयोध्यामटवीं विद्धि व्रज ताभ्यां गुणाकर ।

तदनन्तर सीताजी भी अपनी तीनों सासुओंसे तथा नेत्रोंसे शोकाश्रुकी धारा बहाते हुए संज्ञाशून्य श्वशुर महाराज दशरथसे आज्ञा ले सब ओर देखती हुई रथपर आरूढ़ हुईं । सीताके साथ श्रीरामचन्द्रको रथपर चढ़कर वनमें जाते देख सुमित्रा अत्यन्त दुःखित हो लक्ष्मणसे बोलीं—'सद्गुणोंकी खान बेटा लक्ष्मण ! तुम आजसे श्रीरामको ही पिता दशरथ समझो, सीताको ही मेरा स्वरूप मानो तथा वनको ही अयोध्या जानो । उन दोनोंके साथ ही सेवाके लिये तुम भी जाओ' ॥ ६५—६७½ ॥

मात्रैवमुक्तो धर्मात्मा स्तनक्षीरार्द्रदेहया ॥६८॥
तां नत्वा चारुयानं तमारुरोह स लक्ष्मणः ।
गच्छतो लक्ष्मणो भ्राता सीता चैव पतिव्रता ॥६९॥
रामस्य पृष्ठतो यातौ पुराद्वीरौ महामते ।

स्नेहवश जिनके स्तनोंसे दूध बहकर समस्त शरीरको भिगो रहा था, उन माता सुमित्राके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके स्वयं भी उस सुन्दर रथपर जा बैठे । महामते ! इस प्रकार नगरसे वनमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे धीर-वीर भ्राता लक्ष्मण तथा सुस्थिर-हृदया पतिव्रता सीता—दोनों ही चले ॥ ६८-६९½ ॥

विधिच्छिन्नाभिषेकं तं रामं राजीवलोचनम् ॥७०॥
अयोध्याया विनिष्क्रान्तमनुयाताः पुरोहिताः।
मन्त्रिणः पौरमुख्याश्च दुःखेन महतान्विताः ॥७१॥
तं च प्राप्य हि गच्छन्तं राममूचुरिदं वचः ।
राम राम महाबाहो गन्तुं नार्हसि शोभन ॥७२॥
राजन्नत्र निवर्तस्व विहायास्मान् क्व गच्छसि।

दुर्दैवने जिनके राज्याभिषेकको बीचमें ही छिन्न-भिन्न कर दिया था, वे कमलनयन श्रीराम जब अयोध्यापुरीसे निकले, उस समय पुरोहित, मन्त्री और प्रधान-प्रधान पुरवासी भी बहुत दुखी होकर उनके पीछे-पीछे चले तथा वनकी ओर जाते हुए श्रीरामके निकट पहुँचकर उनसे यों बोले—'राम ! राम ! महाबाहो ! तुम्हें वनमें नहीं जाना चाहिये । शोभाशाली नरेश्वर ! नगरको लौट चलो; हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो ?' ॥ ७०—७२½ ॥

इत्युक्तो राघवस्तैस्तु तानुवाच दृढव्रतः ॥७३॥
गच्छध्वं मन्त्रिणः पौरा गच्छध्वं च पुरोधसः ।
पित्रादेशं मया कार्यमभियास्यामि वै वनम् ॥७४॥
द्वादशाब्दं व्रतं चैतन्नीत्वाहं दण्डके वने ।
आगच्छामि पितुः पादं मातॄणां द्रष्टुमञ्जसा ॥७५॥

उनके यों कहनेपर दृढ़प्रतिज्ञ श्रीराम उनसे बोले—'मन्त्रियो ! पुरवासियो ! और पुरोहितगण ! आपलोग लौट जायँ । मुझे अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन करना है, इसलिये मैं वनमें अवश्य जाऊँगा । वहाँ दण्डकारण्यमें बारह वर्षोंतक वनवासके नियमको पूर्ण करनेके पश्चात् मैं पिता और माताओंके चरण-कमलोंका दर्शन करनेके लिये शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा' ॥ ७३—७५ ॥

इत्युक्त्वा तान्जगामाथ रामः सत्यपरायणः ।
तं गच्छन्तं पुनर्याताः पृष्ठतो दुःखिता जनाः ॥७६॥

पुनः प्राह स काकुत्स्थो गच्छध्वं नगरीमिमाम् ।
मातृश्च पितरं चैव शत्रुघ्नं नगरीमिमाम् ॥७७॥
प्रजाः समस्तास्तत्रस्था राज्यं भरतमेव च ।
पालयध्वं महाभागास्तपसे याम्यहं वनम् ॥७८॥

नगर-निवासियोंसे यों कहकर सत्यपरायण श्रीराम आगे बढ़ गये । उन्हें जाते देख पुनः सब लोग दुखी हो उनके पीछे-पीछे चलने लगे । तब ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने फिर कहा—'महाभागगण ! आपलोग इस अयोध्यापुरीको लौट जाइये और मेरे पिता-माताओंकी, भरत-शत्रुघ्नकी, इस अयोध्यानगरीकी, यहाँके समस्त प्रजाजनोंकी तथा इस राज्यकी भी रक्षा कीजिये । मैं वनमें तपस्याके लिये जाता हूँ' ॥ ७६—७८ ॥

अथ लक्ष्मणमाहेदं वचनं राघवस्तदा ।
सीतामर्पय राजानं जनकं मिथिलेश्वरम् ॥७९॥
पितृमातृवशे तिष्ठ गच्छ लक्ष्मण याम्यहम् ।
इत्युक्तः प्राह धर्मात्मा लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः ॥८०॥
मैवमाज्ञापय विभो मामद्य करुणाकर ।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥८१॥
इत्युक्तो लक्ष्मणेनासौ सीतां तामाह राघवः ।
सीते गच्छ ममादेशात्पितरं प्रति शोभने ॥८२॥
सुमित्राया गृहे चापि कौशल्यायाः सुमध्यमे ।
निवर्तस्व हि तावत्त्वं यावदागमनं मम ॥८३॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उस समय लक्ष्मणसे यह बात कही—'लक्ष्मण ! तुम सीताको ले जाकर मिथिलापति राजा जनकको सौंप आओ और स्वयं पिता-माताके अधीन रहो । लौट जाओ, लक्ष्मण ! मैं वनको अकेला ही जाऊँगा ।' उनके यों कहनेपर भ्रातृवत्सल धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—'प्रभो ! करुणानिधान ! आप मुझे ऐसी कठोर आज्ञा न दीजिये । आप जहाँ भी जाना चाहते हैं, वहाँ मैं अवश्य चलूँगा ।' लक्ष्मणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीतासे कहा—'शोभने सीते ! तुम मेरी आज्ञासे अपने पिताके यहाँ चली जाओ अथवा माता कौशल्या और सुमित्राके भवनमें जाकर रहो । सुन्दरि ! तुम तबतकके लिये वहाँ लौट जाओ, जबतक कि मैं वनसे फिर यहाँ आ न जाऊँ' ॥ ७९—८३ ॥

इत्युक्ता राघवेनापि सीता प्राह कृताञ्जलिः ।
यत्र गत्वा वने वासं त्वं करोषि महाभुज ॥८४॥
तत्र गत्वा त्वया सार्धं वसाम्यहमरिंदम ।
वियोगं नो सहे राजंस्त्वया सत्यव्रता क्वचित् ॥८५॥
अतस्त्वां प्रार्थयिष्यामि दयां कुरु मम प्रभो ।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥८६॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर सीता भी हाथ जोड़कर बोली—'महाबाहो ! हे शत्रुदमन ! आप वनमें जहाँ जाकर निवास करेंगे, वहाँ चलकर मैं भी आपके ही साथ रहूँगी । राजन् ! सत्यव्रतका पालन करनेवाले आप पतिदेवका वियोग मैं क्षणभरके लिये भी नहीं सह सकती; इसलिये प्रभो ! मैं प्रार्थना करती हूँ, मुझपर दया करें । प्राणनाथ ! आप जहाँ जाना चाहते हैं, वहाँ मैं भी अवश्य ही चलूँगी' ॥ ८४—८६ ॥

नानायानैरुपगताञ्जनान् वीक्ष्य स पृष्ठतः ।
योषितां च गणान् रामो वारयामास धर्मवित् ॥८७॥
निवृत्त्य स्थीयतां स्वैरमयोध्यायां जनाः स्त्रियः ।
गत्वाहं दण्डकारण्यं तपसे धृतमानसः ॥८८॥
कतिपयाब्दादायास्ये नान्यथा सत्यमीरितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या च स्वभार्यया ॥८९॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मेरे पीछे बहुत-से पुरुष नाना प्रकारके वाहनोंपर चढ़कर आ गये हैं तथा झुंड-की-झुंड स्त्रियाँ भी आ गयी हैं; तब धर्मवेत्ता श्रीरामने उन सबको साथ चलनेसे मना किया और कहा—'पुरुषो ! और स्त्रियो ! आप सब लोग लौटकर अयोध्यामें स्वच्छन्दतापूर्वक रहें । मैं तपस्याके लिये चित्त एकाग्र करके दण्डकारण्यको जा रहा हूँ । वहाँ कुछ ही वर्षोंतक रहनेके बाद मैं अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ लौट आऊँगा, यह मैंने सच्ची बात बतायी है । इसे अन्यथा नहीं मानना चाहिये' ॥ ८७—८९ ॥

जनान्निवर्त्य रामोऽसौ जगाम च गुहाश्रमम् ।
गुहस्तु रामभक्तोऽसौ स्वभावादेव वैष्णवः ॥९०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा किं कर्तव्यमिति स्थितः ।

इस प्रकार अयोध्यावासी लोगोंको लौटाकर श्रीरामने गुहके आश्रमपर पदार्पण किया। गुह स्वभावसे ही वैष्णव तथा श्रीरामचन्द्रजीका परम भक्त था। भगवान् रामको देखते ही वह उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—'भगवन्! मैं क्या सेवा करूँ' ॥ ९०½ ॥

महता तपसाऽऽनीता गुरुणा या हि वः पुरा ॥९१॥
भगीरथेन या भूमिं सर्वपापहरा शुभा।
नानामुनिजनैर्जुष्टा कूर्ममत्स्यसमाकुला ॥९२॥
गङ्गा तुङ्गोर्मिमालाढ्या स्फटिकाभजलावहा।
गुहोपनीतनावा तु तां गङ्गां स महाद्युतिः ॥९३॥
उत्तीर्य भगवान् रामो भरद्वाजाश्रमं शुभम्।

[ यों कहकर गुहने सीता, और लक्ष्मणसहित श्रीरामका सादर पूजन एवं सत्कार किया। इसके बाद सबेरे सारथि और रथको लौटाकर वे गङ्गाजीके तटपर गये और पुनः कहने लगे—] राजन्! जिन्हें आपके पूर्वज महाराज भगीरथ पूर्वकालमें बड़ी तपस्या करके पृथ्वीपर ले आये थे, जो समस्त-पापहारिणी और कल्याणकारिणी हैं, अनेकानेक मुनिजन जिनका सेवन करते हैं, जिनमें कूर्म और मत्स्य आदि जल-जन्तु भरे रहते हैं, जो ऊँची-ऊँची लहरोंसे सम्पन्न एवं स्फटिकमणिके समान स्वच्छ जल बहानेवाली हैं, उन पुण्यसलिला गङ्गाजीको गुहके द्वारा लायी हुई नावसे पार करके महान् कान्तिमान् भगवान् श्रीराम भरद्वाज मुनिके शुभ आश्रमपर गये ॥ ९१—९३½ ॥

प्रयागे तु ततस्तस्मिन् स्नात्वा तीर्थे यथाविधि॥९४॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया सह।
भरद्वाजाश्रमे तत्र विश्रान्तस्तेन पूजितः ॥९५॥
ततः प्रभाते विमले तमनुज्ञाप्य राघवः।
भरद्वाजोक्तमार्गेण चित्रकूटं शनैर्ययौ ॥९६॥
नानाद्रुमलताकीर्णं पुण्यतीर्थमनुत्तमम्।
तापसं वेषमास्थाय जह्नुकन्यामतीत्य वै ॥९७॥

वह आश्रम प्रयागमें था। श्रीरामचन्द्रजीने सीता तथा भाई लक्ष्मणके साथ उस प्रयागतीर्थमें विधिवत् स्नान करके, वहीं भरद्वाज ऋषिके आश्रममें उनसे सम्मान प्राप्तकर रात्रिमें विश्राम किया। फिर निर्मल प्रभातकाल होनेपर श्रीराम तपस्वीवेष धारणकर, भरद्वाज मुनिसे आज्ञा ले, उन्हींके बताये हुए मार्गसे गङ्गाके पार हो, धीरे-धीरे नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आच्छन्न परम उत्तम पावन तीर्थ चित्रकूटको गये ॥ ९४–९७ ॥

गते रामे सभार्ये तु सह भ्रात्रा ससारथौ।
अयोध्यामवसन् भूप नष्टशोभां सुदुःखिताः ॥९८॥
नष्टसंज्ञो दशरथः श्रुत्वा वचनमप्रियम्।
रामप्रवासजननं कैकेय्या मुखनिस्सृतम् ॥९९॥
लब्धसंज्ञः क्षणाद्राजा रामरामेति चुक्रुशे।
कैकेय्युवाच भूपालं भरतं चाभिषेचय ॥१००॥
सीतालक्ष्मणसंयुक्तो रामचन्द्रो वनं गतः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तो राजा दशरथस्तदा ॥१०१॥
विहाय देहं दुःखेन देवलोकं गतस्तदा।

राजन्! इधर सीता-लक्ष्मण और सारथिके सहित रामचन्द्रजीके चले जानेपर अयोध्यावासी जन बहुत दुखी होकर शोभाशून्य अयोध्यानगरीमें रहने लगे। राजा दशरथ तो कैकेयीके मुखसे निर्गत श्रीरामको वनवास देनेवाले अप्रिय वचनको सुनते ही मूर्च्छित हो गये थे। कुछ देर बाद जब राजाको होश हुआ, तब वे उच्चस्वरसे 'राम! राम!' पुकारने लगे। तब कैकेयीने भूपालसे कहा—'राम तो सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें चले गये; अब आप भरतका राज्याभिषेक कीजिये।' यह सुनते ही राजा दशरथ पुत्रशोकसे संतप्त हो, दुःखके मारे शरीर त्यागकर, देवलोकको चले गये ॥ ९८—१०१½ ॥

ततस्तस्य महापुर्य्यामयोध्यायामरिंदम ॥१०२॥
रुरुदुर्दुःखशोकार्त्ता जनाः सर्वे च योषितः।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी कष्टकारिणी ॥१०३॥
परिवार्य मृतं तत्र रुरुदुस्ताः पतिं ततः।

शत्रुदमन! तब उनकी महानगरी अयोध्यामें रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष दुःख और शोकसे पीड़ित हो विलाप करने लगे। कौशल्या, सुमित्रा तथा कष्टकारिणी कैकेयी भी अपने मृत पतिको चारों ओरसे घेरकर रोने लगीं ॥ १०२-१०३½ ॥

ततः पुरोहितस्तत्र वसिष्ठः सर्वधर्मवित् ॥१०४॥
तैलद्रोण्यां विनिक्षिप्य मृतं राजकलेवरम्।
दूतं वै प्रेषयामास सहमन्त्रिगणैः स्थितः ॥१०५॥

स गत्वा यत्र भरतः शत्रुघ्नेन सह स्थितः ।
तत्र प्राप्य तथा वार्तां संनिवर्त्य नृपात्मजौ ।।१०६।।
तावानीय ततः शीघ्रमयोध्यां पुनरागतः ।
क्रूराणि दृष्ट्वा भरतो निमित्तानि च वै पथि ।।१०७।।
विपरीतं त्वयोध्यायामिति मेने स पार्थिवः ।
निःशोभां निर्गतश्रीकां दुःखशोकान्वितां पुरीम् ।।
कैकेय्यग्निविनिर्दग्धामयोध्यां प्रविवेश सः ।
दुःखान्विता जनाः सर्वे तौ दृष्ट्वा रुरुदुर्भृशम् ।।१०९।।
हा तात राम हा सीते लक्ष्मणेति पुनः पुनः ।
रुरोद भरतस्तत्र शत्रुघ्नश्च सुदुःखितः ।।११०।।

तब सब धर्मोंको जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजीने वहाँ आकर सबको शान्त किया और राजाके मृत शरीरको तेलसे भरी हुई नौकामें रखवाकर, मन्त्रिगणोंके साथ विचार करके, भरत-शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूत भेजा। वह दूत, जहाँ शत्रुघ्नके साथ भरतजी थे, वहाँ गया और जितना उसे बताया गया था, उतना ही संदेश सुनाकर, उन दोनों राजकुमारोंको वहाँसे लौटाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र ही अयोध्यामें लौट आया। राजा भरत मार्गमें घोर अपशकुन देख मन-ही-मन यह जान गये कि 'अयोध्यामें कोई विपरीत घटना घटित हुई है।' फिर जो कैकेयीरूपी अग्निसे दग्ध होकर शोभाहीन, निस्तेज और दुःख-शोकसे परिपूर्ण हो गयी थी, उस अयोध्यापुरीमें भरतजीने प्रवेश किया। उस समय भरत और शत्रुघ्नको देख सभी लोग दुखी हो 'हा तात! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार बारंबार पुकारते हुए बहुत विलाप करने लगे। यह देख भरत और शत्रुघ्न भी दुखी होकर रोने लगे ।।१०४—११०।।

कैकेय्यास्तत्क्षणाच्छ्रुत्वा चुक्रोध भरतस्तदा ।
दुष्टा त्वं दुष्टचित्ता च यया रामः प्रवासितः ।।१११।।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया वनम् ।
साहसं किं कृतं दुष्टे त्वया सद्योऽल्पभाग्यया।।११२।।
उद्वास्य सीतया रामं लक्ष्मणेन महात्मना ।
ममैव पुत्रं राजानं करोत्विति मतिस्तव ।।११३।।
दुष्टाया नष्टभाग्यायाः पुत्रोऽहं भाग्यवर्जितः ।
भ्रात्रा रामेण रहितो नाहं राज्यं करोमि वै ।।११४।।
यत्र रामो नरव्याघ्रः पद्मपत्रायतेक्षणः ।
धर्मज्ञः सर्वशास्त्रज्ञो मतिमान् बन्धुवत्सलः।।११५।।
सीता च यत्र वैदेही नियमव्रतचारिणी ।
पतिव्रता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता ।।११६।।
लक्ष्मणश्च महावीर्यो गुणवान् भ्रातृवत्सलः ।
तत्र यास्यामि कैकेयि महत्पापं त्वया कृतम् ।।११७।।
राम एव मम भ्राता ज्येष्ठो मतिमतां वरः ।
स एव राजा दुष्टात्मे भृत्योऽहं तस्य वै सदा ।।११८।।

उस समय कैकेयीके मुखसे तत्काल सारा वृत्तान्त सुनकर भरतजी उसके ऊपर बहुत ही कुपित हुए और बोले— 'अरी! तू तो बड़ी दुष्टा है। तेरे चित्तमें दुष्टतापूर्ण विचार भरा हुआ है। हाय! जिसने श्रीरामको वनवास दे दिया, जिसके कारण भाई लक्ष्मण और देवी सीताके साथ श्रीरघुनाथजीको वनमें जानेको विवश होना पड़ा, उससे बढ़कर दुष्टा कौन स्त्री होगी? अरी दुष्टे! ओ मन्दभागिनी! तूने तत्काल ऐसा दुस्साहस कैसे किया? तूने सोचा होगा कि महात्मा लक्ष्मण और साध्वी सीताके साथ रामको घरसे निकालकर महाराजा दशरथ मेरे ही पुत्रको राजा बना देंगे। (धिक्कार है तेरी इस कुबुद्धिको!) आह! मैं कितना भाग्यहीन हूँ, जो तुझ-जैसी अभागिनी दुष्टा स्त्रीका पुत्र हुआ। किंतु तू निश्चय जान, मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे अलग रहकर राज्य नहीं करूँगा। जहाँ मनुष्योंमें श्रेष्ठ, धर्मज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा भाइयोंपर स्नेह रखनेवाले पूज्य भ्राता कमलदललोचन श्रीरामचन्द्रजी गये हैं, जहाँ नियम और व्रतका आचरण करनेवाली, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त सौभाग्यशालिनी पतिव्रता विदेह-राजकुमारी सीताजी विद्यमान हैं और जहाँ भाईमें भक्ति रखनेवाले, सद्गुणसम्पन्न, महान् पराक्रमी लक्ष्मणजी गये हैं, वहीं मैं भी जाऊँगा। कैकेयि! तूने रामको बनवास देकर महान् पाप किया है। दुष्टहृदये! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, वे ही राजा होनेके अधिकारी हैं। मैं तो सदा उनका दास हूँ' ।। १११—११८ ।।

इत्युक्त्वा मातरं तत्र रुरोद भृशदुःखितः ।
हा राजन् पृथिवीपाल मां विहाय सुदुःखितम्।।११९।।
क्व गतोऽस्यद्य वै तात किं करोमीह तद्वद ।

**भ्राता पित्रा समः क्वास्ते ज्येष्ठो मे करुणाकरः ।।१२०**
**सीता च मातृतुल्या मे क्व गतो लक्ष्मणश्च ह ।**

मातासे यों कहकर भरतजी अत्यन्त दुखी हो, वहाँ फूट-फूटकर रोने लगे और विलाप करने लगे—'हा राजन् ! हा वसुधाप्रतिपालक ! हा तात ! मुझ अत्यन्त दुखी बालकको छोड़कर आप कहाँ चले गये ? बताइये, मैं अब यहाँ क्या करूँ ? पिताके तुल्य दया करनेवाले मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम कहाँ हैं ? माताके समान पूजनीया सीता कहाँ हैं और मेरा प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ चला गया ?' ।। ११९-१२०½ ।।

**इत्येवं विलपन्तं तं भरतं मन्त्रिभिः सह ।।१२१।।**
**वसिष्ठो भगवानाह कालकर्मविभागवित् ।**
**उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स त्वं न शोकं कर्तुमर्हसि ।।१२२।।**
**कर्मकालवशादेव पिता ते स्वर्गमास्थितः ।**
**तस्य संस्कारकार्याणि कर्माणि कुरु शोभन ।।१२३।।**
**रामोऽपि दुष्टनाशाय शिष्टानां पालनाय च ।**
**अवतीर्णो जगत्स्वामी स्वांशेन भुवि माधवः ।।१२४।।**
**प्रायस्तत्रास्ति रामेण कर्तव्यं लक्ष्मणेन च ।**
**यत्रासौ भगवान् वीरः कर्मणा तेन चोदितः ।।१२५।।**
**तत्कृत्वा पुनरायाति रामः कमललोचनः ।**

भरतको इस प्रकार बिलाप करते देख काल और कर्मके विभागको जाननेवाले भगवान् वसिष्ठजी मन्त्रियोंके साथ वहाँ आकर बोले—'बेटा ! उठो, उठो; तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये । भद्र ! काल और कर्मके वशीभूत होकर ही तुम्हारे पिता स्वर्गबासी हुए हैं; अब तुम उनके अन्त्येष्टि-संस्कार आदि कर्म करो । भगवान् श्रीराम साक्षात् लक्ष्मीपति नारायण हैं । वे जगदीश्वर दुष्टोंका नाश और साधुपुरुषोंका पालन करनेके लिये ही अपने अंशसे इस पृथ्वीपर अबतीर्ण हुए हैं । वनमें श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा बहुत-से कार्य होनेबाले हैं । वहाँ वीरवर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी उन्हीं कर्तव्यकर्मोंसे प्रेरित होकर रहेंगे और उन्हें पूर्ण करके यहाँ लौट आयेंगे' ।। १२१—१२५½ ।।

**इत्युक्तो भरतस्तेन वसिष्ठेन महात्मना ।।१२६।।**
**संस्कारं लम्भयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ।**
**अग्निहोत्राग्निना दग्ध्वा पितुर्देहं विधानतः ।।१२७।।**
**स्नात्वा सरय्वाः सलिले कृत्वा तस्योदकक्रियाम् ।**
**शत्रुघ्नेन सह श्रीमान्मातृभिर्बान्धवैः सह ।।१२८।।**

उन महात्मा वसिष्ठजीके यों कहनेपर भरतजीने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार किया । उस समय उन्होंने अग्निहोत्रकी अग्निसे पिताके शबका विधिपूर्वक दाह किया । फिर सरयूके जलमें स्नान करके श्रीमान् भरतने भाई शत्रुघ्न, सब माताओं तथा अन्य बन्धुजनोंके साथ परलोकगत पिताके लिये तिलसहित जलकी अञ्जलि दी ।। १२६—१२८ ।।

**तस्यौर्ध्वदेहिकं कृत्वा मन्त्रिणा मन्त्रिनायकः ।**
**हस्त्यश्वरथपत्तीभिः सह प्रायान्महामतिः ।।१२९।।**
**भरतो राममन्वेष्टुं राममार्गेण सत्तमः ।**
**तमायान्तं महासेनं रामस्यानुविरोधिनम् ।।१३०।।**
**मत्वा तं भरतं शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा ।**
**स्वं सैन्यं वर्तुलं कृत्वा संनद्धः कवची रथी ।।१३१।।**
**महाबलपरीवारो रुरोध भरतं पथि ।।१३२।।**
**सभ्रातृकं सभार्यं मे रामं स्वामिनमुत्तमम् ।**
**प्रापयस्त्वं वनं दुष्ट साम्प्रतं हन्तुमिच्छसि ।।१३३।।**
**गमिष्यसि दुरात्मंस्त्वं सेनया सह दुर्मते ।**

इस प्रकार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार करके मन्त्रियोंके अधिपति साधुश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् भरतजी अपने मन्त्रियों तथा हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल, सेनाओंके साथ ( माताओं तथा बन्धुजनोंको भी साथ ले ) श्रीरामचन्द्रजीका अन्वेषण करनेके लिये, जिस मार्गसे वे गये थे, उसी मार्गसे चले । उस समय भरत ( और शत्रुघ्न ) को इतनी बड़ी सेनाके साथ आते देख, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका विरोधी शत्रु समझकर, रामभक्त गुहने युद्धके लिबे सुसज्जित हो, अपनी सेना गोलाकार खड़ी की और कवच धारणकर, रथारूढ हो, उस विशाल सेनासे घिरे हुए उसने मार्गमें भरतको रोक दिया । उसने कहा—'दुष्ट ! दुरात्मन् ! दुर्बुद्धे ! तूने मेरे श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामको भाई और पत्नीसहित वनमें तो भिजवा ही दिया; क्या अब उन्हें मारना भी चाहते हो, जो ( इतनी बड़ी ) सेनाके साथ वहाँ जा रहे हो ?' ।। १२९—१३३½ ।।

**इत्युक्तो भरतस्तत्र गुहेन नृपनन्दनः ।।१३४।।**
**तमुवाच विनीतात्मा रामायाथ कृताञ्जलिः ।**

यथा त्वं रामभक्तोऽसि तथाहमपि भक्तिमान्॥१३५॥
प्रोषिते मयि कैकेय्या कृतमेतन्महामते।
रामस्यानयनार्थाय व्रजाम्यद्य महामते॥१३६॥
सत्यपूर्वं गमिष्यामि पन्थानं देहि मे गुह।

गुहके यों कहनेपर राजकुमार भरत श्रीरामके उद्देश्यसे हाथ जोड़कर विनययुक्त होकर उससे बोले—'गुह! जैसे तुम श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो, वैसे ही मैं भी उनमें भक्ति रखता हूँ। महामते! मैं नगरसे बाहर ( मामाके घर ) चला गया था, उस समय कैकेयीने यह अनर्थ कर डाला। महाबुद्धे! आज मैं श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ। तुमसे यह सत्य बात बताकर वहाँ जाना चाहता हूँ। तुम मुझे मार्ग दे दो' ॥ १३४—१३६½ ॥

इति विश्वासमानीय जाह्नवीं तेन तारितः॥१३७॥
नौकावृन्दैरनेकैस्तु स्नात्वासौ जाह्नवीजले।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्तो भरतस्तं महामुनिम्॥१३८॥
प्रणम्य शिरसा तस्मै यथावृत्तमुवाच ह।

इस प्रकार विश्वास दिलानेपर गुह उन्हें गङ्गातटपर ले आया और झुंड-की-झुंड नौकाएँ मँगाकर उनके द्वारा उन सबको पार कर दिया। फिर गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भरतजी भरद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँचे और उन महामुनिके चरणोंमें मस्तक झुका, प्रणाम करके, उन्होंने उनसे अपना यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १३७-१३८½ ॥

भरद्वाजोऽपि तं प्राह कालेन कृतमीदृशम्॥१३९॥
दुःखं न तावत् कर्तव्यं रामार्थेऽपि त्वयाधुना।
वर्तते चित्रकूटेऽसौ रामः सत्यपराक्रमः॥१४०॥
त्वयि तत्र गते वापि प्रायोऽसौ नागमिष्यति।
तथापि तत्र गच्छ त्वं यदसौ वक्ति तत्कुरु॥१४१॥
रामस्तु सीतया सार्धं वनखण्डे स्थितः शुभे।
लक्ष्मणस्तु महावीर्यो दुष्टालोकनतत्परः॥१४२॥

भरद्वाजजीने भी उनसे कहा—'भरत! कालके ही प्रभावसे ऐसा काण्ड घटित हुआ है। अब तुम्हें श्रीरामके लिये भी खेद नहीं करना चाहिये। सत्यपराक्रमी वे श्रीरामचन्द्रजी इस समय चित्रकूटमें हैं। वहाँ तुम्हारे जानेपर भी वे प्रायः नहीं आ सकेंगे; तथापि तुम वहाँ जाओ और जैसे वे कहें, वैसे ही करो। श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ एक सुन्दर बनखण्डीमें निवास करते हैं और महान् पराक्रमी लक्ष्मण दुष्ट जीवोंपर दृष्टि रखते हैं—उनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं' ॥ १३९—१४२ ॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र भरद्वाजेन धीमता।
उत्तीर्य यमुनां यातश्चित्रकूटं महानगम्॥१४३॥
स्थितोऽसौ दृष्टवान्दूरात्सधूलीं चोत्तरां दिशम्।
रामाय कथयित्वाऽऽस तदादेशात्तु लक्ष्मणः॥१४४॥
वृक्षमारुह्य मेधावी वीक्षमाणः प्रयत्नतः।
स ततो दृष्टवान् हृष्टामायान्तीं महतीं चमूम्॥१४५॥
हस्त्यश्वरथसंयुक्तां दृष्ट्वा राममथाब्रवीत्।
हे भ्रातस्त्वं महाबाहो सीतापार्श्वे स्थिरो भव॥१४६॥
भूपोऽस्ति बलवान् कश्चिद्धस्त्यश्वरथपत्तिभिः।

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके यों कहनेपर भरतजी यमुना पार करके महान् पर्वत चित्रकूटपर गये। वहाँ खड़े हुए लक्ष्मणजीने दूरसे उत्तर दिशामें धूल उड़ती देख श्रीरामचन्द्रजीको सूचित किया। फिर उनकी आज्ञासे वृक्षपर चढ़कर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी प्रयत्नपूर्वक उधर देखने लगे। तब उन्हें वहाँ बहुत बड़ी सेना आती दिखायी दी, जो हर्ष एवं उत्साहसे भरी जान पड़ती थी। हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त उस सेनाको देखकर लक्ष्मणजी श्रीरामसे बोले—'भैया! तुम सीताके पास स्थिरतापूर्वक बैठे रहो। महाबाहो! कोई महाबली राजा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आ रहा है' ॥ १४३—१४६½ ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः॥१४७॥
रामस्तमब्रवीद्धीरो वीरं सत्यपराक्रमः।
प्रायेण भरतोऽस्माकं द्रष्टुमायाति लक्ष्मण॥१४८॥
इत्येवं वदतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः।
आरात्संस्थाप्य सेनां तां भरतो विनयान्वितः॥१४९॥
ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सार्धं रुदन्नागत्य पादयोः।
रामस्य निपपाताथ वैदेह्या लक्ष्मणस्य च॥१५०॥
मन्त्रिणो मातृवर्गश्च स्निग्धबन्धुसुहृज्जनाः।
परिवार्य ततो रामं रुरुदुः शोककातराः॥१५१॥

महात्मा लक्ष्मणके ऐसे वचन सुनकर सत्यपराक्रमी वीरवर श्रीराम अपने उस वीर भ्रातासे बोले—'लक्ष्मण ! मुझे तो प्रायः यही जान पड़ता है कि भरत ही हमलोगोंसे मिलनेके लिये आ रहे हैं।' विदितात्मा भगवान् श्रीराम जिस समय यों कह रहे थे, उसी समय विनयशील भरतजी वहाँ पहुँचे और सेनाको कुछ दूरीपर ठहराकर स्वयं ब्राह्मणों और मन्त्रियोंके साथ निकट आ, सीता और लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामके चरणोंपर रोते हुए गिर पड़े। फिर मन्त्री, माताएँ, स्नेही बन्धु तथा मित्रगण श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर शोकमग्न हो रोने लगे ॥ १४७–१५१ ॥

**स्वर्यातं पितरं ज्ञात्वा ततो रामो महामतिः ।**
**लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्याथ समन्वितः ॥१५२॥**
**स्नात्वा मलापहे तीर्थे दत्त्वा च सलिलाञ्जलिम् ।**
**मात्रादीनभिवाद्याथ रामो दुःखसमन्वितः ॥१५३॥**
**उवाच भरतं राजन् दुःखेन महतान्वितम् ।**
**अयोध्यां गच्छ भरत इतः शीघ्रं महामते ॥१५४॥**
**राज्ञा विहीनां नगरीं अनाथां परिपालय ।**
**इत्युक्तो भरतः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥१५५॥**
**त्वामृते पुरुषव्याघ्र न यास्येऽहमितो ध्रुवम् ।**
**यत्र त्वं तत्र यास्यामि वैदेही लक्ष्मणो यथा ॥१५६॥**

तदनन्तर महामति श्रीरामने अपने पिताके स्वर्गगामी होनेका समाचार पाकर भ्राता लक्ष्मण और जानकीके साथ वहाँके पापनाशक तीर्थमें स्नान करके जलाञ्जलि दी । राजन् ! फिर माता आदि गुरुजनोंको प्रणाम करके रामचन्द्रजी दुखी हो अत्यन्त खेदमें पड़े हुए भरतसे बोले—'महामते भरत ! तुम अब यहाँसे शीघ्र अयोध्याको चले जाओ और राजासे हीन हुई उस अनाथ नगरीका पालन करो ।' उनके यों कहनेपर भरतने कमललोचन रामसे कहा—'पुरुषश्रेष्ठ ! यह निश्चय है कि मैं आपको साथ लिये बिना यहाँसे नहीं जाऊँगा । जहाँ आप जायँगे, वहीं सीता-लक्ष्मणकी भाँति मैं भी चलूँगा' ॥ १५२–१५६ ॥

**इत्याकर्ण्य पुनः प्राह भरतं पुरतः स्थितम् ।**
**नृणां पितृसमो ज्येष्ठः स्वधर्ममनुवर्तिनाम् ॥१५७॥**
**यथा न लङ्घ्यं वचनं मया पितृमुखेरितम् ।**
**तथा त्वया न लङ्घ्यं स्याद्वचनं मम सत्तम ॥१५८॥**
**मत्समीपादितो गत्वा प्रजास्त्वं परिपालय ।**
**द्वादशाब्दिकमेतन्मे व्रतं पितृमुखेरितम् ॥१५९॥**
**तदरण्ये चरित्वा तु आगमिष्यामि तेऽन्तिकम् ।**
**गच्छ तिष्ठ ममादेशे न दुःखं कर्तुमर्हसि ॥१६०॥**

यह सुनकर श्रीरामने अपने सामने खड़े हुए भरतसे पुनः कहा—'साधुश्रेष्ठ भरत ! अपने धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके लिये ज्येष्ठ भ्राता पिताके समान पूज्य है । जिस प्रकार मुझे पिताके मुखसे निकले हुए वचनका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, वैसे ही तुम्हें भी मेरे वचनोंका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये । अब तुम यहाँ मेरे निकटसे जाकर प्रजाजनका पालन करो । पिताके मुखसे कहा हुआ जो यह बारह वर्षोंके वनवासका व्रत मैंने स्वीकार किया है, उसका वनमें पालन करके मैं पुनः तुम्हारे पास आ जाऊँगा। जाओ, मेरी आज्ञाके पालनमें लग जाओ; तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये' ॥ १५७–१६० ॥

**इत्युक्तो भरतः प्राह बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।**
**यथा पिता तथा त्वं मे नात्र कार्या विचारणा ॥१६१॥**
**तवादेशान्मया कार्यं देहि त्वं पादुके मम ।**
**नन्दिग्रामे वसिष्येऽहं पादुके द्वादशाब्दिकम् ॥१६२॥**
**त्वद्वेषमेव मद्वेषं त्वद्व्रतं मे महाव्रतम् ।**
**त्वं द्वादशाब्दिकादूर्ध्वं यदि नायासि सत्तम ॥१६३॥**
**ततो हविर्यथा चाग्नौ प्रधक्ष्यामि कलेवरम् ।**
**इत्येवं शपथं कृत्वा भरतो हि सुदुःखितः ॥१६४॥**
**बहु प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्य च राघवम् ।**
**पादुके शिरसा स्थाप्य भरतः प्रस्थितः शनैः ॥१६५॥**

उनके यों कहनेपर भरतने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'भैया ! इसके सम्बन्धमें मुझे कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है कि मेरे लिये जैसे पिताजी थे, वैसे ही आप हैं । अब मैं आपके आदेशके अनुसार ही कार्य करूँगा; किंतु आप अपनी दोनों चरण-पादुकाएँ मुझे दे दें । मैं इन्हीं पादुकाओंका आश्रय ले नन्दिग्राममें निवास करूँगा और आपकी ही भाँति बारह वर्षोंतक व्रतका पालन करूँगा । अब आपके वेषके समान ही मेरा वेष होगा और आपका जो व्रत है, वही मेरा भी महान् व्रत होगा । साधुशिरोमणे ! यदि आप बारह वर्षोंके

व्रतका पालन करनेके बाद तुरंत नहीं पधारेंगे तो मैं अग्निमें हविष्यकी भाँति अपने शरीरको होम दूँगा।' अत्यन्त दुखी भरतजीने इस प्रकार शपथ करके भगवान् रामकी अनेक बार प्रदक्षिणा की, बारंबार उन्हें प्रणाम किया और उनकी चरण-पादुकाएँ अपने सिरपर रखकर वे वहाँसे धीरे-धीरे चल दिये ॥ १६१—१६५ ॥

स कुर्वन् भ्रातुरादेशं नन्दिग्रामे स्थितो वशी।
तपस्वी नियताहारः शाकमूलफलाशनः ॥१६६॥
जटाकलापं शिरसा च बिभ्रत्
त्वचश्च वार्क्षीः किल वन्यभोजी।
रामस्य वाक्यादरतो हृदि स्थितं
बभार भूभारमनिन्दितात्मा ॥१६७॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे श्रीरामप्रादुर्भावे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥*

भरतजी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके, शाक और मूल-फलादिका नियमित आहार करते हुए, तपोनिष्ठ हो, भ्राताके आदेशका पालन करते हुए नन्दिग्राममें रहने लगे। विशुद्ध हृदयवाले भरतजी अपने सिरपर जटा धारण किये और अङ्गोंमें वल्कल पहने, वन्य फलोंका ही आहार करते थे। वे मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंमें श्रद्धा रखनेके कारण अपने ऊपर पड़े पृथ्वीके शासनका भार ढोने लगे ॥ १६६-१६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

## उन्चासवाँ अध्याय

### श्रीरामका जयन्तको दण्ड देना; शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना; शूर्पणखाका अनादर; सीताहरण; जटायुवध और शबरीको दर्शन देना

मार्कण्डेय उवाच

गतेऽथ भरते तस्मिन् रामः कमललोचनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भार्यया सीतया सह ॥ १ ॥
शाकमूलफलाहारो विचचार महावने।
कदाचिल्लक्ष्मणमृते रामदेवः प्रतापवान् ॥ २ ॥
चित्रकूटवनोद्देशे वैदेह्युत्सङ्गमाश्रितः।
सुष्वाप स मुहूर्तं तु ततः काको दुरात्मवान् ॥ ३ ॥
सीताभिमुखमभ्येत्य विददार स्तनान्तरम्।
विदार्य वृक्षमारुह्य स्थितोऽसौ वायसाधमः ॥ ४ ॥

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—भरतजीके अयोध्या लौट जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मणके साथ शाक और मूल-फल आदिके आहारसे ही जीवन-निर्वाह करते हुए उस महान् वनमें विचरने लगे। एक दिन परम प्रतापी भगवान् राम लक्ष्मणको साथ न ले जाकर चित्रकूट पर्वतके वनमें सीताजीकी गोदमें कुछ देरतक सोये रहे। इतनेमें ही एक दुष्ट कौएने सीताके सम्मुख आ उनके स्तनोंके बीच चोंच मारकर घाव कर दिया। घाव करके वह अधम काक वृक्षपर जा बैठा ॥ १—४ ॥

ततः प्रबुद्धो रामोऽसौ दृष्ट्वा रक्तं स्तनान्तरे।
शोकाविष्टां तु सीतां तामुवाच कमलेक्षणः ॥ ५ ॥
वद स्तनान्तरे भद्रे तव रक्तस्य कारणम्।
इत्युक्ता सा च तं प्राह भर्तारं विनयान्विता ॥ ६ ॥
पश्य राजेन्द्र वृक्षाग्रे वायसं दुष्टचेष्टितम्।
अनेनैव कृतं कर्म सुप्ते त्वयि महामते ॥ ७ ॥

तदनन्तर जब कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीकी नींद खुली, तब उन्होंने देखा, सीताके स्तनोंसे रक्त बह रहा है और वे शोकमें डूबी हुई हैं। यह देख उन्होंने सीतासे पूछा—'कल्याणि! बताओ, तुम्हारे स्तनोंके बीचसे रक्त बहनेका क्या कारण है?' उनके यों कहनेपर सीताने अपने स्वामीसे विनयपूर्वक कहा—'राजेन्द्र! महामते! वृक्षकी शाखापर बैठे हुए इस दुष्ट कौएको देखिये; आपके सो जानेपर इसीने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य किया है' ॥ ५—७ ॥

रामोऽपि दृष्टवान् काकं तस्मिन् क्रोधमथाकरोत् ।
इषीकास्त्रं समाधाय ब्रह्मास्त्रेणाभिमन्त्रितम् ॥ ८ ॥
काकमुद्दिश्य चिक्षेप सोऽप्यधावद्भयान्वितः ।
स त्विन्द्रस्य सुतो राजन्निन्द्रलोकं विवेश ह ॥ ९ ॥
रामास्त्रं प्रज्वलद्दीप्तं तस्यानु प्रविवेश वै ।
विदितार्थश्च देवेन्द्रो देवैः सह समन्वितः ॥१०॥
निष्क्रामयच्च तं दुष्टं राघवस्यापकारिणम् ।
ततोऽसौ सर्वदेवैस्तु देवलोकाद्बहिः कृतः ॥११॥
पुनः सोऽप्यपतद्रामं राजानं शरणं गतः ।
पाहि राम महाबाहो अज्ञानादपकारिणम् ॥१२॥

रामचन्द्रजीने भी उस कौएको देखा और उसपर बहुत ही क्रोध किया । फिर सींकका बाण बनाकर उसे ब्रह्मास्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उस कौएको लक्ष्य करके चला दिया । यह देख वह भयभीत होकर भागा । राजन्! कहते हैं, वह काक वास्तवमें इन्द्रका पुत्र जयन्त था, अतः भागकर इन्द्रलोकमें घुस गया । उसके साथ ही श्रीरामचन्द्रजीके उस प्रज्वलित एवं देदीप्यमान बाणने भी उसका पीछा करते हुए इन्द्रलोकमें प्रवेश किया । यह सब वृत्तान्त जान, देवराज इन्द्रने देवताओंके साथ मिलकर विचार किया तथा श्रीरामचन्द्रजीका अपराध करनेवाले उस दुष्ट पुत्रको वहाँसे निकाल दिया । जब सब देवताओंने उसे देवलोकसे बाहर कर दिया, तब वह पुनः राजा श्रीरामचन्द्रजीकी ही शरणमें आया और बोला—'महाबाहो श्रीराम ! मैंने अज्ञानवश अपराध किया है, मुझे बचाइये' ॥ ८–१२ ॥

इति ब्रुवन्तं तं प्राह रामः कमललोचनः ।
अमोघं च ममैवास्त्रमङ्गमेकं प्रयच्छ वै ॥१३॥
ततो जीवसि दुष्ट त्वमपकारो महान् कृतः ।
इत्युक्तोऽसौ स्वकं नेत्रमेकमस्त्राय दत्तवान् ॥१४॥
अस्त्रं तन्नेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समाययौ ।
ततः प्रभृति काकानां सर्वेषामेकनेत्रता ॥१५॥
चक्षुषैकेन पश्यन्ति हेतुना तेन पार्थिव ।

इस प्रकार कहते हुए जयन्तसे कमल-लोचन श्रीरामने कहा—'अरे दुष्ट ! मेरा अस्त्र अमोघ है, अतः इसके लिये अपना कोई एक अङ्ग दे दे; तभी तू जीवित रह सकता है; क्योंकि तूने बहुत बड़ा अपराध किया है ।' उनके यों कहनेपर उसने श्रीरामके उस बाणके लिये अपना एक नेत्र दे दिया । उसके एक नेत्रको भस्म करके वह अस्त्र लौट आया । उसी समयसे सभी कौए एक नेत्रवाले हो गये । राजन् ! इसी कारण वे एक आँखसे ही देखते हैं ॥ १३—१५½ ॥

उषित्वा तत्र सुचिरं चित्रकूटे स राघवः ॥१६॥
जगाम दण्डकारण्यं नानामुनिनिषेवितम् ।
सभ्रातृकः सभार्यश्च तापसं वेषमास्थितः ॥१७॥
धनुःपर्वसुपाणिश्च सेषुधिश्च महाबलः ।
ततो ददर्श तत्रस्थानम्बुभक्षान्महामुनीन् ॥१८॥
अश्मकुट्टाननेकांश्च दन्तोलूखलिनस्तथा ।
पञ्चाग्निमध्यगानन्यानन्यानुग्रतपश्चरान् ॥१९॥
तान् दृष्ट्वा प्रणिपत्योच्चै रामस्तैश्चाभिनन्दितः ।

श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई और पत्नीके साथ चिरकालतक चित्रकूटपर निवास करनेके अनन्तर वहाँसे अनेक मुनिजनों-द्वारा सेवित दण्डकारण्यको चल दिये । उस समय वे तपस्वी वेषमें थे, उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा पीठपर तरकस बँधा था । वहाँ जानेपर महाबलवान् श्रीरामने उस वनमें रहनेवाले बड़े-बड़े मुनियोंका दर्शन किया, जिनमेंसे कई लोग केवल जलका आहार करनेवाले थे । कितने ही दन्तहीन होनेसे पत्थरपर कूट-पीसकर आहार ग्रहण करते, इसलिये 'अश्मकुट्ट' कहलाते थे । कुछ तपस्वी दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले होनेसे 'दन्तोलूखली' कहे जाते थे । कुछ पाँच अग्नियोंके बीचमें बैठकर तप करते थे और कुछ महात्मा इससे भी उग्र तपस्यामें तत्पर थे । उनका दर्शन करके श्रीरामने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उन्होंने भी उनका अभिनन्दन किया ॥ १६–१९½ ॥

ततोऽखिलं वनं दृष्ट्वा रामः साक्षाज्जनार्दनः ॥२०॥
भ्रातृभार्यासहायश्च सम्प्रतस्थे महामतिः ।
दर्शयित्वा तु सीतायै वनं कुसुमितं शुभम् ॥२१॥
नानाश्चर्यसमायुक्तं शनैर्गच्छन् स दृष्टवान् ।
कृष्णाङ्गं रक्तनेत्रं तु स्थूलशैलसमानकम् ॥२२॥
शुभ्रदंष्ट्रं महाबाहुं संध्याघनशिरोरुहम् ।
मेघस्वनं सापराधं शरं संधाय राघवः ॥२३॥

**विव्याध राक्षसं क्रोधाल्लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।**
**अन्यैरवध्यं हत्वा तं गिरिगर्ते महातनुम् ॥२४॥**
**शिलाभिश्छाद्य गतवाञ्शरभङ्गाश्रमं ततः ।**
**तं नत्वा तत्र विश्रम्य तत्कथातुष्टमानसः ॥२५॥**

तत्पश्चात् साक्षात् विष्णुस्वरूप महामति भगवान् श्रीराम वहाँके समस्त वनका अवलोकन करके अपनी भार्या और भाईके साथ आगे बढ़े । वे सीताजीको फूलोंसे सुशोभित तथा नाना आश्चर्योंसे युक्त सुन्दर वन दिखाते हुए जिस समय धीरे-धीरे जा रहे थे, उसी समय उन्होंने सामने एक राक्षस देखा, जिसका शरीर काला और नेत्र लाल थे । वह पर्वतके समान स्थूल था । उसकी दाढ़ें चमकीली, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और केश संध्याकालिक मेघके समान लाल थे । वह घनघोर गर्जना करता हुआ सदा दूसरोंका अपकार किया करता था । उसे देखते ही लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने, धनुषपर बाण चढ़ाया तथा उस घोर राक्षसको, जो दूसरोंसे नहीं मारा जा सकता था, बींधकर मार डाला । इस प्रकार उसका वध करके उन्होंने उस महाकाय राक्षसकी लाशको पर्वतके खड्डमें डाल दिया और शिलाओंसे ढँककर वे वहाँसे शरभङ्गमुनिके आश्रमपर गये । वहाँ उन मुनिको प्रणाम करके उनके आश्रमपर कुछ देरतक विश्राम किया और उनके साथ कथा-वार्ता करके वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए ॥ २०—२५ ॥

**तीक्ष्णाश्रममुपागम्य दृष्टवांस्तं महामुनिम् ।**
**तेनादिष्टेन मार्गेण गत्वागस्त्यं ददर्श ह ॥२६॥**
**खड्गं तु विमलं तस्मादवाप रघुनन्दनः ।**
**इषुधिं चाक्षयशरं चापं चैव तु वैष्णवम् ॥२७॥**
**ततोऽगस्त्याश्रमाद्रामो भ्रातृभार्यासमन्वितः ।**
**गोदावर्याः समीपे तु पञ्चवट्यामुवास सः ॥२८॥**
**ततो जटायुरभ्येत्य रामं कमललोचनम् ।**
**नत्वा स्वकुलमाख्याय स्थितवान् गृध्रनायकः ॥२९॥**
**रामोऽपि तत्र तं दृष्ट्वा आत्मवृत्तं विशेषतः ।**
**कथयित्वा तु तं प्राह सीतां रक्ष महामते ॥३०॥**

वहाँसे सुतीक्ष्णमुनिके आश्रमपर जाकर श्रीरामने उन महर्षिका दर्शन किया और, कहते हैं, उन्हींके बताये हुए मार्गसे जाकर वे अगस्त्यमुनिसे मिले । वहाँ श्रीरघुनाथजीने उनसे एक निर्मल खड्ग तथा वैष्णव धनुष प्राप्त किये और जिसमें रक्खा हुआ बाण कभी समाप्त न हो—ऐसा तरकस भी उपलब्ध किया । तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मणके साथ वे अगस्त्य-आश्रमसे आगे जाकर गोदावरीके निकट पञ्चवटीमें रहने लगे । वहाँ जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीके पास गृध्रराज जटायु आये और उनसे अपने कुलका परिचय देकर खड़े हो गये । उन्हें वहाँ उपस्थित देख श्रीरामने भी अपना सारा वृत्तान्त विशेषरूपसे जनाया और कहा—'महामते ! तुम सीताकी रक्षा करते रहो' ॥२६—३०॥

**इत्युक्तोऽसौ जटायुस्तु राममालिङ्ग्य सादरम् ।**
**कार्यार्थं तु गते रामे भ्रात्रा सह वनान्तरम् ॥३१॥**
**अहं रक्ष्यामि ते भार्यां स्थीयतामत्र शोभन ।**
**इत्युक्त्वा गतवान्रामं गृध्रराजः स्वमाश्रमम् ॥३२॥**
**समीपे दक्षिणे भागे नानापक्षिनिषेविते ।**

श्रीरामके यों कहनेपर जटायुने आदरपूर्वक उनका आलिङ्गन किया और कहा—'श्रीराम ! जब कभी कार्यवश अपने भाई लक्ष्मणके साथ आप किसी दूसरे वनमें चले जायँ, उस समय मैं ही आपकी भार्याकी रक्षा करूँगा; अतः सुन्दर ! आप निश्चिन्त होकर यहाँ रहिये ।' श्रीरामसे यों कहकर गृध्रराज पास ही दक्षिण भागमें स्थित अपने आश्रमपर चले आये, जो नाना पक्षियोंद्वारा सेवित था ॥ ३१-३२½ ॥

**वसन्तं राघवं तत्र सीतया सह सुन्दरम् ॥३३॥**
**मन्मथाकारसदृशं कथयन्तं महाकथाः ।**
**कृत्वा मायामयं रूपं लावण्यगुणसंयुतम् ॥३४॥**
**मदनाक्रान्तहृदया कदाचिद्रावणानुजा ।**
**गायन्ती सुस्वरं गीतं शनैरागत्य राक्षसी ॥३५॥**
**ददर्श राममासीनं कानने सीतया सह ।**
**अथ शूर्पणखा घोरा मायारूपधरा शुभा ॥३६॥**
**निश्शङ्का दुष्टचित्ता सा राघवं प्रत्यभाषत ।**
**भज मां कान्त कल्याणीं भजन्तीं कामिनीमिह ॥३७॥**
**भजमानां त्यजेद्यस्तु तस्य दोषो महान् भवेत् ।**

एक बार यह सुनकर कि कामदेवके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी नाना प्रकारकी महत्त्वपूर्ण कथाएँ कहते हुए

अपनी भार्या सीताके साथ पञ्चवटीमें निवास कर रहे हैं, रावणकी छोटी बहिन राक्षसी शूर्पणखा मन-ही-मन कामसे पीडित हो गयी और लावण्य आदि गुणोंसे युक्त मायामय सुन्दर रूप बनाकर, मधुर स्वरमें गीत गाती हुई धीरे-धीरे वहाँ आयी। उसने वनमें सीताजीके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखा। तब मायामय सुन्दर रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी दुष्टहृदया शूर्पणखाने निडर होकर श्रीरामसे कहा—'प्रियतम! मैं आपको चाहनेवाली सुन्दरी दासी हूँ। आप मुझ सेविकाको स्वीकार करें। जो पुरुष सेवामें उपस्थित हुई रमणीका त्याग करता है, उसे बड़ा दोष लगता है' ॥ ३३—३७½ ॥

इत्युक्तः शूर्पणखया रामस्तामाह पार्थिवः ॥३८॥
कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति श्रुत्वा ततः प्राह राक्षसी कामरूपिणी ॥३९॥
अतीव निपुणा चाहं रतिकर्मणि राघव।
त्यक्त्वैनामनभिज्ञां त्वं सीतां मां भज शोभनाम्॥४०॥

शूर्पणखाके यों कहनेपर पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—'बाले! मेरे तो स्त्री है। तुम मेरे छोटे भाईके पास जाओ।' उनकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली उस राक्षसीने कहा—'राघव! मैं रति-कर्ममें बहुत निपुण हूँ और यह सीता अनभिज्ञ है; अतः इसे त्यागकर मुझ सुन्दरीको ही स्वीकार करें' ॥ ३८—४० ॥

इत्याकर्ण्य वचः प्राह रामस्तां धर्मतत्परः।
परस्त्रियं न गच्छेऽहं त्वमितो गच्छ लक्ष्मणम् ॥४१॥
तस्य नात्र वने भार्या त्वामसौ संग्रहीष्यति।
इत्युक्ता सा पुनः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥४२॥
यथा स्याल्लक्ष्मणो भर्ता तथा त्वं देहि पत्रकम्।
तथैवमुक्त्वा मतिमान् रामः कमललोचनः ॥४३॥
छिन्ध्यस्या नासिकामिति मोक्तव्या नात्र संशयः।
इति रामो महाराजो लिख्य पत्रं प्रदत्तवान् ॥४४॥

उसकी यह बात सुनकर धर्मपरायण श्रीरामने कहा—'मैं परायी स्त्रीके साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता। तुम यहाँसे लक्ष्मणके निकट जाओ। यहाँ वनमें उसकी स्त्री नहीं है; अतः शायद वह तुम्हें स्वीकार कर लेगा।' उनके यों कहनेपर शूर्पणखा पुनः कमलनयन श्रीरामसे बोली—'अच्छा, आप एक ऐसा पत्र लिखकर दें, जिससे लक्ष्मण मेरा भर्ता (भरण-पोषणका भार लेनेवाला) हो सके।' तब बुद्धिमान् कमलनयन महाराज श्रीरामने 'बहुत अच्छा' कहकर एक पत्र लिखा और उसे दे दिया। उसमें लिखा था—'लक्ष्मण! तुम इसकी नाक काट लो; निस्संदेह ऐसा ही करना। यों ही न छोड़ना' ॥ ४१—४४ ॥

सा गृहीत्वा तु तत्पत्रं गत्वा तस्मान्मुदान्विता।
गत्वा दत्तवती तद्वल्लक्ष्मणाय महात्मने ॥४५॥
तां दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह राक्षसीं कामरूपिणीम्।
न लङ्घ्यं राघववचो मया तिष्ठात्मकरुमले ॥४६॥
तां प्रगृह्य ततः खड्गमुद्यम्य विमलं सुधीः।
तेन तत्कर्णनासां तु चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥४७॥

शूर्पणखा वह पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे गयी। जाकर उसने महात्मा लक्ष्मणको उसी रूपमें वह पत्र दे दिया। उस कामरूपिणी राक्षसीको देखकर लक्ष्मणने उससे कहा—'कलङ्किनी! ठहर, मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' यों कहकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने उसे पकड़ लिया और एक चमचमाती हुई तलवार उठाकर तिलवृक्षके काण्ड (पोखो) के समान उसकी नाक और कान काट लिये ॥ ४५—४७ ॥

छिन्ननासा ततः सा तु रुरोद भृशदुःखिता।
हा दशास्य मम भ्रातः सर्वदेवविमर्दक ॥४८॥
हा कष्टं कुम्भकर्णाद्यायाता मे चापदा परा।
हा हा कष्टं गुणनिधे विभीषण महामते ॥४९॥

नाक कट जानेपर वह बहुत दुखी हो रोने तथा विलाप करने लगी—'हा! समस्त देवताओंका मान-मर्दन करनेवाले मेरे भाई रावण! आज मुझपर महान् कष्ट आ गया। हा भाई कुम्भकर्ण! मुझपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी। हा गुणनिधे महामते विभीषण! मुझे महान् दुःख देखना पड़ा' ॥ ४८-४९ ॥

इत्येवमार्ता रुदती सा गत्वा खरदूषणौ।
त्रिशिरसं च सा दृष्ट्वा निवेद्यात्मपराभवम् ॥५०॥
राममाह जनस्थाने भ्रात्रा सह महाबलम्।
ज्ञात्वा ते राघवं क्रुद्धाः प्रेषयामासुरूर्जितान् ॥५१॥

**चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां बलीयसाम् ।**
**अग्रे निजग्मुस्तेनैव रक्षसां नायकास्त्रयः ॥५२॥**
**रावणेन नियुक्तास्ते पुरैव तु महाबलाः ।**
**महाबलपरीवारा जनस्थानमुपागताः ॥५३॥**
**क्रोधेन महताऽऽविष्टा दृष्ट्वा तां छिन्ननासिकाम् ।**
**रुदतीमश्रुदिग्धाङ्गीं भगिनीं रावणस्य तु ॥५४॥**

इस प्रकार आर्तभावसे रोदन करती हुई वह खर-दूषण और त्रिशिराके पास गयी तथा उनसे अपने अपमानकी बात निवेदन करके बोली—'महाबली श्रीराम इस समय जनस्थानमें अपने भाई लक्ष्मणके साथ रहते हैं।' श्रीरामका पता पाकर वे तीनों बहुत ही कुपित हुए और उनके साथ युद्धके लिये उन्होंने चौदह हजार प्रतापी एवं बलवान् राक्षसोंको भेजा तथा वे तीनों निशाचर-नायक स्वयं भी उस सेनाके साथ आगे-आगे चले। उन महाबलवान् राक्षसोंको रावणने वहाँ पहलेसे ही नियुक्त कर रक्खा था। वे बहुत बड़ी सेनाके साथ जनस्थानमें आये। रावणकी बहिन शूर्पणखा नाक कट जानेसे बहुत रो रही थी। उसके सारे अङ्ग आँसुओंसे भीग गये थे। उसकी वह दुर्दशा देख वे खर-दूषण आदि राक्षस अत्यन्त कुपित हो उठे थे ॥ ५०—५४ ॥

**रामोऽपि तद्बलं दृष्ट्वा राक्षसानां बलीयसाम् ।**
**संस्थाप्य लक्ष्मणं तत्र सीताया रक्षणं प्रति ॥५५॥**
**गत्वा तु प्रहितैस्तत्र राक्षसैर्बलदर्पितैः ।**
**चतुर्दशसहस्रं तु राक्षसानां महाबलम् ॥५६॥**
**क्षणेन निहतं तेन शरैरग्निशिखोपमैः ।**
**खरश्च निहतस्तेन दूषणश्च महाबलः ॥५७॥**
**त्रिशिराश्च महारोषाद्‌ रणे रामेण पातितः ।**
**हत्वा तान् राक्षसान्दुष्टान् रामश्चाश्रममाविशत् ॥५८॥**

श्रीरामने भी बलवान् राक्षसोंकी उस सेनाको देख लक्ष्मणको सीताकी रक्षामें उसी स्थानमें रोक दिया और अपने साथ युद्धके लिये वहाँ भेजे गये उन बलाभिमानी राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। अग्निकी ज्वालाके समान दीप्तिमान् बाणोंद्वारा उन्होंने चौदह हजार राक्षसोंकी प्रबल सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। साथ ही खर और महाबली दूषणका भी वध किया। इसी प्रकार त्रिशिराको भी श्रीरामने अत्यन्त रोषपूर्वक रणक्षेत्रमें मार गिराया। इस तरह उन सभी दुष्ट राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी अपने आश्रममें लौट आये ॥ ५५—५८ ॥

**शूर्पणखा च रुदती रावणान्तिकमागता ।**
**छिन्ननासां च तां दृष्ट्वा रावणो भगिनीं तदा ॥५९॥**
**मारीचं प्राह दुर्बुद्धिः सीताहरणकर्मणि ।**
**पुष्पकेण विमानेन गत्वाहं त्वं च मातुल ॥६०॥**
**जनस्थानसमीपे तु स्थित्वा तत्र ममाज्ञया ।**
**सौवर्णमृगरूपं त्वमास्थाय तु शनैः शनैः ॥६१॥**
**गच्छ त्वं तत्र कार्यार्थं यत्र सीता व्यवस्थिता ।**
**दृष्ट्वा सा मृगपोतं त्वां सौवर्णं त्वयि मातुल ॥६२॥**
**स्पृहां करिष्यते रामं प्रेषयिष्यति बन्धने ।**
**तद्वाक्यात्तत्र गच्छन्तं धावस्व गहने वने ॥६३॥**
**लक्ष्मणस्यापकर्षार्थं वक्तव्यं वागुदीरणम् ।**
**ततः पुष्पकमारुह्य मायारूपेण चाप्यहम् ॥६४॥**
**तां सीतामहमानेष्ये तस्यामासक्तमानसः ।**
**त्वमपि स्वेच्छया पश्चादागमिष्यसि शोभन ॥६५॥**

तब शूर्पणखा रोती हुई रावणके पास आयी। दुर्बुद्धि रावणने अपनी बहिनकी नाक कटी देख सीताको हर लानेके उद्देश्यसे मारीचसे कहा—'मामा! हम और तुम पुष्पक विमानसे चलकर जनस्थानके पास ठहरें। वहाँसे तुम मेरी आज्ञाके अनुसार सोनेके मृगका वेष धारणकर धीरे-धीरे मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये उस स्थानपर जाना, जहाँ सीता रहती है। मामा! वह जब तुम्हें सुवर्णमय मृगशावकके रूपमें देखेगी, तब तुम्हें लेनेकी इच्छा करेगी और श्रीरामको तुम्हें बाँध लानेके लिये भेजेगी। जब सीताकी बात मानकर वे तुम्हें बाँधने चलें, तब तुम उनके सामनेसे गहन वनमें भाग जाना। फिर लक्ष्मणको भी उधर ही खींचनेके लिये उच्चस्वरसे [हा भाई लक्ष्मण! इस प्रकार] कातर वचन बोलना। तत्पश्चात् मैं भी मायामय वेष बनाकर, पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो, उस असहाया सीताको हर लाऊँगा; क्योंकि मेरा मन उसमें आसक्त हो गया है। फिर भद्र! तुम भी स्वेच्छानुसार चले आना' ॥ ५९—६५ ॥

**इत्युक्ते रावणेनाथ मारीचो वाक्यमब्रवीत् ।**
**त्वमेव गच्छ पापिष्ठ नाहं गच्छामि तत्र वै ॥६६॥**

**पुरैवानेन रामेण व्यथितोऽहं मुनेर्मखे ।**
**इत्युक्तवति मारीचे रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥६७॥**
**मारीचं हन्तुमारेभे मारीचोऽप्याह रावणम् ।**
**तव हस्तवधाद्वीर रामेण मरणं वरम् ॥६८॥**
**अहं गमिष्यामि तत्र यत्र त्वं नेतुमिच्छसि ।**

रावणके यों समझानेपर मारीचने कहा—‘अरे पापिष्ठ ! तुम्हीं जाओ, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा । मैं तो विश्वामित्रमुनिके यज्ञमें पहले ही श्रीरामके हाथों भारी कष्ट उठा चुका हूँ ।’ मारीचके यों कहनेपर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उसे मार डालनेको उद्यत हो गया। तब मारीचने उससे कहा—‘वीर! तुम्हारे हाथसे वध हो, इसकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथसे ही मरना अच्छा है । तुम मुझे जहाँ ले चलना चाहते हो, वहाँ अब मैं अवश्य चलूँगा’ ॥६६–६८½॥

**अथ पुष्पकमारुह्य जनस्थानमुपागतः ॥६९॥**
**मारीचस्तत्र सौवर्णं मृगमास्थाय चाग्रतः ।**
**जगाम यत्र सा सीता वर्तते जनकात्मजा ॥७०॥**
**सौवर्णं मृगपोतं तु दृष्ट्वा सीता यशस्विनी ।**
**भाविकर्मवशाद्राममुवाच पतिमात्मनः ॥७१॥**
**गृहीत्वा देहि सौवर्णं मृगपोतं नृपात्मज ।**
**अयोध्यायां तु मद्गेहे क्रीडनार्थमिदं मम ॥७२॥**

यह सुनकर वह पुष्पक विमानपर आरूढ हो उसके साथ जनस्थानके निकट आया । वहाँ पहुँचकर मारीच सुवर्णमय मृगका रूप धारणकर, जहाँ जनकनन्दिनी सीता विद्यमान थीं, वहाँ उनके सामने गया । उस सुवर्णमय मृगकिशोरको देखकर यशस्विनी सीता भावी कर्मके वशीभूत हो अपने पति भगवान् श्रीरामसे बोलीं—‘राजपुत्र! आप उस सुवर्णमय मृगशावकको पकड़कर मेरे लिये ला दीजिये। यह अयोध्यामें मेरे महलके भीतर क्रीडा-विनोदके लिये रहेगा’ ॥ ६९–७२ ॥

**तथैवमुक्तो रामस्तु लक्ष्मणं स्थाप्य तत्र वै ।**
**रक्षणार्थं तु सीताया गतोऽसौ मृगपृष्ठतः ॥७३॥**
**रामेण चानुयातोऽसौ अभ्यधावद्वने मृगः ।**
**ततः शरेण विव्याध रामस्तं मृगपोतकम् ॥७४॥**
**हा लक्ष्मणेति चोक्त्वासौ निपपात महीतले ।**
**मारीचः पर्वताकारस्तेन नष्टो बभूव सः ॥७५॥**
**आकर्ण्य रुदतः शब्दं सीता लक्ष्मणमब्रवीत् ।**
**गच्छ लक्ष्मण पुत्र त्वं यत्रायं शब्द उत्थितः ॥७६॥**
**भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तत्त्वं वै रुदतः श्रूयते ध्वनिः ।**
**प्रायो रामस्य संदेहं लक्षयेऽहं महात्मनः ॥७७॥**

सीताके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहाँ रख दिया और स्वयं उस मृगके पीछे चले । श्रीरामके पीछा करनेपर वह मृग वनकी ओर भागा, तब श्रीरामने उस मृग-शावकको बाणसे बींध डाला । मारीच ‘हा! लक्ष्मण!’—यों कहकर पर्वताकार शरीरसे पृथ्वीपर गिरा और प्राणहीन हो गया । रोते हुए मारीचके उस आर्तनाद-को सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—‘वत्स लक्ष्मण ! जहाँसे यह आवाज आयी है, वहीं तुम भी जाओ । निश्चय ही तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राताके रोदनका शब्द कानोंमें आ रहा है, मुझे प्रायः महात्मा श्रीरामका जीवन संशयमें पड़ा दिखायी देता है’ ॥ ७३–७७ ॥

**इत्युक्तः स तथा प्राह लक्ष्मणस्तामनिन्दिताम् ।**
**न हि रामस्य संदेहो न भयं विद्यते क्वचित् ॥७८॥**
**इति ब्रुवाणं तं सीता भाविकर्मबलाद्भृतम् ।**
**लक्ष्मणं प्राह वैदेही विरुद्धवचनं तदा ॥७९॥**
**मृते रामे तु मामिच्छन्नतस्त्वं न गमिष्यसि ।**
**इत्युक्तः स विनीतात्मा असहन्नप्रियं वचः ॥८०॥**
**जगाम राममन्वेष्टुं तदा पार्थिवनन्दनः ।**

सीताकी यह बात सुनकर उन अनिन्दिता देवीसे लक्ष्मणने कहा—‘देवि ! श्रीरामके लिये कोई संदेहकी बात नहीं है, उन्हें कहीं भी भय नहीं है ।’ यों कहते हुए लक्ष्मणसे उस समय विदेहकुमारी सीताने कुछ विरुद्ध वचन कहा, जो भवितव्यताकी प्रेरणासे उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा था । वे बोलीं—‘मैं जानती हूँ, तुम श्रीरामके मर जानेपर मुझे अपनी बनाना चाहते हो; इसीसे इस समय वहाँ नहीं जा रहे हो ।’ सीताके यों कहनेपर विनयशील राजकुमार लक्ष्मण उस अप्रिय वचनको न सह सके और तत्काल ही श्रीरामचन्द्रजीकी खोजमें चल पड़े ॥ ७८–८०½ ॥

**संन्यासवेषमास्थाय रावणोऽपि दुरात्मवान् ॥८१॥**
**स सीतापार्श्वमासाद्य वचनं चेदमुक्तवान् ।**
**आगतो भरतः श्रीमानयोध्याया महामतिः ॥८२॥**

**रामेण सह सम्भाष्य स्थितवांस्तत्र कानने ।**
**मां च प्रेषितवान् रामो विमानमिदमारुह ॥८३॥**
**अयोध्यां याति रामस्तु भरतेन प्रसादितः ।**
**मृगबालं तु वैदेहि क्रीडार्थं ते गृहीतवान् ॥८४॥**
**क्लेशितासि महारण्ये बहुकालं त्वमीदृशम् ।**
**सम्प्राप्तराज्यस्ते भर्ता रामः स रुचिराननः ॥८५॥**
**लक्ष्मणश्च विनीतात्मा विमानमिदमारुह ।**

इसी समय दुरात्मा रावण भी संन्यासीका वेष बनाकर सीताके पास आया और यों बोला—'देवि ! अयोध्यासे महाबुद्धिमान् भरतजी आये हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ बातचीत करके वहीं काननमें ठहरे हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजीने मुझे तुम्हें बुलानेके लिये यहाँ भेजा है। तुम इस विमानपर चढ़ चलो। भरतजीने मनाकर श्रीरामको अयोध्या चलनेके लिये राजी कर लिया है, अतः वे अयोध्या जा रहे हैं। वैदेहि ! तुम्हारी क्रीडा—विनोदके लिये उन्होंने उस मृग-शावकको भी पकड़ लिया है। अहो ! तुमने इस विशाल वनमें बहुत दिनोंतक ऐसा महान् कष्ट उठाया है। अब तुम्हारे स्वामी सुन्दर मुखवाले श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके विनयशील भाई लक्ष्मण भी राज्यग्रहण कर चुके हैं। अतः तुम उनके पास चलनेके लिये इस विमानपर चढ़ जाओ' ॥ ८१–८५½ ॥

**इत्युक्ता सा तथा गत्वा नीता तेन महात्मना ॥८६॥**
**आरुरोह विमानं तु छद्मना प्रेरिता सती ।**
**तज्जगाम ततः शीघ्रं विमानं दक्षिणां दिशम् ॥८७॥**
**ततः सीता सुदुःखार्ता विललाप सुदुःखिता ।**
**विमाने खेऽपि रोदन्त्याश्चक्रे स्पर्शं न राक्षसः ॥८८॥**
**रावणः स्वेन रूपेण बभूवाथ महातनुः ।**
**दशग्रीवं महाकायं दृष्ट्वा सीता सुदुःखिता ॥८९॥**
**हा राम वञ्चिताद्याहं केनापिच्छद्मरूपिणा ।**
**रक्षसा घोररूपेण त्रायस्वेति भयार्दिता ॥९०॥**
**हे लक्ष्मण महाबाहो मां हि दुष्टेन रक्षसा ।**
**द्रुतमागत्य रक्षस्व नीयमानामथाकुलाम् ॥९१॥**

उसके यों कहनेपर उसकी कपटपूर्ण बातोंसे प्रेरित हो सती सीता वह सब सत्य मानकर उस तथाकथित महात्माके साथ विमानके निकट गयीं और उसपर आरूढ़ हो गयीं। तब वह विमान शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा। यह देख सीता अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो, अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगीं। यद्यपि सीता आकाशमें उसके अपने ही विमानपर बैठी थीं, तथापि रावणने वहाँ रोती हुई सीताका स्पर्श नहीं किया। अब रावण अपने असली रूपमें आ गया। उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया। दस मस्तकवाले उस विशालकाय राक्षसपर दृष्टि पड़ते ही सीता अत्यन्त दुःखमें डूब गयीं और विलाप करने लगीं—'हाय राम ! किसी कपटवेषधारी भयानक राक्षसने आज मुझे धोखा दिया है, मैं भयसे पीड़ित हो रही हूँ; मुझे बचाओ। हे महाबाहु लक्ष्मण ! मुझे दुष्ट राक्षस हरकर लिये जा रहा है। मैं भयसे व्याकुल हूँ, तुम जल्दी आकर मुझ असहायाकी रक्षा करो' ॥ ८६–९१ ॥

**एवं प्रलपमानायाः सीतायास्तन्महत्स्वनम् ।**
**आकर्ण्य गृध्रराजस्तु जटायुस्तत्र चागतः ॥९२॥**
**तिष्ठ रावण दुष्टात्मन्मुञ्च मुञ्चात्र मैथिलीम् ।**
**इत्युक्त्वा युयुधे तेन जटायुस्तत्र वीर्यवान् ॥९३॥**
**पक्षाभ्यां ताडयामास जटायुस्तस्य वक्षसि ।**
**ताडयन्तं तु तं मत्वा बलवानिति रावणः ॥९४॥**
**तुण्डचञ्चुप्रहारैस्तु भृशं तेन प्रपीडितः ।**
**तत उत्थाप्य वेगेन चन्द्रहासमसिं महत् ॥९५॥**
**जघान तेन दुष्टात्मा जटायुं धर्मचारिणम् ।**
**निपपात महीपृष्ठे जटायुः क्षीणचेतनः ॥९६॥**

इस प्रकार उच्चस्वरसे विलाप करती हुई सीताके उस महान् आर्तनादको सुनकर गृध्रराज जटायु वहाँ आ पहुँचे ( और बोले—) 'अरे दुष्टात्मा रावण ! ठहर जा; तू सीताको छोड़ दे, छोड़ दे।' यह कहकर पराक्रमी जटायु उसके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने दोनों पंखोंसे रावणकी छातीमें चोट की। उनको इस प्रकार प्रहार करते देख रावणने समझ लिया कि 'यह पक्षी बड़ा बलवान् है'। जब जटायुके मुख और चोंचकी मारसे वह बहुत पीड़ित हो गया, तब उस दुष्टने बड़े वेगसे 'चन्द्रहास' नामक विशाल खड्ग उठाया और उससे धर्मात्मा जटायुपर घातक प्रहार किया। इससे उनकी चेतना क्षीण हो गयी और वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९२–९६ ॥

**उवाच च दशग्रीवं दुष्टात्मन्न त्वया हतः ।**
**चन्द्रहासस्य वीर्येण हतोऽहं राक्षसाधम ॥९७॥**

निरायुधं को हनेन्मूढ सायुधस्त्वामृते जनः ।
सीतापहरणं विद्धि मृत्युस्ते दुष्ट राक्षस ॥९८॥
दुष्ट रावण रामस्त्वां वधिष्यति न संशयः ।

उस समय उन्होंने रावणसे कहा—'अरे दुष्टात्मन्! ओ नीच राक्षस! मुझे तूने नहीं मारा है। मैं तो तेरे 'चन्द्रहास' नामक खड्गके प्रभावसे मारा गया हूँ। अरे मूर्ख! तेरे सिवा दूसरा कौन शस्त्रधारी योद्धा होगा, जो किसी निहत्थेपर हथियार चलायेगा? अरे दुष्ट राक्षस! तू यह जान ले कि सीताका हर ले जाना तेरी मौत है। दुष्टात्मा रावण! निस्संदेह श्रीरामचन्द्रजी तेरा वध कर डालेंगे' ॥ ९७-९८½ ॥

रुदती दुःखशोकार्ता जटायुं प्राह मैथिली ॥९९॥
मत्कृते मरणं यस्मात्त्वया प्राप्तं द्विजोत्तम ।
तस्माद्रामप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्स्यसि ॥१००॥
यावद्रामेण सङ्गस्ते भविष्यति महाद्विज ।
तावत्तिष्ठन्तु ते प्राणा इत्युक्त्वा तु खगोत्तमम्॥१०१॥
ततस्तान्यर्पितान्यङ्गाद्भूषणानि विमुच्य सा ।
शीघ्रं निबध्य वस्त्रेण रामहस्तं गमिष्यथ ॥१०२॥
इत्युक्त्वा पातयामास भूमौ सीता सुदुःखिता ।

जटायुके मारे जानेसे अत्यन्त दुःख और शोकसे पीडित हुई मिथिलेशकुमारी सीता उनसे रोकर बोलीं—'हे पक्षिराज! तुमने मेरे लिये मृत्युका वरण किया है, इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे विष्णुलोकको प्राप्त होओगे। खगश्रेष्ठ! जबतक श्रीरामचन्द्रजीसे तुम्हारी भेंट न हो, तबतक तुम्हारे प्राण शरीरमें ही रहें।' उन पक्षिराजसे यों कहकर अत्यन्त दुःखिनी सीताने अपने शरीरसे धारण किये हुए समस्त आभूषणोंको उतारा और शीघ्रतापूर्वक वस्त्रमें बाँधकर कहा—'तुम सब-के-सब श्रीरामके हाथमें पहुँच जाओगे।' और तब उन्हें भूमिपर गिरा दिया ॥ ९९-१०२½ ॥

एवं हत्वा स सीतां तु जटायुं पात्य भूतले ॥१०३॥
पुष्पकेण गतः शीघ्रं लङ्कां दुष्टनिशाचरः ।
अशोकवनिकामध्ये स्थापयित्वा स मैथिलीम् १०४
इमामत्रैव रक्षध्वं राक्षस्यो विकृताननाः ।
इत्यादिश्य गृहं यातो रावणो राक्षसेश्वरः ॥१०५॥
लङ्कानिवासिनश्चोचुरेकान्तं च परस्परम् ।
अस्याः पुर्या विनाशार्थं स्थापितेयं दुरात्मना ॥१०६॥

इस प्रकार सीताको हरकर तथा जटायुको धराशायी करके वह दुष्ट निशाचर पुष्पक विमानद्वारा शीघ्र ही लङ्कामें जा पहुँचा। वहाँ मिथिलेशकुमारी सीताको अशोकवाटिकामें रखकर राक्षसियोंसे बोला—'भयंकर मुखवाली निशाचरियो! तुमलोग यहीं सीताकी रखवाली करो।' यह आदेश दे वह राक्षसराज रावण अपने भवनमें चला गया। उस समय लङ्कानिवासी एकान्तमें परस्पर मिलकर बातें करने लगे—'दुरात्मा रावणने इस नगरीका विनाश करनेके लिये ही सीताको यहाँ ला रक्खा है' ॥ १०३–१०६ ॥

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्ष्यमाणा समन्ततः ।
सीता च दुःखिता तत्र स्मरन्ती राममेव सा ॥१०७॥
उवास सा सुदुःखार्ता दुःखिता रुदती भृशम् ।
यथा ज्ञानखले देवी हंसयाना सरस्वती ॥१०८॥

विकट आकारवाली राक्षसियोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित हुई सीता वहाँ दुःखमग्न हो केवल श्रीरामचन्द्रजीका ही चिन्तन करती हुई रहने लगीं। वे सदा अत्यन्त शोकार्त्त हो बड़े दुःखके साथ बहुत रोदन किया करती थीं। रावणके वशमें पड़ी हुई सीता ज्ञानको अपनेतक ही सीमित रखनेवाले कृपणके अधीन हुई हंसवाहिनी सरस्वतीके समान वहाँ शोभा नहीं पाती थी ॥ १०७-१०८ ॥

सुग्रीवभृत्या हरयश्चतुरश्च यदृच्छया ।
वस्त्रबद्धं तयोत्सृष्टं गृहीत्वा भूषणं द्रुतम् ॥१०९॥
स्वभर्त्रे विनिवेद्योचुः सुग्रीवाय महात्मने ।
अरण्येऽभून्महायुद्धं जटायो रावणस्य च ॥११०॥
अथ रामश्च तं हत्वा मारीचं माययाऽऽगतम् ।
निवृत्तो लक्ष्मणं दृष्ट्वा तेन गत्वा स्वमाश्रमम् १११
सीतामपश्यन्दुःखार्तः प्ररुरोद स राघवः ।
लक्ष्मणश्च महातेजा रुरोद भृशदुःखितः ॥११२॥
बहुप्रकारमस्वस्थं रुदन्तं राघवं तदा ।
भूतले पतितं धीमानुत्थाप्याश्वास्य लक्ष्मणः॥११३॥

सीताने वस्त्रमें बँधे हुए अपने जिन आभूषणोंको नीचे गिरा दिया था, उन्हें अकस्मात् घूमनेके लिये आये हुए चार

वानरोंने, जो वानरराज सुग्रीवके सेवक थे, पाया और शीघ्रतापूर्वक ले जाकर अपने स्वामी महात्मा सुग्रीवको अर्पित करके यह समाचार भी सुनाया कि 'आज वनके भीतर जटायु और रावणमें बड़ा भारी युद्ध हुआ था।' इधर, जब श्रीरामचन्द्रजी मायामय वेष बनाकर आये हुए उस मारीचको मारकर लौट पड़े, तब मार्गमें लक्ष्मणको देखकर उनके साथ अपने आश्रमपर आये; किंतु वहाँ सीताको न देखकर वे दुःखसे व्यथित हो फूट-फूटकर रोने लगे। महातेजस्वी लक्ष्मण भी अत्यन्त दुखी होकर रोदन करने लगे। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको सर्वथा अस्वस्थ होकर रोते और पृथ्वीपर गिरा देख बुद्धिमान् लक्ष्मणने उन्हें उठाकर धीरज बँधाया ॥ १०९—११३ ॥

उवाच वचनं प्राप्तं तदा यत्तच्छृणुष्व मे ।
अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमर्हसि ॥११४॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वं सीतां मृगयितुं प्रभो ।
इत्येवं वदता तेन लक्ष्मणेन महात्मना ॥११५॥
उत्थापितो नरपतिर्दुःखितो दुःखितेन तु ।
भ्रात्रा सह जगामाथ सीतां मृगयितुं वनम् ॥११६॥

राजन्! उस समय लक्ष्मणने उनसे जो समयोचित बात कही थी, वह तुम मुझसे सुनो। (लक्ष्मण बोले—) 'महाराज! आप अधिक शोक न करें। प्रभो! अब सीताकी खोज करनेके लिये आप शीघ्रतापूर्वक उठिये, उठिये।' इत्यादि बातें कहते हुए दुखी महात्मा लक्ष्मणने अपने शोकग्रस्त भाई राजा रामचन्द्रजीको उठाया और उनके साथ स्वयं सीताकी खोज करनेके लिये वनमें चले ॥११४—११६॥

वनानि सर्वाणि विशोध्य राघवो
गिरीन् समस्तान् गिरिसानुगोचरान् ।
तथा मुनीनामपि चाश्रमान् बहू-
स्तृणादिवल्लीगहनेषु भूमिषु ॥११७॥
नदीतटे भूविवरे गुहायां
निरीक्षमाणोऽपि महानुभावः ।
प्रियामपश्यन् भृशदुःखितस्तदा
जटायुषं वीक्ष्य च घातितं नृपः ॥११८॥

अहो भवान् केन हतस्त्वमीदृशीं
दशामवाप्तोऽसि मृतोऽसि जीवसि ।
ममाद्य सर्वं समदुःखितस्य भोः
पत्नीवियोगादिह चागतस्य वै ॥११९॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सारे वनोंको छान डाला, समस्त पर्वतों तथा उनकी चोटियोंपर जानेवाले मार्गोंका भी निरीक्षण कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने मुनियोंके बहुत-से आश्रम भी देखे; तृण एवं लताओंसे आच्छादित वनस्थलियों तथा खुले मैदानोंमें, नदीके किनारे, गड्ढोंमें और कन्दराओंमें देखनेपर भी जब उन महानुभावको अपनी प्रिया सीताका पता नहीं लगा, तब वे बहुत दुखी हुए। उसी समय राजा रामचन्द्रजीने रावणद्वारा मारे गये जटायुको देखा और कहा—'अहो! आपको किसने मारा? आह! आप ऐसी दुर्दशाको पहुँच चुके हैं? पता नहीं, जीवित हैं या मर गये। पत्नीके वियोगवश आपके समान ही दुखी होकर यहाँ आये हुए मुझ रामके लिये आजकल आप ही सब कुछ थे' ॥ ११७—११९ ॥

इत्युक्तमात्रे विहगोऽथ कृच्छ्रा-
दुवाच वाचं मधुरां तदानीम् ।
शृणुष्व राजन् मम वृत्तमत्र
वदामि दृष्टं च कृतं च सद्यः ॥१२०॥
दशाननस्तामपनीय मायया
सीतां समारोप्य विमानमुत्तमम् ।
जगाम खे दक्षिणदिङ्मुखोऽसौ
सीता च माता विललाप दुःखिता ॥१२१॥
आकर्ण्य सीतास्वनमागतोऽहं
सीतां विमोक्तुं स्वबलेन राघव ।
युद्धं च तेनाहमतीव कृत्वा
हतः पुनः खड्गबलेन रक्षसा ॥१२२॥
वैदेहिवाक्यादिह जीवता मया
दृष्टो भवान् स्वर्गमितो गमिष्ये ।
मा राम शोकं कुरु भूमिपाल
जह्यद्य दुष्टं सगणं तु नैर्ऋतम् ॥१२३॥

भगवान् रामके इतना कहते ही वह पक्षी उस समय बड़े कष्टसे मधुर वाणीमें बोला—'राजन्! इस समय मैंने जो कुछ देखा है और तत्काल ही उसके लिये जो कुछ किया है, वह मेरा सारा वृत्तान्त आप सुनें। दशमुख रावणने मायासे सीताका अपहरण करके उसे उत्तम विमानपर चढ़ा लिया और आकाशमार्गसे वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया। उस समय माता सीता बड़े दुःखके साथ विलाप कर रही थीं। रघुनन्दन! सीताकी आवाज सुनकर मैंने उन्हें अपने ही बलसे छुड़ानेके लिये रावणके साथ महान् युद्ध छेड़ दिया। फिर उस राक्षसने अपनी तलवारके बलसे मुझे मार डाला। विदेहकुमारी सीताके ही आशीर्वादसे मैं अभीतक जीवित था, अब यहाँसे स्वर्गलोकको जाऊँगा। पृथ्वीपालक राम! आप शोक न कीजिये, अब तो उस दुष्ट राक्षसको उसके गणोंसहित मार ही डालिये' ॥ १२०—१२३ ॥

रामो जटायुषेत्युक्तः पुनस्तं चाह शोकतः ।
स्वस्त्यस्तु ते द्विजवर गतिस्तु परमास्तु ते ॥१२४॥
ततो जटायुः स्वं देहं विहाय गतवान्दिवम् ।
विमानेन तु रम्येण सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥१२५॥
रामोऽपि दग्ध्वा तद्देहं स्नातो दत्त्वा जलाञ्जलिम् ।
भ्रात्रा स गच्छन् दुःखार्तो राक्षसीं पथि दृष्टवान् ॥१२६॥
उद्वमन्तीं महोल्काभां विवृतास्यां भयंकरीम् ।
क्षयं नयन्तीं जन्तून् वै पातयित्वा गतो रुषा ॥१२७॥
गच्छन् वनान्तरं रामः स कबन्धं ददर्श ह ।
विरूपं जठरमुखं दीर्घबाहुं घनस्तनम् ॥१२८॥
रुन्धानं राममार्गं तु दृष्ट्वा तं दग्धवाञ्शनैः ।
दग्धोऽसौ दिव्यरूपी तु खस्थो राममभाषत ॥१२९॥

जटायुके यों कहनेपर श्रीरामने पुनः शोकपूर्वक उनसे कहा—'पक्षिराज! आपका कल्याण हो और आपको उत्तम गति मिले।' तदनन्तर जटायु अपना शरीर त्यागकर एक सुन्दर विमानपर आरूढ़ हुए और अप्सरागणोंसे सेवित हो स्वर्गलोकको चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने भी उनके शरीरका दाह-संस्कार करके स्नानके पश्चात् उनके निमित्त जलाञ्जलि दी। फिर सीताके लिये दुखी हो भाई लक्ष्मणके साथ आगे जाने लगे। इतनेमें ही उन्हें रास्तेपर एक राक्षसी खड़ी दिखायी दी। वह मुँहसे बड़ी भारी उल्काके समान आगकी ज्वाला उगल रही थी। उसका मुँह फैला हुआ था। वह बड़ी डरावनी थी और पास आये हुए अनेकानेक जीवोंका संहार कर रही थी। श्रीरामने उसे रोषपूर्वक मार गिराया। फिर वे आगे बढ़ गये। जब श्रीराम दूसरे वनमें जाने लगे, तब उन्होंने कबन्धको देखा, जो बहुत ही कुरूप था। उसका मुख उसके पेटमें ही था, बाँहें बड़ी-बड़ी थीं और स्तन घने थे। श्रीरामने उसे अपना मार्ग रोकते देख उसे काठ-कबाड़द्वारा धीरे-धीरे जला दिया। जल जानेपर वह दिव्यरूप धारण करके प्रकट हुआ और आकाशमें स्थित होकर श्रीरामसे बोला ॥१२४—१२९॥

राम राम महाबाहो त्वया मम महामते ।
विरूपं नाशितं वीर मुनिशापाच्चिरागतम् ॥१३०॥
त्रिदिवं यामि धन्योऽस्मि त्वत्प्रसादान्न संशयः ।
त्वं सीताप्राप्तये सख्यं कुरु सूर्यसुतेन भोः ॥१३१॥
वानरेन्द्रेण गत्वा तु सुग्रीवे स्वं निवेद्य वै ।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ ऋष्यमूकगिरिं व्रज ॥१३२॥

'महाबाहु श्रीराम! महामते वीरवर! एक मुनिके शापवश चिरकालसे प्राप्त हुई मेरी कुरूपताको आपने नष्ट कर दिया; अब मैं स्वर्गलोकको जा रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि आज मैं आपकी कृपासे धन्य हो गया। रघुनन्दन! आप सीताकी प्राप्तिके लिये सूर्यकुमार वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता कीजिये। उनके यहाँ जाकर सुग्रीवसे सारा वृत्तान्त निवेदन कर देनेपर आपका कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः नृपश्रेष्ठ! आप यहाँसे ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये' ॥१३०—१३२॥

इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् रामो लक्ष्मणसंयुतः ।
सिद्धैस्तु मुनिभिः शून्यमाश्रमं प्रविवेश ह ॥१३३॥
तत्रस्थां तापसीं दृष्ट्वा तया संलाप्य संस्थितः ।
शबरीं मुनिमुख्यानां सपर्याहतकल्मषाम् ॥१३४॥
तया सम्पूजितो रामो बदरादिभिरीश्वरः ।
साप्येनं पूजयित्वा तु स्वामवस्थां निवेद्य वै ॥१३५॥
सीतां त्वं प्राप्स्यसीत्युक्त्वा प्रविश्याग्निं दिवंगता ।
दिवं प्रस्थाप्य तां चापि जगामान्यत्र राघवः ॥१३६॥

यह कहकर कबन्ध स्वर्गको चला गया। कहते हैं, तब लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने एक ऐसे आश्रममें प्रवेश

किया, जो सिद्धों और मुनियोंसे शून्य था । उसमें उन्होंने एक 'शबरी' नामकी तपस्विनी देखी, जो बड़े-बड़े मुनियोंकी सेवा-पूजा करनेसे निष्पाप हो गयी थी । उसके साथ वार्तालाप करके वे वहाँ ठहर गये । शबरीने बेर आदि फलोंके द्वारा भगवान् रामका भलीभाँति सत्कार किया । आवभगतके पश्चात् उनसे अपनी अवस्था निवेदन की और यह कहकर कि 'आप सीताको प्राप्त कर लेंगे' वह शबरी भी उनके सामने ही अग्निमें प्रवेश करके स्वर्गको चली गयी । उसे भी स्वर्गलोकमें पहुँचाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अन्यत्र चले गये ॥ १३३—१३६ ॥

ततो विनीतेन गुणान्वितेन
भ्रात्रा समेतो जगदेकनाथः ।
प्रियावियोगेन सुदुःखितात्मा
जगाम याम्यां स तु रामदेवः ॥१३७॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥*

तदनन्तर विनयशील और गुणी भाई लक्ष्मणके साथ जगदीश्वर भगवान् राम प्रियाके वियोगसे अत्यन्त दुखी हो वहाँसे दक्षिणकी ओर चल दिये ॥ १३७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारविषयक उन्चासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

# पचासवाँ अध्याय

## सुग्रीवसे मैत्री; वालिवध; सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भर्त्सना; सीताकी खोज और हनुमान्‌का लङ्कागमन

मार्कण्डेय उवाच

**वालिना कृतवैरोऽथ दुर्गवर्ती हरीश्वरः ।**
**सुग्रीवो दृष्टवान् दूराद्दृष्ट्वाऽऽह पवनात्मजम् ॥१॥**
**कस्येमौ सुधनुःपाणी चीरवल्कलधारिणौ ।**
**पश्यन्तौ सरसीं दिव्यां पद्मोत्पलसमावृताम् ॥ २ ॥**
**नानारूपधरावेतौ तापसं वेषमास्थितौ ।**
**वालिदूताविह प्राप्ताविति निश्चित्य सूर्यजः ॥ ३ ॥**
**उत्पपात भयत्रस्तः ऋष्यमूकाद्वनान्तरम् ।**
**वानरैः सहितः सर्वैरगस्त्याश्रममुत्तमम् ॥ ४ ॥**

मार्कण्डेयजी बोले—वालीसे वैर हो जानेके कारण उसके लिये दुर्गम स्थानमें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम और लक्ष्मणको आते देखा और देखकर पवनकुमार हनुमान्‌जीसे कहा—'ये दोनों किसके पुत्र हैं, जो हाथमें सुन्दर धनुष लिये, चीर एवं वल्कल-वस्त्र धारण किये, कमलों एवं उत्पलोंसे आच्छन्न इस दिव्य सरोवरको देख रहे हैं । जान पड़ता है, ये दोनों वालीके भेजे हुए बहुविधरूपधारी दूत हैं, जो इस समय तपस्वीका वेष धारण किये यहाँ आ पहुँचे हैं ।' यह निश्चय करके सूर्यकुमार सुग्रीव भयभीत हो गये और समस्त वानरोंके साथ ऋष्यमूक पर्वतसे कूदकर दूसरे वनमें स्थित अगस्त्यमुनिके उत्तम आश्रमपर चले गये ॥ १—४ ॥

**तत्र स्थित्वा स सुग्रीवः प्राह वायुसुतं पुनः ।**
**हनूमन् पृच्छ शीघ्रं त्वं गच्छ तापसवेषधृक् ॥ ५ ॥**
**कौ हि कस्य सुतौ जातौ किमर्थं तत्र संस्थितौ ।**
**ज्ञात्वा सत्यं मम ब्रूहि वायुपुत्र महामते ॥ ६ ॥**

वहाँ स्थित होकर सुग्रीवने पुनः पवनकुमारसे कहा—"हनूमन् ! तुम भी तपस्वीका वेष धारण करके शीघ्र जाओ और पूछो कि 'वे कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? और किस लिये वहाँ ठहरे हुए हैं ?' महाबुद्धिमान् वायुनन्दन ! ये सब बातें सच-सच जानकर मुझसे बताओ" ॥ ५-६ ॥

**इत्युक्तो हनुमान् गत्वा पम्पातटमनुत्तमम् ।**
**भिक्षुरूपी स तं प्राह रामं भ्रात्रा समन्वितम् ॥ ७ ॥**
**को भवानिह सम्प्राप्तस्तथ्यं ब्रूहि महामते ।**
**अरण्ये निर्जने घोरे कुतस्त्वं किं प्रयोजनम् ॥ ८ ॥**

उनके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जी संन्यासीके रूपमें पम्पासरके उत्तम तटपर गये और भाई लक्ष्मणके साथ विद्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'महामते ! आप कौन हैं ? यहाँ कैसे आये हैं ? इस जनशून्य घोर वनमें आप कहाँसे आ गये ? यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है ?—ये सब बातें मेरे समक्ष ठीक-ठीक बताइये' ॥ ७-८ ॥

एवं वदन्तं तं प्राह लक्ष्मणो भ्रातुराज्ञया ।
प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं रामवृत्तान्तमादितः ॥ ९ ॥
राजा दशरथो नाम बभूव भुवि विश्रुतः ।
तस्य पुत्रो महाबुद्धे रामो ज्येष्ठो ममाग्रजः ॥१०॥
अस्याभिषेक आरब्धः कैकेय्या तु निवारितः ।
पितुराज्ञामयं कुर्वन् रामो भ्राता ममाग्रजः ॥११॥
मया सह विनिष्क्रम्य सीतया सह भार्यया ।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं नानामुनिसमाकुलम् ॥१२॥
जनस्थाने निवसतो रामस्यास्य महात्मनः ।
भार्या सीता तत्र वने केनापि पाप्मना हृता ॥१३॥
सीतामन्वेषयन् वीरो रामः कमललोचनः ।
इहायातस्त्वया दृष्ट इति वृत्तान्तमीरितम् ॥१४॥

इस प्रकार पूछते हुए हनुमान्‌जीसे अपने भाईकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण बोले—'मैं श्रीरामचन्द्रजीका वृत्तान्त आदिसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो । इस पृथ्वीपर दशरथ नामके राजा बहुत प्रसिद्ध थे । महाबुद्धे ! ये मेरे बड़े भाई श्रीराम उन्हीं महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं । इनका राज्याभिषेक होने जा रहा था, किंतु ( मेरी छोटी सौतेली माता ) कैकेयीने उसे रोक दिया । फिर, पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए ये मेरे बड़े भ्राता श्रीराम मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ घरसे निकल आये । वनमें आकर इन्होंने अनेकों मुनियोंसे युक्त दण्डकारण्यमें प्रवेश किया । वहाँ जनस्थानमें निवास करते हुए इन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीताको वनमें किसी पापीने हर लिया । उन सीताजीकी ही खोज करते हुए ये वीरवर कमलनयन श्रीराम यहाँ आये हैं, जिससे तुम्हें यहाँ इनका दर्शन हुआ है । बस, यही हमारा वृत्तान्त है, जो तुमसे बता दिया' ॥ ९–१४ ॥

श्रुत्वा ततो वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
अव्यञ्जितात्मा विश्वासाद्धनूमान् मारुतात्मजः॥१५॥
त्वं मे स्वामी इति वदन् रामं रघुपतिं तदा ।
आश्वास्यानीय सुग्रीवं तयोः सख्यमकारयत् ॥१६॥
शिरस्यारोप्य पादाब्जं रामस्य विदितात्मनः ।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्तु उवाच मधुराक्षरम् ॥१७॥
अद्यप्रभृति राजेन्द्र त्वं मे स्वामी न संशयः ।
अहं तु तव भृत्यश्च वानरैः सहितः प्रभो ॥१८॥
त्वच्छत्रुर्मम शत्रुः स्यादद्यप्रभृति राघव ।
मित्रं ते मम सन्मित्रं त्वद्दुःखं तन्ममापि च ॥१९॥
त्वत्प्रीतिरेव मत्प्रीतिरित्युक्त्वा पुनराह तम् ।

महात्मा लक्ष्मणके वचन सुनकर उनपर विश्वास हो आनेके कारण वायुनन्दन हनूमान्‌ने अपने स्वरूपको प्रकट नहीं किया और रघुकुलनायक रामचन्द्रसे यह कहकर कि 'आप मेरे स्वामी हैं'—उन्हें सान्त्वना देते हुए अपने साथ सुग्रीवके पास लेआकर उन दोनों भाइयोंकी सुग्रीवसे मित्रता करा दी । फिर श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका परिचय प्राप्त हो जानेके कारण उनके चरण-कमलोंको सिरपर धारणकर वानरराज सुग्रीवने मधुर वाणीमें कहा—'राजेन्द्र ! इसमें संदेह नहीं कि आजसे आप हमारे स्वामी हुए और प्रभो ! मैं समस्त वानरोंके साथ आपका सेवक हुआ । रघुनन्दन ! आपका जो शत्रु है, वह आजसे मेरा भी शत्रु है और जो आपका मित्र है, वह मेरा भी श्रेष्ठ मित्र है; इतना ही नहीं, आपका जो दुःख है, वह मेरा भी है तथा आपकी प्रसन्नता ही मेरी भी प्रसन्नता है' यों कहकर सुग्रीवने पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—॥ १५–१९½ ॥

वाली नाम मम ज्येष्ठो महाबलपराक्रमः ॥२०॥
भार्यापहारी दुष्टात्मा मदनासक्तमानसः ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र नास्ति हन्ताद्य वालिनम् ॥२१॥
युगपत्सप्ततालांस्तु तरून् यो वै वधिष्यति ।
स तं वधिष्यतीत्युक्तं पुराणज्ञैर्नृपात्मज ॥२२॥

'प्रभो ! 'वाली' नामक मेरा ज्येष्ठ भाई है, जो महाबलवान् और बड़ा ही पराक्रमी है; किंतु वह हृदयका अत्यन्त दुष्ट है । उसने कामासक्त होकर मेरी भार्याका अपहरण कर लिया है । पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय आपके सिवा दूसरा कोई वालीको मारनेवाला नहीं है । राजकुमार ! पुराणवेत्ताओंने कहा है कि जो ताड़के इन सात वृक्षोंको एक साथ ही काट डालेगा, वही वालीका वध कर सकेगा' ॥ २०–२२ ॥

तत्प्रियार्थं हि रामोऽपि श्रीमांश्छित्त्वा महातरून् ।
अर्धाकृष्टेन बाणेन युगपद्रघुनन्दनः ॥२३॥
विद्ध्वा महातरून् रामः सुग्रीवं प्राह पार्थिवम् ।
वालिना गच्छ युध्यस्व कृतचिह्नो रवेः सुत ॥२४॥

इत्युक्तः कृतचिह्नोऽयं युद्धं चक्रेऽथ वालिना ।
रामोऽपि तत्र गत्वाथ शरेणैकेन वालिनम् ॥२५॥
विव्याध वीर्यवान् वाली पपात च ममार च ।
विनम्रं वालिपुत्रं तु अङ्गदं विनयान्वितम् ॥२६॥
रणशौण्डं यौवराज्ये नियुक्त्वा राघवस्तदा ।
तां च तारां तथा दत्त्वा रामश्च रविसूनवे ॥ २७॥
सुग्रीवं प्राह धर्मात्मा रामः कमललोचनः ।
राज्यमन्वेषय स्वं त्वं कपीनां पुनराव्रज ॥२८॥
त्वं सीतान्वेषणे यत्नं कुरु शीघ्रं हरीश्वर ।

[ यह सुनकर ] श्रीमान् रामचन्द्रजीने भी सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये आधे खींचे हुए बाणसे ही उन सात महावृक्षोंको एक ही साथ काट डाला । उन महावृक्षोंका भेदन करके श्रीरामने राजा सुग्रीवसे कहा—'सूर्यनन्दन सुग्रीव ! मेरे पहचाननेके लिये अपने शरीरमें कोई चिह्न धारण करके तुम जाओ और वालीके साथ युद्ध करो ।' उनके यों कहनेपर सुग्रीवने चिह्न धारणकर वालीके साथ युद्ध किया और श्रीरामने भी वहाँ जाकर एक ही बाणसे वालीको बींध दिया। इससे पराक्रमी वाली पृथ्वीपर गिरा और मर गया । तब श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त डरे हुए वालिकुमार अङ्गदको, जो बहुत ही विनयी और संग्राममें कुशल था, युवराजपदपर अभिषिक्त करके ताराको सुग्रीवकी सेवामें अर्पित कर दिया । तत्पश्चात् कमलनयन धर्मात्मा श्रीराम सुग्रीवसे बोले—'तुम वानरोंके राज्यकी देख-भाल कर लो, फिर मेरे पास आना और कपीश्वर ! सीताकी खोज करानेका शीघ्र ही यत्न करना' ॥ २३–२८½ ॥

इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥२९॥
प्रावृट्कालो महान् प्राप्तः साम्प्रतं रघुनन्दन ।
वानराणां गतिर्नास्ति वने वर्षति वासवे ॥३०॥
गते तस्मिंस्तु राजेन्द्र प्राप्ते शरदि निर्मले ।
चारान् सम्प्रेषयिष्यामि वानरान्दिक्षु राघव ॥३१॥
इत्युक्त्वा रामचन्द्रं स तं प्रणम्य कपीश्वरः ।
पम्पापुरं प्रविश्याथ रेमे तारासमन्वितः ॥३२॥

उनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सुग्रीवने लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन ! इस समय महान् वर्षाकाल आ पहुँचा है; इन्द्रके वर्षा करते रहनेपर इस वनमें वानरोंका चलना-फिरना न हो सकेगा । राजेन्द्र ! वर्षा बीतने और शरत्काल आ जानेपर मैं समस्त दिशाओंमें अपने वानर-दूतोंको भेजूँगा ।' यह कहकर वानरराज सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और पम्पापुरमें प्रवेश करके वे ताराके साथ रमण करने लगे ॥ २९–३२ ॥

रामोऽपि विधिवद्भ्रात्रा शैलसानौ महावने ।
निवासं कृतवान् शैले नीलकण्ठे महामतिः ॥३३॥
प्रावृट्काले गते कृच्छ्रात् प्राप्ते शरदि राघवः ।
सीतावियोगाद्व्यथितः सौमित्रिं प्राह लक्ष्मणम् ॥३४॥
उल्लङ्घितस्तु समयः सुग्रीवेण ततो रुषा ।
लक्ष्मणं प्राह काकुत्स्थो भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥३५॥
गच्छ लक्ष्मण दुष्टोऽसौ नागतः कपिनायकः ।
गते तु वर्षाकालेऽहमागमिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३६॥
अनेकैर्वानरैः सार्धमित्युक्त्वासौ तदा गतः ।
तत्र गच्छ त्वरायुक्तो यत्रास्ते कपिनायकः ॥३७॥
तं दुष्टमग्रतः कृत्वा हरिसेनासमन्वितम् ।
रमन्तं तारया सार्धं शीघ्रमानय मां प्रति ॥३८॥
नात्रागच्छति सुग्रीवो यद्यसौ प्राप्तभूतिकः ।
तदा त्वयैवं वक्तव्यः सुग्रीवोऽनृतभाषकः ॥३९॥
वालिहन्ता शरो दुष्ट करे मेऽद्यापि तिष्ठति ।
स्मृत्वैतदाचर कपे रामवाक्यं हितं तव ॥४०॥

इधर महामति श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाई लक्ष्मणके साथ उस महावनमें 'नीलकण्ठ' नामक पर्वतकी चोटीपर विधिपूर्वक रहने लगे । ( सीताके वियोगमें ) उनका वर्षाकाल बड़ी कठिनाईसे बीता । जब शरत्काल उपस्थित हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने सीताके वियोगसे व्यथित हो सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे इस विषयमें वार्तालाप किया । उस समयतक वहाँ न आकर सुग्रीवने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन किया था । इसलिये भ्रातृवत्सल ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने लक्ष्मणसे क्रोधपूर्वक कहा—"लक्ष्मण ! तुम पम्पापुरमें जाओ । देखो, क्या कारण है कि वह दुष्ट वानरराज अभीतक नहीं आया । पहले तो वह यही कहकर गया था कि 'वर्षाकाल बीतनेपर मैं अनेक वानरोंके साथ आपके पास आऊँगा ।' अब तुम जहाँ वह वानरराज रहता है, वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ । ताराके साथ

रमण करनेवाले उस दुष्ट वानरको आगे करके समस्त वानर-सेनाके सहित मेरे पास शीघ्र ले आओ । यदि ऐश्वर्य प्राप्त कर लेनेके कारण मदमें चूर हो सुग्रीव यहाँ न आये तो तुम उस असत्यवादीसे यों कहना—'अरे दुष्ट ! श्रीरामने कहा है कि जिससे वालिका वध किया गया था, वह बाण आज भी मेरे हाथमें मौजूद है; अतः वानर ! इस बातको याद करके तू श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन कर; इसीमें तेरा भला है'" ॥ ३३-४० ॥

इत्युक्तस्तु तथेत्युक्त्वा रामं नत्वा च लक्ष्मणः ।
पम्पापुरं जगामाथ सुग्रीवो यत्र तिष्ठति ।
दृष्ट्वा स तत्र सुग्रीवं कपिराजं बभाष वै ॥४१॥
ताराभोगविपक्तस्त्वं रामकार्यपराङ्मुखः ।
किं त्वया विस्मृतं सर्वं रामाग्रे समयं कृतम् ॥४२॥
सीतामन्विष्य दास्यामि यत्र क्वापीति दुर्मते ।
हत्वा तु वालिनं राज्यं येन दत्तं पुरा तव ॥४३॥
त्वामृते कोऽवमन्येत कपीन्द्र पापचेतस ।
प्रतिश्रुत्य च रामस्य भार्याहीनस्य भूपते ॥४४॥
साहाय्यं ते करोमीति देवाग्निजलसंनिधौ ।
ये ये च शत्रवो राजंस्ते ते च मम शत्रवः ॥४५॥
मित्राणि यानि ते देव तानि मित्राणि मे सदा ।
सीतामन्वेषितुं राजन् वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥४६॥
सत्यं यास्यामि ते पार्श्वमित्युक्त्वा कोऽन्यथाकरोत् ।
त्वामृते पापिनं दुष्टं रामदेवस्य संनिधौ ॥४७॥
कारयित्वा तु तेनैवं स्वकार्यं दुष्टवानर ।
ऋषीणां सत्यवद्वाक्यं त्वयि दृष्टं मयाधुना ॥४८॥
सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते ।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ॥४९॥
जनवृत्तविदां लोके सर्वज्ञानां महात्मनाम् ।
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् कृतं प्रतिकरोति यः ॥५०॥
शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि ।
कृतघ्नस्य कपे दुष्ट न दृष्टा निष्कृतिः पुरा ॥५१॥
कृतघ्नता न कार्या ते त्वत्कृतं समयं स्मर ।
एह्येह्यागच्छ शरणं काकुत्स्थं हितपालकम् ॥५२॥
यदि नायासि च कपे रामवाक्यमिदं शृणु ।
नयिष्ये मृत्युसदनं सुग्रीवं वालिनं यथा ॥५३॥
स शरो विद्यतेऽस्माकं येन वाली हतः कपिः ।

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसी आज्ञा देनेपर लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और उनको नमस्कार करके वे पम्पापुरमें गये, जहाँ सुग्रीव रहता था । वहाँ उन्होंने वानरराज सुग्रीवको देखकर कहा—"अरे ! तू श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे मुँह मोड़कर यहाँ ताराके साथ भोग-विलासमें फँसा हुआ है ? रे दुर्बुद्धे ! तूने श्रीरामके सामने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि 'जहाँ-कहीं भी हो, सीताको ढूँढ़कर मैं आपको अर्पित करूँगा' उसे क्या भूल गया ? अरे पापात्मा वानरराज ! जिन्होंने वालिको मारकर पहले ही तुम्हें राज्य दे दिया, ऐसे परोपकारी मित्रका तेरे सिवा कौन अनादर कर सकता है ? तूने देवता, अग्नि और जलके निकट श्रीरामसे यह प्रतिज्ञा की थी कि 'राजन् ! मैं पत्नीसे वियुक्त हुए आपकी सहायता करूँगा ! राजन् ! जो-जो आपके शत्रु हैं, वे-वे मेरे भी शत्रु हैं तथा देव ! जो-जो आपके मित्र हैं, वे-वे मेरे भी सदा ही मित्र हैं । राजन् ! मैं बहुत-से वानरोंके साथ सीताकी खोज करानेके लिये अवश्य ही आपके पास आऊँगा ।' भगवान् श्रीरामके निकट यों कहकर तुझ-जैसे दुष्ट पापीके सिवा दूसरा कौन है, जो इसके विपरीत आचरण करता । अरे दुष्ट वानर ! इस प्रकार तूने अपना काम तो उनसे करा लिया और उनका कार्य करना तू भूल गया ! इस समय ऋषियोंकी यह यथार्थ बात कि 'अपना काम सिद्ध हो जानेपर सभीकी बुद्धि बदल जाती है, जैसे बछड़ा माताके थनोंमें दूधकी कमी देखकर उसे छोड़ देता है [ फिर माताकी परवा नहीं करता ]' मुझे तुझमें ही ठीक-ठीक घटती-सी दीख रही है । संसारमें जो मनुष्योचित सद्व्यवहार-का ज्ञान रखनेवाले हैं, उन सर्वज्ञ महात्माओंमेंसे मैं किसीको भी ऐसा नहीं देखता, जो लोकमें दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकार-को न मानता हो । शास्त्रोंमें महापातकी पुरुषोंके भी उद्धारका उपाय ( प्रायश्चित्त ) देखा गया है, किंतु दुष्ट वानर ! कृतघ्न पुरुषके उद्धारका उपाय मैंने पहले कभी नहीं देखा है । इसलिये तुझे कभी कृतघ्नता नहीं करनी चाहिये । अपनी की हुई प्रतिज्ञाको याद कर । अब आ, तेरे हितकी रक्षा करनेवाले ककुत्स्थकुलनन्दन भगवान् श्रीरामकी शरणमें चल । वानर ! यदि तू नहीं आना चाहता तो यह श्रीरामका वचन सुन । [ उन्होंने कहा है—] 'मैं वालिकी ही भाँति सुग्रीवको भी

यमपुर भेज दूँगा। जिससे वानरराज वालि मारा गया है, वह बाण अब भी मेरे पास मौजूद है' " ॥ ४१—५३½ ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसौ सुग्रीवः कपिनायकः ॥५४॥
निर्गत्य तु नमश्चक्रे लक्ष्मणं मन्त्रिणोदितः।
उवाच च महात्मानं लक्ष्मणं वानराधिपः ॥५५॥
अज्ञानकृतपापानामस्माकं क्षन्तुमर्हसि।
समयः कृतो मया राज्ञा रामेणामिततेजसा ॥५६॥
यस्तदानीं महाभाग तमद्यापि न लङ्घये।
यास्यामि निखिलैश्च कपिभिर्नृपनन्दन ॥५७॥
त्वया सह महावीर रामपार्श्वं न संशयः।
मां दृष्ट्वा तत्र काकुत्स्थो यद्वक्ष्यति च मां प्रति ॥५८॥
तत्सर्वं शिरसा गृह्य करिष्यामि न संशयः।
सन्ति मे हरयः शूराः सीतान्वेषणकर्मणि ॥५९॥
तान्यहं प्रेषयिष्यामि दिक्षु सर्वासु पार्थिव।

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर कपिराज सुग्रीव मन्त्रीकी प्रेरणासे बाहर निकले। उन्होंने लक्ष्मणको प्रणाम किया और उन महात्मासे कहा—'महाभाग! हमारे अज्ञानवश किये हुए अपराधोंको आप क्षमा करें। मैंने उस समय अमिततेजस्वी राजा रामचन्द्रके साथ जो प्रतिज्ञा की थी, उसका अब भी उल्लङ्घन नहीं करूँगा। महावीर राजकुमार! मैं अब समस्त वानरोंको साथ लेकर आपके साथ श्रीरामके पास चलूँगा। मुझे वहाँ देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुझसे जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं शिरोधार्य करके निस्संदेह पूर्ण करूँगा। राजन्! मेरे यहाँ बड़े-बड़े वीर वानर हैं। उन सबको म सीताजीकी खोज करनेके लिये समस्त दिशाओंमें भेजूँगा' ॥ ५४—५९½ ॥

इत्युक्तः कपिराजेन सुग्रीवेण स लक्ष्मणः ॥६०॥
एहि शीघ्रं गमिष्यामो रामपार्श्वमितोऽधुना।
सेना चाहूयतां वीर ऋक्षाणां हरिणामपि ॥६१॥
यां दृष्ट्वा प्रीतिमभ्येति राघवस्ते महामते।
इत्युक्तो लक्ष्मणेनाथ सुग्रीवः स तु वीर्यवान् ॥६२॥
पार्श्वस्थं युवराजानमङ्गदं संज्ञयाब्रवीत्।
सोऽपि निर्गत्य सेनानीमाह सेनापतिं तदा ॥६३॥
तेनाहूताः समागत्य ऋक्षवानरकोटयः।
गुहास्थाश्च गिरिस्थाश्च वृक्षस्थाश्चैव वानराः ॥६४॥
तैः सार्धं पर्वताकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः।
सुग्रीवः शीघ्रमागत्य ववन्दे राघवं तदा ॥६५॥
लक्ष्मणोऽपि नमस्कृत्य रामं भ्रातरमब्रवीत्।
प्रसादं कुरु सुग्रीवे विनीते चाधुना नृप ॥६६॥

वानरराज सुग्रीवके यों कहनेपर लक्ष्मणने कहा—'आओ! अब यहाँसे शीघ्र ही श्रीरामके पास चलें। वीर! महामते! वानरों और भालुओंकी सेना भी बुला लो, जिसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी तुमपर प्रसन्न हों।' लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परम पराक्रमी सुग्रीवने पास ही खड़े हुए युवराज अङ्गदसे इशारेमें कुछ कहा। अङ्गदने भी जाकर सेनाका संचालन करनेवाले सेनापतिको प्रेरित किया। सेनापतिके बुलानेसे पर्वत, कन्दरा और वृक्षोंपर रहनेवाले करोड़ों वानर आये। पर्वतोंके समान आकारवाले उन भयंकर पराक्रमी वानरोंके साथ सुग्रीवने उस समय शीघ्रतापूर्वक पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। साथ ही लक्ष्मणजीने भी अपने भाईको प्रणाम करके कहा—'राजन्! इन विनयशील सुग्रीवपर अब आप कृपा करें' ॥ ६०—६६ ॥

इत्युक्तो राघवस्तेन भ्रात्रा सुग्रीवमब्रवीत्।
आगच्छात्र महावीर सुग्रीव कुशलं तव ॥६७॥
श्रुत्वेत्थं रामवचनं प्रसन्नं च नराधिपम्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥६८॥
तदा मे कुशलं राजन् सीतादेवी तव प्रभो।
अन्विष्य तु यदा दत्ता मया भवति नान्यथा ॥६९॥

भाई लक्ष्मणके इस प्रकार अनुरोध करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा—'महावीर सुग्रीव! यहाँ आओ। कहो, कुशल तो है न?' श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा कथन सुनकर और उन नरेशको प्रसन्न जानकर सुग्रीवने सिरपर अञ्जलि जोड़ उनसे कहा—'राजन्! प्रभो! मेरी कुशल तो तभी होगी, जब मैं सीतादेवीको ढूँढ़कर आपको अर्पित कर दूँ; नहीं तो नहीं' ॥ ६७—६९ ॥

इत्युक्ते वचने तेन हनूमान्मारुतात्मजः।
नत्वा रामं बभाषैनं सुग्रीवं कपिनायकम् ॥७०॥
शृणु सुग्रीव मे वाक्यं राजायं दुःखितो भृशम्।
सीतावियोगेन च सदा नाश्नाति च फलादिकम् ॥७१॥

अस्य दुःखेन सततं लक्ष्मणोऽयं सुदुःखितः ।
एतयोरत्र यावस्था तां श्रुत्वा भरतोऽनुजः ॥७२॥
दुःखी भवति तद्दुःखाद्दुःखं प्राप्नोति तज्जनः ।
यत एवमतो राजन् सीतान्वेषणमाचर ॥७३॥

सुग्रीवने जब यह बात कही, तब पवनकुमार हनूमान्‌जी श्रीरामको नमस्कार करके कपिराज सुग्रीवसे बोले—'सुग्रीव ! आप मेरी बात सुनें । ये राजा श्रीरामचन्द्रजी सीताके वियोगसे सदा ही बहुत दुखी रहते हैं, इसीलिये फल आदिका भी आहार नहीं करते । इन्हींके दुःखसे ये लक्ष्मण भी सदा अत्यन्त दुःखित रहा करते हैं । इन दोनोंकी यहाँ जो अवस्था है, उसे सुनकर इनके छोटे भाई भरत भी दुखी होते हैं और उनके दुःखसे वहाँके सभी लोग दुःखमें पड़े रहते हैं । राजन् ! चूँकि ऐसी स्थिति है, अतः आप बहुत शीघ्र सीताकी खोज कराइये' ॥ ७० –७३ ॥

इत्युक्ते वचने तत्र वायुपुत्रेण धीमता ।
जाम्बवानतितेजस्वी नत्वा रामं पुरःस्थितः ॥७४॥
स प्राह कपिराजं तं नीतिमान्नीतिमद्वचः ।
यदुक्तं वायुपुत्रेण तत्तथेत्यवगच्छ भोः ॥७५॥
यत्र क्वापि स्थिता सीता रामभार्या यशस्विनी ।
पतिव्रता महाभागा वैदेही जनकात्मजा ॥७६॥
अद्यापि वृत्तसम्पन्ना इति मे मनसि स्थितम् ।
न हि कल्याणचित्तायाः सीतायाः केनचिद्भुवि ७७
पराभवोऽस्ति सुग्रीव प्रेषयाद्यैव वानरान् ।

बुद्धिमान् वायुनन्दनके यों कहनेपर अत्यन्त तेजस्वी जाम्बवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये । वे नीतिज्ञ थे, अतः कपिराज सुग्रीवसे नीतियुक्त वचन बोले—'सुग्रीव ! हनुमान्‌जीने जो कहा है, उसे आप ठीक ही समझें । श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी भार्या विदेहकुलनन्दिनी जनककुमारी महाभागा पतिव्रता सीता जहाँ-कहीं भी होंगी, आज भी सदाचारसे सम्पन्न होंगी—यह विचार मेरे मनमें निश्चितरूपसे जमा हुआ है । सुग्रीव ! सदा कल्याणस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीमें ही मन लगाये रहनेवाली सीताजीका इस पृथ्वीपर किसीके द्वारा भी पराभव नहीं हो सकता । इसलिये आप अभी वानरोंको भेजें' ॥ ७४–७७½ ॥

इत्युक्तस्तेन सुग्रीवः प्रीतात्मा कपिनायकः ॥७८॥
पश्चिमायां दिशि तदा प्रेषयामास तान् कपीन् ।
अन्वेष्टुं रामभार्यां तां महाबलपराक्रमः ॥७९॥
उत्तरस्यां दिशि तदा नियुतान् वानरानसौ ।
प्रेषयामास धर्मात्मा सीतान्वेषणकर्मणि ॥८०॥
पूर्वस्यां दिशि कपींश्च कपिराजः प्रतापवान् ।
प्रेषयामास रामस्य सुभार्यान्वेषणाय वै ॥८१॥
इति तान् प्रेषयामास वानरान् वानराधिपः ।
सुग्रीवो वालिपुत्रं तमङ्गदं प्राह बुद्धिमान् ॥८२॥
त्वं गच्छ दक्षिणं देशं सीतान्वेषणकर्मणि ।
जाम्बवांश्च हनूमांश्च मैन्दो द्विविद एव च ॥८३॥
नीलाद्याश्चैव हरयो महाबलपराक्रमाः ।
अनुयास्यन्ति गच्छन्तं त्वामद्य मम शासनात् ॥८४॥
अचिरादेव यूयं तां दृष्ट्वा सीतां यशस्विनीम् ।
स्थानतो रूपतश्चैव शीलतश्च विशेषतः ॥८५॥
केन नीता च कुत्रास्ते ज्ञात्वात्रागच्छ पुत्रक ।

जाम्बवान्‌के इस प्रकार कहनेपर महान् बल और पराक्रमसे युक्त कपिराज सुग्रीवने प्रसन्न हो सीताकी खोजके लिये बहुत-से वानरोंको पश्चिम दिशामें भेजा तथा उन धर्मात्माने उत्तर दिशामें भी सीताको ढूँढ़नेके निमित्त एक लाख वानरोंको उसी समय भेज दिया । इसी प्रकार प्रतापी वानरराजने पूर्व दिशामें भी रामकी श्रेष्ठ भार्या सीताका अन्वेषण करनेके लिये बहुत-से वानर भेजे । बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवने इस प्रकार वानरोंको भेज लेनेके बाद वालिकुमार अङ्गदसे कहा—'अङ्गद ! तुम सीताकी खोज करनेके लिये दक्षिण दिशामें जाओ । मेरी आज्ञासे आज तुम्हारे चलते समय तुम्हारे साथ जाम्बवान्, हनूमान्, मैन्द, द्विविद और नील आदि महाबली एवं महापराक्रमी वानर जायँगे । बेटा ! तुम सभी लोग बहुत शीघ्र जाकर यशस्विनी सीताका दर्शन करो और यह भी पता लगाओ, 'वे कैसे स्थानमें हैं किस रूपमें हैं ? विशेषतः उनका आचरण कैसा है ? कौन उन्हें ले गया है ? तथा उसने उन्हें कहाँ रक्खा है ?'—यह सब जानकर शीघ्र लौट आओ'' ॥ ७८–८५½ ॥

इत्युक्तः कपिराजेन पितृव्येण महात्मना ॥८६॥
अङ्गदस्तूर्णमुत्थाय तस्याज्ञां शिरसा दधे ।
इत्युक्ते दूरतः स्थाप्य वानरानथ जाम्बवान् ॥८७॥

**रामं च लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं मारुतात्मजम् ।**
**एकतः स्थाप्य तानाह नीतिमान्नीतिमद्वचः ॥८८॥**
**श्रूयतां वचनं मेऽद्य सीतान्वेषणकर्मणि ।**
**श्रुत्वा च तद्गृहाण त्वं रोचते यन्नृपात्मज ॥८९॥**
**रावणेन जनस्थानान्नीयमाना तपस्विनी ।**
**जटायुषा तु सा दृष्टा शक्त्या युद्धं प्रकुर्वता ॥९०॥**
**भूषणानि च दृष्टानि तया क्षिप्तानि तेन वै ।**
**तान्यस्माभिः प्रदृष्टानि सुग्रीवायार्पितानि च ॥९१॥**
**जटायुवाक्याद्राजेन्द्र सत्यमित्यवधारय ।**
**एतस्मात्कारणात्सीता नीता तेनैव रक्षसा ॥९२॥**
**रावणेन महाबाहो लङ्कायां वर्तते तु सा ।**
**त्वां स्मरन्ती तु तत्रस्था त्वद्दुःखेन सुदुःखिता ॥९३॥**
**रक्षन्ती यत्नतो वृत्तं तत्रापि जनकात्मजा ।**
**त्वद्ध्यानेनैव स्वान् प्राणान्धारयन्ती शुभानना ॥९४॥**
**स्थिता प्रायेण ते देवी सीता दुःखपरायणा ।**
**हितमेव च ते राजन्नुदधेर्लङ्घने क्षमम् ॥९५॥**
**वायुपुत्रं हनूमन्तं त्वमत्रादेष्टुमर्हसि ।**
**त्वं चाप्यर्हसि सुग्रीव प्रेषितुं मारुतात्मजम् ॥९६॥**
**तमृते सागरं गन्तुं वानराणां न विद्यते ।**
**बलं कस्यापि वा वीर इति मे मनसि स्थितम् ॥९७॥**
**क्रियतां मद्वचः क्षिप्रं हितं पथ्यं च नः सदा ।**

अपने चाचा महात्मा सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर अङ्गदने तुरंत उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सुग्रीवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर नीतिज्ञ जाम्बवान्ने सब वानरोंको कुछ दूर खड़ा कर दिया और श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान्‌जीको एक जगह करके उनसे यह नीतियुक्त बात कही—'नृपनन्दन श्रीरामचन्द्रजी ! सीताका अन्वेषण करनेके विषयमें इस समय आप मेरी एक बात सुनें और सुननेके बाद यदि वह अच्छी लगे तो उसे स्वीकार करें। जटायुने तपस्विनी सीताको जनस्थानसे रावणद्वारा ले जायी जाती हुई देखा था तथा उन्होंने उसके साथ यथाशक्ति युद्ध भी किया था। साथ ही, सीताजीने उस समय अपने आभूषण उतार फेंके थे, जिनको जटायुने और हमलोगोंने भी देखा था। उन आभूषणोंको हमने सुग्रीवको अर्पित कर दिया है। इस कारण राजेन्द्र ! जटायुके कथनानुसार आप इस बातको सत्य समझें कि सीताजीको वही दुष्ट राक्षस रावण ले गया है और महाबाहो ! वे इस समय लङ्कामें ही हैं। वहाँ रहकर भी वे आपके ही दुःखसे अत्यन्त दुखी हो निरन्तर आपका ही स्मरण किया करती हैं। जनकनन्दिनी सीता लङ्कामें रहकर भी अपने सदाचारकी यत्नपूर्वक रक्षा कर रही हैं। वे सुमुखी सीतादेवी आपके ही ध्यानसे अपने प्राणोंको धारण करती हुई प्रायः आपके ही वियोग-दुःखमें डूबी रहती हैं। इसलिये राजन् ! इस समय आपके हितकी ही बात बता रहा हूँ; आप इस कार्यके लिये वायुपुत्र हनूमान्‌जीको आज्ञा दें; क्योंकि ये ही समुद्र लाँघनेमें समर्थ हैं और सुग्रीव ! आपको भी चाहिये कि पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही वहाँ भेजें; क्योंकि वानरोंमें उनके अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो समुद्रके पार जा सके तथा हे वीर ! इनके बराबर किसीका बल भी नहीं है। बस, मेरे मनमें यही विचार है। मेरे कथनका शीघ्र पालन किया जाय; क्योंकि यह हमारे लिये सदा ही हितकर और लाभकारी होगा' ॥ ८६–९७½ ॥

**उक्ते जाम्बवतैवं तु नीतिस्वल्पाक्षरान्विते ॥९८॥**
**वाक्ये वानरराजोऽसौ शीघ्रमुत्थाय चासनात् ।**
**वायुपुत्रसमीपं तु तं गत्वा वाक्यमब्रवीत् ॥९९॥**

जाम्बवान्‌के इस प्रकार थोड़े अक्षरोंमें नीतियुक्त वचन कहनेपर वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही अपने आसनसे उठे और वायुनन्दन हनुमान्‌जीके निकट जाकर उनसे बोले ॥९८-९९॥

**शृणु मद्वचनं वीर हनुमन्मारुतात्मज ।**
**अयमिक्ष्वाकुतिलको राजा रामः प्रतापवान् ॥१००॥**
**पितुरादेशमादाय भ्रातृभार्यासमन्वितः ।**
**प्रविष्टो दण्डकारण्यं साक्षाद्धर्मपरायणः ॥१०१॥**
**सर्वात्मा सर्वलोकेशो विष्णुर्मानुषरूपवान् ।**
**अस्य भार्या हृता तेन दुष्टेनापि दुरात्मना ॥१०२॥**
**तद्वियोगजदुःखार्तो विचिन्वंस्तां वने वने ।**
**त्वया दृष्टो नृपः पूर्वमयं वीरः प्रतापवान् ॥१०३॥**
**एतेन सह संगम्य समयं चापि कारितम् ।**
**अनेन निहतः शत्रुर्मम वालिर्महाबलः ॥१०४॥**

अस्य प्रसादेन कपे राज्यं प्राप्तं मयाधुना ।
मया च तत्प्रतिज्ञातमस्य साहाय्यकर्मणि ॥१०५॥
तत्सत्यं कर्तुमिच्छामि त्वद्बलान्मारुतात्मज ।
उत्तीर्य सागरं वीर दृष्ट्वा सीतामनिन्दिताम् ॥१०६॥
भूयस्तर्तुं बलं नास्ति वानराणां त्वया विना ।
अतस्त्वमेव जानासि स्वामिकार्यं महामते ॥१०७॥
बलवान्नीतिमांश्चैव दक्षस्त्वं दौत्यकर्मणि ।

“पवनकुमार वीर हनुमान्‌जी ! तुम मेरी बात सुनो । ये प्रतापी राजा श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकु-वंशके भूषण हैं । ये अपने पिताकी आज्ञा मानकर भाई और पत्नीके सहित दण्डकारण्यमें चले आये थे । सदैव धर्ममें तत्पर रहनेवाले ये श्रीराम समस्त लोकोंके ईश्वर और सबके आत्मा साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं । इस समय मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं । इनकी धर्मपत्नी सीताको दुष्ट दुरात्मा रावणने हर लिया है । ये प्रतापी वीर राजा उन्हींके वियोगजन्य दुःखसे पीड़ित हो वन-वनमें उन्हींकी खोज करते हुए आ रहे थे, जब कि तुमने इन्हें पहले-पहल देखा था । इनके साथ मिलकर हमने प्रतिज्ञा भी की थी । इन्होंने मेरे शत्रु महाबली वालिका वध किया तथा कपे ! इन्हींकी कृपासे मैंने इस समय अपना राज्य प्राप्त किया है और मैंने भी इनकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की है । पवननन्दन ! मैं अपनी उस प्रतिज्ञाको तुम्हारे ही बलपर पूर्ण करना चाहता हूँ । वीर ! समुद्रके पार जा पतिव्रता सीताको देखकर पुनः समुद्रके इस पार लौट आनेकी सामर्थ्य तुम्हारे सिवा वानरोंमेंसे किसीमें भी नहीं है । अतः महामते ! तुम्हीं अपने स्वामीके कार्यको ठीक-ठीक जान सकते हो; क्योंकि तुम बलवान्, नीतिज्ञ और दूतकर्ममें दक्ष हो” ॥ १००–१०७½ ॥

तेनैवमुक्तो हनुमान् सुग्रीवेण महात्मना ॥१०८॥
स्वामिनोऽर्थं न किं कुर्यामीदृशं किंतु भाषसे ।
इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामस्तं पुरतः स्थितम् ॥१०९॥
प्राह वाक्यं महाबाहुर्बाष्पसम्पूर्णलोचनः ।
सीतां स्मृत्वा सुदुःखार्तः कालयुक्तममित्रजित् ॥११०॥
त्वयि भारं समारोप्य समुद्रतरणादिकम् ।
सुग्रीवः स्थाप्यते ह्यत्र मया सार्धं महामते ॥१११॥
हनूमंस्तत्र गच्छ त्वं मत्प्रीत्यै कृतनिश्चयः ।
ज्ञातीनां च तथा प्रीत्यै सुग्रीवस्य विशेषतः ॥११२॥
प्रायेण रक्षसा नीता भार्या मे जनकात्मजा ।
तत्र गच्छ महावीर यत्र सीता व्यवस्थिता ॥११३॥
यदि पृच्छति सादृश्यं मदाकारमशेषतः ।
अतो निरीक्ष्य मां भूयो लक्ष्मणं च ममानुजम् ॥११४॥
ज्ञात्वा सर्वाङ्गजं लक्ष्म सकलं चावयोरिह ।
नान्यथा विश्वसेत्सीता इति मे मनसि स्थितम् ॥११५॥

महात्मा सुग्रीवके यों कहनेपर हनुमान्‌जी बोले—“आप ऐसी बात क्यों कहते हैं ? भला, अपने स्वामी भगवान् श्रीरामका कार्य क्या मैं नहीं करूँगा ?” वायुनन्दनके इस प्रकार उत्तर देनेपर शत्रुविजयी महाबाहु राम सीताकी यादसे अत्यन्त दुखी हो, आँखोंमें आँसू भरकर, सामने बैठे हुए हनुमान्‌जीसे समयोचित वचन बोले—“महामते ! मैं समुद्रके पार जाने आदिका भार तुम्हारे ही ऊपर रखकर सुग्रीवको अपने साथ रखता हूँ । हनूमन् ! तुम मेरी, इन वानर-बन्धुओंकी और विशेषतः सुग्रीवकी प्रसन्नताके लिये दृढ निश्चय करके वहाँ ( लङ्कामें ) जाओ । महावीर ! प्रायः यही जान पड़ता है कि रावण नामक राक्षस ही सीताको ले गया है; अतः जहाँ सीता रक्खी गयी हों, वहाँ जाना । यदि वे पूछें कि ‘तुम जिनके पाससे आते हो, उन श्रीराम और लक्ष्मणका स्वरूप कैसा है ?’ तो इसका उत्तर देनेके लिये तुम मेरे शरीरको तथा मेरे छोटे भाई लक्ष्मणको भी अच्छी तरह देख लो । हम दोनोंके शरीरका प्रत्येक चिह्न देखकर उनसे बताना । नहीं तो सीता तुमपर विश्वास नहीं कर सकतीं—यह मेरे मनका दृढ विचार है” ॥१०८–११५॥

इत्युक्तो रामदेवेन प्रभञ्जनसुतो बली ।
उत्थाय तत्पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिरुवाच तम् ॥११६॥
जानामि लक्षणं सर्वं युवयोस्तु विशेषतः ।
गच्छामि कपिभिः सार्धं त्वं शोकं मा कुरुष्व वै ॥११७॥
अन्यच्च देहि विज्ञानं विश्वासो येन मे भवेत् ।
सीतायास्तव देव्यास्तु राजन् राजीवलोचन ॥११८॥

भगवान् श्रीरामके यों कहनेपर महाबली वायुनन्दन हनुमान् उठकर उनके सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनसे बोले—“मैं आप दोनोंके सब लक्षण विशेषरूपसे जानता हूँ; अब मैं वानरोंके साथ जा रहा हूँ, आप खेद न करें । कमललोचन राजन् !

इसके अतिरिक्त आप मुझे कोई पहचानकी वस्तु दीजिये, जिससे आपकी महारानी सीताका मुझपर विश्वास हो ॥ ११६–११८ ॥

इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामः कमललोचनः ।
अङ्गुलीयकमुन्मुच्य दत्तवान् रामचिह्नितम् ॥११९॥
तद्गृहीत्वा तदा सोऽपि हनूमान्मारुतात्मजः ।
रामं प्रदक्षिणीकृत्य लक्ष्मणं च कपीश्वरम् ॥१२०॥
नत्वा ततो जगामाशु हनूमानञ्जनीसुतः ।
सुग्रीवोऽपि च ताञ्ज्ञात्वा वानरान् गन्तुमुद्यतान् ॥१२१॥
आज्ञेयानाज्ञापयति वानरान् बलदर्पितान् ।
शृण्वन्तु वानराः सर्वे शासनं मम भाषितम् ॥१२२॥
विलम्बनं न कर्तव्यं युष्माभिः पर्वतादिषु ।
द्रुतं गत्वा तु तां वीक्ष्य आगन्तव्यमनिन्दिताम् ॥१२३॥
रामपत्नीं महाभागां स्थास्येऽहं रामसंनिधौ ।
कर्तनं वा करिष्यामि अन्यथा कर्णनासयोः ॥१२४॥

वायुनन्दन हनुमान्‌के इस प्रकार अनुरोध करनेपर कमललोचन श्रीरामने अपनी अँगूठी निकालकर दे दी, जिसपर 'राम' नाम खुदा हुआ था। उसे लेकर पवनकुमार हनुमान्‌ने भी श्रीराम, लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीवकी परिक्रमा की। फिर उन्हें प्रणामकर वे अञ्जनीनन्दन हनुमान् वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चले। तब सुग्रीव भी अपने आज्ञाकारी एवं बलाभिमानी वानरोंके विषयमें यह जानकर कि वे जानेके लिये उद्यत हैं, उन्हें आदेश देते हुए बोले—'सभी वानर इस समय मेरी आज्ञा सुन लें—तुम पर्वतों और वनोंमें विलम्ब मत जाना! शीघ्र जाकर महाभागा रामपत्नी पतिव्रता सीताका पता लगाकर लौट आना; मैं श्रीरामचन्द्रजीके पास ठहरता हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञाके विपरीत चलोगे तो मैं तुम्हारी नाक और कान काट लूँगा' ॥ ११९–१२४ ॥

एवं तान् प्रेषयित्वा तु आज्ञापूर्वं कपीश्वरः ।
अथ ते वानरा याताः पश्चिमादिषु दिक्षु वै ॥१२५॥
ते सानुषु समस्तेषु गिरीणामपि मूर्धसु ।
नदीतीरेषु सर्वेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥१२६॥
कन्दरेषु च सर्वेषु वनेषूपवनेषु च ।
वृक्षेषु वृक्षगुल्मेषु गुहासु च शिलासु च ॥१२७॥
सह्यपर्वतपार्श्वेषु विन्ध्यसागरपार्श्वयोः ।
हिमवत्यपि शैले च तथा किम्पुरुषादिषु ॥१२८॥
मनुदेशेषु सर्वेषु सप्तपातालकेषु च ।
मध्यदेशेषु सर्वेषु कश्मीरेषु महाबलाः ॥१२९॥
पूर्वदेशेषु सर्वेषु कामरूपेषु कोशले ।
तीर्थस्थानेषु सर्वेषु सप्तकोङ्कणकेषु च ॥१३०॥
यत्र तत्रैव ते सीतामदृष्ट्वा पुनरागताः ।
आगत्य ते नमस्कृत्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥१३१॥
सुग्रीवं च विशेषेण नास्माभिः कमलेक्षणा ।
दृष्टा सीता महाभागेत्युक्त्वा तांस्तत्र तस्थिरे ॥१३२॥

कपिराज सुग्रीवने इस प्रकार आज्ञापूर्वक उन्हें भेजा और वे वानर पश्चिम आदि दिशाओंमें चल पड़े। समस्त पर्वतोंके सानुओं (उपत्यकाओं) और शिखरोंपर, सारी नदियोंके तटोंपर, मुनियोंके आश्रमोंमें, खड्डोंमें, सब प्रकारके वनों और उपवनोंमें, वृक्षों और झाड़ियोंमें, कन्दराओं तथा शिलाओंमें, सह्यपर्वतके आस-पास, विन्ध्याचल और समुद्रके निकट, हिमालय पर्वतपर किम्पुरुष आदि देशोंमें, समस्त मानवीय प्रदेशोंमें, सातों पातालोंमें, सम्पूर्ण मध्यप्रदेशोंमें, कश्मीरमें, पूर्वदिशाके सारे देशोंमें, कामरूप (आसाम) और कोशल (अवध) में, सम्पूर्ण तीर्थ-स्थानोंमें तथा सातों कोङ्कण देशोंमें भी जहाँ-तहाँ सर्वत्र सीताकी खोज करते हुए वे महाबली वानर उन्हें न पाकर लौट आये। आकर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणके चरणोंमें तथा विशेषतः सुग्रीवको प्रणाम किया और यह कहकर कि 'हमने कमललोचना महाभागा सीताको कहीं नहीं देखा', वहाँ खड़े हो गये ॥ १२५–१३२ ॥

ततस्तं दुःखितं प्राह रामदेवं कपीश्वरः ।
सीता दक्षिणदिग्भागे स्थिता द्रष्टुं वने नृप ॥१३३॥
शक्या वानरसिंहेन वायुपुत्रेण धीमता ।
दृष्ट्वा सीतामिहायाति हनूमान्नात्र संशयः ॥१३४॥
स्थिरो भव महाबाहो राम सत्यमिदं वचः ।
लक्ष्मणोऽप्याह शकुनं तत्र वाक्यमिदं तदा ॥१३५॥
सर्वथा दृष्टसीतस्तु हनुमानागमिष्यति ।
इत्याश्वास्य स्थितौ तत्र रामं सुग्रीवलक्ष्मणौ ॥१३६॥

तब दुःखित हुए भगवान् रामसे कपिराज सुग्रीवने कहा—'राजन्! सीताजी दक्षिण दिशामें ही कहीं स्थित हैं; उन्हें वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् पवनकुमार ही देख सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि हनूमान्‌जी सीताको देखकर ही आयेंगे। महाबाहु श्रीराम! आप धैर्य धारण करें, मेरा यह कथन बिल्कुल सत्य है।' तब लक्ष्मणने भी शकुन देखकर यह बात कही—'हनुमान् सर्वथा सीताको देखकर ही आयेंगे।' इस प्रकार सुग्रीव और लक्ष्मण भगवान् श्रीरामको सान्त्वना देते हुए उनके पास रहने लगे॥ १३३—१३६॥

**अथाङ्गदं पुरस्कृत्य ये गता वानरोत्तमाः।**
**यत्नादन्वेषणार्थाय रामपत्नीं यशस्विनीम्॥१३७॥**
**अदृष्ट्वा श्रममापन्नाः कृच्छ्रभूतास्तदा वने।**
**भक्षणेन विहीनास्ते क्षुधया च प्रपीडिताः॥१३८॥**
**भ्रमद्भिर्गहनेऽरण्ये क्वापि दृष्टा च सुप्रभा।**
**गुहानिवासिनी सिद्धा ऋषिपत्नी ह्यनिन्दिता॥१३९॥**
**सा च तानागतान्दृष्ट्वा स्वाश्रमं प्रति वानरान्।**
**आगताः कस्य यूयं तु कुतः किं नु प्रयोजनम्॥१४०॥**

इधर जो-जो श्रेष्ठ वानर अङ्गदजीको आगे करके यशस्विनी श्रीसीताजीकी यत्नपूर्वक खोज करनेके लिये गये थे, वे वनमें कहीं भी सीताजीका पता न पाकर बहुत थक गये तथा कष्टमें पड़ गये। यही नहीं, कुछ भोजन न मिलनेके कारण वे भूखसे भी बहुत पीडित हो गये। गहन वनमें घूमते हुए उन्होंने एक परम कान्तिमयी और उत्तम गुणोंवाली ऋषिपत्नी देखी, जो कन्दरामें निवास करनेवाली और सिद्धा थी। उसने उन वानरोंको अपने आश्रमपर आया देख पूछा—'आपलोग किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? और यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?'॥ १३७—१४०॥

**इत्युक्ते जाम्बवानाह तां सिद्धां सुमहामतिः।**
**सुग्रीवस्य वयं भृत्या आगता ह्यत्र शोभने॥१४१॥**
**रामभार्यार्थमनघे सीतान्वेषणकर्मणि।**
**कांदिग्भूता निराहारा अदृष्ट्वा जनकात्मजाम्॥१४२॥**

उसकी बात सुनकर महामति जाम्बवान्‌ने उस सिद्धा तपस्विनीसे कहा—'शोभने! पापहीने! हम सुग्रीवके भृत्य हैं श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताकी खोज करनेके लिये यहाँ आये हैं। हम किस दिशाको जायँ, इसका ज्ञान हमें नहीं रह गया है। सीताजीका पता न पानेके कारण अभीतक हमने कुछ भोजन भी नहीं किया है'॥ १४१-१४२॥

**इत्युक्ते जाम्बवत्यत्र पुनस्तानाह सा शुभा।**
**जानामि रामं सीतां च लक्ष्मणं च कपीश्वरम्॥१४३॥**
**भुञ्जीध्वमत्र मे दत्तमाहारं च कपीश्वराः।**
**रामकार्यागतास्त्वत्र यूयं रामसमा मम॥१४४॥**
**इत्युक्त्वा चामृतं तेषां योगाद्दत्त्वा तपस्विनी।**
**भोजयित्वा यथाकामं भूयस्तानाह तापसी॥१४५॥**
**सीतास्थानं तु जानाति सम्पातिर्नाम पक्षिराट्।**
**आस्थितो वै वने सोऽपि महेन्द्रे पर्वते द्विजः॥१४६॥**
**मार्गेणानेन हरयस्तत्र यूयं गमिष्यथ।**
**स वक्ति सीतां सम्पातिर्दूरदर्शी तु यः खगः॥१४७॥**
**तेनादिष्टं तु पन्थानं पुनरासाद्य गच्छथ।**
**अवश्यं जानकीं सीतां द्रक्ष्यते पवनात्मजः॥१४८॥**

जाम्बवान्‌के यों कहनेपर उस कल्याणी तपस्विनीने पुनः उन वानरोंसे कहा—'मैं श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और कपिराज सुग्रीवको भी जानती हूँ। वानरेन्द्रगण! आपलोग यहाँ मेरा दिया हुआ आहार ग्रहण करें। आपलोग श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे यहाँ आये हैं, अतः हमारे लिये श्रीरामचन्द्रजीके समान ही आदरणीय हैं।' यों कहकर उस तपस्विनीने अपने योगबलसे उन वानरोंको अमृतमय मधुर पदार्थ अर्पित किया तथा यथेष्ट भोजन कराकर पुनः उनसे कहा—'सीताका स्थान पक्षिराज सम्पातिको ज्ञात है। वे इसी वनमें महेन्द्रपर्वतपर रहते हैं। वानरगण! आपलोग इसी मार्गसे वहाँ पहुँच जायँगे। सम्पाति बहुत दूरतक देखनेवाले हैं, अतः वे सीताका पता बता देंगे। उनके बताये हुए मार्गसे आपलोग पुनः आगे जाइयेगा। जनकनन्दिनी सीताको ये पवनकुमार हनुमान्‌जी अवश्य देख लेंगे'॥ १४३—१४८॥

**तथैवमुक्ताः कपयः परां प्रीतिमुपागताः।**
**हृष्टास्तेजनमापन्नास्तां प्रणम्य प्रतस्थिरे॥१४९॥**
**महेन्द्राद्रिं गता वीरा वानरास्तद्दिदृक्षया।**
**तत्र सम्पातिमासीनं दृष्टवन्तः कपीश्वराः॥१५०॥**
**तानुवाचाथ सम्पातिर्वानरानागतान्द्विजः।**
**के यूयमिति सम्प्राप्ताः कस्य वा ब्रूत मा चिरम्॥१५१॥**

उसके इस प्रकार कहनेपर वानरगण बहुत ही प्रसन्न हुए; उन्हें बड़ा उत्साह मिला। फिर वे उस तपस्विनीको प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थित हुए। सम्पातिको देखनेकी इच्छासे वे वीर कपीश्वर महेन्द्रपर्वतपर गये तथा वहाँ बैठे हुए सम्पातिको उन्होंने देखा। तब पक्षिराज सम्पातिने वहाँ आये हुए वानरोंसे कहा—'आपलोग कौन हैं? किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? शीघ्र बतायें'॥ १४९—१५१ ॥

इत्युक्ते वानरा ऊचुर्यथावृत्तमनुक्रमात् ।
रामदूता वयं सर्वे सीतान्वेषणकर्मणि ॥१५२॥
प्रेषिताः कपिराजेन सुग्रीवेण महात्मना ।
त्वां द्रष्टुमिह सम्प्राप्ताः सिद्धाया वचनाद्द्विज ॥१५३॥
सीतास्थानं महाभाग त्वं नो वद महामते ।
इत्युक्तो वानरैः श्येनो वीक्षांचक्रे सुदक्षिणाम् ॥१५४॥
सीतां दृष्ट्वा स लङ्कायामशोकाख्ये महावने ।
स्थितेति कथितं तेन जटायुस्तु मृतस्तव ॥१५५॥
भ्रातेति प्रोचुः स स्नात्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम् ।
योगमास्थाय स्वं देहं विससर्ज महामतिः ॥१५६॥

सम्पातिके यों पूछनेपर वानरोंने सारा समाचार यथार्थरूपसे क्रमशः बताना आरम्भ किया—'पक्षिराज! हम सब श्रीरामचन्द्रजीके दूत हैं। कपिराज महात्मा सुग्रीवने हमें सीताजीकी खोजके लिये भेजा है। पक्षिवर! एक सिद्धाके कहनेसे हम आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। महामते! महाभाग! सीताके स्थानका पता आप हमें बता दें।' वानरोंके इस तरह अनुरोध करनेपर गृध्र सम्पातिने अपनी दृष्टि दक्षिण दिशाकी ओर दौड़ायी और पतिव्रता सीताको देखकर बताया—'सीताजी लङ्कामें अशोकवनके भीतर ठहरी हुई हैं।' तब वानरोंने कहा—'आपके भ्राता जटायुने सीताजीकी रक्षाके लिये ही प्राणत्याग किया है।' यह सुनकर महामति सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी और योगधारणाका आश्रय ले अपने शरीरको त्याग दिया॥१५२—१५६॥

ततस्तं वानरा दग्ध्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम् ।
गत्वा महेन्द्रशृङ्गं ते तमारुह्य क्षणं स्थिताः ॥१५७॥
सागरं वीक्ष्य ते सर्वे परस्परमथाब्रुवन् ।
रावणेनैव भार्या सा नीता रामस्य निश्चितम् ॥१५८॥
सम्पातिवचनादद्य संज्ञातं सकलं हि तत् ।
वानराणां तु कश्चात्र उत्तीर्य लवणोदधिम् ॥१५९॥
लङ्कां प्रविश्य दृष्ट्वा तां रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
पुनश्चोदधितरणे शक्तिं ब्रूत हि शोभनाः ॥१६०॥

तदनन्तर वानरोंने सम्पातिके शवका दाह-संस्कार किया और उन्हें जलाञ्जलि दे, महेन्द्रपर्वतपर जाकर तथा उसके शिखरपर आरूढ हो, क्षणभर खड़े रहे। फिर समुद्रकी ओर देख वे सभी परस्पर कहने लगे—'रावणने ही भगवान् श्रीरामकी भार्या सीताका अपहरण किया है, यह बात निश्चित हो गयी। सम्पातिके वचनसे आज सब बातें ठीक-ठीक ज्ञात हो गयीं। शोभाशाली वानरो! अब आप सब लोग सोचकर बतायें कि यहाँ वानरोंमें कौन ऐसा वीर है, जो इस खार समुद्रके पार जा लङ्कामें घुसे और परम यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीताजीका दर्शन करके पुनः समुद्रके पार लौट आनेमें समर्थ हो सके'॥ १५७—१६० ॥

इत्युक्तो जाम्बवान् प्राह सर्वे शक्तास्तु वानराः ।
सागरोत्तरणे किंतु कार्यमन्यस्य सम्भवेत् ॥१६१॥
तत्र दक्षोऽयमेवात्र हनूमानिति मे मतिः ।
कालक्षेपो न कर्तव्यो मासार्धमधिकं गतम् ॥१६२॥
यद्यदृष्ट्वा तु गच्छामो वैदेहीं वानरर्षभाः ।
कर्णनासादि नः स्वाङ्गं निकृन्तति कपीश्वरः ॥१६३॥
तस्मात् प्रार्थ्यः स चास्माभिर्वायुपुत्रस्तु मे मतिः ।

वानरोंकी यह बात सुनकर जाम्बवान्‌ने कहा—'समुद्रको पार करनेमें तो सभी वानर समर्थ हैं, परंतु यह कार्य एक अन्यतम वानरसे ही सिद्ध होगा। मेरे विचारमें तो यह आता है कि इस कार्यको सिद्ध करनेमें केवल हनूमान्‌जी ही समर्थ हैं। अब समय नहीं खोना चाहिये। हमारे लौटनेकी जो नियत अवधि थी, उससे पंद्रह दिन अधिक बीत गये हैं। वानरेन्द्रगण! यदि हमलोग सीताको देखे बिना ही लौट जायँगे तो कपिराज सुग्रीव हमारी नाक और कान काट लेंगे। इसलिये मेरी राय यह है कि हम सब लोग इस कार्यके लिये वायुनन्दन हनुमान्‌जीसे ही प्रार्थना करें'॥ १६१—१६३½ ॥

इत्युक्तास्ते तथेत्यूचुर्वानरा वृद्धवानरम् ॥१६४॥

ततस्ते प्रार्थयामासुर्वानराः पवनात्मजम् ।
हनूमन्तं महाप्राज्ञं दक्षं कार्येषु चाधिकम् ॥१६५॥
गच्छ त्वं रामभृत्यस्त्वं रावणस्य भयाय च ।
रक्षस्व वानरकुलमस्माकमञ्जनीसुत ।
इत्युक्तस्तांस्तथेत्याह वानरान् पवनात्मजः ॥१६६॥
रामप्रयुक्तश्च पुनः स्वभर्तृणा
पुनर्महेन्द्रे कपिभिश्च नोदितः ।
गन्तुं प्रचक्रे मतिमञ्जनीसुतः
समुद्रमुत्तीर्य निशाचरालयम् ॥१६७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे पञ्चाशोऽध्यायः ॥५०॥

यह सुनकर उन वानरोंने वृद्ध जाम्बवान्‌जीसे कहा, 'अच्छा, ऐसा ही हो।' तत्पश्चात् वे सभी वानर कार्यसाधनमें विशेष कुशल महाबुद्धिमान् पवननन्दन हनूमान्‌जीसे प्रार्थना करने लगे—'अञ्जनीनन्दन! आप श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय सेवक हैं। आप ही रावणको भय देनेके लिये लङ्कामें जायँ और हमारे वानरवृन्दकी रक्षा करें।' वानरोंके यों कहनेपर पवनकुमार हनुमान्‌जीने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। एक तो श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा थी, फिर अपने स्वामी सुग्रीवने भी आदेश दिया था, इसके बाद महेन्द्रपर्वतपर उन वानरोंने भी उन्हें प्रेरित किया, अतः अञ्जनीकुमार हनुमान्‌जीने समुद्र लाँघकर निशाचरपुरी लङ्कामें जानेका निश्चय कर लिया ॥ १६४—१६७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारकी कथाविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

## इक्यावनवाँ अध्याय

### हनुमान्‌जीका समुद्र पार करके लङ्कामें जाना, सीतासे भेंट और लङ्काका दहन करके श्रीरामको समाचार देना

मार्कण्डेय उवाच

स तु रावणनीतायाः सीतायाः परिमार्गणम् ।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥
अञ्जलिं प्राङ्मुखं कृत्वा सगणायात्मयोनये ।
मनसाऽऽवन्द्य रामं च लक्ष्मणं च महारथम् ॥ २ ॥
सागरं सरितश्चैव प्रणम्य शिरसा कपिः ।
ज्ञातींश्चैव परिष्वज्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ॥ ३ ॥
अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुण्यवायुनिषेवितम् ।
पुनरागमनायेति वानरैरभिपूजितः ॥ ४ ॥
अञ्जसा स्वं तथा वीर्यमाविवेशाथ वीर्यवान् ।
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणः ॥ ५ ॥
सम्पूर्णमिव चात्मानं भावयित्वा महाबलः ।
उत्पपात गिरेः शृङ्गान्निष्पीड्य गिरिमम्बरम् ॥ ६ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—हनुमान्‌जीने रावणद्वारा हरी गयी सीताकी खोज करने तथा उनके स्थानका पता लगानेके लिये चारणोंके मार्ग (आकाश)से जानेकी इच्छा की। पूर्वाभिमुख हो, हाथ जोड़कर उन्होंने देवगणोंसहित आत्मयोनि ब्रह्माजीको मन-ही-मन प्रणाम किया तथा श्रीराम और महारथी लक्ष्मणको भी मनसे ही प्रणाम करके सागर तथा सरिताओंको मस्तक नवाया। फिर अपने वानर-बन्धुओंको गले लगाकर उन सबकी प्रदक्षिणा की। तब अन्य सब वानरोंने यह आशीर्वाद दिया—'वीर! तुम ( सकुशल ) लौट आनेके लिये पवित्र वायुसे सेवित मार्गपर बिना विघ्न-बाधाके जाओ।' यों कहकर उन्होंने हनुमान्‌जीका सम्मान किया। फिर पराक्रमी पवनकुमार अपनी सहज शक्तिको प्राप्त हुए—उनमें वायुके सदृश बलका आवेश हो गया। दूरतकके मार्गका अवलोकन करते हुए उन्होंने ऊपर दृष्टि डाली। अपने आपमें षड्विध ऐश्वर्यकी पूर्णताका-सा अनुभव करते हुए वे महाबली हनुमान् महेन्द्र पर्वतको पैरोंसे दबाकर उसके शिखरसे आकाशकी ओर उछले ॥ १—६ ॥

पितुर्मार्गेण यातस्य वायुपुत्रस्य धीमतः ।
रामकार्यपरस्यास्य सागरेण प्रचोदितः ॥ ७ ॥
विश्रामार्थं समुत्तस्थौ मैनाको लवणोदधेः ।
तं निरीक्ष्य निपीड्याथ स्यात्सम्भाष्य सादरम् ॥८॥
उत्पतंश्च वने वीरः सिंहिकास्यं महाकपिः ।
आस्यप्रान्तं प्रविश्याथ वेगेनान्तर्विनिस्सृतः ॥ ९ ॥

निस्सृत्य गतवाञ्छीघ्रं वायुपुत्रः प्रतापवान् ।
लङ्घयित्वा तु तं देशं सागरं पवनात्मजः ॥१०॥
त्रिकूटशिखरे रम्ये वृक्षाग्रे निपपात ह ।
तस्मिन् स पर्वतश्रेष्ठे दिनं नीत्वा दिनक्षये ॥११॥
संध्यामुपास्य हनुमान् रात्रौ लङ्कां शनैर्निशि ।
लङ्काभिधां विनिर्जित्य देवतां प्रविवेश ह ॥१२॥
लङ्कामनेकरत्नाढ्यां बह्वाश्चर्यसमन्विताम् ।

बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्जी श्रीरामचन्द्रजीके कार्य-साधनमें तत्पर हो जब अपने पिता वायुके मार्गसे चले जा रहे थे, उस समय उनको थोड़ी देरतक विश्राम देनेके लिये, समुद्रद्वारा प्रेरित हो, मैनाक पर्वत पानीसे बाहर ऊपरकी ओर उठ गया। उसे देख उन्होंने वहाँ थोड़ा-सा रुककर उससे आदरपूर्वक बातचीत की और फिर उसे अपने वेगसे दबाकर उछलते हुए वे दूर चले गये। आगे सिंहिका नामकी राक्षसी थी। उसने जलमें मुँह फैला रक्खा था। महाकपि हनुमान्जी उसके मुँहमें जा पड़े। मुँहमें पड़ते ही वे वेगपूर्वक उसके भीतर घुसकर पुनः बाहर निकल आये। इस प्रकार सिंहिकाके मुखसे निकलकर प्रतापी पवनकुमार उस समुद्र-प्रदेशको लाँघते हुए त्रिकूट पर्वतके सुरम्य शिखरपर एक महान् वृक्षके ऊपर जा उतरे। उसी उत्तम पर्वतपर दिन बिताकर हनुमान्जीने वहीं सायंकालकी संध्योपासना की। फिर रातमें धीरे-धीरे वे लङ्काकी ओर चले। मार्गमें मिली हुई लङ्का नामकी नगर-देवताको जीतकर उन्होंने नाना रत्नोंसे सम्पन्न और अनेक प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त लङ्कापुरीमें प्रवेश किया॥ ७—१२½ ॥

राक्षसेषु प्रसुप्तेषु नीतिमान् पवनात्मजः ॥१३॥
रावणस्य ततो वेश्म प्रविवेश महर्द्धिमत् ।
शयानं रावणं दृष्ट्वा तल्पे महति वानरः ॥१४॥
नासापुटैर्घोरकारैर्विशद्भिर्वायुमोचकैः ।
तथैव दशभिर्वक्त्रैर्दंष्ट्रोपेतैस्तु संयुतम् ॥१५॥
स्त्रीसहस्रैस्तु दृष्ट्वा तं नानाभरणभूषितम् ।
तस्मिन् सीतामदृष्ट्वा तु रावणस्य गृहे शुभे ॥१६॥
तथा शयानं स्वगृहे राक्षसानां च नायकम् ।
दुःखितो वायुपुत्रस्तु सम्पातेर्वचनं स्मरन् ॥१७॥
अशोकवनिकां प्राप्तो नानापुष्पसमन्विताम् ।
जुष्टां मलयजातेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥१८॥

तदनन्तर जब सब राक्षस गहरी नींदमें सो गये, तब नीतिज्ञ हनुमान्जीने रावणके समृद्धिशाली भवनमें प्रवेश किया। वहाँ रावण एक बहुत बड़े पलंगपर सो रहा था। हनुमान्जीने देखा—साँस छोड़नेवाले बीस भयंकर नासिका-छिद्रोंसे युक्त उसके दसों मुखोंमें बड़ी भयानक दाढ़ें थीं। नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित रावण हजारों स्त्रियोंके साथ वहाँ सोया था। किंतु रावणके उस सुन्दर भवनमें सीताजी कहीं नहीं दिखायी दीं। वह राक्षसराज अपने घरके भीतर गाढ़ निद्रामें सो रहा था। सीताजीका दर्शन न होनेसे वायुनन्दन हनुमान्जी बहुत दुःखी हुए। फिर सम्पातिके कथनको याद करके वे अशोकवाटिकामें आये, जो विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित और अत्यन्त सुगन्धित मलयज-चन्दनसे व्याप्त थी॥ १३—१८ ॥

प्रविश्य शिंशपावृक्षमाश्रितां जनकात्मजाम् ।
रामपत्नीं समद्राक्षीद् राक्षसीभिः सुरक्षिताम् ॥१९॥
अशोकवृक्षमारुह्य पुष्पितं मधुपल्लवम् ।
आसांचक्रे हरिस्तत्र सेयं सीतेति संस्मरन् ॥२०॥
सीतां निरीक्ष्य वृक्षाग्रे यावदास्तेऽनिलात्मजः ।
स्त्रीभिः परिवृतस्तत्र रावणस्तावदागतः ॥२१॥
आगत्य सीतां प्राहाथ प्रिये मां भज कामुकम् ।
भूषिता भव वैदेहि त्यज रामगतं मनः ॥२२॥
इत्येवं भाषमाणं तमन्तर्धाय तृणं ततः ।
प्राह वाक्यं शनैः सीता कम्पमानाथ रावणम् ॥२३॥
गच्छ रावण दुष्ट त्वं परदारपरायण ।
अचिराद्रामबाणास्ते पिबन्तु रुधिरं रणे ॥२४॥

वाटिकामें प्रवेश करके हनुमान्जीने अशोकवृक्षके नीचे बैठी हुई जनकनन्दिनी श्रीरामपत्नी सीताको देखा, जो राक्षसियोंसे सुरक्षित थीं। वह अशोक वृक्ष सुन्दर मृदुल पल्लवोंसे विलसित और पुष्पोंसे सुशोभित था। कपिवर हनुमान्जी उस वृक्षपर चढ़ गये और 'ये ही सीता हैं'—यह सोचते हुए वहीं बैठ गये। सीताजीका दर्शन करके वे पवनकुमार ज्यों ही वृक्षके शिखरपर बैठे, त्यों ही रावण बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरा हुआ वहाँ आया। आकर उसने सीतासे

कहा—'प्रिये ! मैं कामपीड़ित हूँ; मुझे स्वीकार करो । वैदेहि ! अब श्रृङ्गार धारण करो और श्रीरामकी ओरसे मन हटा लो ।' इस प्रकार कहते हुए रावणसे भयवश काँपती हुई सीताजी बीचमें तिनकेकी ओट रखकर धीरे-धीरे बोलीं—'परस्त्रीसेवी दुष्ट रावण ! तू चला जा ! मैं शाप देती हूँ—भगवान् श्रीरामके बाण शीघ्र ही रणभूमिमें तुम्हारा रक्त पीयेंगे' ॥ १९—२४ ॥

**तथेत्युक्तो भर्त्सितश्च राक्षसीराह राक्षसः ।**
**द्विमासाभ्यन्तरे चैनां वशीकुरुत मानुषीम् ॥२५॥**
**यदि नेच्छति मां सीता ततः खादत मानुषीम् ।**
**इत्युक्त्वा गतवान् दुष्टो रावणः स्वं निकेतनम् ॥२६॥**
**ततो भयेन तां प्राहू राक्षस्यो जनकात्मजाम् ।**
**रावणं भज कल्याणि सधनं सुखिनी भव ॥२७॥**
**इत्युक्ता प्राह ताः सीता राघवोऽलघुविक्रमः ।**
**निहत्य रावणं युद्धे सगणं मां नयिष्यति ॥२८॥**
**नाहमन्यस्य भार्या स्यामृते रामं रघूत्तमम् ।**
**स ह्यागत्य दशग्रीवं हत्वा मां पालयिष्यति ॥२९॥**

सीताजीका यह उत्तर और फटकार पाकर राक्षसराज रावणने राक्षसियोंसे कहा—'तुमलोग इस मानव-कन्याको दो महीनेके भीतर समझाकर मेरे वशीभूत कर दो । यदि इतने दिनोंतक इसका मन मेरी ओर न झुके तो इस मानुषीको तुम खा डालना ।' यों कहकर दुष्ट रावण अपने महलमें चला गया । तब रावणके डरसे डरी हुई राक्षसियोंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—'कल्याणि ! रावण बहुत धनी है, इसे स्वीकार कर लो और सुखसे रहो ।' राक्षसियोंके यों कहनेपर सीताने उनसे कहा—'महापराक्रमी भगवान् श्रीराम युद्धमें रावणको उसके सेवकगणोंसहित मारकर मुझे ले जायँगे । मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके सिवा दूसरेकी भार्या नहीं हो सकती । वे ही आकर रावणको मारकर मेरी रक्षा करेंगे' ॥ २५—२९ ॥

**इत्याकर्ण्य वचस्तस्या राक्षस्यो ददृशुर्भयम् ।**
**हन्यतां हन्यतामेषा भक्ष्यतां भक्ष्यतामियम् ॥३०॥**
**ततस्तास्त्रिजटा प्राह स्वप्ने दृष्टमनिन्दिता ।**
**शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो रावणस्य विनाशनः ॥३१॥**
**रक्षोभिः सह सर्वैस्तु रावणस्य मृतिप्रदः ।**
**लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामस्य विजयप्रदः ॥३२॥**
**स्वप्नः शुभो मया दृष्टः सीतायाश्च पतिप्रदः ।**
**त्रिजटावाक्यमाकर्ण्य सीतापार्श्वं विसृज्य ताः ॥३३॥**
**राक्षस्यस्ता ययुः सर्वाः सीतामाहाञ्जनीसुतः ।**
**कीर्तयन् रामवृत्तान्तं सकलं पवनात्मजः ॥३४॥**
**तस्यां विश्वासमानीय दत्त्वा रामाङ्गुलीयकम् ।**
**सम्भाष्य लक्षणं सर्वं रामलक्ष्मणयोस्ततः ॥३५॥**
**महत्या सेनया युक्तः सुग्रीवः कपिनायकः ।**
**तेन सार्धमिहागत्य रामस्तव पतिः प्रभुः ॥३६॥**
**लक्ष्मणश्च महावीरो देवरस्ते शुभानने ।**
**रावणं सगणं हत्वा त्वामितोऽऽदाय गच्छति ॥३७॥**

सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियोंने उन्हें भय दिखाते हुए कहा—'अरी ! इसे मार डालो, मार डालो; खा जाओ, खा जाओ ।' उन राक्षसियोंमें एकका नाम त्रिजटा था । वह उत्तम विचार रखनेवाली—साध्वी स्त्री थी । उसने उन सभी राक्षसियोंको स्वप्नमें देखी हुई बात बतायी । वह बोली—'अरी दुष्टा राक्षसियो ! सुनो; मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है, जो रावणके लिये विनाशकारी है, समस्त राक्षसोंके साथ रावणको मौतके मुँहमें डालनेवाला है, भ्राता लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी विजयका सूचक है और सीताको पतिसे मिलानेवाला है ।' त्रिजटाकी बात सुनकर वे सभी राक्षसियाँ सीताके पाससे हटकर दूर चली गयीं । तब अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीने अपनेको सीताके समक्ष प्रकट किया और 'श्रीराम-नाम'का कीर्तन करते हुए उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण वृत्तान्तका उनके समक्ष वर्णन किया । इस प्रकार सीताके मनमें विश्वास उत्पन्न करके उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी अँगूठी दी । फिर उनसे श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरके लक्षण बताये और कहा—'सुमुखि ! वानरोंके राजा सुग्रीव बहुत बड़ी सेनाके स्वामी हैं । उन्हींके साथ आपके पतिदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा आपके देवर महावीर लक्ष्मणजी यहाँ पधारेंगे और रावणको सेनासहित मारकर आपको यहाँसे ले जायँगे' ॥ ३०—३७ ॥

**इत्युक्ते सा तु विश्वस्ता वायुपुत्रमथाब्रवीत् ।**
**कथमत्रागतो वीर त्वमुत्तीर्य महोदधिम् ॥३८॥**

**इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पुनस्तामाह वानरः ।**
**गोष्पदवन्मयोत्तीर्णः समुद्रोऽयं वरानने ॥२९॥**
**जपतो रामरामेति सागरो गोष्पदायते ।**
**दुःखमग्नासि वैदेहि स्थिरा भव शुभानने ॥४०॥**
**क्षिप्रं पश्यसि रामं त्वं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।**
**इत्याश्वास्य सतीं सीतां दुःखितां जनकात्मजाम्॥४१॥**
**ततश्चूडामणिं प्राप्य श्रुत्वा काकपराभवम् ।**
**नत्वा तां प्रस्थितो वीरो गन्तुं कृतमतिः कपिः ॥४२॥**

हनुमान्‌जीके यह कहनेपर सीताजीका उनपर विश्वास हो गया। वे बोलीं—'वीर ! तुम किस तरह महासागरको पार करके यहाँ चले आये !' उनका वह वचन सुनकर हनुमान्‌जीने पुनः उनसे कहा—''वरानने ! मैं इस समुद्रको उसी प्रकार लाँघ गया जैसे कोई गौके खुरसे बने हुए गड्ढेको लाँघ जाय। जो 'राम-राम' का जप करता है, उसके लिये समुद्र गौके खुरके चिह्नके समान हो जाता है। शुभानने वैदेहि ! आप दुःखमग्ना दिखायी देती हैं, अब धैर्य धारण कीजिये। मैं आपसे सत्य-सत्य कह रहा हूँ, आप बहुत शीघ्र श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करेंगी।'' इस प्रकार दुःखमें डूबी हुई पतिव्रता जनकनन्दिनी सीताको आश्वासन दे, उनसे पहचानके लिये चूड़ामणि पाकर और श्रीरामके प्रभावसे काकरूपी जयन्तके पराभवकी कथा सुनकर, वहाँसे चल देनेका विचार करके हनुमान्‌जीने सीताको नमस्कार करनेके पश्चात् प्रस्थान किया ॥ ३८—४२ ॥

**ततो विमृश्य तद्भङ्क्त्वा क्रीडावनमशेषतः ।**
**तोरणस्थो ननादोच्चै रामो जयति वीर्यवान् ॥४३॥**
**अनेकान् राक्षसान् हत्वा सेनाः सेनापतींश्च सः ।**
**तदा त्वक्षकुमारं तु हत्वा रावणसैनिकम् ॥४४॥**
**साश्वं ससारथिं हत्वा इन्द्रजित्तं गृहीतवान् ।**
**रावणस्य पुरः स्थित्वा रामं संकीर्त्य लक्ष्मणम् ॥४५॥**
**सुग्रीवं च महावीर्यं दग्ध्वा लङ्कामशेषतः ।**
**निर्भर्त्स्य रावणं दुष्टं पुनः सम्भाष्य जानकीम् ॥४६॥**
**भूयः सागरमुत्तीर्य ज्ञातीनासाद्य वीर्यवान् ।**
**सीतादर्शनमावेद्य हनूमांश्चैव पूजितः ॥४७॥**

तत्पश्चात् कुछ सोचकर पराक्रमी हनुमान्‌जीने रावणके उस सम्पूर्ण क्रीडावन ( अशोकवाटिका ) को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वनके द्वारपर स्थित हो, उच्चस्वरसे सिंहनाद करते हुए बोले—'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो !' फिर तो युद्धके लिये सामने आये हुए अनेक राक्षसोंको मारकर सेना और सेनापतियोंका संहार किया। इसके बाद रावणके सेनापति अक्षकुमारको अश्व तथा सारथिसहित यमलोक पहुँचा दिया। इसपर रावणपुत्र इन्द्रजित्‌ने वरके प्रभावसे उन्हें बंदी बना लिया। इसके बाद वे रावणके सम्मुख उपस्थित किये गये। वहाँसे छूटकर उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीवके यशका कीर्तन करते हुए सम्पूर्ण लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर दुष्टात्मा रावणको डाँट बताकर पुनः सीताजीसे वार्तालाप किया। फिर पराक्रमी हनूमान्‌जी समुद्रके इस पार आकर अपने वानर बन्धुओंसे मिले और सीताजीके दर्शनका समाचार सुनाकर सबसे सम्मानित हुए ॥ ४३—४७ ॥

**वानरैः सार्धमागत्य हनुमान्मधुवनं महत् ।**
**निहत्य रक्षपालांस्तु पाययित्वा च तन्मधु ॥४८॥**
**सर्वे दधिमुखं पात्य हर्षितो हरिभिः सह ।**
**खमुत्पत्य च सम्प्राप्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥४९॥**
**नत्वा तु हनुमांस्तत्र सुग्रीवं च विशेषतः ।**
**आदितः सर्वमावेद्य समुद्रतरणादिकम् ॥५०॥**
**कथयामास रामाय सीता दृष्टा मयेति वै ।**
**अशोकवनिकामध्ये सीता देवी सुदुःखिता ॥५१॥**
**राक्षसीभिः परिवृता त्वां स्मरन्ती च सर्वदा ।**
**अश्रुपूर्णमुखी दीना तव पत्नी वरानना ॥ ५२॥**
**शीलवृत्तसमायुक्ता तत्रापि जनकात्मजा ।**
**सर्वत्रान्वेषमाणेन मया दृष्टा पतिव्रता ॥५३॥**
**मया सम्भाषिता सीता विश्वस्ता रघुनन्दन ।**
**अलंकारश्च सुमणिस्तया ते प्रेषितः प्रभो ॥५४॥**

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी सभी वानरोंके साथ मधुवनमें आये। उसके रखवालोंको मारकर उन्होंने वहाँ सब साथियोंको मधु-पान कराया और स्वयं भी पीया। इस कार्यमें बाधा देनेवाले दधिमुख नामके वानरको सबने धरतीपर दे मारा। इसके बाद हनुमान्‌जी सब वानरोंके साथ आनन्दित हो, आकाशमें उछलते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके निकट जा पहुँचे। वहाँ उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम कर, विशेषतः सुग्रीवको मस्तक झुकाकर उन्होंने समुद्र लाँघनेसे

लेकर सारा समाचार आद्योपान्त सुनाया और यह भी कहा कि 'मैंने अशोक-वाटिकाके भीतर सीतादेवीका दर्शन किया। उन्हें राक्षसियाँ घेरे हुए थीं और वे बहुत दुखी होकर निरन्तर आपका ही स्मरण कर रही थीं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा वह रही थी और वे बड़ी दीन अवस्थामें थीं। रघुनन्दन! आपकी धर्मपत्नी सुमुखी सीता वहाँ भी शील और सदाचारसे सम्पन्न हैं। मैंने सब जगह ढूँढ़ते हुए पतिव्रता जानकीको अशोकवनमें पाया, उनसे वार्तालाप किया और उन्होंने भी मेरा विश्वास किया। प्रभो! उन्होंने आपको देनेके लिये अपना श्रेष्ठ मणिमय अलंकार भेजा है' ॥ ४८—५४ ॥

इत्युक्त्वा दत्तवांस्तस्मै चूडामणिमनुत्तमम् ।
इदं च वचनं तुभ्यं पत्न्या सम्प्रेषितं शृणु ॥५५॥
चित्रकूटे मदङ्के तु सुप्ते त्वयि महाव्रत ।
वायसाभिभवं राजंस्तत्किल स्मर्तुमर्हसि ॥५६॥
अल्पापराधे राजेन्द्र त्वया बलिभुजि प्रभो ।
यत्कृतं तन्न कर्तुं च शक्यं देवासुरैरपि ॥५७॥
ब्रह्मास्त्रं तु तदोत्सृष्टं रावणं किं न जेष्यसि ।
इत्येवमादि बहुशः प्रोक्त्वा सीता रुरोद ह ।
एवं तु दुःखिता सीता तां मोक्तुं यत्नमाचर ॥५८॥
इत्येवमुक्ते पवनात्मजेन
सीतावचस्तच्छुभभूषणं च ।
श्रुत्वा च दृष्ट्वा च रुरोद रामः
कपिं समालिङ्ग्य शनैः प्रतस्थे ॥५९॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥*

यह कहकर हनुमान्‌जीने भगवान् श्रीरामको वह उत्तम चूडामणि दे दी और कहा—"प्रभो! आपकी धर्मपत्नी श्रीसीताजीने यह संदेश भी कहला भेजा है, सुनिये—'महान् व्रतका पालन करनेवाले महाराज! चित्रकूट पर्वतपर जब आप मेरी गोदमें [सिर रखकर] सो गये थे, उस समय काकवेषधारी जयन्तका जो आपने मान-मर्दन किया था, उसे स्मरण करें। राजेन्द्र! प्रभो! उस कौएके थोड़ेसे ही अपराधपर उसे दण्ड देनेके लिये आपने जो अद्भुत कर्म किया था, उसे देवता और असुर भी नहीं कर सकते। उस समय तो आपने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था! क्या इस समय इस रावणको पराजित नहीं करेंगे?' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर सीताजी रोने लगी थीं। यह है दुःखिनी सीताका वृत्तान्त! आप उन्हें उस दुःखसे मुक्त करनेका प्रयत्न कीजिये।" पवनकुमार हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर, सीताजीका वह संदेश सुन और उनके उस सुन्दर आभूषणको देख, भगवान् श्रीराम उन कपिवर हनुमान्‌जीको गलेसे लगाकर रोने लगे और धीरे-धीरे वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ ५५—५९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारकी कथाविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

* * *

## बावनवाँ अध्याय

### श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लङ्काके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलद्वारा समुद्र पार करके वानरसेनासहित श्रीरामका सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके वीरोचित उद्गार और दौत्यकर्म; वानर वीरोंद्वारा राक्षसोंका संहार; रावणका श्रीरामके द्वारा युद्धमें पराजित होना, कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस वीरोंका मारा जाना; मेघनादका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मूर्छित लक्ष्मणका हनुमान्‌जीके द्वारा पुनर्जीवन; राम-रावण-युद्ध; रावण-वध; देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अन्तमें पुरवासियोंसहित उनका परमधामगमन

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा प्रियावार्तां वायुपुत्रेण कीर्तिताम् ।
रामो गत्वा समुद्रान्तं वानरैः सह विस्तृतैः ॥ १ ॥
सागरस्य तटे रम्ये तालीवनविराजिते ।
सुग्रीवो जाम्बवांश्चाथ वानरैरतिहर्षितैः ॥ २ ॥
संख्यातीतैर्वृतः श्रीमान्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।

**अनुजेन च धीरेण वीक्ष्य तस्थौ सरित्पतिम् ॥ ३ ॥**
**रावणेनाथ लङ्कायां स सूक्तौ भर्त्सितोऽनुजः ।**
**विभीषणो महाबुद्धिः शास्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिः सह ॥ ४ ॥**
**नरसिंहे महादेवे श्रीधरे भक्तवत्सले ।**
**एवं रामेऽचलां भक्तिमागत्य विनयात्तदा ॥ ५ ॥**
**कृताञ्जलिरुवाचेदं राममक्लिष्टकारिणम् ।**
**राम राम महाबाहो देवदेव जनार्दन ॥ ६ ॥**
**विभीषणोऽस्मि मां रक्ष अहं ते शरणं गतः ।**
**इत्युक्त्वा निपपाताथ प्राञ्जली रामपादयोः ॥ ७ ॥**
**विदितार्थोऽथ रामस्तु तमुत्थाप्य महामतिम् ।**
**समुद्रतोयैस्तं वीरमभिषिच्य विभीषणम् ॥ ८ ॥**
**लङ्काराज्यं तवैवेति प्रोक्तः सम्भाष्य तस्थिवान् ।**

**मार्कण्डेयजी बोले**—वायुनन्दन हनुमान्‌जीके द्वारा कथित प्रिया जानकीका वृत्तान्त सुन लेनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी विशाल वानरसेनाके साथ समुद्रके निकट गये । साथ ही सुग्रीव और जाम्बवान् भी तालवनसे सुशोभित सागरके सुरम्य तटपर जा पहुँचे । अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे पूर्ण उन असंख्य वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् भगवान् राम नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे । अपने धीर-वीर अनुज लक्ष्मणजीके साथ समुद्रकी विशालताका अवलोकन करते हुए वे उसके तटपर ठहर गये । इधर लङ्कामें रावणने [ राक्षसकुलके हितके लिये ] अच्छी बात कहनेपर भी अपने छोटे भाई महाबुद्धिमान् विभीषणको बहुत फटकारा । तब वे अपने शास्त्रज्ञ मन्त्रियोंके साथ महान् देवता भक्तवत्सल लक्ष्मीपतिके अवतार नरश्रेष्ठ श्रीराममें अविचल भक्ति रखते हुए उनके निकट आये और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले उन भगवान् श्रीरामसे हाथ जोड़ विनयपूर्वक यों बोले—'महाबाहो श्रीराम ! देवदेव जनार्दन ! मैं [ रावणका भाई ] विभीषण हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ; मेरी रक्षा कीजिये'—यों कहकर हाथ जोड़े हुए वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े । उनका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीरामने उन महाबुद्धिमान् वीर विभीषणको उठाया और समुद्रके जलसे उनका राज्याभिषेक करके कहा—'अब लङ्काका राज्य तुम्हारा ही होगा ।' श्रीरामके यों कहनेपर विभीषण उनके साथ बातचीत करके वहीं खड़े रहे ॥ १–८½ ॥

**ततो विभीषणेनोक्तं त्वं विष्णुर्भुवनेश्वरः ॥ ९ ॥**
**अब्धिर्ददातु मार्गं ते देव तं याचयामहे ।**
**इत्युक्तो वानरैः सार्धं शिश्ये तत्र स राघवः ॥१०॥**
**सुप्ते रामे गतं तत्र त्रिरात्रममितद्युतौ ।**
**ततः क्रुद्धो जगन्नाथो रामो राजीवलोचनः ॥११॥**
**संशोषणमपां कर्तुमस्त्रमाग्नेयमाददे ।**
**तदोत्थाय वचः प्राह लक्ष्मणश्च रुषान्वितम् ॥१२॥**

तब विभीषणने कहा—'प्रभो ! आप जगत्पति भगवान् विष्णु हैं । देव ! ऐसी चेष्टा करें कि समुद्र ही आपको जानेका मार्ग दे दे । हम सब लोग उससे प्रार्थना करें ।' उनके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके साथ समुद्रके तटपर धरना देते हुए लेट गये । अपार कान्तिमान् भगवान् श्रीरामको वहाँ लेटे-लेटे तीन रातें बीत गयीं; तब कमलनयन जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा ही क्रोध हुआ और उन्होंने समुद्रके जलको सुखा डालनेके लिये हाथमें अग्निबाण धारण किया । यह देख लक्ष्मणजी तत्काल उठे और क्रुद्ध हुए भगवान् रामसे यों बोले ॥ ९–१२ ॥

**क्रोधस्ते लयकर्ता हि एनं जहि महामते ।**
**भूतानां रक्षणार्थाय अवतारस्त्वया कृतः ॥१३॥**
**क्षन्तव्यं देवदेवेश इत्युक्त्वा धृतवान् शरम् ।**
**ततो रात्रित्रये याते क्रुद्धं राममवेक्ष्य सः ॥१४॥**
**आग्नेयास्त्राच्च संत्रस्तः सागरोऽभ्येत्य मूर्तिमान् ।**
**आह रामं महादेवं रक्ष मामपकारिणम् ॥१५॥**
**मार्गो दत्तो मया तेऽद्य कुशलः सेतुकर्मणि ।**
**नलश्च कथितो वीरस्तेन कारय राघव ॥१६॥**
**यावदिष्टं तु विस्तीर्णं सेतुबन्धनमुत्तमम् ।**

'महामते ! आपका क्रोध तो समस्त ब्रह्माण्डका प्रलय करनेवाला है, इस समय इस कोपको दबा दें; क्योंकि आपने प्राणियोंकी रक्षाके लिये अवतार धारण किया है । देवदेव !

लेकर सारा समाचार आद्योपान्त सुनाया और यह भी कहा कि 'मैंने अशोक-वाटिकाके भीतर सीतादेवीका दर्शन किया। उन्हें राक्षसियाँ घेरे हुए थीं और वे बहुत दुखी होकर निरन्तर आपका ही स्मरण कर रही थीं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और वे बड़ी दीन अवस्थामें थीं। रघुनन्दन! आपकी धर्मपत्नी सुमुखी सीता वहाँ भी शील और सदाचारसे सम्पन्न हैं। मैंने सब जगह ढूँढ़ते हुए पतिव्रता जानकीको अशोकवनमें पाया, उनसे वार्तालाप किया और उन्होंने भी मेरा विश्वास किया। प्रभो! उन्होंने आपको देनेके लिये अपना श्रेष्ठ मणिमय अलंकार भेजा है' ॥ ४८—५४ ॥

इत्युक्त्वा दत्तवांस्तस्मै चूडामणिमनुत्तमम् ।
इदं च वचनं तुभ्यं पत्न्या सम्प्रेषितं शृणु ॥५५॥
चित्रकूटे मदङ्के तु सुप्ते त्वयि महाव्रत ।
वायसाभिभवं राजंस्तत्किल स्मर्तुमर्हसि ॥५६॥
अल्पापराधे राजेन्द्र त्वया बलिभुजि प्रभो ।
यत्कृतं तन्न कर्तुं च शक्यं देवासुरैरपि ॥५७॥
ब्रह्मास्त्रं तु तदोत्सृष्टं रावणं किं न जेष्यसि ।
इत्येवमादि बहुशः प्रोक्त्वा सीता रुरोद ह ।
एवं तु दुःखिता सीता तां मोक्तुं यत्नमाचर ॥५८॥
इत्येवमुक्ते पवनात्मजेन
सीतावचस्तच्छुभभूषणं च ।
श्रुत्वा च दृष्ट्वा च रुरोद रामः
कपिं समालिङ्ग्य शनैः प्रतस्थे ॥५९॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥*

यह कहकर हनुमान्‌जीने भगवान् श्रीरामको वह उत्तम चूडामणि दे दी और कहा—"प्रभो! आपकी धर्मपत्नी श्रीसीताजीने यह संदेश भी कहला भेजा है, सुनिये—'महान् व्रतका पालन करनेवाले महाराज! चित्रकूट पर्वतपर जब आप मेरी गोदमें [सिर रखकर] सो गये थे, उस समय काकवेषधारी जयन्तका जो आपने मान-मर्दन किया था, उसे स्मरण करें। राजेन्द्र! प्रभो! उस कौएके थोड़ेसे ही अपराधपर उसे दण्ड देनेके लिये आपने जो अद्भुत कर्म किया था, उसे देवता और असुर भी नहीं कर सकते। उस समय तो आपने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था! क्या इस समय इस रावणको पराजित नहीं करेंगे?' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर सीताजी रोने लगी थीं। यह है दुःखिनी सीताका वृत्तान्त! आप उन्हें उस दुःखसे मुक्त करनेका प्रयत्न कीजिये।" पवनकुमार हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर, सीताजीका वह संदेश सुन और उनके उस सुन्दर आभूषणको देख, भगवान् श्रीराम उन कपिवर हनुमान्‌जीको गलेसे लगाकर रोने लगे और धीरे-धीरे वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ ५५—५९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारकी कथाविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

# बावनवाँ अध्याय

### श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लङ्काके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलद्वारा समुद्र पार करके वानरसेनासहित श्रीरामका सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके वीरोचित उद्गार और दौत्यकर्म; वानर वीरोंद्वारा राक्षसोंका संहार; रावणका श्रीरामके द्वारा युद्धमें पराजित होना, कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस वीरोंका मारा जाना; मेघनादका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मूर्छित लक्ष्मणका हनुमान्‌जीके द्वारा पुनर्जीवन; राम-रावण-युद्ध; रावण-वध; देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अन्तमें पुरवासियोंसहित उनका परमधामगमन

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा प्रियावार्तां वायुपुत्रेण कीर्तिताम् ।
रामो गत्वा समुद्रान्तं वानरैः सह विस्तृतैः ॥ १ ॥
सागरस्य तटे रम्ये तालीवनविराजिते ।
सुग्रीवो जाम्बवांश्चाथ वानरैरतिहर्षितैः ॥ २ ॥
संख्यातीतैर्वृतः श्रीमान्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।

अनुजेन च धीरेण वीक्ष्य तस्थौ सरित्पतिम् ॥ ३ ॥
रावणेनाथ लङ्कायां स सूक्तौ भर्त्सितोऽनुजः ।
विभीषणो महाबुद्धिः शास्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिः सह ॥ ४ ॥
नरसिंहे महादेवे श्रीधरे भक्तवत्सले ।
एवं रामेऽचलां भक्तिमागत्य विनयात्तदा ॥ ५ ॥
कृताञ्जलिरुवाचेदं राममक्लिष्टकारिणम् ।
राम राम महाबाहो देवदेव जनार्दन ॥ ६ ॥
विभीषणोऽस्मि मां रक्ष अहं ते शरणं गतः ।
इत्युक्त्वा निपपाताथ प्राञ्जली रामपादयोः ॥ ७ ॥
विदितार्थोऽथ रामस्तु तमुत्थाप्य महामतिम् ।
समुद्रतोयैस्तं वीरमभिषिच्य विभीषणम् ॥ ८ ॥
लङ्काराज्यं तवैवेति प्रोक्तः सम्भाष्य तस्थिवान् ।

**मार्कण्डेयजी बोले**—वायुनन्दन हनुमान्‌जीके द्वारा कथित प्रिया जानकीका वृत्तान्त सुन लेनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी विशाल वानरसेनाके साथ समुद्रके निकट गये । साथ ही सुग्रीव और जाम्बवान् भी तालवनसे सुशोभित सागरके सुरम्य तटपर जा पहुँचे । अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे पूर्ण उन असंख्य वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् भगवान् राम नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे । अपने धीर-वीर अनुज लक्ष्मणजीके साथ समुद्रकी विशालताका अवलोकन करते हुए वे उसके तटपर ठहर गये । इधर लङ्कामें रावणने [ राक्षसकुलके हितके लिये ] अच्छी बात कहनेपर भी अपने छोटे भाई महाबुद्धिमान् विभीषणको बहुत फटकारा । तब वे अपने शास्त्रज्ञ मन्त्रियोंके साथ महान् देवता भक्तवत्सल लक्ष्मीपतिके अवतार नरश्रेष्ठ श्रीराममें अविचल भक्ति रखते हुए उनके निकट आये और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले उन भगवान् श्रीरामसे हाथ जोड़ विनयपूर्वक यों बोले—'महाबाहो श्रीराम ! देवदेव जनार्दन ! मैं [ रावणका भाई ] विभीषण हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ; मेरी रक्षा कीजिये'—यों कहकर हाथ जोड़े हुए वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े । उनका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीरामने उन महाबुद्धिमान् वीर विभीषणको उठाया और समुद्रके जलसे उनका राज्याभिषेक करके कहा—'अब लङ्काका राज्य तुम्हारा ही होगा ।' श्रीरामके यों कहनेपर विभीषण उनके साथ बातचीत करके वहीं खड़े रहे ॥ १—८½ ॥

ततो विभीषणेनोक्तं त्वं विष्णुर्भुवनेश्वरः ॥ ९ ॥
अब्धिर्ददातु मार्गं ते देव तं याचयामहे ।
इत्युक्तो वानरैः सार्धं शिश्ये तत्र स राघवः ॥१०॥
सुप्ते रामे गतं तत्र त्रिरात्रममितद्युतौ ।
ततः क्रुद्धो जगन्नाथो रामो राजीवलोचनः ॥११॥
संशोषणमपां कर्तुमस्त्रमाग्नेयमाददे ।
तदोत्थाय वचः प्राह लक्ष्मणश्च रुषान्वितम् ॥१२॥

तब विभीषणने कहा—'प्रभो ! आप जगत्पति भगवान् विष्णु हैं । देव ! ऐसी चेष्टा करें कि समुद्र ही आपको जानेका मार्ग दे दे । हम सब लोग उससे प्रार्थना करें ।' उनके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके साथ समुद्रके तटपर धरना देते हुए लेट गये । अपार कान्तिमान् भगवान् श्रीरामको वहाँ लेटे-लेटे तीन रातें बीत गयीं; तब कमलनयन जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा ही क्रोध हुआ और उन्होंने समुद्रके जलको सुखा डालनेके लिये हाथमें अग्निबाण धारण किया । यह देख लक्ष्मणजी तत्काल उठे और क्रुद्ध हुए भगवान् रामसे यों बोले ॥ ९—१२ ॥

क्रोधस्ते लयकर्ता हि एनं जहि महामते ।
भूतानां रक्षणार्थाय अवतारस्त्वया कृतः ॥१३॥
क्षन्तव्यं देवदेवेश इत्युक्त्वा धृतवान् शरम् ।
ततो रात्रित्रये याते क्रुद्धं राममवेक्ष्य सः ॥१४॥
आग्नेयास्त्राच्च संत्रस्तः सागरोऽभ्येत्य मूर्तिमान् ।
आह रामं महादेवं रक्ष मामपकारिणम् ॥१५॥
मार्गो दत्तो मया तेऽद्य कुशलः सेतुकर्मणि ।
नलश्च कथितो वीरस्तेन कारय राघव ॥१६॥
यावदिष्टं तु विस्तीर्णं सेतुबन्धनमुत्तमम् ।

'महामते ! आपका क्रोध तो समस्त ब्रह्माण्डका प्रलय करनेवाला है, इस समय इस कोपको दबा दें; क्योंकि आपने प्राणियोंकी रक्षाके लिये अवतार धारण किया है । देवदेव !

आप क्षमा करें,'—यों कहकर उन्होंने श्रीरामके उस बाणको पकड़ लिया। इधर तीन रात बीत जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको कुपित देख, उनके अग्निबाणसे भयभीत हो, समुद्र मनुष्यरूप धारणकर उनके निकट आया और महान् देवता भगवान् श्रीरामसे बोला—'भगवन् ! मुझ अपराधीकी रक्षा कीजिये। रघुनन्दन ! अब मैंने आपको जानेका मार्ग दे दिया। आपकी सेनामें वीरवर नल पुल बनानेमें निपुण कहे गये हैं। उनके द्वारा आपको जितना बड़ा अभीष्ट हो, उतने ही बड़े उत्तम पुलका निर्माण करा लीजिये' ॥ १३–१६½ ॥

ततो नलमुखैरन्यैर्वानरैरमितौजसैः ॥१७॥
बन्धयित्वा महासेतुं तेन गत्वा स राघवः।
सुवेलाख्यं गिरिं प्राप्तः स्थितोऽसौ वानरैर्वृतः ॥१८॥
हर्म्यस्थलस्थितं दुष्टं रावणं वीक्ष्य चाङ्गदः।
रामादेशादथोत्प्लुत्य दूतकर्मसु तत्परः ॥१९॥
प्रादात्पादप्रहारं तु रोषाद्रावणमूर्धनि।
विस्मितं तैः सुरगणैर्वीक्षितः सोऽतिवीर्यवान् ॥२०॥
साधयित्वा प्रतिज्ञां तां सुवेलं पुनरागतः।
ततो वानरसेनाभिः संख्यातीताभिरच्युतः ॥२१॥
रुरोध रावणपुरीं लङ्कां तत्र प्रतापवान्।

तब भगवान् रामने नल आदि अन्य अमित-तेजस्वी वानरोंद्वारा बहुत बड़ा पुल बनवाया और उसीके द्वारा समुद्रके पार जा, सुवेल नामक पर्वतपर पहुँचकर, वहीं वानरोंके साथ डेरा डाल दिया। वहाँसे अङ्गदने देखा—'दुष्ट रावण महलकी अट्टालिकापर बैठा हुआ है।' उसे देखते ही वे भगवान् श्रीरामकी आज्ञा ले, दूत-कार्यमें संलग्न हो, उछलकर रावणके पास जा पहुँचे। जाते ही उन्होंने रोषपूर्वक रावणके मस्तकपर लात मारी। उस समय देवताओंने महान् पराक्रमी अङ्गदजीकी ओर बड़े विस्मयके साथ देखा। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके वे पुनः सुवेल पर्वतपर चले आये। तदनन्तर प्रतापी भगवान् श्रीरामने असंख्य वानर-सेनाओंके द्वारा रावणकी पुरी लङ्काको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १७–२१½ ॥

रामः समन्तादालोक्य प्राह लक्ष्मणमन्तिके ॥२२॥

तीर्णोऽर्णवः कवलितेव कपीश्वरस्य
सेनाभटैर्झटिति राक्षसराजधानी।
यत्पौरुषोचितमिहाङ्कुरितं मया तद्
दैवस्य वश्यमपरं धनुषोऽथ वास्य ॥२३॥

तब श्रीरामने चारों ओर देख लक्ष्मणको पास बुलाकर कहा—'भाई ! हमलोगोंने समुद्र तो पार कर लिया तथा कपिराज सुग्रीवके सैनिकोंने राक्षसोंकी राजधानी लङ्काको आनन-फाननमें अपना ग्रास-सा बना लिया है। पुरुषार्थसे जो कुछ सिद्ध होनेके योग्य था, उसका अङ्कुर तो हमने उत्पन्न कर दिया; अब आगे जो कुछ होना है, वह भाग्य अथवा इस धनुषके अधीन है' ॥ २२-२३ ॥

लक्ष्मणः प्राह—कातरजनमनोऽवलम्बिना किं दैवेन।

यावल्ललाटशिखरं भ्रुकुटिर्न याति
यावन्न कार्मुकशिखामधिरोहति ज्या।
तावन्निशाचरपतेः पटिमानमेतु
त्रैलोक्यमूलविभुजेषु भुजेषु दर्पः ॥२४॥

लक्ष्मण बोले—भाई ! कातर पुरुषोंके हृदयको अवलम्बन देनेवाले भाग्य या दैवसे क्या होनेवाला है? जबतक हमारी भ्रुकुटि रोषसे तनकर ललाटके ऊपरतक नहीं जाती और जबतक प्रत्यञ्चा धनुषके अग्रभागपर नहीं चढ़ती, तभीतक निशाचरराज रावणका दर्प त्रिभुवनका मूलोच्छेदन करनेवाली उसकी भुजाओंके भरोसे बढ़ता रहे' ॥ २४ ॥

तदा लक्ष्मणः रामस्य कर्णे लगित्वा पितृवधवैरस्मरणे अथ तद्भक्तिवीर्यपरीक्षणाय लक्षणविज्ञानायादिश्यतामङ्गदाय दूत्यम्। रामः साधु इति भणित्वा अङ्गदं सबहुमानमवलोक्य आदिशति ॥ २५ ॥ अङ्गद !

पिता ते यद्वाली बलिनि दशकण्ठे कलितवा-
न्न शक्तास्तद्वक्तुं वयमपि मुदा तेन पुलकः।
स एव त्वं व्यावर्त्तयसि तनुजत्वेन पितृतां

**ततः किं वक्तव्यं तिलकयति सृष्टार्थपदवीम् ॥२६॥**

ऐसा विचार प्रकट करके लक्ष्मणने उसी समय भगवान् श्रीरामके कानमें मुँह लगाकर कहा—'अब इस समय इस बातकी परीक्षा तथा जानकारीके लिये कि यह अङ्गद अपने पिता वालीके वैर-जनित वधका स्मरण करके भी आपमें कितनी भक्ति रखता है, इसमें कितना पराक्रम है तथा इसके अत्र कैसे लक्षण ( रंग-ढंग ) हैं, आप अङ्गदको पुनः दूत-कर्म करनेका आदेश दीजिये ।' श्रीरामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा' कहकर अङ्गदकी ओर बड़े आदरसे देखकर उन्हें आदेश देने लगे—'अङ्गद ! तुम्हारे पिता वालीने दशकण्ठ रावणके प्रति जो पुरुषार्थ किया था, उसका हम भी वर्णन नहीं कर सकते । उसकी याद आते ही हर्षके कारण हमारे शरीरमें रोमाञ्च हो आता है । वही वाली आज तुम्हारे रूपमें प्रकट है । तुम पुत्ररूपमें उत्पन्न हो, अपने पुरुषार्थसे पिताको भी पीछे छोड़ रहे हो; अतः तुम्हारे विषयमें क्या कहना है । तुम पुत्र-पदवीको मस्तकका तिलक बना रहे हो' ॥ २५-२६ ॥

**अङ्गदो मौलिमण्डलमिलत्करयुगलेन प्रणम्य यदाज्ञापयति देवः । अवधार्यताम् ॥ २७ ॥**

**किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्कामिहैवानये**
**किं वा सैन्यमहं द्रुतं रघुपते तत्रैव सम्पादये ।**
**अत्यल्पं कुलपर्वतैरविरलैर्बध्नामि वा सागरं**
**देवादेशय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम॥२८॥**

अङ्गदने अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ भगवान्‌को प्रणाम करके कहा—'जैसी आज्ञा; भगवान् इधर ध्यान दें । रघुपते ! क्या मैं चहारदीवारी, विहार-स्थल और नगरद्वार-सहित लङ्कापुरीको यहीं उठा लाऊँ ? या अपनी सारी सेनाको ही उस पुरीमें आक्रमणके लिये पहुँचा दूँ ? अथवा इस अत्यन्त तुच्छ सागरको अविरल कुलाचलोंद्वारा पाट दूँ ? भगवन् ! आज्ञा दीजिये, क्या करूँ ? मेरे भुजदण्डोंद्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है' ॥ २७-२८ ॥

**श्रीरामस्तद्वचनमात्रेणैव तद्भक्तिं सामर्थ्यं चावेक्ष्य वदति ॥ २९ ॥**

**अज्ञानादथवाधिपत्यरभसा वास्मत्परोक्षे हृता**
**सीतेयं प्रविमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद ।**
**नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित**
**च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरीं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥**

भगवान् रामने अङ्गदके कथनसे ही उनकी भक्ति और शक्तिका अनुमान लगाकर कहा—"वीर ! तुम दशमुख रावणके पास जाकर कहो—'रावण ! तुम अज्ञानसे या प्रभुत्वके अभिमानमें आकर हमलोगोंके पीठ-पीछे चोरकी भाँति जिस सीताको ले गये हो, उसे छोड़ दो; नहीं तो लक्ष्मणके छोड़े हुए बाणोंद्वारा बेधे जाकर छलकते हुए रक्तकी धाराओंसे छत्रकी भाँति दिगन्तको आच्छादित करके तुम अपने पुत्रोंके साथ ही यमपुरीको प्रस्थान करोगे" ॥ २९-३० ॥

**अङ्गदः ॥ ३१ ॥ देव !**

**संधौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशाननौ ।**
**अक्षता वाक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यति ॥३२॥**
**तदा श्रीरामचन्द्रेण प्रशस्य प्रहितोऽङ्गदः ।**
**उक्तिप्रत्युक्तिचातुर्यैः पराजित्यागतो रिपुम् ॥३३॥**

अङ्गदने कहा—'देव ! मुझ दूतके रहते हुए रावण संधि करे या विग्रह, दोनों ही अवस्थाओंमें उसके दसों मस्तक पृथ्वीतलपर गिरकर लोटेंगे । हाँ, इतना अन्तर अवश्य होगा कि संधि कर लेनेपर उसके मस्तक बिना कटे ही ( आपके सामने प्रणामके लिये ) गिरेंगे और विग्रह करनेपर कटकर गिरेंगे ।' तब श्रीरामचन्द्रजीने अङ्गदकी प्रशंसा करके उन्हें भेजा और वे भी वहाँ जा, वाद-प्रतिवादकी चातुरीसे शत्रुको हराकर लौट आये ॥ ३१–३३ ॥

**राघवस्य बलं ज्ञात्वा चारैस्तदनुजस्य च ।**
**वानराणां च भीतोऽपि निर्भीरिव दशाननः ॥३४॥**
**लङ्कापुरस्य रक्षार्थमादिदेश स राक्षसान् ।**
**आदिश्य सर्वतो दिक्षु पुत्रानाह दशाननः ॥३५॥**
**धूम्राक्षं धूम्रपानं च राक्षसा यात मे पुरीम् ।**
**पाशैर्बध्नीत तौ मर्त्यौ अमित्रान्तकवीर्यवान् ।**

कुम्भकर्णोऽपि मद्भ्राता तुर्यनादैः प्रबोधितः ॥३६॥

दशानन रावणने भी अपने गुप्तचरोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीका, उनके भाई लक्ष्मणका और वानरोंका बल जानकर भयभीत होनेपर भी निडरकी भाँति लङ्कापुरीकी रक्षाके लिये राक्षसोंको आज्ञा दी। सम्पूर्ण दिशाओंमें राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दे उसने अपने पुत्रोंसे और धूम्राक्ष तथा धूम्रपानसे भी कहा—'राक्षसो! तुमलोग नगरमें जाओ और उन दोनों मनुष्य-कुमारोंको पाशसे बाँध लाओ। शत्रुओंके लिये यमराजके समान पराक्रमी मेरा भाई कुम्भकर्ण भी इस समय वाद्योंके शब्दसे जगा लिया गया है ॥ ३४—३६ ॥

राक्षसाश्चैव संदिष्टा रावणेन महाबलाः।
तस्याज्ञां शिरसाऽऽदाय युयुधुर्वानरैः सह ॥३७॥
युध्यमाना यथाशक्त्या कोटिसंख्यास्तु राक्षसाः।
वानरैर्निधनं प्राप्ताः पुनरन्यान् यथाऽऽदिशत् ॥३८॥
पूर्वद्वारे दशग्रीवो राक्षसानमितौजसः।
ते चापि युध्य हरिभिर्नीलाद्यैर्निधनं गताः ॥३९॥
अथ दक्षिणदिग्भागे रावणेन नियोजिताः।
ते सर्वे वानरवरैर्दारितास्तु यमं गताः ॥४०॥
पश्चिमेऽङ्गदमुख्यैश्च वानरैरतिगर्वितैः।
राक्षसाः पर्वताकाराः प्रापिता यमसादनम् ॥४१॥
तदुत्तरे तु दिग्भागे रावणेन निवेशिताः।
पेतुस्ते राक्षसाः क्रूरा मैन्दाद्यैर्वानरैर्हताः ॥४२॥
ततो वानरसंघास्तु लङ्काप्राकारमुच्छ्रितम्।
उत्प्लुत्याभ्यन्तरस्थांश्च राक्षसान् बलदर्पितान् ॥४३॥
हत्वा शीघ्रं पुनः प्राप्ताः स्वसेनामेव वानराः।

इतना ही नहीं, रावणने बड़े बलवान्-बलवान् राक्षसोंको युद्धके लिये आदेश दिया और वे भी उसकी आज्ञा शिरोधार्यकर वानरोंके साथ जूझने लगे। अपनी शक्तिभर युद्ध करते हुए करोड़ों राक्षस वानरोंके हाथ मारे गये। और तो और, दशमुख रावणने जिन दूसरे-दूसरे अपार-तेजस्वी राक्षसोंको पूर्वद्वारपर युद्धके लिये आदेश किया था, वे सब भी नील आदि वानरोंसे युद्ध करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए। इसके बाद रावणने दक्षिण दिशामें लड़नेके लिये जिन राक्षसोंको नियुक्त किया था, वे भी श्रेष्ठ वानरोंद्वारा अपने अङ्गोंके विदीर्ण कर दिये जानेपर यमलोकको चले गये। फिर पश्चिम द्वारपर जो पर्वताकार राक्षस थे, वे भी अत्यन्त गर्वीले अङ्गदादि वानर वीरोंद्वारा यमपुरीको पहुँचा दिये गये। फिर उत्तर द्वारपर रावणके द्वारा ठहराये हुए क्रूर राक्षस मैन्द आदि वानरोंके हाथ मारे जाकर धराशायी हो गये। तदनन्तर वानरगण लङ्काकी ऊँची चहारदीवारी फाँदकर उसके भीतर रहनेवाले बलाभिमानी राक्षसोंका भी संहार करके पुनः शीघ्रतापूर्वक अपनी सेनामें लौट आये ॥ ३७—४३½ ॥

एवं हतेषु सर्वेषु राक्षसेषु दशाननः ॥४४॥
रोदमानासु तत्स्त्रीषु निर्गतः क्रोधमूर्च्छितः।
द्वारे स पश्चिमे वीरो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥४५॥
क्वासौ रामेति च वदन् धनुष्पाणिः प्रतापवान्।
रथस्थः शरवर्षं च विसृजन् वानरेषु सः ॥४६॥
ततस्तद्बाणछिन्नाङ्गा वानरा दुद्रुवुस्तदा।
पलायमानांस्तान् दृष्ट्वा वानरान् राघवस्तदा ॥४७॥
कस्मात्तु वानरा भग्नाः किमेषां भयमागतम्।

इस प्रकार सब राक्षसोंके मारे जानेपर उनकी स्त्रियोंको रोदन करते देख दशानन रावण क्रोधसे मूर्च्छित होकर निकला। वह प्रतापी वीर हाथमें धनुष ले बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ पश्चिम द्वारपर आया और बोला—'कहाँ है वह राम?' तथा रथपर बैठे-बैठे वानरोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके बाणोंसे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वानर इधर-उधर भागने लगे। उस समय वानरोंको भागते देख श्रीरामने पूछा—'वानरोंमें क्यों भगदड़ पड़ गयी है? इनपर कौन-सा भय आ पहुँचा?' ॥ ४४—४७½ ॥

इति रामवचः श्रुत्वा प्राह वाक्यं विभीषणः ॥४८॥
शृणु राजन्महाबाहो रावणो निर्गतोऽधुना।
तद्बाणछिन्ना हरयः पलायन्ते महामते ॥४९॥

श्रीरामकी बात सुनकर विभीषणने कहा—'राजन् ! महाबाहो ! सुनिये, इस समय रावण युद्धके लिये निकला है। महामते ! उसीके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो वानरगण भाग रहे हैं' ॥ ४८-४९ ॥

इत्युक्तो राघवस्तेन धनुरुद्यम्य रोषितः ।
ज्याघोषतलघोषाभ्यां पूरयामास खं दिशः ॥५०॥
युयुधे रावणेनाथ रामः कमललोचनः ।
सुग्रीवो जाम्बवांश्चैव हनूमानङ्गदस्तथा ॥५१॥
विभीषणो वानराश्च लक्ष्मणश्चापि वीर्यवान् ।
उपेत्य रावणीं सेनां वर्षन्तीं सर्वसायकान् ॥५२॥
हस्त्यश्वरथसंयुक्तां ते निजघ्नुर्महाबलाः ।
रामरावणयोर्युद्धमभूत् तत्रापि भीषणम् ॥५३॥
रावणेन विसृष्टानि शस्त्रास्त्राणि च यानि वै ।
तानि छित्त्वाथ शस्त्रैस्तु राघवश्च महाबलः ॥५४॥
शरेण सारथिं हत्वा दशभिश्च महाहयान् ।
रावणस्य धनुश्छित्त्वा भल्लेनैकेन राघवः ॥५५॥
मुकुटं पञ्चदशभिश्छित्त्वा तन्मस्तकं पुनः ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिः शरैर्विव्याध वीर्यवान् ॥५६॥
तदा दशास्यो व्यथितो रामबाणैर्भृशं तदा ।
विवेश मन्त्रिभिर्नीतः स्वपुरीं देवमर्दकः ॥५७॥

विभीषणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर धनुष उठाया और प्रत्यञ्चाकी टंकारसे समस्त दिशाओं तथा आकाशको गुँजा दिया। तत्पश्चात् कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी रावणसे युद्ध करने लगे और सुग्रीव, जाम्बवान्, हनूमान्, अङ्गद, विभीषण, पराक्रमी लक्ष्मण तथा अन्यान्य महाबली वानर पहुँचकर हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त रावणकी चतुरङ्गिणी सेनाको, जो सब प्रकारके बाणोंकी वर्षा कर रही थी, मारने लगे। वहाँ भी श्रीराम और रावणका युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ। रावण जिन-जिन अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करता था, उन सबका बाणोंद्वारा छेदन करके महाबली श्रीरामचन्द्रजीने एक बाणसे सारथिको तथा दस बाणोंसे उसके बड़े-बड़े घोड़ोंको धराशायी करके एक भल्ल नामक बाणद्वारा रावणके धनुषको भी काट डाला। फिर महान् पराक्रमी रामने पंद्रह बाणोंसे उसके मुकुट बेधकर सुवर्णकी पाँखवाले दस बाणोंसे उसके मस्तकोंको भी बेध दिया। उस समय देवताओंका मान-मर्दन करनेवाला रावण श्रीरामके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो गया और मन्त्रियोंद्वारा ले जाया जाकर वह अपनी पुरी लङ्काको लौट गया ॥ ५०—५७ ॥

बोधितस्तूर्यनादैस्तु गजयूथक्रमैः शनैः ।
पुनः प्राकारमुल्लङ्घ्य कुम्भकर्णो विनिर्गतः ॥५८॥
उत्तुङ्गस्थूलदेहोऽसौ भीमदृष्टिर्महाबलः ।
वानरान् भक्षयन् दुष्टो विचचार क्षुधान्वितः ॥५९॥
तं दृष्ट्वोत्पत्य सुग्रीवः शूलेनोरस्यताडयत् ।
कर्णद्वयं कराभ्यां तुच्छित्त्वा वक्त्रेण नासिकाम्॥६०॥

तदनन्तर वाद्योंके घोषसे जगाया गया कुम्भकर्ण लङ्काके परकोटेको लाँघकर धीरे-धीरे गजसमूहकी-सी मन्द गतिसे बाहर निकला। उसका शरीर बहुत ही ऊँचा और मोटा था, आँखें बड़ी ही भयानक थीं। वह महाबली दुष्ट राक्षस भूखसे व्याकुल हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ रणभूमिमें विचरने लगा। उसे देख सुग्रीवने उछलकर उसकी छातीमें शूलसे प्रहार किया तथा अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों कानोंको और मुखसे उसकी नासिकाको काट लिया ॥ ५८—६० ॥

सर्वतो युध्यमानांश्च रक्षोनाथान् रणेऽधिकान् ।
राघवो घातयित्वा तु वानरेन्द्रैः समन्ततः ॥६१॥
चकर्त विशिखैस्तीक्ष्णैः कुम्भकर्णस्य कन्धराम् ।
विजित्येन्द्रजितं साक्षाद्गरुडेनागतेन सः ॥६२॥
रामो लक्ष्मणसंयुक्तः शुशुभे वानरैर्वृतः ।
व्यर्थं गते चेन्द्रजिति कुम्भकर्णे निपातिते ॥६३॥
लङ्कानाथस्ततः क्रुद्धः पुत्रं त्रिशिरसं पुनः ।
अतिकायमहाकायौ देवान्तकनरान्तकौ ॥६४॥
यूयं हत्वा तु पुत्राद्या तौ नरौ युधि निघ्नत ।
तान्नियुज्य दशग्रीवः पुत्रानेवं पुनर्ब्रवीत् ॥६५॥

महोदरमहापार्श्वौ सार्धमेतैर्महाबलैः ।
संग्रामेऽस्मिन् रिपून् हन्तुं युवां व्रजतमुद्यतौ ॥६६॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने रणमें सब ओर युद्ध करते हुए बहुसंख्यक राक्षसाधिपतियोंको चारों ओरसे वानरोंद्वारा मरवाकर अपने तीखे बाणोंसे कुम्भकर्णका भी गला काट लिया। फिर वहाँ आये हुए साक्षात् गरुडके द्वारा इन्द्रजित्को भी जीतकर वानरोंसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित बड़ी शोभा पाने लगे। इन्द्रजित्का उद्योग व्यर्थ होने और कुम्भकर्णके मारे जानेपर लङ्कापति रावणने क्रुद्ध हो अपने पुत्र त्रिशिरा, अतिकाय, महाकाय, देवान्तक और नरान्तकसे कहा—'पुत्रवरो ! तुम उन दोनों मनुष्यों—राम और लक्ष्मणको युद्धमें मार डालो।' इस प्रकार उन पुत्रोंको ऐसी आज्ञा दे दशकण्ठ रावणने पुनः महोदर और महापार्श्व नामक राक्षसोंसे कहा—'तुम दोनों इस संग्राममें शत्रुओंका वध करनेके लिये उद्यत हो बहुत बड़ी सेनाओंके साथ जाओ' ॥ ६१–६६ ॥

दृष्ट्वा तानागतांश्चैव युध्यमानान् रणे रिपून् ।
अनयल्लक्ष्मणः षड्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्यमालयम् ॥६७॥
वानराणां समूहश्च शिष्टांश्च रजनीचरान् ।
सुग्रीवेण हतः कुम्भो राक्षसो बलदर्पितः ॥६८॥
निकुम्भो वायुपुत्रेण निहतो देवकण्टकः ।
विरूपाक्षं युध्यमानं गदया तु विभीषणः ॥६९॥
भीममैन्दौ च श्वपतिं वानरेन्द्रौ निजघ्नतुः ।
अङ्गदो जाम्बवांश्चाथ हरयोऽन्यान्निशाचरान्॥७०॥
युध्यमानस्तु समरे महालक्षं महाचलम् ।
जघान रामोऽथ रणे बाणवृष्टिकरं नृप ॥७१॥

रणभूमिमें उपर्युक्त शत्रुओंको आकर युद्ध करते देख लक्ष्मणने छः तीखे बाणोंसे मारकर उन्हें यमलोक भेज दिया। इसके बाद वानरगणने शेष राक्षसोंको मार डाला। सुग्रीवने बलाभिमानी कुम्भ नामक राक्षसको मारा, हनुमान्‌जीने देवताओंके लिये कण्टकरूप निकुम्भका वध किया। युद्ध करते हुए विरूपाक्षको विभीषणने गदासे मार डाला। वानरश्रेष्ठ भीम और मैन्दने श्वपतिका संहार किया, अङ्गद और जाम्बवान् तथा अन्य वानरोंने दूसरे निशाचरोंका संहार किया। नरेश्वर ! युद्धमें लगे हुए श्रीरामचन्द्रजीने भी संग्रामभूमिमें बाणोंकी वर्षा करनेवाले महालक्ष और महाचल नामक राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया ॥ ६७–७१ ॥

इन्द्रजिन्मन्त्रलब्धं तु रथमारुह्य वै पुनः ।
वानरेषु च सर्वेषु शरवर्षं ववर्ष सः ॥७२॥
रात्रौ तद्बाणभिन्नं तु बलं सर्वं च राघवम् ।
निश्चेष्टमखिलं दृष्ट्वा जाम्बवत्प्रेरितस्तदा ॥७३॥
वीर्यादौषधमानीय हनूमान् मारुतात्मजः ।
भूम्यां शयानमुत्थाप्य रामं हरिगणांस्तथा ॥७४॥
तैरेव वानरैः सार्धं ज्वलितोल्काकरैर्निशि ।
दाहयामास लङ्कां तां हस्त्यश्वरथरक्षसाम् ॥७५॥
वर्षन्तं शरजालानि सर्वदिक्षु घनो यथा ।
स भ्रात्रा मेघनादं तं घातयामास राघवः ॥७६॥

तत्पश्चात् इन्द्रजित् मन्त्रशक्तिसे प्राप्त हुए रथपर आरूढ़ हो समस्त वानरोंपर बाण-वृष्टि करने लगा। रात्रिके समय समस्त वानर-सेना तथा श्रीरामचन्द्रजीको मेघनादके बाणोंसे विद्ध हो सर्वथा निश्चेष्ट पड़े देख पवनकुमार हनूमान्‌जी जाम्बवान्‌के द्वारा प्रेरित हो अपने पराक्रमसे औषध ले आये। उन्होंने उस औषधके प्रभावसे भूमिपर पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजी तथा वानरगणोंको उठाया और प्रज्वलित उल्का हाथमें लिये उन्हीं वानरोंके साथ रातमें जाकर हाथी, रथ और घोड़ोंसे युक्त राक्षसोंकी लङ्कामें आग लगा दी। तदनन्तर भगवान् रामने बादलके समान समस्त दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा करते हुए मेघनादका अपने भाई लक्ष्मणके द्वारा वध करा दिया ॥ ७२–७६ ॥

घातितेष्वथ रक्षस्सु पुत्रमित्रादिबन्धुषु ।
कारितेष्वथ विघ्नेषु होमजप्यादिकर्मणाम् ॥७७॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवो लङ्काद्वारे विनिर्गतः ।
क्वासौ राम इति ब्रूते मानुषस्तापसाकृतिः ॥७८॥
योद्धा कपिबलीत्युच्चैर्व्याहरद्राक्षसाधिपः ।
वेगवद्भिर्विनीतैश्च अश्वैश्चित्ररथे स्थितः ॥७९॥

**अथायान्तं तु तं दृष्ट्वा रामः प्राह दशाननम् ।**
**रामोऽहमत्र दुष्टात्मन्नेहि रावण मां प्रति ।।८०।।**

इस प्रकार जब पुत्र-मित्रादि समस्त राक्षस-बन्धु मारे गये तथा होम-जप आदि अभिचार-कर्मोंमें वानरोंद्वारा विघ्न डाल दिया गया, तब कुपित हो दशशीश रावण वेगशाली सुशिक्षित अश्वोंसे युक्त विचित्र रथमें बैठकर लङ्काके द्वारपर निकल आया और कहने लगा—‘तपस्वीका वेष बनाये वह मनुष्य राम कहाँ है, जो वानरोंके बलपर योद्धा बना हुआ है ?’ राक्षसराज रावणने यह बात बड़े जोरोंसे कही। यह सुन भगवान् रामने दशानन रावणको आते देख उससे कहा—‘दुष्टात्मा रावण ! मैं ही राम हूँ और यहाँ खड़ा हूँ, तू मेरी ओर चला आ’ ॥ ७७–८० ॥

**इत्युक्ते लक्ष्मणः प्राह रामं राजीवलोचनम् ।**
**अनेन रक्षसा योत्स्ये त्वं तिष्ठेति महाबल ।।८१।।**
**ततस्तु लक्ष्मणो गत्वा रुरोध शरवृष्टिभिः ।**
**विंशद्बाहुविसृष्टैस्तु शस्त्रास्त्रैर्लक्ष्मणं युधि ।।८२।।**
**रुरोध स दशग्रीवः तयोर्युद्धमभून्महत् ।**
**देवा व्योम्नि विमानस्था वीक्ष्य तस्थुर्महाहवम् ।।८३।।**

उनके यों कहनेपर लक्ष्मणने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘महाबल ! आप अभी ठहरें, मैं इस राक्षसके साथ युद्ध करूँगा ।’ तदनन्तर लक्ष्मणने आगे बढ़कर बाणोंकी वृष्टिसे रावणको ढक दिया। फिर दशग्रीव रावणने भी अपनी बीस भुजाओंद्वारा छोड़े हुए शस्त्रास्त्रोंसे लक्ष्मणको संग्राममें आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उन दोनोंमें महान् युद्ध हुआ। विमानपर आरूढ़ देवतागण इस महान् संग्रामको देख [ कौतूहलवश ] आकाशमें स्थित हो गये ॥ ८१–८३ ॥

**ततो रावणशस्त्राणिच्छित्त्वा स्वैस्तीक्ष्णसायकैः ।**
**लक्ष्मणः सारथिं हत्वा तस्याश्वानपि भल्लकैः ।।८४।।**
**रावणस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं च निशितैः शरैः ।**
**वक्षःस्थलं महावीर्यो विव्याध परवीरहा ।।८५।।**
**ततो रथान्निपत्याधः क्षिप्रं राक्षसनायकः ।**
**शक्तिं जग्राह कुपितो घण्टानादविनादिनीम् ।।८६।।**
**अग्निज्वालाज्वलज्जिह्वां महोल्कासदृशद्युतिम् ।**
**दृढमुष्ट्या तु निक्षिप्ता शक्तिः सा लक्ष्मणोरसि ।।८७।।**
**विदार्यान्तःप्रविष्टाथ देवास्त्रस्तास्ततोऽम्बरे ।**
**लक्ष्मणं पतितं दृष्ट्वा रुदद्भिर्वानरेश्वरैः ।।८८।।**
**दुःखितः शीघ्रमागम्य तत्पार्श्वं प्राह राघवः ।**
**क्व गतो हनुमान् वीरो मित्रो मे पवनात्मजः ।।८९।।**
**यदि जीवति मे भ्राता कथंचित्पतितो भुवि ।**

तत्पश्चात् लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंद्वारा रावणके अस्त्र-शस्त्र काटकर उसके सारथिको मार डाला और भल्लनामक बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी नष्ट कर दिया। फिर तीखे बाणोंसे रावणका धनुष और उसकी ध्वजा काटकर शत्रु-वीरोंका नाश करनेवाले महान् पराक्रमी लक्ष्मणजीने उसके वक्षःस्थलको बेध दिया। तब राक्षसराज रावण रथसे नीचे गिर पड़ा। किंतु शीघ्र ही उठकर कुपित हो उसने हाथमें शक्ति उठायी, जो सैकड़ों घड़ियालोंके समान आवाज करनेवाली थी। उसकी धार अग्निकी ज्वालाके समान प्रज्वलित थी तथा उसकी कान्ति महती उल्काके समान प्रतीत होती थी। उसने दृढ़तापूर्वक मुट्ठी बाँधकर उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीपर फेंका। वह शक्ति उनकी छाती छेदकर भीतर घुस गयी। इससे आकाशमें स्थित देवतागण भयभीत हो गये। लक्ष्मणको गिरा देख रोते हुए वानराधिपतियोंके साथ दुखी हो भगवान् श्रीराम शीघ्र ही उनके पास आये और कहने लगे—‘मेरे मित्र पवनकुमार हनुमान् कहाँ चले गये ? पृथ्वीपर पड़ा हुआ मेरा भाई लक्ष्मण जिस-किसी प्रकार भी जीवित हो सके, वह उपाय होना चाहिये’ ॥ ८४–८९½ ॥

**इत्युक्ते हनुमान् राजन् वीरो विख्यातपौरुषः ।।९०।।**
**बद्ध्वाञ्जलिं बभाषेदं देह्यनुज्ञां स्थितोऽस्मि भोः ।**

‘राजन् ! उनके इस प्रकार कहनेपर, विख्यात पराक्रमी वीर हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले—‘देव ! आज्ञा दें, मैं सेवामें उपस्थित हूँ’ ॥ ९०½ ॥

रामः प्राह महावीर विशल्यकरणी मम ॥९१॥
अनुजं विरुजं शीघ्रं कुरु मित्र महाबल ।

**श्रीरामने कहा**—महावीर ! मुझे 'विशल्यकरणी' ओषधि चाहिये । महाबली ! उसे लाकर मेरे भाईको शीघ्र ही नीरोग करो ॥ ९१½ ॥

ततो वेगात्समुत्पत्य गत्वा द्रोणगिरिं कपिः ॥९२॥
बद्ध्वा च शीघ्रमानीय लक्ष्मणं नीरुजं क्षणात् ।
चकार देवदेवेशां पश्यतां राघवस्य च ॥९३॥

तब हनुमान्‌जी बड़े वेगसे उछले और द्रोणगिरिपर जाकर शीघ्र ही वहाँसे दवा बाँधकर ले आये और उसका प्रयोग करके देवदेवेश्वरों तथा रामचन्द्रजीके देखते-देखते क्षणभरमें लक्ष्मणको नीरोग कर दिया ॥ ९२-९३ ॥

ततः क्रुद्धो जगन्नाथो रामः कमललोचनः ।
रावणस्य बलं शिष्टं हस्त्यश्वरथराक्षसम् ॥९४॥
हत्वा क्षणेन रामस्तु तच्छरीरं तु सायकैः ।
तीक्ष्णैर्जर्जरितं कृत्वा तस्थिवान् वानरैर्वृतः ॥९५॥
अस्तचेष्टो दशग्रीवः संज्ञां प्राप्य शनैः पुनः ।
उत्थाय रावणः क्रुद्धः सिंहनादं ननाद च ॥९६॥
तन्नादश्रवणैर्व्योम्नि वित्रस्तो देवतागणः ।

तदनन्तर जगदीश्वर कमलनयन श्रीराम बहुत ही कुपित हुए और रावणकी बची हुई सेनाको हाथी, घोड़े, रथ तथा राक्षसोंसहित क्षणभरमें मार गिराया । उन्होंने तीखे बाणोंसे रावणका शरीर जर्जर कर दिया और रणभूमिमें वानरोंसे घिरे हुए खड़े रहे । रावण निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा । फिर धीरे-धीरे होशमें आनेपर वह उठकर कुपित हो सिंहनाद करने लगा । उसकी गर्जना सुनकर आकाशवर्ती देवतालोग दहल गये ॥ ९४–९६½ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु रामं प्राप्य महामुनिः ॥९७॥
रावणे बद्धवैरस्तु अगस्त्यो वै जयप्रदम् ।
आदित्यहृदयं नाम मन्त्रं प्रादाज्जयप्रदम् ॥९८॥
रामोऽपि जप्त्वा तन्मन्त्रमगस्त्योक्तं जयप्रदम् ।
तद्दत्तं वैष्णवं चापमतुलं सद्गुणं दृढम् ॥९९॥
पूजयित्वा तदादाय सज्यं कृत्वा महाबलः ।
सौवर्णपुङ्खैस्तीक्ष्णैस्तु शरैर्मर्मविदारणैः ॥१००॥
युयुधे राक्षसेन्द्रेण रघुनाथः प्रतापवान् ।

इसी समय रावणके प्रति वैर बाँधे महामुनि अगस्त्य श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और शत्रुओंपर विजय दिलानेवाले 'आदित्यहृदय' नामक स्तोत्र-मन्त्रका उपदेश किया । महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी अगस्त्यमुनिके बताये हुए उस विजयदायक मन्त्रका जप करके उनके द्वारा अर्पित किये गये उत्तम डोरीवाले, सुदृढ़ एवं अनुपम वैष्णव-धनुषको सादर ग्रहण किया और उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी । फिर प्रतापी रघुनाथजी शत्रुओंका मर्म-भेदन करनेमें समर्थ सोनेकी पाँखवाले तीक्ष्ण बाणोंद्वारा राक्षसराज रावणके साथ युद्ध करने लगे ॥९७–१००½ ॥

तयोस्तु युध्यतोस्तत्र भीमशक्त्योर्महामते ॥१०१॥
परस्परविसृष्टस्तु व्योम्नि संवर्द्धितोऽनलः ।
समुत्थितो नृपश्रेष्ठ रामरावणयोर्युधि ॥१०२॥
संगरे वर्तमाने तु रामो दाशरथिस्तदा ।
पदातिर्युयुधे वीरो रामोऽनुक्तपराक्रमः ॥१०३॥
सहस्राश्वयुतं दिव्यं रथं मातलिमेव च ।
प्रेषयामास देवेन्द्रो महान्तं लोकविश्रुतम् ॥१०४॥
रामस्तं रथमारुह्य पूज्यमानः सुरोत्तमैः ।
मातल्युक्तोपदेशस्तु रामचन्द्रः प्रतापवान् ॥१०५॥
ब्रह्मदत्तवरं दुष्टं ब्रह्मास्त्रेण दशाननम् ।
जघान वैरिणं क्रूरं रामदेवः प्रतापवान् ॥१०६॥

महामते ! नृपश्रेष्ठ ! उन दोनों भयंकर शक्तिवाले श्रीराम और रावणके परस्पर युद्ध करते समय एक-दूसरेपर छोड़ी हुई अग्निकी ज्वाला उठ-उठकर वहाँ आकाशमें फैलने लगी । इस वर्तमान संग्राममें अवर्णनीय पराक्रमवाले वीर दशरथनन्दन श्रीराम पैदल ही युद्ध कर रहे थे । यह देख देवराज इन्द्रने अपने सारथि मातलिसहित एक महान् लोकविख्यात दिव्य रथ भेजा, जिसमें एक हजार घोड़े जुते थे । प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ देवोंद्वारा प्रशंसित होकर उस रथपर

आरूढ़ हुए और मातलिके उपदेशसे उस दुष्ट दशाननका, जिसे ब्रह्माजीने वरदान दिया था, ब्रह्मास्त्रद्वारा वध किया। इस प्रकार प्रतापी भगवान् श्रीरामने अपने क्रूर वैरी रावणका संहार किया ॥ १०१–१०६ ॥

रामेण निहते तत्र रावणे सगणे रिपौ ।
इन्द्राद्या देवताः सर्वाः परस्परमथाब्रुवन् ॥१०७॥
रामो भूत्वा हरिर्यस्मादस्माकं वैरिणं रणे ।
अन्यैरवध्यमप्येनं जघान युधि रावणम् ॥१०८॥
तस्मात्तं रामनामानमनन्तमपराजितम् ।
पूजयामोऽवतीर्यैनमित्युक्त्वा ते दिवौकसः ॥१०९॥
नानाविमानैः श्रीमद्भिरवतीर्य महीतले ।
रुद्रेन्द्रवसुचन्द्राद्या विधातारं सनातनम् ॥११०॥
विष्णुं जिष्णुं जगन्मूर्तिं सानुजं राममव्ययम् ।
तं पूजयित्वा विधिवत्परिवार्योपतस्थिरे ॥१११॥

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शत्रु रावणका उसके गणोंसहित वध हो जानेपर इन्द्र आदि सभी देवता परस्पर कहने लगे—"साक्षात् भगवान् विष्णुने ही श्रीरामावतार लेकर हमारे वैरी रावणका, जो दूसरोंके लिये अवध्य था, युद्धमें वध किया है। इसलिये हमलोग आकाशसे उतरकर इन अनन्त पराक्रमी तथा किसीसे भी पराजित न होनेवाले 'श्रीराम' नामक परमेश्वरकी पूजा करें।" ऐसी सम्मति करके वे रुद्र, इन्द्र, वसु और चन्द्र आदि देवतागण अनेक कान्तिमान् विमानोंद्वारा पृथ्वीपर उतरे। वे जगत्के रचयिता, विश्वमूर्ति, सनातन पुरुष, विजयशील भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत अविनाशी परमात्मा श्रीरामका लक्ष्मणसहित विधिवत् पूजन करके उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ १०७–१११ ॥

रामोऽयं दृश्यतां देवा लक्ष्मणोऽयं व्यवस्थितः ।
सुग्रीवो रविपुत्रोऽयं वायुपुत्रोऽयमास्थितः ॥११२॥
अङ्गदाद्या इमे सर्वे इत्यूचुस्ते दिवौकसः ।
गन्धामोदितदिक्चक्रा भ्रमरालिपदानुगा ॥११३॥
देवस्त्रीकरनिर्मुक्ता राममूर्धनि शोभिता ।
पपात पुष्पवृष्टिस्तु लक्ष्मणस्य च मूर्धनि ॥११४॥

सब देवता परस्पर कहने लगे—"देवगण! देखो—ये श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये लक्ष्मणजी खड़े हैं, ये सूर्यनन्दन सुग्रीव हैं, ये वायुनन्दन हनुमान्‌जी खड़े हैं और ये अङ्गद आदि सभी वानर वीर विराजमान हैं।" तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणके मस्तकपर देवाङ्गनाओंके हाथसे छोड़े गये फूलोंकी वर्षा हुई। उस समय वहाँकी सब दिशाएँ उन दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धसे सुवासित हो रही थीं और उन पुष्पोंपर भ्रमरगण मँड़रा रहे थे ॥ ११२–११४ ॥

ततो ब्रह्मा समागत्य हंसयानेन राघवम् ।
अमोघाख्येन स्तोत्रेण स्तुत्वा राममवोचत ॥११५॥

तदनन्तर ब्रह्माजी हंसकी सवारीसे वहाँ आये और 'अमोघ' नामक स्तोत्रसे भगवान् श्रीरामकी स्तुति करके तब उनसे बोले ॥ ११५ ॥

ब्रह्मोवाच

त्वं विष्णुरादिर्भूतानामनन्तो ज्ञानदृक्प्रभुः ।
त्वमेव शाश्वतं ब्रह्म वेदान्ते विदितं परम् ॥११६॥
त्वया यदद्य निहतो रावणो लोकरावणः ।
तदाशु सर्वलोकानां देवानां कर्म साधितम् ॥११७॥

ब्रह्माजीने कहा—आप समस्त प्राणियोंके आदिकारण, अविनाशी, ज्ञानदृष्टि भगवान् विष्णु हैं; आप ही वेदान्त-विख्यात सनातन परब्रह्म हैं। आपने आज जो सम्पूर्ण लोकोंको रुलानेवाले रावणका वध किया है, इससे समस्त लोकों तथा देवताओंका भी कार्य सद्यःसिद्ध हो गया ॥ ११६-११७ ॥

इत्युक्ते पद्मयोनौ तु शंकरः प्रीतिमास्थितः ।
प्रणम्य रामं तस्मै तं भूयो दशरथं नृपम् ॥११८॥
दर्शयित्वा गतो देवः सीता शुद्धेति कीर्तयन् ।

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवान् शंकरने भी पहले श्रीरामचन्द्रजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्हें राजा दशरथका दर्शन कराया। उसके बाद यह कहकर

कि 'श्रीसीताजी निष्कलङ्क और शुद्ध चरित्रवाली हैं'— भगवान् शंकर चले गये ॥ ११८½ ॥

**ततो बाहुबलप्राप्तं विमानं पुष्पकं शुभम् ॥११९॥**
**पूतामारोप्य सीतां तामादिष्टः पवनात्मजः ।**
**ततस्तु जानकीं देवीं विशोकां भूषणान्विताम्॥१२०॥**
**वन्दितां वानरेन्द्रैस्तु सार्धं भ्रात्रा महाबलः ।**
**प्रतिष्ठाप्य महादेवं सेतुमध्ये स राघवः ॥१२१॥**
**लब्धवान् परमां भक्तिं शिवे शम्भोरनुग्रहात् ।**
**रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक् ॥१२२॥**
**तस्य दर्शनमात्रेण सर्वहत्यां व्यपोहति ।**

तदनन्तर पवित्रात्मा सीताजीको अपने बाहुबलसे प्राप्त सुन्दर पुष्पक-विमानपर चढ़ाकर भगवान्ने हनुमान्‌जीको चलनेका आदेश दिया । तब समस्त वानरेन्द्रोंद्वारा वन्दित शोकरहित जानकीदेवीको आभूषणोंसे विभूषितकर महाबली रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ चले । लौटती बार श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके पुलपर महादेवजीकी स्थापना की और शंकरजीकी कृपासे उन्होंने उन शिवजीमें परमभक्ति प्राप्त की । वहाँ स्थापित हुए पिनाकधारी महादेवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए । उनके दर्शनमात्रसे शिवजी सब प्रकारके हत्यादि दोषोंको दूर कर देते हैं ॥११९–१२२½॥

**रामस्तीर्णप्रतिज्ञोऽसौ भरतासक्तमानसः ॥१२३॥**
**ततोऽयोध्यां पुरीं दिव्यां गत्वा तस्यां द्विजोत्तमैः ।**
**अभिषिक्तो वसिष्ठाद्यैर्भरतेन प्रसादितः ।**
**अकरोद्धर्मतो राज्यं चिरं रामः प्रतापवान् ॥१२४॥**
**यज्ञादिकं कर्म निजं च कृत्वा**
**पौरैस्तु रामो दिवमारुरोह ।**
**राजन्मया ते कथितं समासतो**
**रामस्य भूम्यां चरितं महात्मनः ।**
**इदं सुभक्त्या पठतां च शृण्वतां**
**ददाति रामः स्वपदं जगत्पतिः ॥१२५॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥*

इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजी अपना चित्त भरतजीकी ओर लगा रहनेके कारण वहाँसे दिव्यपुरी अयोध्याको गये । फिर भरतजीके मनानेपर श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठ आदि उत्तम ब्राह्मणोंके द्वारा अपना राज्याभिषेक कराया । तत्पश्चात् प्रतापी भगवान् श्रीरामने चिरकालतक धर्मपूर्वक राज्य किया तथा राजोचित यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करके वे पुरवासीजनोंके साथ ही स्वर्गलोक ( साकेतधाम ) को चले गये । राजन् ! पृथ्वीपर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके किये हुए चरित्रोंका मैंने तुमसे संक्षेपतः वर्णन किया । जो लोग इसको भक्तिपूर्वक पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें जगत्पति भगवान् श्रीराम अपना धाम प्रदान करते हैं ॥ १२३—१२५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारकी कथाविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

* * *

# क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन

गत वर्षकी भाँति इस वर्ष भी 'कल्याण'के विशेषाङ्कके प्रकाशनमें अत्यधिक विलम्ब हो गया, जिसके लिये मनमें बड़ी ग्लानि और दुःखका अनुभव हो रहा है। 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको इस विलम्बके कारण मानसिक क्लेश, क्षोभ, विरक्ति एवं झुँझलाहट होना स्वाभाविक है। 'कल्याण'के प्रेमी पाठक सदा ही हमपर कृपा और छोह रखते आये हैं। उन्हींकी सहज दयालुताके बलपर हम आशा करते हैं कि इस बार भी वे कृपापूर्वक हमें इसके लिये क्षमा करेंगे। साधारण अङ्कोंके प्रकाशनमें भी इस वर्ष बड़ी गड़बड़ी रही। विशेषाङ्कके प्रकाशनमें इसका भी कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। इस असाधारण विलम्बका मुख्य हेतु तो हमारे प्रधान सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारकी अस्वस्थता ही है। गत वर्षसे ही उनका स्वास्थ्य गड़बड़ रहा। पिछले नवंबर माससे वह और अधिक खराब हो गया और इधर एक माससे तो विशेष चिन्तनीय हो गया है। भगवान् सब मङ्गल करेंगे।

इस अङ्कमें अग्निपुराणके शेष एक सौ तिरासी अध्यायों तथा श्रीगर्गसंहिताके अन्तिम अश्वमेधखण्डके बासठ एवं गर्गसंहितामाहात्म्यके चार अध्यायोंका अनुवाद देनेकी बात थी। सोचा गया था कि इसीमें विशेषाङ्कके ७०० पृष्ठ पूरे हो जायँगे। परंतु हम लोगोंका अनुमान ठीक नहीं निकला। अङ्ककी छपाईके बीचमें पता चला कि उक्त दोनों ग्रन्थोंके अवशिष्ट अंशका अनुवाद लगभग ५०० पृष्ठोंमें ही पूरा हो जायगा, शेष दो सौ पृष्ठोंकी पूर्तिके लिये कुछ और सामग्री देनी आवश्यक होगी। सौभाग्यसे हमारे पास श्रीनरसिंहपुराणका अनुवाद पहलेका किया हुआ तैयार था। नरसिंहपुराणकी गणना कुछ लोगोंके मतसे अठारह पुराणोंमें है और वैष्णव-जगत्में उसकी बड़ी मान्यता है। उसमें अन्य पुराणोंकी भाँति सृष्टि, प्रलय, मन्वन्तरोंका वर्णन तथा प्रसिद्ध राजवंशोंके संक्षिप्त वर्णन, वर्णाश्रमधर्मनिरूपण तथा कलियुगका वर्णन आदि-आदि प्रसङ्गोंके साथ-साथ चिरंजीवी मार्कण्डेय मुनिके दिव्य चरित्र तथा भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार-चरित्रोंका बड़ा ही मनोरम वर्णन है, जिसके अनुशीलनसे मनमें पवित्रता आती है और भगवच्चिन्तनमें सहायता मिलती है। परंतु नरसिंहपुराण बहुत छोटा ग्रन्थ है। उसका अविकल अनुवाद देनेपर भी विशेषाङ्ककी सामग्री पूरी नहीं होती। इसलिये उसका मूल भी बड़े टाइपमें देनेकी बात सोची गयी। नरसिंहपुराणका प्रचार बहुत कम होनेसे उसका प्रामाणिक पाठ भी नहीं मिलता। इसलिये भी मूल पाठ साथ देना आवश्यक समझा गया। किंतु पूरा अनुवाद मूलसहित विशेषाङ्कमें देना सम्भव नहीं था। पूरा अनुवाद देनेसे अङ्कका आकार ७०० पृष्ठोंसे अधिक हो जाता, फलतः डाकखर्च अधिक बढ़ जाता। डाक-विभागके नियमानुसार विशेषाङ्कका बोझ एक किलोग्रामसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिक होनेपर डाकखर्च अधिक देना पड़ता है। अतएव नरसिंहपुराणके केवल ५२ अध्यायोंका मूल एवं अनुवाद ही इस अङ्कमें दिया जा रहा है। शेष १६अध्यायोंका मूल एवं अनुवाद फरवरीके अङ्कमें देनेका विचार है, जो इस अङ्कका परिशिष्टाङ्क होगा। किंतु परिशिष्टाङ्कमें तो आठ फर्मोंसे अधिक दिया नहीं जा सकता। इसलिये मैटर पूरा करनेके लिये विशेषाङ्कमें ही पन्ने बढ़ाने पड़े। इधर कागजकी कमीके कारण कागज भी कुछ मोटा देना पड़ा, इसका परिणाम यह हुआ कि विशेषाङ्कका बोझ न चाहनेपर भी एक किलोसे अधिक हो ही गया, जिसके कारण अङ्कके बाहर भेजनेमें डाकखर्च बढ़ जायगा। देर हो जानेके कारण फरवरीका अङ्क भी साथ ही जा रहा है।

अग्निपुराणका जो अंश इस अङ्कमें दिया गया है, उसमें पुराणोंके अन्य विषयोंके साथ-साथ विविध दानोंके स्वरूप तथा महिमा, राजधर्म, शकुन-विचार, राजनीति, रत्नपरीक्षण, धनुर्वेद एवं युद्धविद्या, अर्थशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, देवपूजा, आयुर्वेद एवं पशुचिकित्सा आदि-आदि उपयोगी विषयोंके साथ, जिनका ज्ञान इस युगमें भारतीय संस्कृतिके साथ-साथ लुप्त होता जा रहा है, छन्दःशास्त्र ( जिसमें लौकिक छन्दोंके साथ-साथ वैदिक छन्दोंका भी विशद वर्णन है )

शिक्षा, काव्य-साहित्य-मीमांसा, व्याकरण, योगदर्शन आदि विविध शास्त्रोंका भी संक्षिप्त किंतु प्रामाणिक वर्णन है, जिसको पढ़कर साधारण पढ़े-लिखे लोगोंको भी इन विषयोंका सामान्य ज्ञान सुलभ हो जाता है । इन अंशोंका अनुवाद करनेमें भी उक्त विषयोंके अन्यान्य ग्रन्थों एवं मनीषियोंकी सहायता ली गयी है, जिसके लिये हम उन विद्वानोंके प्रति आभार-प्रदर्शन करते हैं। नरसिंहपुराणका सम्पादन एवं अनुवाद भी हमारे आत्मीय तथा कल्याण-पाठकोंके सुपरिचित साहित्याचार्य पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री ( वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ) का ही किया हुआ है, जिसके लिये हम उनके आभारी हैं। पाठसंशोधन एवं अनुवादमें भरसक पूरी सावधानी बरतनेपर भी दृष्टिदोषके कारण त्रुटियोंका रह जाना सम्भव है । उनके लिये हम पाठकोंसे करबद्ध क्षमा-याचना करते हैं ।

'कल्याण'का काम वास्तवमें भगवान्‌का काम है। हम लोग तो निमित्तमात्र **हैं** । हमें तो इस कार्यके करनेमें अनायास जो थोड़ी-बहुत भगवत्स्मृति हो जाती है, वही हमारे लिये परम लाभ है और इसे हम भगवान्‌की कृपा मानते हैं। त्रुटियोंके लिये दोषी हम हैं और उनके लिये तथा अन्य अपराधोंके लिये हम पाठकोंसे बार-बार क्षमा-प्रार्थना करते हैं ।

संसारके अन्य देशोंकी भाँति भारत भी पाश्चात्त्य सभ्यताकी चकाचौंधमें आकर अपने वास्तविक लक्ष्यको भूलता जा रहा है और क्रमशः भोगप्राप्तिको ही जीवनका ध्येय मानकर तथा अनेक भ्रान्तवादोंका शिकार बनकर विपथगामी हो रहा है। यदि इस विशेषाङ्कके अध्ययनसे हमारे देशवासियोंको मनुष्यजीवनके वास्तविक ध्येयको हृदयंगम करने तथा उसकी ओर बढ़नेमें कुछ भी सहायता मिली तो इसे हम अपना सौभाग्य मानेंगे। भगवान् सबको सुबुद्धि दें ।

निवेदक—

**चिम्मनलाल गोस्वामी, सम्पादक**

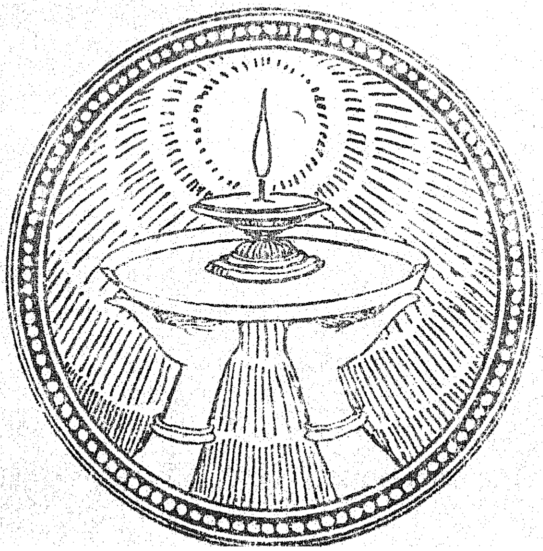

# श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

हिंदूवाङ्मयके दिव्यतम रत्न हैं—श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस, जिनमें श्रेय-प्रेयका पूर्ण विवेचन है। ये वास्तवमें सार्वभौम तथा सर्वकल्याणकारी पवित्र ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंका आश्रय लेनेसे लोक, परलोक और परमार्थ—सभी सुधरते हैं। भारत ही नहीं, भारतके बाहर भी इन ग्रन्थोंकी गौरवपूर्ण तथा मङ्गलमयी श्रेष्ठताका समादर है। इन ग्रन्थोंका दिव्यालोक जन-जनतक पहुँच सके तथा उनकी जागतिक या आध्यात्मिक उन्नतिके पथको आलोकित किया जा सके, एतदर्थ गीता और रामायण-परीक्षाकी व्यवस्था की गयी थी। परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र पुरस्कृत भी होते हैं। सैकड़ों स्थानोंपर परीक्षा-केन्द्र हैं। विशेष विवरणकी जानकारी नियमावलीसे हो सकती है। परीक्षा-सम्बन्धी सभी बातोंकी जानकारीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करें—

व्यवस्थापक—गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय स्वर्गाश्रम ( ऋषिकेश होकर ) जनपद पौड़ी गढ़वाल ( उ० प्र० )

# साधक-संघ

उसी मानवका जीवन श्रेष्ठ है, जो भगवत्परायणता, दैवीसम्पत्तिके गुण, सदाचार, आस्तिकता और सात्त्विकतासे सम्पन्न है। मानवमात्रका जीवन ऐसे दिव्य भावोंसे परिपूर्ण हो, एतदर्थ 'साधक-संघ' की स्थापना की गयी। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्णका या आश्रमका हो, नारी या पुरुष हो, हिंदू या अहिंदू हो, बिना कोई शुल्क दिये इस संघका सदस्य बन सकता है। इस संघके सदस्यको कुल २८ नियमोंका पालन करना होता है, जिसका स्पष्टीकरण एक प्रपत्रपर छपा है। प्रत्येक सदस्यको ३० पैसे मनीआर्डरसे अथवा डाकटिकटके रूपमें भेजकर 'साधक-दैनंदिनी' मँगवा लेनी चाहिये तथा प्रतिदिन उसमें नियमपालनका विवरण लिख लेना चाहिये। इस संघके सदस्योंका यह एक अनुभूत तथ्य है कि जो श्रद्धा एवं तत्परतापूर्वक नियम-पालनमें संलग्न रहता है, उसके जीवनका स्तर श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर होता चला जाता है। इस समय इसके लगभग दस हजार ( १०,००० ) सदस्य हैं। लोगोंको स्वयं इसका सदस्य बनना तथा अपने सगे-सम्बन्धियों-स्वजनों-सुपरिचितोंको सदस्य बनाना चाहिये। इससे सम्बन्धित किसी भी प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये—

संयोजक, साधक-संघ, पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद गोरखपुर ( उ० प्र० )

# श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस हिंदूसमाजके ऐसे दिव्य ग्रन्थ-रत्न हैं, जिनके अध्ययनसे तथा प्रतिपाद्य सिद्धान्तोंके मननसे अन्तरमें अचिन्त्य अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित हो उठती है। एक ओर व्यक्तिका व्यक्तिगत जीवन समुन्नत होता है तो दूसरी ओर समाजका सम्पूर्ण वातावरण श्रेष्ठ गुणोंसे सुवासित होता है। आजके तमसाच्छन्न समाजमें तो ऐसे दिव्य ग्रन्थोंके अधिकाधिक पाठ और स्वाध्यायकी आवश्यकता है, जिससे इनके आदर्शोंका अधिकाधिक प्रचार हो तथा उनकी जन-मानसमें प्रतिष्ठा हो। इसी उद्देश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ'की स्थापना हुई। इसके सदस्यको नियमितरूपसे गीता और मानसका पाठ-स्वाध्याय करना होता है। गत वर्ष सदस्योंकी संख्या ५५,००० से अधिक थी। इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ६ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके एवं उपासना-विभागमें नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी या मानसिक पूजा करनेवाले सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासनाके लिये प्रेरणा की जाती है। विशेष जानकारीके लिये पत्र-व्यवहार करना चाहिये। पता इस प्रकार है—

मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, 'गीताभवन', पत्रालय—स्वर्गाश्रम ( ऋषिकेश होकर ) जनपद पौड़ी गढ़वाल ( उ० प्र० )

*गीताप्रेसकी कुछ अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें*

# संक्षिप्त महाभारत

[ दो खण्डोंमें—केवल हिंदी-अनुवाद ]

आकार २०×३० आठपेजी, पृष्ठ-संख्या १६९४, सचित्र, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य दोनों खण्डोंका एक साथ बीस ( २०.०० ) रुपये, कमीशन १.२५, बाकी १८.७५, डाकखर्च ४.००, कुल २२.७५ ।

महाभारतका भारतीय वाङ्मयमें बहुत ऊँचा तथा महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसे पञ्चम वेद भी कहते हैं । धर्मके तो प्रायः सभी अङ्गोंका इसमें वर्णन है । वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म, श्राद्धधर्म, स्त्रीधर्म, मोक्षधर्म आदि विविध धर्मोंका शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्वमें भीष्मजीके द्वारा बहुत विशद वर्णन किया गया है । भगवद्गीता-जैसा अनुपम ग्रन्थ, जिसे सारा जगत् आदरकी दृष्टिसे देखता है और जिसे हम विश्वसाहित्यका सर्वोत्तम ग्रन्थ कहें तो भी कोई अत्युक्ति न होगी, इसी महाभारतमें है । इस प्रकार जिस ओरसे भी हम महाभारतपर दृष्टिपात करते हैं, उसे हम परमोपयोगी ही पाते हैं ।

इसी भावनासे प्रेरित होकर आजसे २८ वर्ष पूर्व 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें तथा आगेके ग्यारह अङ्कोंमें महाभारतका संक्षिप्त अनुवाद छापा गया था । यद्यपि उसके बाद सम्पूर्ण महाभारत मूल तथा हिंदी-अनुवादसहित कई खण्डोंमें निकाला गया, जिसका जनताने भी अत्यन्त समादर किया; तथापि आकार बृहत् और मूल्य अधिक होनेके कारण वह सर्वसाधारणके लिये सुलभ न था । इसलिये इस संक्षिप्त महाभारतके लिये जनताकी माँग बनी रही । भगवत्कृपासे इसे दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है । इसके प्रथम खण्डमें आदिपर्वसे लेकर द्रोणपर्वतक सात और द्वितीय खण्डमें कर्णपर्वसे लेकर स्वर्गारोहण पर्वतक ग्यारह पर्व हैं । दोनों खण्ड एक साथ तथा पृथक्-पृथक् भी प्राप्त हो सकते हैं । आशा है, जनता इसे पूर्ववत् अपनाकर लाभ उठायेगी ।

# श्रीशुक-सुधा-सागर

आकार २२×२९=आठपेजी, पृष्ठ-संख्या १३६०, रंगीन चित्र २०, कपड़ेकी सुन्दर जिल्द, मूल्य २५.००, बाद कमीशन १.५५, बाकी २३.४५, डाकखर्च १३.८०, कुल ३७.२५ ।

श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि है । वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है । साक्षात् भगवान्के कलावतार श्रीवेदव्यासजी-जैसे अद्वितीय महापुरुषको जिसकी रचनासे शान्ति मिली, उस श्रीमद्भागवतकी महिमा कहाँतक कही जाय । इसमें प्रेम, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य—सभी कूट-कूटकर भरे हैं । इसका एक-एक श्लोक मन्त्रवत् माना जाता है । इसीसे इसका धर्मप्राण जनतामें इतना आदर है ।

जो लोग संस्कृतसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं, उनकी सुविधाके लिये श्रीमद्भागवतका केवल भाषानुवाद 'श्रीभागवत-सुधा-सागर'के नामसे अलग छापा गया था, जिसे जनताने बहुत पसंद किया । यद्यपि उसका टाइप बहुत छोटा नहीं था, तथापि वयोवृद्ध लोगोंके आग्रहवश इसी भाषानुवादको मोटे टाइपोंमें तथा बृहत् आकारमें 'श्रीशुकसुधासागर'के नामसे प्रकाशित किया गया है, जो पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत है । आशा है, इससे धार्मिक जनताकी बहुत बड़ी माँग पूरी हो सकेगी ।

# श्रीरामचरितमानसका बृहदाकार मूल संस्करण

**यह संस्करण हमारे सटीक १८.०० रुपयेवाले संस्करणका ही मूलमात्र निकाला गया है । वही आकार है । २२×२९ इंच, चारपेजी, पृष्ठ-संख्या ५६०, चित्र बहुरंगे ८, सजिल्द, नवाह्नपारायण एवं मासपारायणके विश्राम-स्थलोंसहित है । मूल्य केवल ११.०० रुपये, बाद कमीशन ०.७० पैसे, बाकी १०.३०, डाक-खर्च-पैकिंगचार्ज ३.५०, कुल लागत १३.८० है । लोगोंकी बहुत दिनोंकी माँग इस तरह पूरी की जा रही है ।**

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )**

# गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सदाकी भाँति इस वर्ष भी सत्सङ्गका आयोजन होने जा रहा है। आगामी ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाके आसपास स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके पहुँच जानेकी बात है। दुःखकी बात यह है कि हमारे परम श्रद्धेय भाईजी ( श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) इस जगत्में नहीं रहे, गत वर्ष भी वे अस्वस्थ होनेके कारण सत्सङ्गमें सम्मिलित नहीं हो पाये थे। इस वर्ष तो उनका शरीर छूट जानेके कारण ( जिसकी सूचना ) अलग दी जा रही है—सत्सङ्गी भाई-बहन उनके पावन एवं कल्याणकारी उपदेशोंसे सदाके लिये वञ्चित हो रहे हैं। अन्य साधु-महात्माओंके पधारनेकी सम्भावना तो है ही।

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीसेठजीने इस सत्सङ्गका आयोजन इसीलिये किया था कि अध्यात्म-पथके सच्चे पथिक भगवती भागीरथीके पावन तटपर संत-महात्माओंकी पवित्र संनिधिमें रहते हुए अपने जीवनको साधन-निष्ठ बना सकें तथा भगवान्‌के मार्गपर अग्रसर हो सकें। स्वर्गाश्रमस्थित गीताभवन ऐश-आराम, जलवायु-परिवर्तन या विनोद-विहारकी स्थली नहीं है। अतः इस सत्सङ्गमें भाग लेनेवाले भाई-बहनोंसे यह विनीत प्रार्थना है कि गीताभवनमें रहते समय वे साधक-जीवन व्यतीत करें, व्यवहार तथा दिनचर्यामें संयम-नियमको महत्त्व दें, सत्सङ्गमें उपस्थित होकर लाभ उठायें तथा अपने भजनयुक्त साधकोचित आचारसे गीताभवनके वातावरणकी श्रेष्ठताको बनाये रक्खें।

स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया नहीं मिलते, अतः लोगोंको आवश्यकतानुसार नौकर-रसोइया साथ लाने चाहिये। वहाँ यथाशक्ति व्यवस्था रखनेके बाद भी चोरी हो जाती है, अतः गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं लानी चाहिये। स्त्रियोंको पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ ही वहाँ जाना चाहिये, अकेली नहीं। भरसक बालकोंको साथ नहीं लाना चाहिये। बालकोंके कारण बड़ी अव्यवस्था होती है तथा सत्सङ्गमें विघ्न होता है। सर्वथा लाचारी हो तो वे ही लोग बच्चोंको साथ ले जायँ, जो अपने डेरेपर उन्हें अलग रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों।

भीड़के बढ़ जानेपर कभी-कभी स्थानकी इतनी तंगी हो जाती है कि एक कमरेमें दो-दो या तीन-तीन परिवार ठहराने पड़ते हैं। सभी भाइयोंसे प्रार्थना है कि ऐसी स्थितिमें सहयोग-सहिष्णुता, सेवा-सद्भावपूर्वक साथ-साथ रहते हुए सत्सङ्गका लाभ उठायें।

यद्यपि कठिनाई बहुत है, फिर भी सत्सङ्गी भाइयोंके खान-पानके शुद्ध सामानके प्रबन्धकी चेष्टा की जा रही है; परंतु दूधका प्रबन्ध होना बहुत ही कठिन है—यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेम, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )**

## कलियुग किसको पीड़ित नहीं करता ?

यस्य भावोऽखिलं विष्णुस्तस्य नो बाधते कलिः ।
अनिष्ट्वा तु महायज्ञानकृत्वापि पितॄस्वधाम् ॥
कृष्णमभ्यर्चयन् भक्त्या नैनसो भाजनं भवेत् ।
सर्वकारणमत्यन्तं विष्णुं ध्यायन्न सीदति ॥
अन्यतन्त्रादिदोषोत्थो विषयाकृष्टमानसः ।
कृत्वापि पापं गोविन्दं ध्यायन् पापैः प्रमुच्यते ॥
तद्ध्यानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः ।
तत्कर्म यत्तदर्थीयं किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥

( अग्निपुराण ३८३ । ५–८ )

'यह सब कुछ विष्णु ही है'—ऐसा जिसका भाव हो, उसे कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता । बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान और पितरोंका श्राद्ध न करके भी यदि मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका पूजन करे, तो वह पापका भागी नहीं होता । विष्णु सबके कारण हैं । उनका निरन्तर ध्यान करनेवाला पुरुष कभी कष्टमें नहीं पड़ता । यदि परतन्त्रता आदि दोषोंसे प्रभावित होकर तथा विषयोंके प्रति चित्त आकृष्ट हो जानेके कारण मनुष्य पाप-कर्म कर बैठे, तो भी गोविन्दका ध्यान करके वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । दूसरी-दूसरी बहुत-सी बातें बनानेसे क्या लाभ ? 'ध्यान' वही है, जिसमें गोविन्दका चिन्तन होता हो, 'कथा' वही है, जिसमें केशवका कीर्तन हो रहा हो और 'कर्म' वही है, जो श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये किया जाय ।

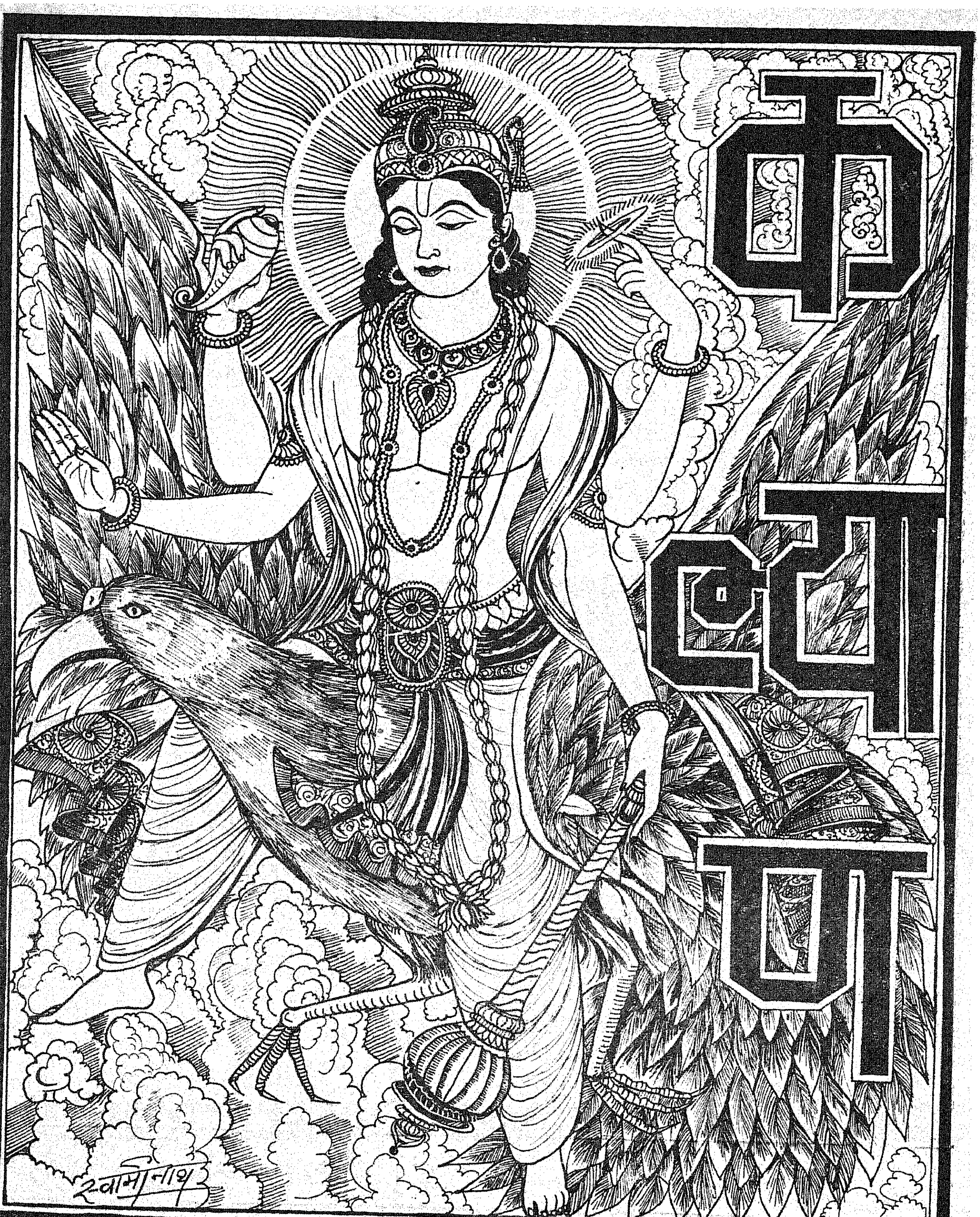

वर्ष ४५ ] ⟹ परिशिष्टाङ्क ⟸ [ अङ्क २

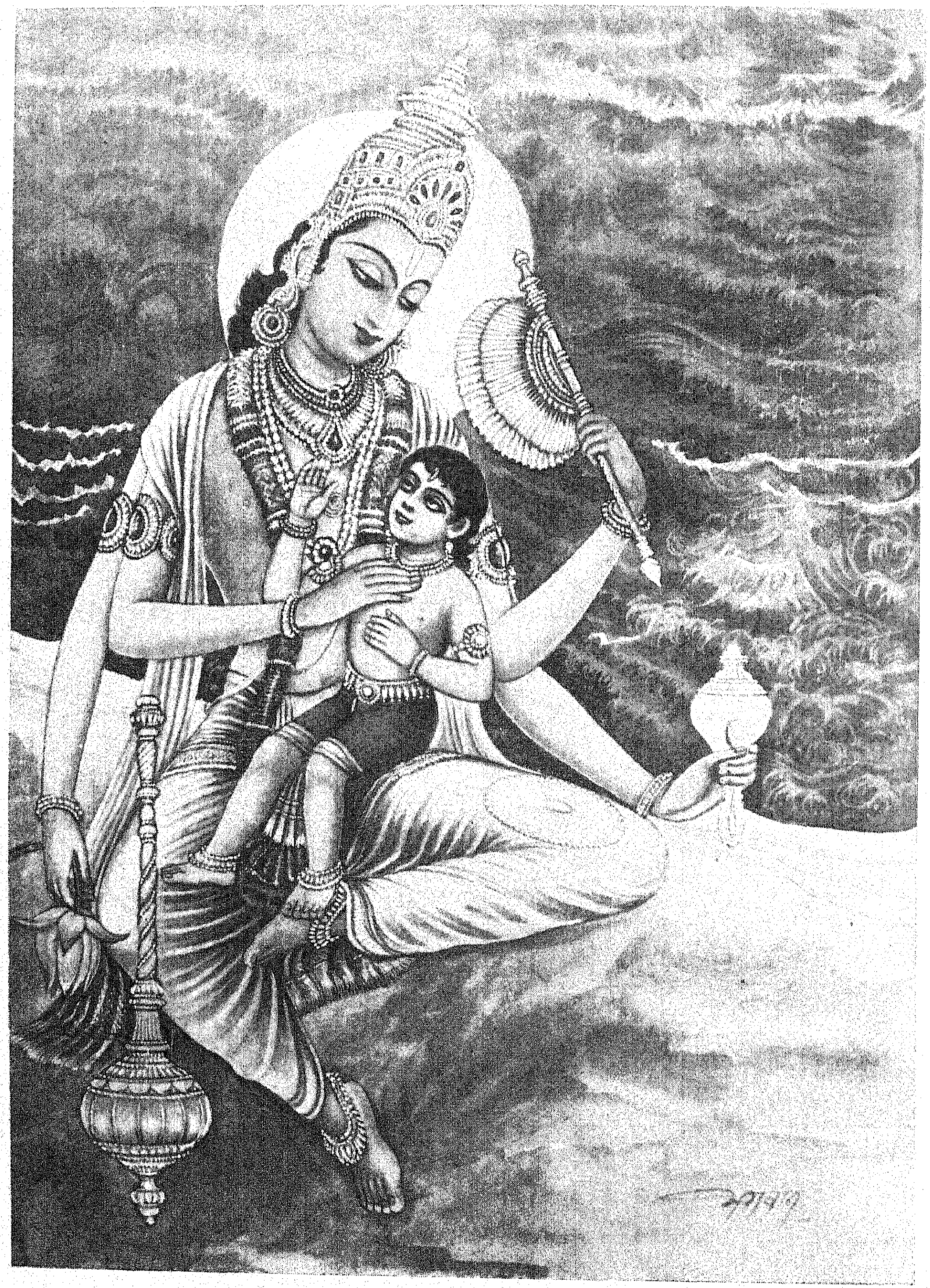

समुद्रतटपर भगवान्‌की गोदमें प्रह्लाद [ नरसिंहपुराण, अ० ४३

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

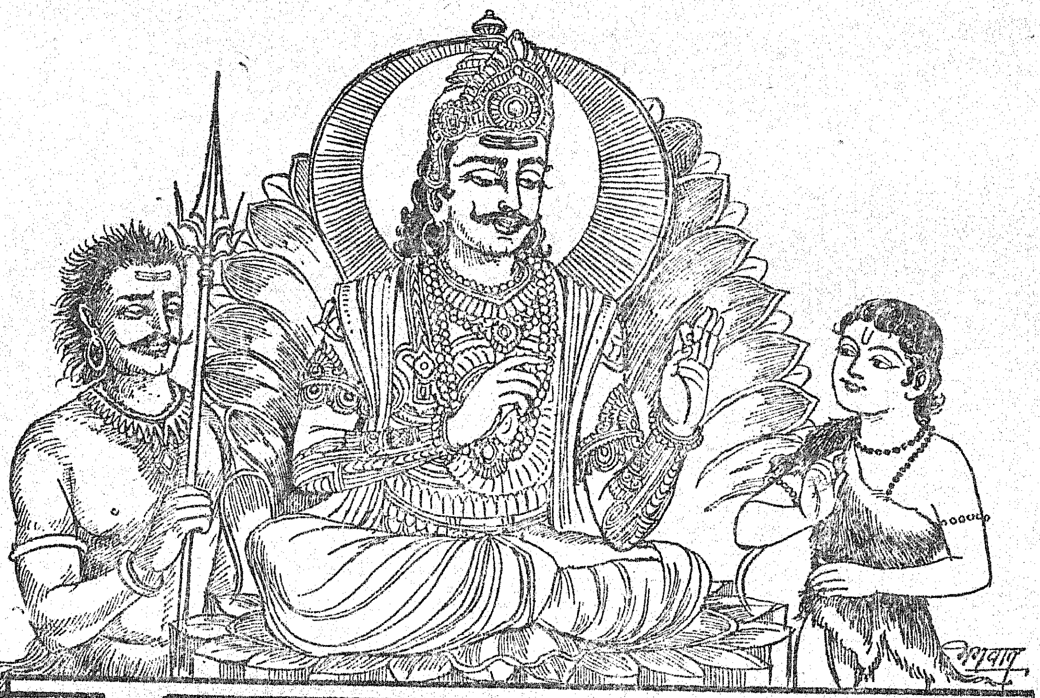

# कल्याण

अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे । इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ॥
( अग्निपुराण )

वर्ष ४५ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९६, फरवरी १९७१ { संख्या २
पूर्ण संख्या ५३१

## भगवान्‌की गोदमें स्थित प्रह्लादकी प्रार्थना

त्वद्दर्शनामृतास्वादादन्तरात्मा न तृप्यति ॥
ब्रह्मादिदेवैर्दुर्लक्ष्यं त्वामेव पश्यतः प्रभो ।
तृप्तिं नैष्यति मे चित्तं कल्पायुतशतैरपि ॥
नैवमेतद्व्यतृप्तस्य त्वां दृष्ट्वान्यद्वृणोति किम् ।
( नरसिंह० ४३ । ७४–७५½ )

प्रह्लाद कहते हैं—मेरा मन आपके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करनेसे तृप्त नहीं हो रहा है । प्रभो ! ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी जिनका दर्शन पाना कठिन है, ऐसे आपका दर्शन करते हुए मेरा मन दस लाख वर्षोंमें भी तृप्त न होगा । इस प्रकार आपके दर्शनसे अतृप्त रहनेवाले मुझ सेवकका चित्त दर्शनके सिवा और क्या माँग सकता है ?

॥ श्रीहरिः ॥

# श्रीनरसिंहपुराणकी विषय-सूची

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|---|
| | भगवान्की गोदमें स्थित प्रह्लादकी प्रार्थना[नर०पु०] | |
| ५३ | बलराम-श्रीकृष्ण-अवतारके चरित्र ··· | २१३ |
| ५४ | कल्कि-चरित्र और कलि-धर्म ··· | २१९ |
| ५५ | शुक्राचार्यको भगवान्की स्तुतिसे पुनः नेत्रकी प्राप्ति ··· ··· | २२३ |
| ५६ | विष्णुमूर्तिके स्थापनकी विधि ··· | २२५ |
| ५७ | भक्तके लक्षण; हारीत-स्मृतिका आरम्भ; ब्राह्मणधर्मका वर्णन ··· ··· | २२९ |
| ५८ | क्षत्रियादि वर्णोंके धर्म और ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन ··· | २३१ |
| ५९ | वानप्रस्थ-धर्म ··· ··· | २३९ |
| ६० | यति-धर्म ··· ··· | २४० |
| ६१ | योगसार ··· ··· | २४२ |
| ६२ | श्रीविष्णु-पूजनके वैदिक मन्त्र और स्थान ··· ··· | २४४ |
| ६३ | अष्टाक्षर मन्त्रके प्रभावसे इन्द्रका स्त्रीयोनिसे उद्धार ··· ··· | २४५ |
| ६४ | भगवद्भजनकी श्रेष्ठता और भक्त पुण्डरीकका उपाख्यान ··· ··· | २५७ |
| ६५ | भगवत्सम्बन्धी तीर्थ और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्के नाम ··· | २६६ |
| ६६ | अन्यान्य तीर्थों तथा सह्याद्रि और आमलक ग्रामके तीर्थोंका माहात्म्य ··· | २६८ |
| ६७ | मानस-तीर्थ, व्रत तथा इस पुराणका माहात्म्य ··· ··· | २७१ |
| ६८ | नरसिंहपुराणके पठन और श्रवणका फल ··· ··· | २७३ |

* * *

## चित्र-सूची

| | | |
|---|---|---|
| १–गरुडारूढ़ भगवान् विष्णु | ( रेखाचित्र ) | मुखपृष्ठ |
| २–समुद्रतटपर भगवान्की गोदमें प्रह्लाद | ( तिरंगा ) | भीतरी मुखपृष्ठ |

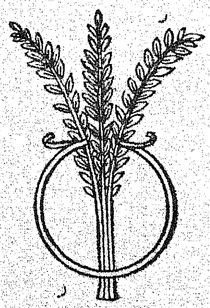

# तिरपनवाँ अध्याय

## बलराम-श्रीकृष्ण-अवतारके चरित्र

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावद्वयं शुभम् ।
तृतीयस्य तु रामस्य कृष्णस्य तु समासतः ॥ १ ॥
पुरा ह्यसुरभारार्ता मही प्राह नृपोत्तम ।
आसीनं देवमध्ये तु ब्रह्माणं कमलासनम् ॥ २ ॥

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—अब मैं तीसरे राम (बलराम) और श्रीकृष्णके युगल अवतारोंका संक्षेपमें वर्णन करूँगा । नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकालकी बात है, पृथ्वी दैत्योंके भारसे पीड़ित हो देवताओंके मध्यमें विराजमान कमलासन ब्रह्माजीके पास गयी और इस प्रकार बोली ॥ १-२ ॥

देवासुरे हता ये तु विष्णुना दैत्यदानवाः ।
ते सर्वे क्षत्रिया जाताः कंसाद्याः कमलोद्भव ॥ ३ ॥
तद्भूरिभारसम्प्राप्ता सीदन्ती चतुरानन ।
मम तद्भारहानिः स्याद्यथा देव तथा कुरु ॥ ४ ॥

'कमलोद्भव ! देवासुर-संग्राममें जो-जो दैत्य और दानव भगवान् विष्णुके हाथसे मारे गये थे, वे सभी कंस आदि क्षत्रियोंके रूपमें उत्पन्न हुए हैं । चतुरानन ! उनके भारी बोझसे दबकर मैं बहुत दुखी हो गयी हूँ । देव ! मेरा वह भार जैसे भी दूर हो, वह उपाय आप करें' ॥ ३-४ ॥

तथैवमुक्तो ब्रह्माथ देवैः सह जगाम ह ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं विष्णुं भक्तिविबोधितम् ॥ ५ ॥
तत्र गत्वा जगत्स्रष्टा देवैः सार्धं जनार्दनम् ।
नरसिंहं महादेवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ६ ॥
अभ्यर्च्य भक्त्या गोविन्दं वाक्पुष्पेण च केशवम् ।
पूजयामास राजेन्द्र तेन तुष्टो जगत्पतिः ॥ ७ ॥

पृथ्वीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की जानेपर, कहते हैं, ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ क्षीरसागरके उत्तरतटपर भगवान् विष्णुके निकट गये । उन्होंने भगवान्‌को अपनी भक्तिके प्रभावसे सोतेसे जगाया था । वहाँ पहुँचकर जगत्‌की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ नरसिंहस्वरूप महान् देवता भगवान् जनार्दनकी गन्ध-पुष्पादिके द्वारा क्रमशः भक्तिपूर्वक पूजा की । फिर वाक्पुष्पसे भी उन गोविन्द-केशवका पूजन किया । राजेन्द्र ! इससे वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु उनपर बहुत संतुष्ट हुए ॥ ५—७ ॥

राजोवाच

वाक्पुष्पेण कथं ब्रह्मन् ब्रह्माप्यर्चितवान् हरिम् ।
तन्मे कथय विप्रेन्द्र ब्रह्मोक्तं स्तोत्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥

**राजा बोले**—ब्रह्मन् ! ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुकी वाक्पुष्पसे किस प्रकार पूजा की ? विप्रेन्द्र ! ब्रह्माजीद्वारा कहे हुए उस उत्तम स्तोत्र ( वाक्पुष्प ) को आप मुझे सुनाइये ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं ब्रह्ममुखेरितम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णुतुष्टिकरं परम् ॥ ९ ॥
तमाराध्य जगन्नाथमूर्ध्वबाहुः पितामहः ।
भूत्वैकाग्रमना राजन्निदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १० ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—राजन् ! मैं ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए उस उत्तम स्तोत्रको कहता हूँ, सुनो ! वह स्तोत्र समस्त पापोंको हरनेवाला, पवित्र तथा भगवान् विष्णुको अत्यन्त संतुष्ट करनेवाला है । राजन् ! ब्रह्माजीने पूर्वोक्त रूपसे भगवान् जगन्नाथकी पूजा करके एकाग्रचित्त हो इस स्तोत्रका पाठ किया ॥ ९-१० ॥

ब्रह्मोवाच

नमामि देवं नरनाथमच्युतं
नारायणं लोकगुरुं सनातनम् ।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं
वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ११ ॥
आनन्दरूपं परमं परात्परं
चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतैकरूपं
ध्येयस्वरूपं प्रणमामि माधवम् ॥ १२ ॥
भक्तप्रियं कान्तमतीव निर्मलं
सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम् ।

चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं
रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥१३॥
गदासिशङ्खाब्जकरं श्रियः पतिं
सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम् ।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं
नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम् ॥१४॥
गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं
सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा ।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्ध्वनिं
जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम् ॥१५॥
हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान्
स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः ।
करोति सृष्टिं जगतः क्षयं य-
स्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥१६॥

**ब्रह्माजी बोले**—मैं सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् अच्युतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ । जो अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ । जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर, ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ । जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं, जिनके चार भुजाएँ हैं, नीलकमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ । जिनके हाथोंमें गदा, तलवार, शङ्ख और कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं, सदा ही कल्याण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्ग धनुष धारण किये रहते हैं, जिनकी सूर्यके समान कान्ति है, जो पीत वस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ । जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं, गन्धर्व और सिद्धगण जिनका सुयश गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋचाओंद्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ । जो भगवान् प्रत्येक युगमें पृथ्वीपर अवतार ले, देवद्रोही दानवोंकी हत्या करके अपने धर्ममें स्थित देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्की सृष्टि एवं संहार करते हैं, उन सर्वान्तर्यामी भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ११—१६ ॥

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान्
वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान् ।
निहत्य युद्धे मधुकैटभावुभौ
तं वेदवेद्यं प्रणतोऽस्म्यहं सदा ॥१७॥
देवासुरैः क्षीरसमुद्रमध्यतो
न्यस्तो गिरिर्येन धृतः पुरा महान् ।
हिताय कौर्मं वपुरास्थितो य-
स्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम् ॥१८॥
हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पितं
वराहरूपी भगवान् सनातनः ।
यो भूमिमेतां सकलां समुद्धरं-
स्तं वेदमूर्तिं प्रणमामि सूकरम् ॥१९॥
कृत्वा नृसिंहं वपुरात्मनः परं
हिताय लोकस्य सनातनो हरिः ।
जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितेः सुतं
तं नारसिंहं पुरुषं नमामि ॥२०॥
यो वामनोऽसौ भगवाञ्जनार्दनो
बलिं बबन्ध त्रिभिरूर्जितैः पदैः ।
जगत्त्रयं क्रम्य ददौ पुरंदरे
तदेकमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम् ॥२१॥
यः कार्तवीर्यं निजघान रोषात्
त्रिस्सप्तकृत्वः क्षितिपात्मजानपि ।
तं जामदग्न्यं क्षितिभारनाशकं
नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा ॥२२॥
सेतुं महान्तं जलधौ बबन्ध यः
सम्प्राप्य लङ्कां सगणं दशाननम् ।

जघान भूत्यै जगतां सनातनं
तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि ॥२३॥
यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः
कृतं त्वया देव हितं सुराणाम् ।
तथाद्य भूमेः कुरु भारहानिं
प्रसीद विष्णो भगवन्नमस्ते ॥२४॥

जिन्होंने युद्धमें मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको मारा तथा मत्स्यरूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेद-वेद्य परमेश्वरको मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ। पूर्वकालमें जिन्होंने देवता और असुरोंद्वारा क्षीरसमुद्रमें डाले हुए महान् मन्दराचलको सबका हित करनेके लिये कूर्म-रूपसे पीठपर धारण किया था, उन प्रकाश देनेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुंधराका जलसे उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानी दैत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था, उन वेदमूर्ति सूकररूपधारी भगवान्को प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये स्वयं ही श्रेष्ठ नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखोंद्वारा दिति-नन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन वामनरूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको बाँधा था और अपने बढ़े हुए तीन पगोंसे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने कोपवश राजा कार्तवीर्यको मार डाला तथा इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने समुद्रमें बहुत बड़ा पुल बाँधा और लङ्कामें पहुँचकर त्रिलोकीकी रक्षाके लिये रावणको उसके गणोंसहित मार डाला था, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीरामको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार [ पूर्वकालमें ] वाराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने देवताओंका हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सादर नमस्कार है ॥ १७—२४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथः श्रीधरः पद्मयोनिना ।
आविर्बभूव भगवाञ्छङ्खचक्रगदाधरः ॥२५॥
उवाच च हृषीकेशः पद्मयोनिं सुरानपि ।
स्तुत्यानयाहं संतुष्टः पितामह दिवौकसः ॥२६॥
पठतां पापनाशाय नृणां भक्तिमतामपि ।
यतोऽस्मि प्रकटीभूतो दुर्लभोऽपि हरिः सुराः ॥२७॥
देवैः सेन्द्रैः सरुद्रैस्तु पृथ्व्या च प्रार्थितो ह्यहम् ।
पद्मयोने वदाद्य त्वं श्रुत्वा तत्करवाणि ते ॥२८॥

**श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं**—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगत्पति भगवान् लक्ष्मीधर हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये वहाँ प्रकट हुए तथा वे भगवान् हृषीकेश ब्रह्माजी और देवताओंसे बोले—'पितामह ! देवताओ ! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे बहुत ही प्रसन्न हूँ। देवगण ! यह स्तोत्र इसका पाठ करनेवालोंके सारे पाप नष्ट करनेमें समर्थ है। यद्यपि मैं श्रीहरिके रूपमें भक्तिमान् पुरुषोंको भी कठिनतासे ही प्राप्त होता हूँ, तथापि इस स्तोत्रके प्रभावसे मैं प्रत्यक्ष प्रकट हो गया हूँ। ब्रह्माजी ! आज रुद्र और इन्द्रसहित समस्त देवताओं तथा पृथिवीने मेरी प्रार्थना की है, अतः तुमलोग अपना मनोरथ कहो; उसे सुनकर पूर्ण करूँगा' ॥२५—२८॥

इत्युक्ते विष्णुना प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः ।
दैत्यानां गुरुभारेण पीडितेयं मही भृशम् ॥२९॥
लघ्वीमिमां कारयितुं त्वयाहं पुरुषोत्तम ।
तेनागतः सुरैः सार्धं नान्यदस्तीति कारणम् ॥३०॥

भगवान् विष्णुके यों कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी बोले—'पुरुषोत्तम ! यह पृथ्वी दैत्योंके गुरुतर भारसे अत्यन्त पीडित हो रही है। अतः मैं आपके द्वारा इस वसुधाके भारको उतरवानेके लिये यहाँ देवताओंके साथ आया हूँ। मेरे आनेका दूसरा कोई कारण नहीं है' ॥ २९-३० ॥

इत्युक्तो भगवान् प्राह गच्छध्वममराः स्वकम् ।
स्थानं निरामयाः सर्वे पद्मयोनिस्तु गच्छतु ॥३१॥
देवक्यां वसुदेवाच्च अवतीर्य महीतले ।
सितकृष्णे च मच्छक्ती कंसादीन् घातयिष्यतः ॥३२॥

यह सुनकर भगवान्ने कहा—'देवगण ! तुमलोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। ब्रह्माजी भी चले जायँ। मेरी गौर और कृष्ण—दो शक्तियाँ पृथ्वीपर वसुदेवजीके वीर्य एवं देवकीके गर्भसे अवतार लेकर कंस आदि असुरोंका वध करेंगी' ॥ ३१-३२ ॥

इत्याकर्ण्य हरेर्वाक्यं हरिं नत्वा ययुः सुराः ।
गतेषु त्रिदिवौकस्सु देवदेवो जनार्दनः ॥३३॥
शिष्टानां पालनार्थाय दुष्टनिग्रहणाय च ।
प्रेषयामास ते शक्ती सितकृष्णे स्वके नृप ॥३४॥
तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेवाद्बभूव ह ।
तद्वत्कृष्णा च देवक्यां वसुदेवाद्बभूव ह ॥३५॥
रौहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान् ।
देवकीनन्दनः कृष्णस्तयोः कर्म शृणुष्व मे ॥३६॥

भगवान्‌का यह वचन सुनकर सभी देवता उनको प्रणाम करके चले गये। राजन्! देवताओंके चले जानेपर देवदेव जनार्दनने सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके लिये अपनी वे गौर-कृष्ण—दो शक्तियाँ भेजीं। उनमेंसे गौर शक्ति वसुदेवद्वारा रोहिणीके गर्भसे प्रकट हुई तथा कृष्ण शक्तिने वसुदेवके अंश एवं देवकीके गर्भसे अवतार लिया। पुण्यात्मा महापुरुष रोहिणीनन्दनने 'राम' नाम धारण किया और देवकीनन्दनका 'श्रीकृष्ण' नाम रक्खा गया। नरेश्वर! तुम उन दोनोंके कर्म मुझसे सुनो ॥ ३३—३६ ॥

गोकुले बालकाले तु राक्षसी शकुनी निशि ।
रामेण निहता राजन् तथा कृष्णेन पूतना ॥३७॥
धेनुकः सगणस्तालवने रामेण घातितः ।
शकटश्चार्जुनौ वृक्षौ तद्वत्कृष्णेन घातितौ ॥३८॥
प्रलम्बो निधनं नीतो दैत्यो रामेण मुष्टिना ।
कालियो दमितस्तोये कालिन्द्यां विषपन्नगः ॥३९॥
गोवर्द्धनश्च कृष्णेन धृतो वर्षति वासवे ।
गोकुलं रक्षता तेन अरिष्टश्च निपातितः ॥४०॥
केशी च निधनं नीतो दुष्टवाजी महासुरः ।
अक्रूरेण च तौ नीतौ मथुरायां महात्मना ॥४१॥
ददर्श तु निमग्नश्च रामकृष्णौ महामते ।
स्वं स्वं रूपं जले तस्य अक्रूरस्य विभूतिदम् ॥४२॥
अनयोर्भावमतुलं ज्ञात्वा दृष्ट्वा च यादवाः ।
बभूवुः प्रीतमनसो ह्यक्रूरश्च नृपात्मज ॥४३॥

राजन्! गोकुलमें रामने बाल्यकालमें ही रात्रिके समय एक पक्षीरूपधारिणी राक्षसीको मारा था और श्रीकृष्णने 'पूतना'का संहार किया था। रामने तालवनमें 'धेनुक' नामक राक्षसको उसके गणोंसहित मारा था और श्रीकृष्णने भी शकट उलट दिया तथा 'यमलार्जुन' नामक दो वृक्षोंको उखाड़ दिया था। रामने 'प्रलम्ब' नामक राक्षसको मुक्केसे मारकर मौतके घाट उतारा तथा श्रीकृष्णने यमुनाके जलमें रहनेवाले विषैले सर्प 'कालिय'का दमन किया और इन्द्रके वर्षा करते समय वे सात दिनोंतक हाथपर गोवर्धनपर्वत धारण किये खड़े रहे। इतना ही नहीं, श्रीकृष्णने गोकुलकी रक्षा करते हुए अरिष्टासुरका भी वध किया था। फिर दुष्ट घोड़ेका रूप धारण करनेवाले महान् असुर केशीका उन्होंने संहार किया; इसके बाद महात्मा अक्रूरजी [ कंसकी आज्ञासे ] आये तथा राम और कृष्ण—दोनों बन्धुओंको मथुरा ले गये। महामते! मार्गमें अक्रूरजीने यमुनामें डुबकी लगाते समय जलके भीतर राम और कृष्ण—दोनोंको देखा। उन दोनों बन्धुओंने अक्रूरजीको अपने-अपने ऐश्वर्यदायक स्वरूपका दर्शन कराया। नृपनन्दन! उन दोनोंके अनुपम स्वरूपको देख और जानकर अक्रूरजीके साथ ही समस्त यादवगण बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३७—४३ ॥

दुर्वचश्च प्रजल्पन्तं कंसस्य रजकं ततः ।
कृष्णो जघान रामश्च तद्वस्त्रं ब्रह्मणे ददौ ॥४४॥
मालाकारेण भक्त्या तु सुमनोभिः प्रपूजितौ ।
ततस्तस्य वरान्दत्त्वा दुर्लभान् रामकेशवौ ॥४५॥
गच्छन्तौ राजमार्गं तु कुब्जया पूजितौ ततः ।
तत्कौटिल्यमपानीय विरूपं कार्मुकं ततः ॥४६॥
बभञ्ज कृष्णो बलवान् कंसस्याकृष्य तत्क्षणात् ।
रक्षपालान् जघानाथ रामस्तत्र खलान् बहून् ।
हत्वा कुवलयाख्यं च गजं रामजनार्दनौ ॥४७॥

तत्पश्चात् [मथुरामें भ्रमण करते समय] कटुवचन कहनेवाले कंसके एक धोबीको कृष्ण और रामने मार डाला तथा उसके वस्त्र ब्राह्मणोंको बाँट दिये। फिर मार्गमें एक मालीने फूलोंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। तब राम और श्रीकृष्णने उसे दुर्लभ वर दिये। उसके बाद जब वे सड़कपर घूम रहे थे, उसी समय 'कुब्जा' दासीने आकर उनका आदर-सत्कार किया। तब श्रीकृष्णने उसकी भद्दी लगनेवाली कुब्जताको दूर कर दिया। तदनन्तर [ यज्ञशालामें रक्खे गये ] कंसके धनुषको महाबली श्रीकृष्णने [बलपूर्वक] खींचा और तत्काल ही

तोड़ डाला। उस समय वहाँके अनेकों दुष्ट रक्षकोंको बलरामजीने मार डाला। फिर बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंने मिलकर 'कुवलयापीड' नामक हाथीको भी मार गिराया ॥४४—४७॥

प्रविश्य रङ्गं गजदन्तपाणी
मदानुलिप्तौ वसुदेवपुत्रौ ।
युद्धे तु रामो निजघान मल्लं
शैलोपमं मुष्टिकमव्ययात्मा ॥४८॥
कृष्णोऽपि चाणूरमतिप्रसिद्धं
बलेन वीर्येण च कंसमल्लकम् ।
युद्ध्वा तु तेनाथ चिरं जघान
तं दैत्यमल्लं जनसंसदीशः ॥४९॥
मृतस्य मल्लस्य च मुष्टिकस्य
मित्रं पुनः पुष्करकं स रामः ।
युद्धार्थमुत्थाय कृतक्षणं तं
मुष्टिप्रहारेण जघान वीरः ॥५०॥
कृष्णः पुनस्तान् सकलान्निहत्य
निगृह्य कंसं विनिपात्य भूमौ ।
स्वयं च देहे विनिपत्य तस्य
हत्वा तथोर्व्यां निचकर्ष कृष्णः ॥५१॥
हते तु कंसे हरिणातिक्रुद्धो
भ्रातापि तस्यातिरुषेण चोत्थितः ।
सुनाभसंज्ञो बलवीर्ययुक्तो
रामेण नीतो यमसादनं क्षणात् ॥५२॥

तदनन्तर उन दोनों वसुदेवकुमारोंने हाथीके दाँत उखाड़कर हाथमें ले लिये और उसके मदसे सने हुए ही रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। वहाँ अविनाशी बलरामजीने पर्वताकार 'मुष्टिक' नामक पहलवानको कुश्तीमें मार डाला और श्रीकृष्णचन्द्रने भी कंसके 'चाणूर' नामक पहलवानका, जो अपने बल और पराक्रमके कारण बहुत ही प्रसिद्ध था, कचूमर निकाल दिया। भगवान् श्रीकृष्णने उस जन-समाजमें दैत्य मल्ल चाणूरके साथ देरतक युद्ध करनेके बाद उसका वध किया था। फिर वीरवर बलरामजीने युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठे हुए पुष्करको, जो 'मृत मुष्टिक' नामक मल्लका मित्र था, मुक्केसे ही मार डाला। इसके बाद श्रीकृष्णने वहाँ उपस्थित समस्त दैत्योंका संहार करके कंसको पकड़ लिया और उसे मञ्चके नीचे भूमिपर पटककर वे स्वयं भी उसके शरीरपर कूद पड़े। इस प्रकार कंसका वध करके श्रीकृष्णने उसके मृत देहको भूमिपर घसीटा। श्रीकृष्णद्वारा कंसके मारे जानेपर उसका बलवान् एवं पराक्रमी भ्राता सुनाभ अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्धके लिये उठा; किंतु उसे भी बलरामजीने तुरंत ही मारकर यमलोक भेज दिया ॥ ४८—५२ ॥

तौ वन्द्य मातापितरौ सुहृष्टौ
जनैः समस्तैर्यदुभिः सुसंवृतौ ।
कृत्वा नृपं चोग्रसेनं यदूनां
सभां सुधर्मां ददतुर्महेन्द्रीम् ॥५३॥

तदनन्तर समस्त यदुवंशियोंसे घिरे हुए उन दोनों भाइयोंने अत्यन्त प्रसन्न हुए माता-पिताकी वन्दना करके श्रीउग्रसेनको ही यदुवंशियोंका राजा बनाया और उन्हें इन्द्रकी 'सुधर्मा' नामक दिव्य सभा प्रदान की ॥ ५३ ॥

सर्वज्ञभावावपि रामकृष्णौ
सम्प्राप्य सांदीपनितोऽस्त्रविद्याम् ।
गुरोः कृते पञ्चजनं निहत्य
यमं च जित्वा गुरवे सुतं ददौ ॥५४॥

यद्यपि बलराम और श्रीकृष्ण सर्वज्ञ थे, तो भी उन्होंने सांदीपनिसे अस्त्र-विद्याकी शिक्षा पायी। फिर गुरुको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हो, 'पञ्चजन' दैत्यको मारा और यमराजको जीतकर वे दीर्घकालके मरे हुए गुरुपुत्रको वहाँसे ले आये। वही पुत्र उन्होंने गुरुजीको दक्षिणाके रूपमें अर्पित किया ॥ ५४ ॥

निहत्य रामो मगधेश्वरस्य
बलं समस्तं बहुशः समागतम् ।
दिव्यास्त्रपूरैरमराविमावुभौ
शुभां पुरीं चक्रतुः सागरान्ते ॥५५॥
तस्यां विधायाथ जनस्य वासं
हत्वा शृगालं हरिरव्ययात्मा ।
दग्ध्वा महान्तं यवनं ह्युपाया-
द्वारं च दत्त्वा नृपतेर्जगाम ॥५६॥

फिर बलरामजीने अपने ऊपर अनेकों बार चढ़ाई करने

वाले मगधराज जरासंधके समस्त सैनिकोंको दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करके मार डाला। इसके बाद उन दोनों देवेश्वरोंने समुद्रके भीतर एक सुन्दर पुरी द्वारकाका निर्माण कराया। उसमें मथुरावासी कुटुम्बीजनोंको बसाकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णने राजा शृगालका वध किया। फिर एक उपाय करके महान् योद्धा यवनराजको भस्म कर, राजा मुचुकुन्दको वरदान दे, वे द्वारकामें लौट गये ॥ ५५-५६ ॥

रामोऽथ संशान्तसमस्तविग्रहः
सम्प्राप्य नन्दस्य पुनः स गोकुलम् ।
वृन्दावने गोपजनैः सुभाषितः
सीरेण रामो यमुनां चकर्ष ॥५७॥
सम्प्राप्य भार्यामथ रेवतीं च
रेमे तया द्वारवतीं स लाङ्गली ।
क्षात्रेण सम्प्राप्य तदा स रुक्मिणीं
कृष्णोऽपि रेमे पुरुषः पुराणः ॥५८॥
द्यूते कलिङ्गराजस्य दन्तानुत्पाट्य लाङ्गली ।
जघानाष्टपदेनैव रुक्मिणं चानृतान्वितम् ॥५९॥
कृष्णः प्रा॰ ज्योतिषो दैत्यान् हयग्रीवादिकान् बहून् ।
हत्वा तु नरकं चापि जग्राह च महद्धनम् ॥६०॥
अदित्यै कुण्डले दत्त्वा जित्वेन्द्रं दैवतैः सह ।
गृहीत्वा पारिजातं तु ततो द्वारावतीं पुरीम् ॥६१॥

तत्पश्चात् सारा बखेड़ा समाप्त हो जानेपर बलरामजी एक बार फिर नन्दके गोकुल ( नन्दगाँव ) में गये और वहाँ वृन्दावनमें गोपजनोंसे भलीभाँति प्रेमालाप आदिके द्वारा सम्मानित हुए। वहाँ उन्होंने अपने हलसे यमुनाजीका आकर्षण किया था। तदनन्तर द्वारकामें 'रेवती' नामकी भार्याको पाकर बलरामजी उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और पुराण-पुरुष श्रीकृष्णचन्द्र भी क्षत्रियधर्मके अनुसार 'रुक्मिणी' नामक भार्याको हस्तगत करके उसके साथ सानन्द विहार करने लगे। तदनन्तर एक बार जूआ खेलते समय हलधरने कलिङ्गराजके दाँतोंको उखाड़ लिया और असत्यका आश्रय लेनेवाले रुक्मीको भी पाससे ही मार गिराया। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने भी प्राग्ज्योतिषपुरके हयग्रीव आदि बहुत-से दैत्योंको यमलोक पहुँचाया तथा नरकासुरका भी संहार करके वे उसके यहाँसे बहुत धन ले आये। वहाँसे श्रीकृष्ण इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने अदितिको उनके वे दोनों दिव्य कुण्डल दिये, जो नरकासुरने हड़प लिये थे। फिर देवताओं-सहित इन्द्रको जीतकर पारिजात वृक्ष साथ ले, वे अपनी पुरी द्वारकाको लौट आये ॥ ५७-६१ ॥

कुरुभिश्च धृतं साम्बं राम एको महाबलः ।
कुरूणां भयमुत्पाद्य मोचयामास वीर्यवान् ॥६२॥
बाणबाहुवनं छिन्नं कृष्णेन युधि धीमता ।
रामेण तद्बलं नीतं क्षयं कोटिगुणं क्षणात् ॥६३॥
देवापकारी रामेण निहतो वानरो महान् ।
ततोऽर्जुनस्य साहाय्यं कुर्वता कंसशत्रुणा ॥६४॥
सर्वभूतवधाद्राजन् भुवो भारोऽवरोपितः ।
तीर्थयात्रा कृता तद्वद्रामेण जगतः कृते ॥६५॥

तदनन्तर महाबली एवं महापराक्रमी बलरामजीने अकेले ही हस्तिनापुरमें जा कौरवोंको भय दिखाया और उनके द्वारा बंदी बनाये गये [ श्रीकृष्णपुत्र ] साम्बको छुड़ाया। फिर बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रने युद्धमें बाणासुरकी भुजाओंको काट डाला और बलरामजीने उसके करोड़ों सैनिकोंका क्षणभरमें ही संहार कर दिया। इसके बाद बलरामजीने देववैरी 'द्विविद' नामक महान् वानरका वध किया। इसी तरह भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी सहायता करके उनके द्वारा समस्त दुष्ट क्षत्रियोंका वध कराया और पृथ्वीका सारा भार उतार दिया। उन दिनों बलरामजी लोकहितके लिये तीर्थयात्रा कर रहे थे ॥ ६२-६५ ॥

रामेण निहता ये तु तान्न संख्यातुमुत्सहे ।
एवं तौ रामकृष्णौ तु कृत्वा दुष्टवधं नृप ॥६६॥
अवतार्य भुवो भारं जग्मतुः स्वेच्छया दिवम् ।
इत्येतौ कथितौ दिव्यौ प्रादुर्भावौ मया तव ।
संक्षेपाद्रामकृष्णस्य काल्क्यं शृणु ममाधुना ॥६७॥
इत्थं हि शक्ती सितकृष्णरूपे
हरेरनन्तस्य महाबलाढ्ये ।
कृत्वा तु भूमेर्नृप भारहानिं
पुनश्च विष्णुं प्रतिजग्मतुस्ते ॥६८॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे कृष्णप्रादुर्भावो*
*नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥५३॥*

राजन् ! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने जितने दुष्टोंका वध किया था, उनकी गणना हम नहीं कर सकते । इस प्रकार दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णने दुष्टोंका संहार करके भूमिका भार दूर किया । फिर वे स्वेच्छानुसार वैकुण्ठधामको पधार गये । इस तरह राम और श्रीकृष्णके इन दिव्य अवतारोंको मैंने तुम्हें संक्षेपसे कह सुनाया । अब मुझसे 'कल्कि-अवतार' का वर्णन सुनो । नरेश्वर ! इस प्रकार अनन्त भगवान् विष्णुकी वे दोनों महाबलवती गौर और कृष्ण शक्तियाँ पृथ्वीका भार उतारकर पुनः अपने विष्णुस्वरूपमें लीन हो गयीं ॥ ६६–६८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

## चौवनवाँ अध्याय

### कल्कि-चरित्र और कलि-धर्म

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु राजन् समाहितः ।
प्रादुर्भावं हरेः पुण्यं कल्क्याख्यं पापनाशनम् ॥ १ ॥
कलिकालेन राजेन्द्र नष्टे धर्मे महीतले ।
वृद्धिंगते तथा पापे व्याधिसम्पीडिते जने ॥ २ ॥
देवैः सम्प्रार्थितो विष्णुः क्षीराब्धौ स्तुतिपूर्वकम् ।
शाम्भलाख्ये महाग्रामे नानाजनसमाकुले ॥ ३ ॥
नाम्ना विष्णुयशःपुत्रः कल्की राजा भविष्यति ।
अश्वमारुह्य खड्गेन म्लेच्छानुत्सादयिष्यति ॥ ४ ॥
म्लेच्छान् समस्तान् क्षितिनाशभूतान्
हत्वा स कल्की पुरुषोत्तमांशः ।
कृत्वा च यागं बहुकाञ्चनाख्यं
संस्थाप्य धर्मं दिवमारुरोह ॥ ५ ॥
दशावताराः कथितास्तवैव
हरेर्मया पार्थिव पापहन्तुः ।
इमं सदा यस्तु नृसिंहभक्तः
शृणोति नित्यं स तु याति विष्णुम् ॥ ६ ॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—राजन् ! इसके बाद मैं तुमसे भगवान् विष्णुके 'कल्कि' नामक पावन अवतारका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है; तुम सावधान होकर सुनो । राजेन्द्र ! जब कलिकालद्वारा पृथ्वीपर धर्मका नाश हो जायगा, पाप बढ़ जायगा और सभी लोग नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होने लगेंगे, तब देवतालोग क्षीरसागरके तटपर जाकर वहाँ भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना करेंगे । तदनन्तर भगवान् 'शाम्भल' नामक महान् ग्राममें, जो बहुसंख्यक मनुष्योंसे परिपूर्ण होगा, विष्णुयशाके पुत्ररूपसे अवतार ले, 'कल्कि' नामसे विख्यात राजा होंगे । फिर वे घोड़ेपर चढ़कर, हाथमें तलवार ले, म्लेच्छोंका नाश करेंगे । इस प्रकार भगवान् विष्णुके अंशभूत 'कल्कि' भूमण्डलका ध्वंस करनेवाले समस्त म्लेच्छोंका संहार कर, 'बहुकाञ्चन' नामक यज्ञ करके, धर्मकी स्थापना कर स्वर्गारूढ हो जायँगे । राजेन्द्र ! पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुके इन दस अवतारोंका मैंने वर्णन किया । जो भगवद्भक्त पुरुष इन अवतार-चरित्रोंका नित्य श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥१–६॥

राजोवाच

तव प्रसादाद्विप्रेन्द्र प्रादुर्भावाः श्रुता मया ।
नारायणस्य देवस्य शृण्वतां कल्मषापहाः ॥ ७ ॥
कलिं विस्तरतो ब्रूहि त्वं हि सर्वविदां वरः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥ ८ ॥
किमाहाराः किमाचारा भविष्यन्ति कलौ युगे ।

**राजा बोले**—विप्रेन्द्र ! आपके प्रसादसे मैंने भगवान् नारायणके अवतारोंका, जो श्रोताओंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, श्रवण कर लिया । मुनिसत्तम ! अब आप कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ महात्माओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं । कृपया बताइये कि कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे आहार और आचरणवाले होंगे ॥ ७-८½ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे भरद्वाजेन संयुताः ॥ ९ ॥
सर्वे धर्मा विनश्यन्ति कृष्णे कृष्णत्वमागते ।
तस्मात्कलिर्महाघोरः सर्वपापस्य साधकः ॥१०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्मपराङ्मुखाः ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजदेवपराङ्मुखाः ॥११॥
व्याजधर्मरताः सर्वे दम्भाचारपरायणाः ।
असूयानिरताश्चैव वृथाहंकारदूषिताः ॥१२॥
सर्वैः संक्षिप्यते सत्यं नरैः पण्डितगर्वितैः ।
अहमेवाधिक इति सर्व एव वदन्ति वै ॥१३॥
अधर्मलोलुपाः सर्वे तथान्येषां च निन्दकाः ।
अतः स्वल्पायुषः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे ॥१४॥
अल्पायुष्ट्वान्मनुष्याणां न विद्याग्रहणं द्विजाः ।
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्त्तते पुनः ॥१५॥

सूतजी बोले—भरद्वाजसहित आप सभी ऋषिगण सुनें । राजाके यों प्रेरणा करनेपर मार्कण्डेयजीने कलि-धर्मका इस प्रकार निरूपण किया । भगवान् कृष्णचन्द्रके परमधाम पधार जानेपर उनके अन्तर्धानके फलस्वरूप समस्त पापोंका साधक महाघोर कलियुग प्रकट होगा; उस समय सभी धर्म नष्ट हो जायँगे । घोर कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी लोग धर्म, ब्राह्मण तथा देवताओंसे विमुख हो जायँगे । सभी किसी-न-किसी व्याजसे ( स्वार्थसिद्धिके लिये ) ही धर्ममें प्रवृत्त होंगे; दम्भ—ढोंगका आचरण करेंगे । एक दूसरेमें दोष ढूँढ़नेवाले और व्यर्थ अभिमानसे दूषित विचारवाले होंगे । पाण्डित्यका गर्व रखनेवाले सभी मनुष्य सत्यका अपलाप करेंगे और सब लोग यही कहेंगे कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ' । कलियुगमें सभी अधर्मलोलुप तथा दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे; अतः सबकी आयु बहुत थोड़ी होगी । द्विजगण ! मनुष्योंकी आयु अल्प होनेसे ब्राह्मणलोग अधिक विद्याध्ययन नहीं कर सकेंगे । विद्याध्ययनसे शून्य होनेके कारण उनके द्वारा पुनः अधर्मकी ही प्रवृत्ति होगी ॥ ९—१५ ॥

ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यन्ते परस्परम् ।
कामक्रोधपरा मूढा वृथा संतापपीडिताः ॥१६॥
बद्धवैरा भविष्यन्ति परस्परवधेप्सवः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सर्वे धर्मपराङ्मुखाः ॥१७॥
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपस्सत्यविवर्जिताः ।
उत्तमा नीचतां यान्ति नीचाश्चोत्तमतां तथा ॥१८॥
राजानो द्रव्यनिरतास्तथा लोभपरायणाः ।
धर्मकञ्चुकसंवीता धर्मविध्वंसकारिणः ॥१९॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वाधर्मसमन्विते ।
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति ॥२०॥
पितॄन् पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु ।
पतीन् पुत्रान् वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥२१

ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर संकरता आ जायगी । वे कामी, क्रोधी, मूर्ख और व्यर्थ संतापसे पीड़ित होंगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आपसमें वैर बाँधकर एक दूसरेका वध कर देनेकी इच्छावाले होंगे । वे सभी अपने-अपने धर्मोंसे विमुख होंगे । तप एवं सत्यभाषणादिसे रहित होकर शूद्रके समान हो जायँगे । उत्तम वर्णवाले नीचे गिरेंगे और नीच वर्णवाले उत्तम बनेंगे । राजालोग लोभी तथा केवल धनोपार्जनमें ही प्रवृत्त रहेंगे । वे धर्मका चोला पहनकर उसीकी ओटमें धर्मका विध्वंस करनेवाले होंगे । समस्त अधर्मोंसे युक्त घोर कलियुगके आ जानेपर जो-जो घोड़े, रथ और हाथीसे सम्पन्न होंगे, वे-वे ही राजा कहे जायँगे । पुत्र अपने पितासे काम करायेंगे और बहुएँ साससे काम लेंगी । स्त्रियाँ पति और पुत्रको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास जाया करेंगी ॥ १६—२१ ॥

पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं श्वबाहुल्यं गवां क्षयः ।
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ।
खण्डवर्षी च पर्जन्यः पन्थानस्तस्करावृताः ।
सर्वः सर्वं च जानाति वृद्धाननुपसेव्य च ॥२२॥
न कश्चिदकविर्नाम सुरापा ब्रह्मवादिनः ।
किंकराश्च भविष्यन्ति शूद्राणां च द्विजातयः ॥२३॥
द्विषन्ति पितरं पुत्रा गुरुं शिष्या द्विषन्ति च ।
पतिं च वनिता द्वेष्टि कलौ घोरे समागते ॥२४॥
लोभाभिभूतमनसः सर्वे दुष्कर्मशीलिनः ।
परान्नलोलुपा नित्यं भविष्यन्ति द्विजातयः ॥२५॥
परस्त्रीनिरताः सर्वे परद्रव्यपरायणाः ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते नरं धर्मपरायणम् ॥२६॥
असूयानिरताः सर्वे उपहासं प्रकुर्वते ।
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः ॥२७॥
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादैर्विकुत्सिताः ।
द्विजाः कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृयज्ञादिकाः क्रियाः ॥२८।

न पात्रेष्वेव दानानि कुर्वन्ति च नरास्तथा ।
क्षीरोपाधिनिमित्तेन गोषु प्रीतिं प्रकुर्वते ॥२९॥
बध्नन्ति च द्विजानेव धनार्थं राजकिंकराः ।
दानयज्ञजपादीनां विक्रीणन्ते फलं द्विजाः ॥३०॥
प्रतिग्रहं प्रकुर्वन्ति चण्डालादेरपि द्विजाः ।
कलेः प्रथमपादेऽपि विनिन्दन्ति हरिं नराः ॥३१॥

पुरुषोंकी संख्या कम और स्त्रियोंकी अधिक होगी । कुत्तोंकी अधिकता होगी और गौओंका ह्रास । सबके मनमें धनका ही महत्त्व रहेगा । सत्पुरुषोंके सदाचारका सम्मान नहीं होगा । मेघ कहीं वर्षा करेंगे, कहीं नहीं करेंगे । समस्त मार्ग चोरोंसे घिरे रहेंगे । गुरुजनोंकी सेवामें रहे बिना ही सभी लोग सब कुछ जाननेका अभिमान करेंगे । कोई भी ऐसा न होगा, जो अपनेको कवि न मानता हो । शराब पीनेवाले लोग ब्रह्मज्ञानका उपदेश करेंगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रोंके सेवक होंगे । घोर कलिकाल आनेपर पुत्र पितासे, शिष्य गुरुसे और स्त्रियाँ अपने पतियोंसे द्वेष करेंगी । सबका चित्त लोभसे आक्रान्त होगा, अतएव सभी लोग दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होंगे । ब्राह्मण सदा दूसरोंके ही अन्नके लोभी होंगे । सभी परस्त्रीसेवी और परधनका अपहरण करनेवाले होंगे । घोर कलियुग आ जानेपर दूसरोंमें दोषदृष्टि रखनेवाले सभी लोग धर्मपरायण पुरुषोंका उपहास करेंगे । ब्राह्मणलोग वेदकी निन्दामें प्रवृत्त होकर व्रतोंका आचरण नहीं करेंगे । तर्कवादसे कुत्सित विचार हो जानेके कारण वे न तो यज्ञ करेंगे और न हवनमें ही प्रवृत्त होंगे । द्विजलोग दम्भके लिये ही पितृयज्ञ आदि क्रियाएँ करेंगे । मनुष्य प्रायः सत्पात्रको दान नहीं देंगे । लोग दूध आदिके लिये ही गौओंसे प्रेम रक्खेंगे । राजाके सिपाही धनके लिये ब्राह्मणोंको ही बाँधेंगे । द्विजलोग दान, यज्ञ और जप आदिका फल प्रायः बेचा करेंगे । ब्राह्मणलोग चण्डाल आदि अस्पृश्य जातियोंसे भी दान लेंगे । कलियुगके प्रथम चरणमें भी लोग भगवान्‌की निन्दा करनेवाले हो जायँगे ॥ २२–३१ ॥

युगान्ते च हरेर्नाम नैव कश्चित् स्मरिष्यति ।
शूद्रस्त्रीसङ्गनिरता विधवासङ्गलोलुपाः ॥३२॥
शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यन्ति कलौ द्विजाः ।
न च द्विजातिशुश्रूषां न स्वधर्मप्रवर्त्तनम् ॥३३॥
करिष्यन्ति तदा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः ।
सुखाय परिवीताश्च जटिला भस्मधूर्धराः ॥३४॥
शूद्रा धर्मान् प्रवक्ष्यन्ति कूटबुद्धिविशारदाः ।
एते चान्ये च बहवः पाषण्डा विप्रसत्तमाः ॥३५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भविष्यन्ति कलौ युगे ।
गीतवाद्यरता विप्रा वेदवादपराङ्मुखाः ॥३६॥
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते शूद्रमार्गप्रवर्तिनः ।
अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा वृथाहंकारदूषिताः ॥३७॥
हर्तारो न च दातारो भविष्यन्ति कलौ युगे ।
प्रतिग्रहपरा नित्यं द्विजाः सन्मार्गशीलिनः ॥३८॥
आत्मस्तुतिपराः सर्वे परनिन्दापरास्तथा ।
विश्वासहीनाः पुरुषा देववेदद्विजातिषु ॥३९॥

कलियुगके अन्तिम समयमें तो कोई भगवान्‌के नामका स्मरणतक न करेगा । कलियुगके द्विज शूद्रोंकी स्त्रियोंके साथ सहवास करेंगे और विधवा-संगमके लिये लालायित रहेंगे तथा वे शूद्रोंका भी अन्न भक्षण करनेवाले होंगे । उस समय अधम शूद्र संन्यासका चिह्न धारणकर न तो द्विजातियोंकी सेवा करेंगे और न उनकी स्वधर्ममें ही प्रवृत्ति होगी । वे अपने सुखके लिये जनेऊ पहनेंगे, जटा रखायेंगे और शरीरमें खाक-भभूत लपेटे फिरेंगे । विप्रवरो ! कूटबुद्धिमें निपुण शूद्रगण धर्मका उपदेश करेंगे । ऊपर कहे अनुसार तथा और भी तरहके बहुत-से पाखण्डी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कलियुगमें उत्पन्न होंगे । कलियुग आनेपर विप्रगण वेदके स्वाध्यायसे विमुख हो गाने-बजानेमें मन लगायेंगे और शूद्रोंके मार्गका अनुसरण करेंगे । कलियुगमें लोग थोड़े धनवाले, झूठा वेष धारण करनेवाले और मिथ्याभिमानसे दूषित होंगे । वे दूसरोंका धन हरण कर लेंगे, पर अपना किसीको नहीं देंगे । उस समय अच्छे पथपर चलनेवाले ब्राह्मण सदा दान लेते फिरेंगे । सभी लोग आत्मप्रशंसक और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे । देवता, वेद और ब्राह्मणोंपरसे सबका विश्वास उठ जायगा ॥ ३२–३९ ॥

असंश्रुतोक्तिवक्तारो द्विजद्वेषरतास्तथा ।
स्वधर्मत्यागिनः सर्वे कृतघ्ना भिन्नवृत्तयः ॥४०॥

याचकाः पिशुनाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे ।
परापवादनिरता आत्मस्तुतिपरायणाः ॥४१॥
परस्वहरणोपायचिन्तकाः सर्वदा जनाः ।
अत्याह्लादपरास्तत्र भुञ्जानाः परवेश्मनि ॥४२॥
तस्मिन्नेव दिने प्रायो देवतार्चनतत्पराः ।
तत्रैव निन्दानिरता भुक्त्वा चैकत्र संस्थिताः ॥४३॥

सब लोग वेदविरुद्ध वचन बोलनेवाले और ब्राह्मणोंके द्वेषी होंगे । सभी स्वधर्मके त्यागनेवाले, कृतघ्न और अपने वर्णधर्मके विरुद्ध वृत्तिसे आजीविका चलानेवाले होंगे । कलियुगमें लोग भिखमंगे, चुगलखोर, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले और अपनी ही प्रशंसामें तत्पर होंगे । मनुष्य सदा दूसरोंके धनका अपहरण करनेके उपायको ही सोचते रहेंगे । यदि उन्हें दूसरोंके घरमें भोजन करनेका अवसर मिल जाय तो वे बड़े ही आनन्दित होंगे और प्रायः उसी दिन वे दूसरोंको दिखानेके लिये देवताकी पूजामें प्रवृत्त होंगे । दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले वे ब्राह्मण वहाँ ही सबके साथ एक आसनपर बैठकर भोजन करेंगे ॥ ४०—४३ ॥

द्विजाश्च क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये च जातयः ।
अत्यन्तकामिनश्चैव संकीर्यन्ते परस्परम् ॥४४॥
न शिष्यो न गुरुः कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा ।
न भार्या न पतिश्चैव भविता तत्र संकरे ॥४५॥
शूद्रवृत्त्यैव जीवन्ति द्विजा नरकभोगिनः ।
अनावृष्टिभयप्राया गगनासक्तदृष्टयः ॥४६॥
भविष्यन्ति जनाः सर्वे तदा क्षुद्भयकातराः ।
अन्नोपाधिनिमित्तेन शिष्यान् गृह्णन्ति भिक्षवः ॥४७॥
उभाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः ।
कुर्वन्त्यो गुरुभर्तॄणामाज्ञा भेत्स्यन्ति ता हिताः ॥४८॥
यदा यदा न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति द्विजातयः ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४९॥
सर्वधर्मेषु नष्टेषु याति निःश्रीकतां जगत् ।

उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी जातियोंके लोग अत्यन्त कामी होंगे और एक-दूसरेसे सम्पर्क स्थापित करके वर्ण-संकर हो जायँगे । वर्ण-संकरताकी दशामें गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र और पति-पत्नीका विचार नहीं रहेगा । नरकभोगी ब्राह्मणादि वर्ण प्रायः शूद्रवृत्तिसे ही जीविका चलायेंगे और नरकभोगी होंगे । लोगोंको प्रायः सदा अनावृष्टिका भय बना रहेगा और वे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये वृष्टिकी ही प्रतीक्षा करते रहेंगे । उस समयके सभी लोग सदा भूखकी पीड़ासे कातर रहेंगे । संन्यासी लोग अन्न-प्राप्तिके उद्देश्यसे ही लोगोंको शिष्य बनाते फिरेंगे । स्त्रियाँ दोनों ही हाथोंसे सिर खुजलाती हुई अपने पति तथा गुरुजनोंकी हितभरी आज्ञाओंका तिरस्कार करेंगी । द्विजातिलोग ज्यों-ज्यों यज्ञ और हवन आदि कर्म छोड़ते जायँगे, त्यों-ही-त्यों बुद्धिमानोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये । उस समय सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेसे यह सारा जगत् श्रीहीन हो जायगा ॥ ४४—४९½ ॥

सूत उवाच

एवं कलेः स्वरूपं तत्कथितं विप्रसत्तमाः ॥५०॥
हरिभक्तिपरानेव न कलिर्बाधते द्विजाः ।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव हि ॥५१॥
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ।
यतते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ॥५२॥
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ।
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ॥५३॥
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ।
समस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम् ॥५४॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते विष्णुं ध्यायन्न सीदति ।
अहोऽतीव महाभाग्याः सकृद्ये केशवार्चकाः ॥५५॥

**सूतजी कहते हैं**—विप्रवरो ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कलियुगके स्वरूपका वर्णन किया । द्विजगण ! जो लोग भगवान्‌के भजनमें तत्पर रहेंगे, उन्हींको कलियुग बाधा नहीं दे सकता । सत्ययुगमें तपस्या प्रधान है और त्रेतामें ध्यान । द्वापरमें यज्ञको महान् बताया गया है और कलियुगमें एकमात्र दानको । सत्ययुगमें दस वर्षोंतक तप आदिके लिये प्रयत्न करनेसे जो फल मिलता है, वही त्रेतायुगमें एक ही वर्षके प्रयत्नसे सिद्ध होता है, द्वापरमें एक ही मासकी साधनासे सुलभ होता है और कलियुगमें केवल एक दिन-रात यत्न करनेसे प्राप्त हो जाता है । सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें पूजन करनेसे जो फल मिलता

है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान्‌का कीर्तन करनेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर समस्त जगत्‌के आधारभूत परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाले मनुष्यको कलिसे बाधा नहीं पहुँचती। अहो! जिन्होंने एक बार भी भगवान् विष्णुका पूजन किया है, वे बड़े सौभाग्यशाली हैं॥ ५०—५५॥

घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वकर्मबहिष्कृते।
न्यूनातिरिक्तता न स्यात्कलौ वेदोक्तकर्मणाम्॥५६॥
हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णफलदायकम्।
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय॥५७॥
जनार्दन जगद्धाम पीताम्बरधराच्युत।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥५८॥
अहो हरिपरा ये तु कलौ सर्वभयंकरे।
ते सभाग्या महात्मानस्तत्संगतिरता अपि॥५९॥
हरिनामपरा ये च हरिकीर्तनतत्पराः।
हरिपूजारता ये च ते कृतार्था न संशयः॥६०॥
इत्येतद्वः समाख्यातं सर्वदुःखनिवारणम्।
समस्तपुण्यफलदं कलौ विष्णोः प्रकीर्तनम्॥६१॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे कलिलक्षणकीर्तनं नाम*
*चतुःपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५४॥*

सम्पूर्ण कर्मोंका बहिष्कार करनेवाले कलियुगके प्राप्त होनेपर किये जानेवाले वेदोक्त कर्मोंमें न्यूनता या अधिकताका दोष नहीं होता। उसमें भगवान्‌का स्मरण ही पूर्ण फलदायक होता है। जो लोग हरे, केशव, गोविन्द, वासुदेव, जगन्मय, जनार्दन, जगद्धाम, पीताम्बरधर, अच्युत इत्यादि नामोंका उच्चारण करते रहते हैं, उन्हें कलियुग कभी बाधा नहीं पहुँचाता। अहो! सबको भय देनेवाले इस कलिकालमें जो लोग भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगे रहते हैं, अथवा जो उनके आराधकोंका सङ्ग ही करते हैं, वे महात्माजन बड़े ही भाग्यशाली हैं। जो हरिनामका जप करते हैं, हरिकीर्तनमें लगे रहते हैं और सदा हरिकी पूजा ही किया करते हैं, वे मनुष्य कृतकृत्य हो गये हैं—इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार यह कलिका वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा। कलियुगमें भगवान् विष्णुका नामकीर्तन समस्त दुःखोंको दूर करनेवाला और सम्पूर्ण पुण्यफलोंको देनेवाला है॥५६—६१॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'कलियुगके लक्षणोंका वर्णन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

# पचपनवाँ अध्याय

## शुक्राचार्यको भगवान्‌की स्तुतिसे पुनः नेत्रकी प्राप्ति

राजोवाच

मार्कण्डेय कथं शुक्रः पुरा बलिमखे गुरुः।
वामनेन स विद्धाक्षः स्तुत्वा तल्लब्धवान् कथम्॥१॥

**राजा बोले**—मार्कण्डेयजी! पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वामनने जो दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी आँख छेद डाली थी, उसे उन्होंने पुनः भगवान्‌की स्तुतिद्वारा किस प्रकार प्राप्त किया?॥१॥

मार्कण्डेय उवाच

वामनेन स विद्धाक्षो बहुतीर्थेषु भार्गवः।
जाह्नवीसलिले स्थित्वा देवमभ्यर्च्य वामनम्॥ २॥
ऊर्ध्वबाहुः स देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
हृदि संचिन्त्य तुष्टाव नरसिंहं सनातनम्॥ ३॥

**मार्कण्डेयजी बोले**—वामनजीके द्वारा जब आँख छेद दी गयी, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने बहुत तीर्थोंमें भ्रमण किया। फिर एक जगह गङ्गाजीके जलमें खड़े हो भगवान् वामनकी पूजा की और अपनी बाँहें ऊपर उठाकर शङ्ख-चक्र-गदाधारी सनातन देवेश्वर भगवान् नरसिंहका मन-ही-मन ध्यान करते हुए वे उनकी स्तुति करने लगे॥ २-३॥

शुक्र उवाच

नमामि देवं विश्वेशं वामनं विष्णुरूपिणम्।
बलिदर्पहरं शान्तं शाश्वतं पुरुषोत्तमम्॥ ४॥
धीरं शूरं महादेवं शङ्खचक्रगदाधरम्।
विशुद्धं ज्ञानसम्पन्नं नमामि हरिमच्युतम्॥ ५॥
सर्वशक्तिमयं देवं सर्वगं सर्वभावनम्।
अनादिमजरं नित्यं नमामि गरुडध्वजम्॥ ६॥

सुरासुरैर्भक्तिमद्भिः स्तुतो नारायणः सदा ।
पूजितं च हृषीकेशं तं नमामि जगद्गुरुम् ॥ ७ ॥
हृदि संकल्प्य यद्रूपं ध्यायन्ति यतयः सदा ।
ज्योतीरूपमनौपम्यं नरसिंहं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥
न जानन्ति परं रूपं ब्रह्माद्या देवतागणाः ।
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति नमामि तम् ॥ ९ ॥
एतत्समस्तं येनादौ सृष्टं दुष्टवधात्पुनः ।
त्रातं यत्र जगल्लीनं तं नमामि जनार्दनम् ॥१०॥
भक्तैरभ्यर्चितो यस्तु नित्यं भक्तप्रियो हि यः ।
तं देवममलं दिव्यं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥११॥
दुर्लभं चापि भक्तानां यः प्रयच्छति तोषितः ।
तं सर्वसाक्षिणं विष्णुं प्रणमामि सनातनम् ॥१२॥

शुक्राचार्यजी बोले—मैं सम्पूर्ण विश्वके स्वामी और श्रीविष्णुके अवतार उन देवदेव वामनजीको नमस्कार करता हूँ, जो बलिका अभिमान चूर्ण करनेवाले, परम शान्त, सनातन पुरुषोत्तम हैं। जो धीर हैं, शूर हैं, सबसे बड़े देवता हैं, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं, उन विशुद्ध एवं ज्ञान-सम्पन्न भगवान् अच्युतको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सर्व-शक्तिमान्, सर्वव्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन जरारहित, अनादिदेव भगवान् गरुडध्वजको मैं प्रणाम करता हूँ। देवता और असुर सदा ही जिन नारायणकी भक्तिपूर्वक स्तुति किया करते हैं, उन सर्वपूजित जगद्गुरु भगवान् हृषीकेशको मैं नमस्कार करता हूँ। यतिजन अपने अन्तःकरणमें भावनाद्वारा स्थापित करके जिनके स्वरूपका सदा ध्यान करते रहते हैं, उन अतुलनीय एवं ज्योतिर्मय भगवान् नृसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा आदि देवतागण जिनके परमार्थ स्वरूपको भलीभाँति नहीं जानते, अतः जिनके अवतार-रूपोंका ही वे सदा पूजन किया करते हैं, उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने प्रथम इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की थी, फिर जिन्होंने दुष्टोंका वध करके इसकी रक्षा की है तथा जिनमें ही यह सारा जगत् लीन हो जाता है, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। भक्तजन जिनका सदा अर्चन करते हैं तथा जो भक्तोंके प्रेमी हैं, उन परम निर्मल, दिव्य कान्तिमय जगदीश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो प्रसन्न होनेपर अपने भक्तोंको दुर्लभ वस्तु भी प्रदान करते हैं, उन सर्वसाक्षी सनातन विष्णुभगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ॥४–१२॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथः पुरा शुक्रेण पार्थिव ।
प्रादुर्बभूव तस्याग्रे शङ्खचक्रगदाधरः ॥१३॥
उवाच शुक्रमेकाक्षं देवो नारायणस्तदा ।
किमर्थं जाह्नवीतीरे स्तुतोऽहं तद्ब्रवीहि मे ॥१४॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालमें शुक्राचार्यजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् जगन्नाथ उनके समक्ष प्रकट हो गये। उस समय भगवान् नारायणने एक आँखवाले शुक्राचार्यजीसे कहा—'ब्रह्मन्! तुमने गङ्गातटपर किसलिये मेरा स्तवन किया है? यह मुझसे बताओ' ॥ १३-१४ ॥

शुक्र उवाच

देवदेव मया पूर्वमपराधो महान् कृतः ।
तद्दोषस्यापनुत्त्यर्थं स्तुतवानस्मि साम्प्रतम् ॥१५॥

शुक्राचार्यजी बोले—देवदेव! मैंने पहले (बलिके यज्ञमें) आपका बहुत बड़ा अपराध किया है; उसी दोषको दूर करनेके लिये इस समय आपका स्तवन किया है ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच

ममापराधान्नयनं नष्टमेकं तवाधुना ।
संतुष्टोऽस्मि ततः शुक्र स्तोत्रेणानेन ते मुने ॥१६॥

श्रीभगवान् बोले—मुने! मेरे प्रति किये गये अपराधसे ही तुम्हारा एक नेत्र नष्ट हो गया था। शुक्र! इस समय तुम्हारे इस स्तवनसे मैं तुमपर संतुष्ट हूँ ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तं मुनिं प्रहसन्निव ।
पाञ्चजन्येन तच्चक्षुः पस्पर्श च जनार्दनः ॥१७॥
स्पृष्टमात्रे तु शङ्खेन देवदेवेन शार्ङ्गिणा ।
बभूव निर्मलं चक्षुः पूर्ववन्नृपसत्तम ॥१८॥
एवं दत्त्वा मुनेश्चक्षुः पूजितस्तेन माधवः ।
जगामादर्शनं सद्यः शुक्रोऽपि स्वाश्रमं ययौ ॥१९॥
इत्येतदुक्तं मुनिना महात्मना
प्राप्तं पुरा देववरप्रसादात् ।
शुक्रेण किं ते कथयामि राजन्
पुनश्च मां पृच्छ मनोरथान्तः ॥२०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे शुक्रवरप्रदानो नाम
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

यह कहकर देवदेवेश्वर जनार्दनने हँसते हुए-से अपने पाञ्चजन्य शङ्खसे शुक्राचार्यके फूटे हुए नेत्रका स्पर्श किया। नृपश्रेष्ठ ! शार्ङ्गधन्वा देवदेव विष्णुके द्वारा शङ्खका स्पर्श कराये जाते ही शुक्राचार्यका वह नेत्र पहलेकी भाँति ही निर्मल हो गया। इस प्रकार शुक्राचार्यको नेत्र देकर और उनसे पूजित होकर भगवान् लक्ष्मीपति तुरंत अन्तर्धान हो गये और शुक्राचार्य भी अपने आश्रमको चले गये। राजन् ! इस प्रकार पूर्वकालमें मुनिवर महात्मा शुक्राचार्यने देवेश्वर भगवान् विष्णुकी कृपासे अपना नेत्र प्राप्त कर लिया—यह प्रसङ्ग तुम्हारे प्रश्नानुसार मैंने सुना दिया। अब तुम्हें मैं और क्या सुनाऊँ ? तुम्हारे मनमें और भी यदि कुछ पूछनेकी इच्छा हो तो मुझसे प्रश्न करो ॥ १७—२० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शुक्राचार्यको वरप्रदान' नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

# छप्पनवाँ अध्याय

## विष्णुमूर्तिके स्थापनकी विधि

राजोवाच

साम्प्रतं देवदेवस्य नरसिंहस्य शार्ङ्गिणः ।
श्रोतुमिच्छामि सकलं प्रतिष्ठायाः परं विधिम् ॥ १ ॥

राजा बोले—ब्रह्मन् ! अब मैं शार्ङ्गधनुषधारी देवदेव नरसिंहके स्थापनकी समस्त उत्तम विधिको सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

प्रतिष्ठाया विधिं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ।
प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रं शृणु भूपाल पुण्यदम् ॥ २ ॥
कर्तुं प्रतिष्ठां यस्त्वत्र विष्णोरिच्छति पार्थिव ।
स पूर्वं स्थिरनक्षत्रे भूमिशोधनमारभेत् ॥ ३ ॥
खात्वा पुरुषमात्रं तु बाहुद्वयमथापि वा ।
पूरयेच्छुद्धमृद्भिस्तु जलार्द्रैः शर्करान्वितैः ॥ ४ ॥
अधिष्ठानं ततो बुद्ध्वा पाषाणेष्टकमृण्मयम् ।
प्रासादं कारयेत्तत्र वास्तुविद्याविदा नृप ॥ ५ ॥
चतुरस्रं सूत्रमार्गे चतुःकोणं समन्ततः ।
शिलाभित्तिकमुत्कृष्टं तदलाभेष्टकामयम् ॥ ६ ॥
तदलाभे तु मृत्कुड्यं पूर्वद्वारं सुशोभनम् ।
जातिकाष्ठमयैः स्तम्भैस्तल्लग्नैः फलदान्वितैः ॥ ७ ॥
उत्पलैः पद्मपत्रैश्च पातितैश्चित्रशिल्पिभिः ।

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—भूपाल ! देवदेवेश्वर चक्रपाणि भगवान् विष्णुके स्थापनकी पुण्यदायिनी विधि सुनो; मैं शास्त्रके अनुसार उसका वर्णन कर रहा हूँ। पृथिवीपते ! जो भी इस लोकमें भगवान् विष्णुकी स्थापना करना चाहे, उसको चाहिये कि वह पहले स्थिर-संज्ञक* नक्षत्रोंमें भूमिशोधनका कार्य प्रारम्भ करे। एक पुरुषके बराबर अर्थात् साढ़े तीन हाथ अथवा दो हाथ नीचेतक नींव खोदकर उसमें जलसे भीगी हुई कंकड़ और बालूसहित शुद्ध मिट्टी भर दे। राजन् ! फिर उसे ही आधार समझकर उसके ऊपर अपनी शक्तिके अनुसार पत्थर, ईंट अथवा मिट्टीसे गृहनिर्माण-विद्यामें कुशल कारीगरोंके द्वारा मन्दिर तैयार कराये। वह मन्दिर चारों ओरसे बराबर और चौकोर हो। उसकी दीवार पत्थरकी हो तो बहुत उत्तम; पत्थर न मिलनेपर ईंटोंकी ही दीवार बनवा ले। यदि ईंटें भी न मिल सकें तो मिट्टीकी ही भीत उठा ले। मन्दिर बहुत ही सुन्दर हो और उसका दरवाजा पूर्वकी ओर होना चाहिये। उस मन्दिरमें अच्छी जातिवाले काठके खंभे लगे हों और उनमें चित्रकला जाननेवाले शिल्पियोंके द्वारा फलयुक्त वृक्ष, कुमुद तथा कमलदल चित्रित कराने चाहिये ॥ २—७½ ॥

इत्थं तु कारयित्वा हि हरेर्वेश्म सुशोभनम् ॥ ८ ॥
पूर्वद्वारं नृपश्रेष्ठ सुरूपाढ्यं सुचित्रितम् ।
अतिवृद्धातिबालैस्तु कारयेन्नाकृतिं हरेः ॥ ९ ॥
कुष्ठाद्युपहतैर्वापि अन्यैर्वा दीर्घरोगिभिः ।
विश्वकर्मोक्तमार्गेण पुराणोक्तां नृपोत्तम ॥ १० ॥
कारयेत्प्रतिमां दिव्यां पुष्टाङ्गेन तु धीमता ।
सौम्याननां सुश्रवणां सुनासां च सुलोचनाम् ॥ ११ ॥

---

* तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये 'स्थिर' नक्षत्र कहलाते हैं।

नाधोदृष्टिं नोर्ध्वदृष्टिं तिर्यग्दृष्टिं न कारयेत् ।
कारयेत् समदृष्टिं तु पद्मपत्रायतेक्षणाम् ॥१२॥
सुभ्रुवं सुललाटां च सुकपोलां समां शुभाम् ।
बिम्बोष्ठीं सुष्ठुचिबुकां सुग्रीवां कारयेद्बुधः ॥१३॥
उपबाहुकरे देयं दक्षिणे चक्रमर्कवत् ।
नाभिसंलग्नदिव्यारं परितो नेमिसंयुतम् ॥१४॥
वामपार्श्वेत्युपभुजे देयं शङ्खं शशिप्रभम् ।
पाञ्चजन्यमिति ख्यातं दैत्यदर्पहरं शुभम् ॥१५॥

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार जिसमें सुन्दर किवाड़ लगे हों और जिसका द्वार पूर्व दिशाकी ओर हो—ऐसा बेल-बूटोंसे भलीभाँति चित्रित भगवान्का परम सुहावना मन्दिर बनवाकर बुद्धिमान् एवं हृष्टपुष्ट शरीरवाले पुरुषके द्वारा विश्वकर्माकी बतायी हुई पद्धतिके अनुसार पुराणोक्त दिव्य प्रतिमाका निर्माण कराये । जो कारीगर अत्यन्त बूढ़ा या बालक अथवा कोढ़ आदि रोगोंसे दूषित या पुराना रोगी हो, उससे भगवत्प्रतिमाका निर्माण नहीं कराना चाहिये । प्रतिमाका मुख सौम्य ( प्रसन्न ) तथा कान, नाक और नेत्र आदि अङ्ग सुढार होने चाहिये । उसकी दृष्टि न तो बहुत नीची हो, न बहुत ऊँची हो और न तिरछी ही हो । विद्वान् पुरुष ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसकी दृष्टि सम हो और जिसके नेत्र कमलदलके समान विशाल हों । भौंहें, ललाट और कपोल सुन्दर हों, उसका समस्त विग्रह सुडौल और सौम्य हो । उसके दोनों ओठ लाल हों, ठोढ़ी ( अधरके नीचेका भाग ) मनोहर तथा कण्ठ सुन्दर हो । प्रतिमाकी भुजाएँ चार होनी चाहिये—दो भुजाएँ और दो उपभुजाएँ । उनमेंसे दाहिनी उपभुजाके हाथमें सूर्यके समान आकारवाला चक्र धारण कराना चाहिये । चक्रकी नाभिके चारा ओर दिव्य अरे हों और उनके भी ऊपर सब ओरसे नेमि ( हाल ) लगी हो । बायीं उपभुजाके हाथमें चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिमय पाञ्चजन्य नामक शङ्ख देना चाहिये, जो दैत्योंके मदको चूर्ण करनेवाला आर कल्याणप्रद है ॥ ८–१५ ॥

हारार्पितवरां दिव्यां कण्ठे त्रिवलिसंयुताम् ।
सुस्तनीं चारुहृदयां सुजठरां समां शुभाम् ॥१६॥
कटिलग्नवामकरां पद्मलग्नां च दक्षिणाम् ।
केयूरबाहुकां दिव्यां सुनाभिवलिभङ्गिकाम् ॥१७॥
मुकुटीं च सुजङ्घोरूं वस्त्रमेखलभूषिताम् ।
एवं तां कारयित्वा तु प्रतिमां राजसत्तम ॥१८॥
सुवर्णवस्त्रदानेन तत्कर्तॄन् पूज्य सत्तम ।
पूर्वपक्षे शुभे काले प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ॥१९॥

उस दिव्य भगवत्प्रतिमाके कण्ठमें सुन्दर हार पहनाया गया हो, गलेमें त्रिवली-चिह्न हो, स्तनभाग सुन्दर, वक्षःस्थल रुचिर और उदर मनोहर होना चाहिये । सम्पूर्ण अङ्ग बराबर और सुन्दर हों । वह प्रतिमा अपना बायाँ हाथ कमरपर रक्खे हो और दाहिनेमें कमल धारण किये हो । बाहुओंमें भुजबन्ध पहने हो और सुन्दर नाभि तथा त्रिवलीसे सुशोभित एवं दिव्य जान पड़ती हो । उसका कटिभाग ( नितम्ब ), जाँघें और पिंडलियाँ मनोहर हों, वह कमरमें मेखला और पीतवस्त्रसे विभूषित हो । नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार भगवत्प्रतिमाका निर्माण कराकर उसके बनानेवाले शिल्पियोंको सुवर्ण-दान एवं वस्त्र-दानके द्वारा सम्मानित करके विद्वान् पुरुष पूर्व पक्षमें शुभ समयपर उस प्रतिमाकी स्थापना करे ॥ १६–१९ ॥

प्रासादस्याग्रतः कृत्वा यागमण्डपमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु चतुर्भिस्तोरणैर्युतम् ॥२०॥
सप्तधान्याङ्कुरैर्युक्तं शङ्खभेरीनिनादितम् ।
प्रतिमां क्षाल्य विद्वद्भिः षट्त्रिंशद्भिर्घटोदकैः ॥२१॥
प्रविश्य मण्डपे तस्मिन् ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
तत्रापि स्नापयेत्पश्चात् पञ्चगव्यैः पृथक्पृथक् ॥२२॥
तथोष्णवारिणा स्नाप्य पुनः शीतोदकेन च ।
हरिद्राकुङ्कुमाद्यैस्तु चन्दनैश्चोपलेपयेत् ॥२३॥
पुष्पमाल्यैरलंकृत्य वस्त्रैराच्छाद्य तां पुनः ।
पुण्याहं तत्र कृत्वा तु ऋग्भिस्तां प्रोक्ष्य वारिभिः ॥२४॥
स्नात्वा तां ब्राह्मणैर्भक्तैः शङ्खभेरीस्वनैर्युतम् ।
वासयेत्सप्तरात्रं तु त्रिरात्रं वा नदीजले ॥२५॥
ह्रदे तु विमले शुद्धे तडागे वापि रक्षयेत् ।
अधिवास्य जले देवमेवं पार्थिवपुंगव ॥२६॥
तत उत्थाप्य विप्रैस्तु स्थाप्यालंकृत्य पूर्ववत् ।
ततो भेरीनिनादैस्तु वेदघोषैश्च केशवम् ॥२७॥
आनीय मण्डपे शुद्धे पद्माकारविनिर्मिते ।
कृत्वा पुनस्ततः स्नाप्य विष्णुभक्तैरलंक्रियात् ॥२८॥

मन्दिरके सामने एक उत्तम यज्ञमण्डप बनवाये । उसमें

चारों ओर एक-एकके क्रमसे चार दरवाजे हों और सारा मण्डप चार तोरणों ( बड़े-बड़े फाटकों ) से घिरा हो। उसमें सप्तधान्यके अङ्कुर उगे हों तथा शङ्ख और भेरी आदि बाजे बजते हों। विद्वानोंके द्वारा छत्तीस घड़े जलसे उस प्रतिमाका अभिषेक कराकर उसके साथ वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंको साथमें लिये उक्त मण्डपमें प्रवेश करे और फिर पञ्चगव्योंसे पृथक्-पृथक् स्नान कराये। इसी प्रकार गर्म जलसे नहलाकर फिर ठंढे जलसे स्नान कराये। तत्पश्चात्, हल्दी और कुङ्कुम आदिका तथा चन्दनोंका उसपर लेप करे, फिर फूलोंकी मालाओंसे विभूषितकर उसे वस्त्र धारण करा दे और पुण्याहवाचन करके वैदिक ऋचाओंसे उच्चारणपूर्वक जलसे प्रोक्षितकर भक्त ब्राह्मणोंद्वारा उस भगवद्विग्रहको नहलाये। तत्पश्चात् शङ्ख, भेरी आदि बाजे बजाते हुए उसे नदीके जलमें रखकर सात या तीन दिनोंतक उसे वहाँ रहने दे। अथवा किसी निर्मल जलाशय या शुद्ध सरोवरमें ही रखकर उसकी रक्षा करे। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार भगवान्का जलाधिवास कराके ब्राह्मणोंद्वारा उनको उठवाये और पालकी आदिमें चढ़ाकर पूर्ववत् उन्हें माला आदिसे विभूषित करे। तदनन्तर नगारोंकी ध्वनि और वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ भगवान्को वहाँसे ले आये और कमलाकार बने हुए शुद्ध मण्डपमें रक्खे। वहाँ पुनः स्नान कराके विष्णुभक्तोंद्वारा उसका श्रृङ्गार कराये ॥ २०—२८ ॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु विधिवत् षोडशर्त्विजः ।
चतुर्भिरध्ययनं कार्यं चतुर्भिः पालनं तथा ॥२९॥
चतुर्भिस्तु चतुर्दिक्षु होमः कार्यो विचक्षणैः ।
पुष्पाक्षतान्नमिश्रेण दद्याद्दिक्षु बलीन् नृप ॥३०॥
एकेन दापयेत्तेषामिन्द्राद्याः प्रीयन्तामिति ।
प्रत्येकं सायंसंध्यायां मध्यरात्रे तथोषसि ॥३१॥
उदिते च ततो दद्यान्मातृविप्रगणाय वा ।
जपन् पुरुषसूक्तं तु एकतस्तु पुनः पुनः ॥३२॥
एकतो मनसा राजन् विष्णोर्मन्दिरमध्यगः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा यजमानो द्विजैः सह ॥३३॥
प्रविश्य प्रतिमाद्वारं शुभलग्ने विचक्षणः ।
देवसूक्तं द्विजैः सार्धमुपस्थाप्य च तां दृढम् ॥३४॥
संस्थाप्य विष्णुसूक्तेन पवमानेन वा पुनः ।
प्रोक्षयेद्देवदेवेशमाचार्यः कुशवारिणा ॥३५॥

इसके बाद सोलह ऋत्विज ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराये। उनमेंसे चार ब्राह्मणोंको तो वहाँ वेद-पुराणादिका स्वाध्याय ( पाठ ) करना चाहिये, चार विप्रोंको उस भगवद्विग्रहकी रक्षामें संलग्न रहना चाहिये तथा चार विद्वानोंको यज्ञमण्डपके भीतर चारों दिशाओंमें हवन करना चाहिये। राजन्! फिर एक ब्राह्मणके द्वारा फूल, अक्षत और अन्नसे समस्त दिशाओंमें बलि अर्पित कराये। यह बलि इन्द्रादि देवताओंकी प्रसन्नताके लिये होती है। प्रत्येक दिशाके अधिपतिको 'इन्द्रः प्रीयताम्' इत्यादि रूपसे उसके नामोच्चारणपूर्वक ही बलि दे। सायंकाल, आधी रात, उषःकाल तथा सूर्योदयके समय प्रत्येक दिक्पालको बलि अर्पित करनी चाहिये। इसके बाद मातृकागणोंको बलि और ब्राह्मणोंको उपहार दे। राजन्! इसके पश्चात् यजमानको चाहिये कि भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एक ओर बैठकर एकाग्रचित्तसे बार-बार पुरुषसूक्तका जप करे। फिर पूरे एक दिन-रात उपवास करके शुभ लग्नमें वह बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंको साथ ले मण्डपमें, जहाँ प्रतिमा रक्खी गयी हो, उस द्वारसे मण्डपके भीतर प्रवेश करे और ब्राह्मणोंके साथ देवसूक्तका पाठ करते हुए भगवत्प्रतिमाका उपस्थान करके उसे मन्दिरमें लाये और विष्णुसूक्त अथवा पवमानसूक्तका पाठ करते हुए उसे वहाँ दृढ़तापूर्वक स्थापित करे। तत्पश्चात् आचार्य कुशयुक्त जलसे उन देवदेवेश्वर भगवान्का अभिषेक करे ॥२९—३५॥

तदग्रे चाग्निमाधाय सम्परिस्तीर्य यत्नतः ।
जुहुयाज्जातकर्मादि गायत्र्या वैष्णवेन तु ॥३६॥
चतुर्भिराज्याहुतिभिरेकामेकां क्रियां प्रति ।
आचार्यस्तु स्वयं कुर्यादन्यैरन्यं च कारयेत् ॥३७॥
त्रातारमिति चैन्द्र्यां तु कुर्यादाज्यप्रणुन्नकम् ।
परोदिवेति याम्यायां वारुण्यां निपसेति च ॥३८॥
या ते रुद्रेति सौम्यां तु हुवेदाज्याहुतीर्नृप ।
परोमात्रेति सूक्ताभ्यां सर्वत्राज्याहुतीर्नृप ॥३९॥
हुत्वा जपेच्च विधिवद्यदस्येति च स्विष्टकृत् ।
ततः स दक्षिणां दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ॥४०॥
वस्त्रे द्वे कुण्डले चैव गुरवे चाङ्गुलीयकम् ।
यजमानस्ततो दद्याद्विभवे सति काञ्चनम् ॥४१॥

फिर भगवान्के सम्मुख अग्निस्थापन करे। अग्निके चारों

ओर यत्नपूर्वक कुशास्तरण करके गायत्री और विष्णुमन्त्रोंद्वारा जातकर्मादि संस्कारकी सिद्धिके निमित्त हवन करे। आचार्यको चाहिये कि प्रत्येक क्रियामें चार-चार बार घीकी आहुति दे तथा अस्त्रमन्त्र ( अस्त्राय फट् ) बोलकर दिग्बन्ध कराये। 'ॐ त्रातारमिन्द्रम्०' इत्यादि मन्त्र ( शु० यजु० २० । ५० ) से अग्निवेदीपर पूर्वकी ओर घीकी आहुति दे। 'परो दिवा०' इत्यादि मन्त्र ( शु० यजु० १७ । २९ ) से दक्षिण दिशामें और 'निषसाद०' इत्यादि मन्त्र ( शु० यजु० १० । २७ ) से पश्चिममें घृतका हवन करे। हे नृप ! 'या ते रुद्र०' ( शु० यजु० १६ । २ )—इस मन्त्रसे उत्तर दिशामें और 'परो मात्रया०' ( ऋग्वेद ७ । ६ । ९९ ) इत्यादि दो सूक्तोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंमें घीकी आहुति दे। इस प्रकार विधिवत् हवन करके 'यदस्या०' ( शु० यजु० २३ । २८ ) इस मन्त्रका जप करे और घीसे 'स्विष्टकृत्' संज्ञक होम करे। तदनन्तर ऋत्विजोंको उनके सम्मानके अनुकूल सादर दक्षिणा दे। इसके बाद यजमान आचार्यको दो वस्त्र, दो सुवर्णमय कुण्डल और सोनेकी अँगूठी दे तथा यदि सामर्थ्य हो तो इसके अतिरिक्त भी सुवर्णदान करे ॥ ३६—४१ ॥

**कलशाष्टसहस्रेण कलशाष्टशतेन वा ।**
**एकविंशतिना वापि स्नपनं कारयेद् बुधः ॥४२॥**
**शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्वेदघोषैश्च मङ्गलैः ।**
**यवव्रीहियुतैः पात्रैरुद्धृतैरुच्छ्रिताङ्कुरैः ॥४३॥**
**दीपयष्टिपताकाभिश्छत्रचामरतोरणैः ।**
**स्नपनं कारयित्वा तु यथाविभवविस्तरम् ॥४४॥**
**तत्रापि दद्याद्विप्रेभ्यो यथाशक्त्या तु दक्षिणाम् ।**
**एवं यः कुरुते राजन् प्रतिष्ठां देवचक्रिणः ॥४५॥**
**सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ।**
**विमानेन विचित्रेण त्रिःसप्तकुलजैर्वृतः ॥४६॥**
**पूजां सम्प्राप्य महतीमिन्द्रलोकादिषु क्रमात् ।**
**बान्धवांस्तेषु संस्थाप्य विष्णुलोके महीयते ॥४७॥**
**तत्रैव ज्ञानमासाद्य वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।**

फिर विद्वान् पुरुष यथासम्भव एक हजार आठ या एक सौ आठ अथवा इक्कीस घड़े जलसे भगवान्‌को स्नान कराये। उस समय शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बजते रहें, वेद-मन्त्रोंका घोष और मङ्गलपाठ होता रहे। अपनी शक्तिके अनुसार जिनपर जौ आदिके अङ्कुर निकले हों, ऐसे जौ और व्रीहि ( चावल ) से भरे पात्रोंद्वारा तथा दीप, यष्टि ( छड़ी ), पताका, छत्र, चँवर, तोरण आदि सामग्रियोंके साथ स्नान-विधि पूर्ण कराके वहाँ भी ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। राजन् ! इस प्रकार जो भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और मृत्युके पश्चात् अपने-सहित इक्कीस पीढ़ीके पितरोंको साथ ले, सब प्रकारके आभूषणोंसे भूषित एवं विचित्र विमानपर आरूढ हो, क्रमशः इन्द्रादि लोकोंमें विशेष सम्मान प्राप्त करता है तथा अपने बन्धुजनोंको उन लोकोंमें रखकर स्वयं विष्णुलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होता है। फिर वहाँ ही भगवत्तत्त्वका ज्ञान प्राप्तकर वह विष्णुस्वरूपमें लीन हो जाता है ॥ ४२—४७½ ॥

**प्रतिष्ठाविधिरयं विष्णोर्मयैवं ते प्रकीर्तितः ॥४८॥**
**पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनः ॥४९॥**
**यदा नृसिंहं नरनाथ भूमौ**
**संस्थाप्य विष्णुं विधिना ह्यनेन ।**
**तदा ह्यसौ याति हरेः पदं तु**
**यत्र स्थितोऽयं न निवर्तते पुनः ॥५०॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे प्रतिष्ठाविधिर्नाम*
*षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥*

राजन् ! इस प्रकार तुमसे मैंने यह प्रतिष्ठा-विधि बतायी। इसका पाठ और श्रवण करनेवाले लोगोंके सब पाप दूर हो जाते हैं। नरनाथ ! जब मनुष्य इस पूर्वोक्त विधिसे पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहकी स्थापना कर लेता है, तब मृत्युके बाद वह भगवान् विष्णुके उस नित्यधामको प्राप्त होता है, जहाँ रहकर वह पुनः संसारमें नहीं लौटता ॥ ४८—५० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'प्रतिष्ठाविधि' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

# सत्तावनवाँ अध्याय*

## भक्तके लक्षण; हारीत-स्मृतिका आरम्भ; ब्राह्मणधर्मका वर्णन

राजोवाच

**भक्तानां लक्षणं ब्रूहि नरसिंहस्य मे द्विज ।**
**येषां संगतिमात्रेण विष्णुलोको न दूरतः ॥ १ ॥**

**राजा बोले**—ब्रह्मन् ! आप मुझसे भगवान् नृसिंहके भक्तोंका लक्षण बतलाइये, जिनका सङ्ग करनेमात्रसे विष्णुलोक दूर नहीं रह जाता ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

**विष्णुभक्ता महोत्साहा विष्ण्वर्चनविधौ सदा ।**
**संयता धर्मसम्पन्नाः सर्वार्थान् साधयन्ति ते ॥ २ ॥**
**परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।**
**वर्णाश्रमाचारयुताः सर्वेषां सुप्रियंवदाः ॥ ३ ॥**
**वेदवेदार्थतत्त्वज्ञा गतरोषा गतस्पृहाः ।**
**शान्ताश्च सौम्यवदना नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ४ ॥**
**हितं मितं च वक्तारः काले शक्त्यातिथिप्रियाः ।**
**दम्भमायाविनिर्मुक्ताः कामक्रोधविवर्जिताः ॥ ५ ॥**
**ईदृग्विधा नरा धीराः क्षमावन्तो बहुश्रुताः ।**
**विष्णुकीर्तनसंजातहर्षा रोमाञ्चिता जनाः ॥ ६ ॥**
**विष्ण्वर्चापूजने यत्तास्तत्कथायां कृतादराः ।**
**ईदृग्विधा महात्मानो विष्णुभक्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥**

**श्रीमार्कण्डेयजीने कहा**—राजन् ! भगवान् विष्णुके भक्त उनकी पूजा-अर्चा करनेमें महान् उत्साह रखते हैं । वे अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए धर्ममें तत्पर रहकर सारे मनोरथोंको सिद्ध कर लेते हैं । भगवद्भक्त जन सदा परोपकार और गुरु-सेवामें लगे रहते हैं, सबसे मीठे वचन बोलते और अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके सदाचारोंका पालन करते हैं । वे वेद और वेदार्थका तत्त्व जाननेवाले होते हैं, उनमें क्रोध और कामनाओंका अभाव होता है । वे सदा शान्त रहते हैं, उनके मुखपर सौम्यभाव लक्षित होता है तथा वे निरन्तर धर्माचरणमें लगे रहते हैं । थोड़ा किंतु हितकारी वचन बोलते हैं, समयपर अपनी शक्तिके अनुसार सदा अतिथिकी सेवा करनेमें उनका प्रेम बना रहता है । वे दम्भ, कपट, काम और क्रोधसे रहित होते हैं । जो मनुष्य इन पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त एवं धीर हैं, बहुश्रुत और क्षमावान् हैं तथा विष्णुभगवान्‌के नामोंका कीर्तन अथवा श्रवण करते समय हर्षसे रोमाञ्चित हो जाते हैं, इसी तरह जो विष्णुपूजनमें तत्पर और भगवत्कथामें आदर रखनेवाले हैं, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् विष्णुके भक्त कहे गये हैं ॥ २—७ ॥

राजोवाच

**ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।**
**इति प्रोक्तं त्वया विद्वन् भृगुवर्य गुरो मम ॥ ८ ॥**
**वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं मे वक्तुमर्हसि ।**
**यैः कृतैस्तुष्यते देवो नरसिंहः सनातनः ॥ ९ ॥**

**राजा बोले**—विद्वन् ! भृगुवर्य ! मेरे गुरुदेव ! आपने अभी कहा है कि जो अपने वर्ण और आश्रमके धर्ममें लगे रहते हैं, वे भगवान् विष्णुके भक्त हैं; अतः आप कृपा करके वर्णों और आश्रमोंके धर्म बताइये, जिनके पालन करनेसे सनातन भगवान् नृसिंह संतुष्ट होते हैं ॥ ८-९ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

**अत्र ते वर्णयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।**
**मुनिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ १० ॥**

**श्रीमार्कण्डेयजीने कहा**—इस विषयमें मुनियोंके साथ महात्मा हारीत ऋषिका संवाद हुआ था; उसी प्राचीन एवं उत्तम इतिहासका आज मैं तुम्हारे समक्ष वर्णन करूँगा ॥ १० ॥

**हारीतं धर्मतत्त्वज्ञमासीनं बहुपाठकम् ।**
**प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥ ११ ॥**
**भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्त्तक ।**
**वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं प्रब्रूहि शाश्वतम् ॥ १२ ॥**

एक समयकी बात है, धर्मका तत्त्व जाननेकी इच्छावाले समस्त मुनियोंने एक जगह आसनपर आसीन, धर्म-तत्त्ववेत्ता एवं बहुपाठी महात्मा

---

* यहाँसे 'हारीत-स्मृति'का प्रारम्भ है । अधुना उपलब्ध 'लघु हारीत स्मृति'के पाठ इसके पाठसे प्रायः मिलते हैं । कुछ-कुछ पाठान्तर भी उपलब्ध होते हैं ।

हारीत ऋषिके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आप समस्त धर्मोंके ज्ञाता और प्रवर्तक हैं; अतः आप हमलोगोंसे वर्ण और आश्रमोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सनातन धर्मका वर्णन कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

हारीत उवाच

नारायणः पुरा देवो जगत्स्रष्टा जलोपरि ।
सुष्वाप भोगिपर्यङ्के शयने तु श्रिया सह ॥१३॥
तस्य सुप्तस्य नाभौ तु दिव्यं पद्ममभूत् किल ।
तन्मध्ये चाभवद्ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥१४॥
स चोक्तस्तेन देवेन ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ।
असृजत्क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यांस्तु ऊरुतोऽसृजत् ॥१५॥
शूद्रास्तु पादतः सृष्टास्तेषां चैवानुपूर्वशः ।
धर्मशास्त्रं च मर्यादां प्रोवाच कमलोद्भवः ॥१६॥
तद्वत्सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥१७॥

**श्रीहारीतजी बोले**—पूर्वकालमें जगत्स्रष्टा भगवान् नारायण जलके ऊपर शेषनागकी शय्यापर श्रीलक्ष्मीजीके साथ शयन करते थे। कहते हैं, शयन-कालमें ही उन भगवान्‌की नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ और उस कमल-कोषमेंसे वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञानसे विभूषित श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए। उन ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये भगवान् नारायणकी आज्ञा होनेपर सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको अपने मुखसे प्रकट किया। फिर क्षत्रियोंको बाहुओंसे और वैश्योंको जाँघोंसे उत्पन्न किया। अन्तमें उन्होंने चरणोंसे शूद्रोंकी सृष्टि की। फिर कमलोद्भव ब्रह्माजीने क्रमशः उन्हीं ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्मका उपदेश करनेवाले शास्त्र और वर्णोंकी मर्यादाका वर्णन किया। द्विजवरो ! ब्रह्माजीने जो कुछ उपदेश किया, वह सब मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ; आप सुनें। यह धर्मशास्त्र धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला तथा स्वर्ग और मोक्षरूपी फलको देनेवाला है ॥ १३-१७ ॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव चोत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥१८॥
कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावात्तु प्रवर्त्तते ।
तस्मिन् देशे वसेर्धर्मं कुरु ब्राह्मणपुंगव ॥१९॥
षट्कर्माणि च यान्याहुर्ब्राह्मणस्य मनीषिणः ।
तैरेव सततं यस्तु प्रवृत्तः सुखमेधते ॥२०॥
अध्ययनाध्यापनं च यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चेति कर्मषट्कमिहोच्यते ॥२१॥
अध्यापनं च त्रिविधं धर्मस्यार्थस्य कारणम् ।
शुश्रूषाकारणं चैव त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥२२॥
योग्यानध्यापयेच्छिष्यान् याज्यानपि च याजयेत् ।
विधिना प्रतिगृह्णंश्च गृहधर्मप्रसिद्धये ॥२३॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं शुभे देशे समाहितः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात् प्रयत्नतः ॥२४॥
गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।
सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः ॥२५॥

जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके गर्भ और ब्राह्मणके ही वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, वह 'ब्राह्मण' कहा गया है। अब मैं ब्राह्मणके धर्म और निवास-योग्य देशको बता रहा हूँ। ब्रह्माजीने ब्राह्मणको उत्पन्न करके उनसे कहा—'ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जिस देशमें कृष्णसार मृग स्वभावतः निवास करता हो, उसी देशमें रहकर तुम धर्मका पालन करो।' मनीषियोंने जो ब्राह्मणके छः कर्म बतलाये हैं, उन्हींके अनुसार जो सदा व्यवहार करता है, वह सुखपूर्वक अभ्युदयशील होता है। अध्ययन ( पढ़ना ), अध्यापन ( पढ़ाना ), यजन ( यज्ञ करना ), याजन ( यज्ञ कराना ), दान करना और दान लेना—ये ही ब्राह्मणके छः कर्म कहे जाते हैं। इनमेंसे अध्ययन तीन प्रकारका बताया जाता है—पहला धर्मके लिये, दूसरा धनके लिये और तीसरा अपनी सेवा करानेके लिये होता है। ब्राह्मणको चाहिये कि योग्य शिष्योंको पढ़ाये, योग्य यजमानोंका यज्ञ कराये और गृहस्थधर्मकी सिद्धि ( जीविका चलाने आदि ) के लिये विधिपूर्वक दूसरेका दान भी ग्रहण करे। शुभ स्थानपर रहकर, एकाग्रचित्त हो, प्रतिदिन वेदका ही अभ्यास करे तथा यत्नपूर्वक नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करे। श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि आलस्य त्यागकर उचितरूपसे गुरुजनोंकी सेवा करे और प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल विधिपूर्वक अग्निकी सेवा किया करे ॥१८-२५॥

कृतस्नानस्तु कुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।
अतिथिं चागतं भक्त्या पूजयेच्छक्तितो गृही ॥२६॥
अन्यानभ्यागतान् दृष्ट्वा पूजयेदविरोधतः ।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥२७॥

सत्यवादी जितक्रोधः स्वधर्मनिरतो भवेत् ।
स्वकर्मणि च सम्प्राप्ते प्रमादं नैव कारयेत् ॥२८॥
प्रियां हितां वदेद्वाचं परलोकाविरोधिनीम् ।
एवं धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ।
धर्ममेवं तु यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥२९॥
इत्येष धर्मः कथितो मया वै
विप्रस्य विप्रा अखिलाघहारी।
वदामि राजादिजनस्य धर्मं
पृथक्पृथग्बोधत विप्रवर्याः ॥३०॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्राह्मणधर्मकथनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥*

गृहस्थ ब्राह्मण स्नान आदिके बाद प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करे और घरपर आये हुए अतिथिका अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक सम्मान करे । एक अतिथिके आ जानेपर यदि दूसरे भी आ जायँ तो उन्हें भी देखकर विरोध न माने, उनका भी यथाशक्ति सम्मान करे । सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रक्खे, दूसरेकी स्त्रीके सम्पर्कमें सदा दूर रहे । सदा सत्य बोले, क्रोध न करे, अपने धर्मका पालन करता रहे । अपने नैत्यिक आदि कर्मका समय प्राप्त होनेपर प्रमाद न करे । जिससे परलोक न बिगड़े—ऐसी सत्य, प्रिय और हितकारिणी वाणी बोले । इस प्रकार मैंने ब्राह्मण-धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया । जो ब्राह्मण इस प्रकार अपने धर्मका पालन करता है, वह नित्य ब्रह्मधाम ( सत्यलोक ) को प्राप्त होता है । विप्रगण ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यह ब्राह्मण-धर्म कहा है, यह समस्त पापोंको दूर करनेवाला है । विप्रवरो ! अब क्षत्रियादि जातियोंका पृथक्-पृथक् धर्म बताता हूँ, आप लोग सुनें ॥ २६–३० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'ब्राह्मणधर्मका वर्णन' नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

## अट्ठावनवाँ अध्याय

### क्षत्रियादि वर्णोंके धर्म और ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन

हारीत उवाच

क्षत्त्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येन येन प्रवर्तन्ते विधिना क्षत्त्रियादयः ॥ १ ॥
राज्यस्थः क्षत्त्रियश्चैव प्रजा धर्मेण पालयेत् ।
कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥ २ ॥
दद्याद्दानं द्विजाग्र्येभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ ३ ॥
नीतिशास्त्रार्थकुशलः संधिविग्रहतत्त्ववित् ।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४ ॥
धर्मेणैव जयं काङ्क्षेदधर्मं परिवर्जयेत् ।
उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्त्रियोऽप्येवमाचरन् ॥ ५ ॥

**श्रीहारीत मुनि बोले**—अब मैं क्रमशः क्षत्रियादि वर्णोंके लिये विहित नियमोंका यथावत् वर्णन करूँगा जिनके अनुसार क्षत्रियादिको अपना व्यवहार निभाना चाहिये । राजपदपर स्थित क्षत्रियको उचित है कि वह धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करे । उसे भलीभाँति वेदाध्ययन और विधिपूर्वक यज्ञ भी करने चाहिये । धर्मबुद्धिसे युक्त हो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दे, सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहकर परस्त्रीका त्याग करे, नीतिशास्त्रका अर्थ समझनेमें निपुण हो, संधि और विग्रहका तत्त्व समझे । देवताओं और ब्राह्मणोंमें भक्ति रक्खे, पितरोंका पूजन—श्राद्धादि कर्म करे । धर्मपूर्वक ही विजयकी इच्छा करे, अधर्मको भलीभाँति त्याग दे । इस प्रकार आचरण करनेवाला क्षत्रिय उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १–५ ॥

गोरक्षाकृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ।
दानधर्मं यथाशक्त्या गुरुशुश्रूषणं तथा ॥ ६ ॥
लोभदम्भविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ।
स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥
धनैर्विप्रान् समर्चेत यज्ञकाले त्वरान्वितः ।
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥ ८ ॥
पितृकार्यं च तत्काले नरसिंहार्चनं तथा ।
एतद्वैश्यस्य कर्मोक्तं स्वधर्ममनुतिष्ठतः ॥ ९ ॥
एतदासेवमानस्तु स स्वर्गी स्यान्न संशयः ।

वैश्यको चाहिये कि वह विधिपूर्वक गोरक्षा, कृषि और व्यापार करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दानधर्म और गुरुसेवा भी करे। लोभ और दम्भसे सर्वथा दूर रहे, सत्यवादी हो, किसीके दोष न देखे, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर परस्त्रीका त्याग करे और अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहे। यज्ञ-कालमें शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणोंका धनसे सम्मान करे तथा आलस्य छोड़कर प्रतिदिन यज्ञ, अध्ययन और दान करता रहे। श्राद्ध-काल प्राप्त होनेपर पितृ-श्राद्ध अवश्य करे और नित्यप्रति भगवान् श्रीनृसिंहदेवका पूजन करे। अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्यके लिये यही कर्तव्य कर्म बतलाया गया है। पूर्वोक्त कर्मका पालन करनेवाला वैश्य निस्संदेह स्वर्गलोकका अधिकारी होता है ॥ ६—९½ ॥

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥१०॥
दासवद्ब्राह्मणानां च विशेषेण समाचरेत् ।
अयाचितं प्रदातव्यं कृषिं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥११॥
ग्रहाणां मासिकं कार्यं पूजनं न्यायधर्मतः ।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टमार्जनम् ॥१२॥
स्वदारेषु रतिं कुर्यात् परदारविवर्जितः ।
पुराणश्रवणं विप्रान्नरसिंहस्य पूजनम् ॥१३॥
तथा विप्रनमस्कारं कार्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
सत्यसम्भाषणं चैव रागद्वेषविवर्जनम् ॥१४॥
इत्थं कुर्वन् सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापस्तु पुण्यभाक् ॥१५॥

शूद्रको चाहिये कि वह यत्नपूर्वक इन तीनों वर्णोंकी सेवा करे और ब्राह्मणोंकी तो दासकी भाँति विशेषरूपसे शुश्रूषा करे। किसीसे माँगकर नहीं, अपनी ही कमाईका दान करे। जीविकाके लिये कृषि-कर्म करे। प्रत्येक मासमें न्याय और धर्मके अनुसार ग्रहोंका पूजन करे, पुराना वस्त्र धारण करे। ब्राह्मणका जूठा बर्तन माँजे। अपनी स्त्रीमें अनुराग रक्खे। परस्त्रियोंको दूरसे ही त्याग दे। ब्राह्मणके मुखसे पुराण-कथा श्रवण करे, भगवान् नरसिंहका पूजन करे। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करे। राग-द्वेष त्याग दे और सत्यभाषण करे। इस प्रकार मन, वाणी, शरीर और कर्मसे आचरण करनेवाला शूद्र पापरहित हो पुण्यका भागी होता है और मृत्युके पश्चात् इन्द्रलोकको प्राप्त होता है ॥१०—१५॥

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता
यथाक्रमं ब्राह्मणवर्यसाधिताः ।
शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं
मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥१६॥

मुनीन्द्रगण! वर्णोंके ये नाना प्रकारके धर्म मैंने आपलोगोंसे क्रमशः कहे हैं। इन्हें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने बतलाया है। अब मैं क्रमसे प्रथम ब्रह्मचर्य-आश्रमके धर्म बता रहा हूँ, आप लोग सुनें ॥ १६ ॥

हारीत उवाच

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुले सदा ।
गुरोः प्रियहितं कार्यं कर्मणा मनसा गिरा ॥१७॥
ब्रह्मचर्यमधश्शय्या तथा वह्नेरुपासनम् ।
उदकुम्भं गुरोर्दद्यात्तथा चेन्धनमाहरेत् ॥१८॥
कुर्यादध्ययनं पूर्वं ब्रह्मचारी यथाविधि ।
विधिं हित्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥१९॥
यत्किंचित्कुरुते कर्म विधिं हित्वा निरात्मकः।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणो विधिविच्युतः ॥२०॥
तस्मादेवं व्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ।
शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरुसंनिधौ ॥२१॥
अजिनं दण्डकाष्ठं च मेखलां चोपवीतकम् ।
धारयेदप्रमत्तस्तु ब्रह्मचारी समाहितः ॥२२॥
सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोजनं संयतेन्द्रियः ।
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥२३॥
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वपूर्वं च वर्जयेत् ।
आचम्य प्रयतो नित्यमश्नीयाद्गुर्वनुज्ञया ॥२४॥
शयनात् पूर्वमुत्थाय दर्भमृद्दन्तशोधनम् ।
वस्त्रादिकमथान्यच्च गुरवे प्रतिपादयेत् ॥२५॥
स्नाने कृते गुरौ पश्चात्स्नानं कुर्वीत यत्नवान् ।
ब्रह्मचारी व्रती नित्यं न कुर्याद्दन्तशोधनम् ॥२६॥

श्रीहारीत मुनि बोले—उपनयन-संस्कार हो जानेके बाद ब्रह्मचारी बालक सदा गुरुकुलमें निवास करे। उसको चाहिये कि मन, वाणी और कर्मसे गुरुका प्रिय और हित करे। वह ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिपर शयन और अग्निकी उपासना

करे। गुरुके लिये जलका घड़ा भरकर लाये और हवनके निमित्त समिधा ले आये। इस प्रकार सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य आश्रममें रहकर विधिपूर्वक अध्ययन करना चाहिये। जो विधिका त्याग करके अध्ययन करता है, उसे उस अध्ययनका फल नहीं प्राप्त होता ( उसकी विद्या सफल नहीं होती )। विधिकी अवहेलना करके वह जो कुछ भी कर्म करता है, विधिभ्रष्ट एवं नास्तिक होनेके कारण उसे उसका फल नहीं मिलता। इसलिये गुरुकुलमें रहकर अपने अध्ययनकी सफलताके लिये उपर्युक्त व्रतोंका आचरण करना चाहिये और गुरुके निकट समस्त शौचाचारोंको सीखना चाहिये। ब्रह्मचारी सावधान और एकाग्रचित्त रहकर मृगचर्म, पलाशदण्ड, मेखला और उपवीत ( जनेऊ ) धारण करे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षासे मिला हुआ अन्न भोजन करे। गुरुके कुलमें और उनके कुटुम्बी बन्धु-बान्धवोंके घरमें भिक्षा न माँगे। दूसरेके घर न मिले तो पूर्वोक्त घरोंमेंसे भी भिक्षा ले सकता है; किंतु यथासाध्य पूर्व-पूर्व गृहोंका त्याग करे। अर्थात् पहले कहे हुए गुरुगृह वा गुरुकुलका त्यागकर अन्यत्र भिक्षा ले। नित्य आचमन करके शुद्धचित्त होकर गुरुकी आज्ञासे भोजन करे। रात्रि बीतनेपर गुरुसे पहले ही अपने आसनसे उठ जाय और गुरुके लिये कुश, मिट्टी, दाँतुन और वस्त्र आदि अन्य सामान एकत्र करके उनको दे। गुरुजीके स्नान कर लेनेपर स्वयं यत्नपूर्वक स्नान करे। ब्रह्मचारी सदा व्रत रक्खे और काठ आदिसे दन्तधावन न करे ॥ १७—२६ ॥

छत्रोपानहमभ्यङ्गं गन्धमाल्यानि वर्जयेत् ।
नृत्यगीतकथालापं मैथुनं च विशेषतः ॥२७॥
वर्जयेन्मधु मांसं च रसास्वादं तथा स्त्रियः ।
कामं क्रोधं च लोभं च परिवादं तथा नृणाम् ॥२८॥
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ॥२९॥
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वाग्निं पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥३०॥
आस्तिकोऽहरहः संध्यां त्रिकालं संयतेन्द्रियः ।
उपासीत यथान्यायं ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥३१॥
अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः ।
यथायोगं प्रकुर्वीत मातापित्रोस्तु भक्तितः ॥३२॥
एतेषु त्रिषु तुष्टेषु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
तदेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥३३॥
अधीत्य चतुरो वेदान् वेदौ वेदमथापि वा ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा तदा स्वस्वेच्छया वसेत् ॥३४॥
विरक्तः प्रव्रजेद्विद्वान् संरक्तस्तु गृही भवेत् ।
सरागो नरकं याति प्रव्रजन् हि ध्रुवं द्विजः ॥३५॥
यस्यैतानि सुशुद्धानि जिह्वोपस्थोदरं गिरः ।
संन्यसेदकृतोद्वाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥३६॥

छाता, जूता, उबटन, गन्धयुक्त इत्र आदि और फूल-माला आदिको त्याग दे। विशेषतः नाच, गान और ग्राम्य कथा-वार्ता एवं मैथुनका सर्वथा त्याग करे। मधु, मांस और रसास्वाद ( जिह्वाके स्वाद )को त्याग दे। स्त्रियोंसे अलग रहे। काम, क्रोध, लोभ तथा दूसरे मनुष्योंके अपवाद ( निन्दा ) का परित्याग करे। स्त्रियोंकी ओर देखने, उनका स्पर्श करने और दूसरे जीवोंकी हिंसा करने आदिसे बचकर रहे। सब जगह अकेले ही शयन करे, कभी कहीं भी वीर्यपात न करे। यदि कामभाव न होनेपर भी स्वप्नमें वीर्य-स्खलन हो जाय तो ब्रह्मचारी द्विजको चाहिये, वह स्नान करके सूर्य और अग्निकी आराधना करे तथा 'पुनर्मामैत्विन्द्रियम्' इस ऋचाका जप करे। ईश्वर और परलोकके अस्तित्वमें विश्वास करता हुआ, ब्रह्मचारियोंके लिये उचित व्रतके पालनमें तत्पर रहकर, जितेन्द्रिय हो, प्रतिदिन न्यायतः प्राप्त त्रिकालसंध्याकी उपासना करे। संध्या-कर्म समाप्त होनेपर गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे और यदि सुयोग प्राप्त हो तो माता-पिताके चरणोंमें भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। इन तीनोंके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न रहते हैं; इसलिये ब्रह्मचारीको चाहिये कि डाह छोड़कर इन तीनोंके शासनमें रहे। यथासम्भव चार, दो अथवा एक ही वेदका अध्ययन पूर्ण करके गुरुको दक्षिणा दे। फिर अपने इच्छानुसार कहीं भी निवास करे। यदि वह विद्वान् ब्रह्मचारी विरक्त हो, तब तो संन्यासी हो जाय; किंतु यदि उसका विषय-भोगोंके प्रति अनुराग हो तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। द्विजो ! रागी पुरुष यदि संन्यासी हो जाय तो वह निश्चय ही नरकमें जाता है। जिसकी जिह्वा, उपस्थ ( जननेन्द्रिय ), उदर और वाणी शुद्ध हों, अर्थात् जो स्वाद, काम और बुभुक्षाको जीत चुका हो और सत्यवादी या मौन

रहता हो, वह पुरुष यदि ब्रह्मचर्यवान् ब्राह्मण हो तो वह विवाह न करके संन्यास ले सकता है ॥ २७—३६ ॥

एवं यो विधिमास्थाय नयेत्कालमतन्द्रितः ।
तेन भूयः प्रजायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥३७॥
यो ब्रह्मचारी विधिमेतमास्थित-
श्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।
सम्प्राप्य विद्यामपि दुर्लभां तां
फलं हि तस्याः सकलं हि विन्दति ॥३८॥

इस प्रकार जो आलस्य त्यागकर विधिका पालन करते हुए ही समय-यापन करता है, वह ब्रह्मचारी अधिकाधिक दृढ़ व्रतवाला होता है । जो ब्रह्मचारी पूर्वोक्त विधिका सहारा लेकर गुरु-सेवापरायण हो पृथ्वीपर भ्रमण करता है, वह दुर्लभ विद्याको भी सीखकर उसके सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त कर लेता है* ॥ ३७-३८ ॥

हारीत उवाच

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतिशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
गुरोर्दत्तवरः सम्यक् समावर्तनमारभेत् ॥३९॥
असमाननामगोत्रां कन्यां भ्रातृयुतां शुभाम् ।
सर्वावयवसंयुक्तां सद्वृत्तामुद्वहेत्ततः ॥४०॥
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
वाचालामतिलोमां च न व्यङ्गां भीमदर्शनाम् ॥४१॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्तपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥४२॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तन्वोष्ठकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥४३॥
ब्राह्मेण विधिना कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ।
यथायोगं तथा ह्येवं विवाहं वर्णधर्मतः ॥४४॥

**श्रीहारीत मुनि कहते हैं**—पूर्वोक्त रीतिसे वेदाध्ययन समाप्तकर श्रुति तथा अन्यान्य शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वका ज्ञान रखनेवाला ब्रह्मचारी विद्वान् गुरुसे आशीर्वाद प्राप्तकर विधिपूर्वक समावर्तन-संस्कार आरम्भ करे । फिर, जिसके नाम और गोत्र अपने-से भिन्न हों, जिसके भाई भी हो, जो सुन्दरी एवं शुभ लक्षणोंवाली हो, जिसके शरीरके सभी अवयव अविकल हों और जिसका आचरण उत्तम हो, ऐसी कन्याके साथ विवाह करे । जिसके शरीरका रंग कपिल हो, जो अधिकाङ्गी या रोगिणी हो, बहुत बोलनेवाली और अधिक रोमवाली हो, जिसका कोई अङ्ग विकृत या हीन हो और जिसकी सूरत डरावनी हो, ऐसी कन्यासे विवाह न करे । जिसका नाम नक्षत्र, वृक्ष या नदीके नामपर रक्खा गया हो, अथवा जिसके नामके अन्तमें पर्वतवाचक शब्द हो, अथवा जो पक्षी, साँप और दास आदि अर्थवाले नामोंसे युक्त हो, या जिसका भयंकर नाम हो, ऐसी कन्यासे भी विवाह न करे । जिसके शरीरके सभी अवयव सुडौल हों, नाम कोमल और मधुर हो, जो हंस या गजराजके समान मन्द एवं लीलायुक्त गतिसे चलनेवाली हो, जिसके अधर, दाँत और केश पतले हों एवं जिसका शरीर कोमल हो, ऐसी कन्यासे विवाह करे । श्रेष्ठ द्विजातिको चाहिये कि यथासम्भव सर्वोत्तम ब्राह्मविधिसे विवाह करे । इस प्रकार वर्णधर्मके अनुसार विवाह-संस्कार पूर्ण करना चाहिये ॥ ३९—४४ ॥

उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो द्विजोत्तमः ।
कुर्यात्स्नानं ततो विद्वान्दन्तधावनपूर्वकम् ॥४५॥
मुखे पर्युषिते नित्यं यतोऽपूतो भवेन्नरः ।
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥४६॥
खदिरं च कदम्बं च करञ्जं च वटं तथा ।
अपामार्गं च बिल्वं च अर्कश्चोदुम्बरस्तथा ॥४७॥
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि ।
दन्तधावनकाष्ठं च वक्ष्यामि तत्प्रशस्तताम् ॥४८॥

इसके बाद विद्वान् द्विजको चाहिये कि प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व उठकर शौचादिके अनन्तर दन्तधावन करके तुरंत स्नान कर ले । प्रतिदिन रातमें सोकर उठनेके बाद मुख पर्युषित होनेके कारण मनुष्य अपवित्र रहता है, अतः शुद्धिके लिये सूखा या गीला दन्तधावन अवश्य चबाना चाहिये । दाँतनके लिये खदिर, कदम्ब, करञ्ज, वट, अपामार्ग, बिल्व, मदार और गूलर—ये वृक्ष उत्तम माने गये हैं । दन्तधावनके लिये उपयुक्त काष्ठ और उसकी उत्तमताका लक्षण बता रहा हूँ ॥ ४५—४८ ॥

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणस्तु यशस्विनः ।
अष्टाङ्गुलेन मानेन तत्प्रमाणमिहोच्यते ॥४९॥

---

* इससे आगे 'हारीत उवाच' पुनः दिया गया है । इससे जान पड़ता है, यह अध्याय यहाँ पूर्ण हो गया है ।

प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्तान् विशोधयेत् ।
प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां चैव सत्तमाः ॥५०॥
दन्तानां काष्ठसंयोगाद् दहत्यासप्तमं कुलम् ।
अलाभे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धे च तद्दिने ॥५१॥
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते ।

जितने काँटेवाले वृक्ष हैं, वे सभी पवित्र हैं । जितने दूधवाले वृक्ष हैं, वे सभी यश देनेवाले हैं । दाँतुनकी लकड़ीकी लंबाई आठ अंगुलकी बतायी जाती है । अथवा बित्तामात्र उसकी लंबाई होनी चाहिये । ऐसी दाँतुनसे दाँतोंको स्वच्छ करना चाहिये । परंतु साधुशिरोमणियो ! प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी और नवमीको काठकी दाँतुन नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उक्त तिथियोंको यदि दाँतसे काठका संयोग हो जाय तो वह सात पीढ़ीतकके कुलको दग्ध कर डालता है । जिस दिन दाँतुन न मिले या जिस दिन दाँतुन करना निषिद्ध है, उस दिन बारह बार जलका कुल्ला करके मुखकी शुद्धि कर लेनेकी विधि है ॥ ४९–५१½ ॥

स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥५२॥
मन्त्रवान् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम्।
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥५३॥
युध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उदकाञ्जलिविक्षेपो गायत्र्या चाभिमन्त्रितः ॥५४॥
तान् हन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहान् रविवैरिणः ।
ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणै रक्षितो दिवि ॥५५॥
मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ।
तस्मान्न लङ्घयेत्संध्यां सायं प्रातर्द्विजः सदा ॥५६॥
उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ।
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥५७॥
दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्ट्वा विशुध्यति ।
पूर्वां संध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि ॥५८॥
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदृक्षाणि पश्यति ।
ततस्त्वावसथं प्राप्य होमं कुर्यात्स्वयं बुधः ॥५९॥
संचिन्त्य भृत्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ।
ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किंचिदाचरेत्॥६०॥
ईश्वरं चैव रक्षार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ।
कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूरात्समाहरेत् ॥६१॥
माध्याह्निकीं क्रियां कुर्याच्छुचौ देशे समाहितः।

दाँतुनके बाद स्नान करे । फिर मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके पुनः आचमन करना चाहिये । मन्त्रपाठपूर्वक अपने ऊपर भी जल छिड़के और सूर्यके लिये अर्घ्यके तौरपर जलाञ्जलि भरकर उछाले । अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके वरदानसे प्रबल हुए 'मन्देह' नामक राक्षस प्रतिदिन प्रातःकाल आकर सूर्यके साथ युद्ध करते हैं; किंतु जब गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलाञ्जलि सूर्यदेवके सामने उछाली जाती है, तब वह उन समस्त सूर्य-वैरी मन्देह नामके राक्षसोंको मार भगाती है ।* तत्पश्चात् महाभाग मरीचि आदि ब्राह्मणों और सनकादिक योगियोंद्वारा रक्षित हो, भगवान् सूर्यदेव आकाशमें आगे बढ़ते हैं । इसलिये द्विजको चाहिये कि सायं और प्रातःकालकी संध्याका कभी उल्लङ्घन न करे । जो मोहवश संध्याका उल्लङ्घन करता है, वह अवश्य ही नरकमें पड़ता है । यदि सायंकालमें मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके अपने ऊपर जल छिड़ककर फिर भगवान् सूर्यको जलाञ्जलि अर्पित की जाय और उनकी परिक्रमा करके पुनः जलका स्पर्श किया जाय तो वह द्विज शुद्ध हो जाता है । प्रातःकालकी संध्या तारोंके रहते-रहते विधिपूर्वक आरम्भ करे और जबतक तारोंका दर्शन हो, तबतक गायत्रीका जप करता रहे । तत्पश्चात् घरमें आकर विद्वान् पुरुषको स्वयं हवन करना चाहिये । फिर जो भृत्य—पालनीय कुटुम्बी जन तथा दास आदि हों, उनके भरण-पोषणके लिये विद्वान् गृहस्थ चिन्ता ( आवश्यक प्रबन्ध ) करे । उसके बाद शिष्योंके हितके लिये कुछ देरतक स्वाध्याय करे । उत्तम द्विजको चाहिये कि अपनी रक्षाके लिये ईश्वरका सहारा ले । फिर दूर जाकर पूजाके लिये कुश, फूल और हवनके लिये समिधा आदि ले आये और पवित्र स्थानमें एकाग्रचित्तसे बैठकर मध्याह्नकालिक क्रिया ( संध्योपासना आदि ) करे ॥ ५२–६१½ ॥

---

* यहाँ 'मन्देह' राक्षस आलस्यके प्रतीक हैं । जिस देशमें जब रात बीतकर प्रातःकाल होता है, वहाँके लोगोंको उसी समय आलस्य दबाये रहता है । 'सूर्य आत्मा जगतः' के अनुसार सूर्य सबके आत्मा हैं, अतः किसी भी प्राणीपर आलस्यका आक्रमण सूर्यपर मन्देहका आक्रमण है । स्नान और सूर्यार्घ्यसे इस मन्देह या आलस्यका निवारण सबके प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है ।

विधिं स्नानस्य वक्ष्यामि समासात्पापनाशनम् ॥६२॥
स्नात्वा येन विधानेन सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ।
सुधीः स्नानार्थमादाय शुक्लां कुशतिलैः सह ॥६३॥
सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं शुद्धां मनोरमाम् ।
नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादल्पवारिषु ॥६४॥
शुचौ देशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्कुशमृत्तिकाम् ।
मृत्तोयेन स्वकं देहमभिप्रक्षाल्य यत्नतः ॥६५॥
स्नानाच्छरीरं संशोध्य कुर्यादाचमनं बुधः ।
शुभे जले प्रविश्याथ नमेद्वरुणमप्पतिम् ॥६६॥
हरिमेव स्मरंश्चित्ते निमज्जेच्च बहूदके ।
ततः स्नानं समासाद्य अप आचम्य मन्त्रतः ॥६७॥
प्रोक्षयेद्वरुणं देवं तैर्मन्त्रैः पावमानिभिः ।
कुशाग्रस्थेन तोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥६८॥
आलभेन्मृत्तिकां गात्रे इदं विष्णुरिति त्रिधा ।
ततो नारायणं देवं संस्मरन् प्रविशेज्जलम् ॥६९॥
निमज्ज्यान्तर्जले सम्यक्त्रिः पठेदघमर्षणम् ।
स्नात्वा कुशतिलैस्तद्वद्देवर्षीन् पितृभिः सह ॥७०॥
तर्पयित्वा जलात्तस्मान्निष्क्रम्य च समाहितः ।
जलतीरं समासाद्य धौते शुक्ले च वाससी ॥७१॥
परिधायोत्तरीयं च न कुर्यात्केशधूननम् ।
न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं तत्प्रशस्यते ॥७२॥
मलाक्तं तु दशाहीनं वर्जयेदम्बरं बुधः ।

अब हम थोड़ेमें स्नानकी विधि बतला रहे हैं, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है। उस विधिसे स्नान करके मनुष्य तत्काल पापोंसे मुक्त हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि स्नानके लिये कुश और तिलोंके साथ शुद्ध मिट्टी ले ले तथा प्रसन्नचित्त होकर शुद्ध और मनोहर नदीके तटपर जाय। नदीके होते हुए छोटे जलाशयोंमें स्नान न करे। वहाँ पवित्र स्थानपर उसे छिड़ककर कुश और मृत्तिका आदि रख दे। फिर विद्वान् पुरुष मिट्टी और जलसे अपने शरीरको यत्नपूर्वक लिप्त करके, शुद्ध स्नानके द्वारा उसे धोकर, पुनः आचमन करे। तदनन्तर स्वच्छ जलमें प्रवेश करके जलेश वरुणको नमस्कार करे। फिर मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए जहाँ कुछ अधिक जल हो, वहाँ डुबकी लगाये। इसके बाद स्नान समाप्तकर, मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके, वरुण-सम्बन्धी पवमान-मन्त्रोंद्वारा वरुणदेवका अभिषेक करे। फिर कुशके अग्र-भागपर स्थित जलसे अपना यत्नपूर्वक मार्जन करे और 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मन्त्रका पाठ करते हुए अपने शरीरके तीन भागोंमें क्रमशः मृत्तिकाका लेप करे। तत्पश्चात् भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए जलमें प्रवेश करे। जलके भीतर भली प्रकार डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण पाठ करे। इस प्रकार स्नान करके कुश और तिलोंद्वारा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। इसके बाद समाहितचित्त हो, जलसे बाहर निकल, तटपर आकर धुले हुए दो श्वेत वस्त्रोंको धारण करे। इस प्रकार धोती और उत्तरीय धारणकर अपने केशोंको न फटकारे। अत्यधिक लाल और नील वस्त्र धारण करना भी उत्तम नहीं माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिस वस्त्रमें मल या दाग लगा हो, अथवा जिसमें किनारी न हो, उसका भी त्याग करे ॥ ६२–७२½ ॥

ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ॥७३॥
त्रिः पिबेद्वीक्षितं तोयमास्यं द्विः परिमार्जयेत् ।
पादौ शिरसि चाभ्युक्षेत्त्रिराचम्य तु संस्पृशेत् ॥७४॥
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या नासिकां समुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां नाभौ हृदि तलेन च ॥७५॥
शिरश्चाङ्गुलिभिः सर्वैर्बाहुं चैव ततः स्पृशेत् ।
अनेन विधिनाऽऽचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ॥७६॥
दर्भे तु दर्भपाणिः स्यात् प्राङ्मुखः सुसमाहितः।
प्राणायामांस्तु कुर्वीत यथाशास्त्रमतन्द्रितः ॥७७॥

इसके पश्चात् विज्ञ पुरुष मिट्टी और जलसे अपने चरणोंको धोये। फिर खूब देख-भालकर शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करे। दो बार जल लेकर मुँह धोये। पैर और सिरपर जल छिड़के। फिर तीन बार आचमन करके क्रमशः अङ्गोंका स्पर्श करे। अँगूठे और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्श करे। अङ्गुष्ठ और कनिष्ठिकासे नाभिका स्पर्श करे। हृदयका करतलसे स्पर्श करे। तदनन्तर समस्त अँगुलियोंसे पहले सिरका, फिर बाहुओंका स्पर्श करे। इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण शुद्धहृदय हो, हाथमें कुश ले, पूर्वकी ओर मुख करके एकाग्रतापूर्वक कुशासनपर बैठ जाय और आलस्यको त्यागकर शास्त्रोक्त विधिसे तीन बार प्राणायाम करे ॥७३–७७॥

जपयज्ञं ततः कुर्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ।
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ॥७८॥
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम् ॥७९॥
यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः ।
शब्दमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥८०॥
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत् ।
किंचिन्मन्त्रं स्वयं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥८१॥
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनं ध्यानं तदुक्तं मानसं जपः ॥८२॥
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ना विपुलान् भोगान्दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम्८३
यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सूर्यादिदूषणाः ।
जापिनं नोपसर्पन्ति दूरादेवापयान्ति ते ॥८४॥

तत्पश्चात् वेदमाता गायत्रीका जप करते हुए जप-यज्ञ करे । जपयज्ञ तीन प्रकारका होता है; उसका भेद बताते हैं, आपलोग सुनें । वाचिक, उपांशु और मानस—तीन प्रकारका जप कहा गया है । इन तीनों जप-यज्ञोंमें उत्तरोत्तर जप श्रेष्ठ है, अर्थात् वाचिक जपकी अपेक्षा उपांशु और उसकी अपेक्षा मानस जप श्रेष्ठ है । अब इनके लक्षण बताते हैं । जप करनेवाला पुरुष आवश्यकतानुसार ऊँचे, नीचे और समान स्वरोंमें बोले जानेवाले स्पष्ट शब्दयुक्त अक्षरोंद्वारा जो वाणीसे सुस्पष्ट शब्दोच्चारण करता है, वह 'वाचिक जप' कहलाता है । इसी प्रकार जो तनिक-सा ओठोंको हिलाकर धीरे-धीरे मन्त्रका उच्चारण करता है और मन्त्रको स्वयं ही कुछ-कुछ सुनता या समझता है, उसका वह जप 'उपांशु' कहलाता है । बुद्धिके द्वारा मन्त्राक्षरसमूहके प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद और शब्दार्थका जो चिन्तन एवं ध्यान किया जाता है, वह 'मानस जप' कहा गया है । जपके द्वारा प्रतिदिन जिसका स्तवन किया जाता है, वह देवता प्रसन्न होता है और प्रसन्न होनेपर वह विपुल भोग तथा नित्य मोक्ष-सुखको भी देता है । यक्ष-राक्षस-पिशाच आदि और सूर्यादि देवताओंको दूषित करनेवाले अन्य ( राहु-केतु आदि ) ग्रह भी जप करनेवाले पुरुषके निकट नहीं जाते, दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ ७८—८४ ॥

ऋक्षादिकं परिज्ञाय जपयज्ञमतन्द्रितः ।
जपेदहरहः स्नात्वा सावित्रीं तन्मना द्विजः ॥८५॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं न स पापैर्हि लिप्यते ॥८६॥

द्विजको चाहिये कि वह आलस्यका त्याग करके प्रतिदिन तारोंको देखकर अर्थात् तारोंके रहते-रहते स्नान करके, गायत्रीके अर्थमें मन लगा गायत्री-मन्त्रका जप करे । जो द्विज अधिक-से-अधिक एक हजार, साधारणतया एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ८५-८६ ॥

अथ पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ।
उदुत्यं च जपेन्मन्त्रं चित्रं तच्चक्षुरित्यपि ॥८७॥
प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ।
स्वेन तीर्थेन देवादीनद्भिः संतर्पयेद्बुधः ॥८८॥
देवान्देवगणांश्चैव ऋषीनृषिगणांस्तथा ।
पितॄन् पितृगणांश्चैव नित्यं संतर्पयेद्बुधः ॥८९॥
स्नानवस्त्रं ततः पीड्य पुनराचमनं चरेत् ।
दर्भेषु दर्भपाणिः स्याद्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥९०॥
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याद्बुद्धिसमन्वितः ।
ततोऽर्घं भानवे दद्यात्तिलपुष्पजलान्वितम् ॥९१॥
उत्थाय मूर्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा ।
जले देवं नमस्कृत्य ततो गृहगतः पुनः ॥९२॥
विधिना पुरुषसूक्तेन तत्र विष्णुं समर्चयेत् ।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्म यथाविधि ॥९३॥

इसके बाद सूर्यदेवको पुष्पाञ्जलि अर्पित करके अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर 'ॐ उदुत्यं जातवेदसम्...' तथा 'ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्...' इन मन्त्रोंका जप करे । फिर प्रदक्षिणा करके सूर्यदेवको प्रणाम करें । तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष प्रतिदिन देवतीर्थसे ( उँगलियोंद्वारा ) देवताओंका तर्पण करे । विज्ञ पुरुषको देवताओं और उनके गणोंका, ऋषियों और उनके गणोंका तथा पितरों और पितृगणोंका प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये । तदनन्तर स्नानके बाद उतारे हुए वस्त्रको निचोड़कर पुनः आचमन

करे । फिर हाथमें कुश लेकर कुशासनपर बैठ जाय और ब्रह्मयज्ञकी विधिके अनुसार पूर्वाभिमुख हो बुद्धिपूर्वक ब्रह्मयज्ञ ( वेदका स्वाध्याय ) करे । तदनन्तर खड़ा होकर तिल, फूल और जलसे युक्त अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकतक ऊँचे उठा 'हंसः शुचिषत्०' इस ऋचाका पाठ करते हुए सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे । फिर जलमें स्थित वरुणदेवको नमस्कार कर पुनः घरपर आ जाय और वहाँ पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुका विधिवत् पूजन करे । तदनन्तर विधिपूर्वक बलिवैश्वदेव कर्म करे ॥ ८७—९३ ॥

**गोदोहमात्रमतिथिं प्रतिवीक्षेत वै गृही ।**
**अदृष्टपूर्वमतिथिमागतं प्राक् समर्चयेत् ॥९४॥**
**आगत्य च पुनर्द्वारं प्रत्युत्थानेन साधुना ।**
**स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनाम् ॥९५॥**
**आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ।**
**पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति तस्य च ॥९६॥**
**अन्नाद्येन च दत्तेन तृप्यतीह प्रजापतिः ।**
**तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥९७॥**

इसके बाद जितनी देरमें गौ दुही जाती है, उतनी देरतक द्वारपर अतिथिके आनेकी प्रतीक्षा करे । यदि कई अतिथि आ जायँ तो उनमेंसे जिसे पहले कभी न देखा हो, उसका सम्मान सबसे पहले करना चाहिये । द्वारपर आकर अतिथिकी खड़े होकर भलीभाँति अगवानी करनेसे गृहस्थके ऊपर दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय—तीनों अग्नि प्रसन्न होते हैं; आसन देनेसे देवराज इन्द्रकी प्रसन्नता होती है, अतिथिके पैर धोनेसे उस गृहस्थके पितृगण तृप्त होते हैं, अन्न आदि भोज्य पदार्थ अर्पण करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं । इसलिये गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह अतिथिका पूजन करे ॥ ९४—९७ ॥

**भक्त्या च भक्तिमान्नित्यं विष्णुमभ्यर्च्य चिन्तयेत् ।**
**भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्परिव्राड्ब्रह्मचारिणे ॥९८॥**
**आकल्पितान्नादुद्धृत्य सर्वव्यञ्जनसंयुतम् ।**
**दद्याच्च मनसा नित्यं भिक्षां भिक्षोः प्रयत्नतः ॥९९॥**
**अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते ।**
**अवश्यमेव दातव्यं स्वर्गसोपानकारकम् ॥१००॥**
**उद्धृत्य वैश्वदेवान्नं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ।**
**वैश्वदेवाकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥१०१॥**
**सुवासिनीः कुमारीश्च भोजयित्वाऽऽतुरानपि ।**
**बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वै गृही ॥१०२॥**

इसके पश्चात् भक्तिमान् पुरुष प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करके उनका चिन्तन करे । फिर संन्यासी, विरक्त एवं ब्रह्मचारीको भिक्षा दे । सब प्रकारसे तैयार किये हुए अन्नमेंसे समस्त व्यञ्जनोंसे युक्त कुछ अन्न निकालकर प्रतिदिन यत्नपूर्वक भिक्षु (संन्यासी)को देना चाहिये । बलिवैश्वदेव करनेके पहले भी यदि भिक्षु भिक्षाके लिये आ जाय तो उसे अवश्य भिक्षा देनी चाहिये; क्योंकि यह दान स्वर्गमें जानेके लिये सीढ़ीका काम देता है । विश्वेदेवसम्बन्धी अन्नमेंसे लेकर भिक्षुको भिक्षा देकर उसे विदा करे । वैश्वदेव कर्म न करनेके दोषको वह भिक्षु दूर कर सकता है । फिर सुवासिनी ( सुहागिन ) और कुमारी कन्याओं तथा रोगी व्यक्तियोंको और बालकों एवं वृद्धोंको पहले भोजन कराके उनसे बचे हुए अन्नको गृहस्थ पुरुष स्वयं भोजन करे ॥ ९८—१०२ ॥

**प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ।**
**अन्नं पूर्वं नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१०३॥**
**पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यात्स मन्त्रेण पृथक् पृथक् ।**
**ततः स्वादुकरं चान्नं भुञ्जीत सुसमाहितः ॥१०४॥**
**आचम्य देवतामिष्टां संस्मरेदुदरं स्पृशन् ।**
**इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥१०५॥**
**ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ।**
**कृतहोमश्च भुञ्जीत रात्रावतिथिमर्चयेत् ॥१०६॥**
**सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।**
**नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥१०७॥**

भोजन करते समय पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन रहे अथवा कम बोले । भोजनसे पहले प्रसन्नचित्तसे अन्नको नमस्कार करके पृथक्-पृथक् पाँच प्राणवायुओंके नाम-मन्त्रसे अर्थात् 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐव्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, 'ॐ समानाय स्वाहा'—इस प्रकार उच्चारण करते हुए पाँच बार प्राणाग्निहोत्र करे । इसके

बाद एकाग्रचित्त होकर उस स्वादिष्ट अन्नको स्वयं भोजन करे । भोजनके बाद मुँह-हाथ धो, आचमन ( कुल्ला ) करके, अपने उदरका स्पर्श करते हुए इष्टदेवका स्मरण करे । फिर विद्वान् पुरुष इतिहास-पुराणोंके अध्ययनमें कुछ समय व्यतीत करे । तदनन्तर सायंकाल आनेपर बाहर ( नदी या जलाशयके तटपर ) जाकर विधिपूर्वक संध्योपासन करे । पुनः रात्रिकालमें हवन करके अतिथि-सत्कारके पश्चात् भोजन करे । द्विजातियोंके लिये प्रातः और सायं—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है; इनके बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये । जैसे अग्निहोत्र प्रातः और सायंकालमें किया जाता है, वैसे ही दो ही समय भोजनकी भी विधि है ॥ १०३—१०७ ॥

शिष्यानध्यापयेत्तद्वदनध्यायं विवर्जयेत् ।
स्मृत्युक्तान् सकलान् पूर्वपुराणोक्तानपि द्विजः ॥१०८॥
महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि ।
तथाक्षय्यतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्बुधः ॥१०९॥
माघमासे तु सप्तम्यां रथ्यामध्ययनं त्यजेत् ।
अध्यापनमथाभ्यज्य स्नानकाले विवर्जयेत् ॥११०॥

इसके अतिरिक्त विद्वान् द्विजको चाहिये कि वह प्रतिदिन शिष्योंको पढ़ाये, परंतु अध्ययनके लिये वर्जित समयका त्याग करे । स्मृतियोंमें बताये हुए तथा पहलेके पुराणोंमें वर्णित सम्पूर्ण अनध्याय-कालका त्याग करे । महानवमी ( आश्विन शुक्ला नवमी ) और द्वादशी तिथि, भरणी नक्षत्र और अक्षयतृतीयामें विद्वान् पुरुष शिष्योंको न पढ़ावे । माघ मासकी सप्तमीको अध्ययन न करे, सड़कपर चलते समय और उबटन लगाकर स्नान करते समय भी अध्ययनका त्याग करे ॥ १०८—११० ॥

दानं च विधिना देयं गृहस्थेन हितैषिणा ।
हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं विशेषतः ॥१११॥
एतानि यः प्रयच्छेत श्रोत्रियेभ्यो द्विजोत्तमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥११२॥
मङ्गलाचारयुक्तश्च शुचिः श्रद्धापरो गृही ।
श्राद्धं च श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥११३॥
जातावुत्कर्षमायाति नरसिंहप्रसादतः ।
स तस्मान्मुक्तिमाप्नोति ब्रह्मणा सह सत्तमाः ॥११४॥
एवं हि विप्राः कथितो मया वः
समासतः शाश्वतधर्मराशिः ।
सम्यग्गृहस्थस्य सतो हि धर्मं
कुर्वन् प्रयत्नाद्धरिमेति मुक्तः ॥११५॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे गृहस्थधर्मो नामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥५८॥*

अपना हित चाहनेवाले गृहस्थको चाहिये कि विधिपूर्वक दान करे । विशेषतः सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान करे । जो द्विजश्रेष्ठ सुवर्ण आदि पूर्वोक्त वस्तुएँ श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दानमें देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है । जो गृहस्थ शुभाचरणोंसे युक्त, पवित्र और श्रद्धालु रहकर श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है । वह भगवान् नरसिंहकी कृपासे जातिमें उत्कर्ष प्राप्त करता है और सत्तमो ! ब्रह्माजीके साथ ही वह मुक्त हो जाता है । विप्रगण ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यह सनातन धर्मसमूहका संक्षेपसे वर्णन किया । जो पुरुष गृहस्थके उक्त धर्मोंका भलीभाँति प्रयत्नपूर्वक पालन करता है, वह मुक्त होकर भगवान् श्रीहरिको प्राप्त करता है ॥ १११—११५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'गृहस्थधर्म' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

* * *

## उनसठवाँ अध्याय

### वानप्रस्थ-धर्म

हारीत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य लक्षणम् ।
धर्ममुख्यं महाभागाः कथ्यमानं निबोधत ॥ १ ॥

श्रीहारीत मुनि बोले—महाभागगण ! इसके बाद मैं वानप्रस्थका लक्षण और श्रेष्ठ धर्म बताऊँगा; आपलोग मेरे द्वारा बताये जानेवाले उस धर्मको सुनें ॥ १ ॥

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वा पलितमात्मनः ।
स्वभार्यां तनये स्थाप्य स्वशिष्यैः प्रविशेद्वनम् ॥ २ ॥
जटाकलापचीराणि नखगात्ररुहाणि वा ।
धारयञ्जुहुयादग्नौ वैतानविधिना स्थितः ॥ ३ ॥
भूतपर्णैर्मृत्सम्भूतैर्नीवाराद्यैरतन्द्रितः ।
कंदमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यक्रियां बुधः ॥ ४ ॥
त्रिकालं स्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपः सदा ।
पक्षे गते वा अश्नीयान्मासान्ते वा पराककृत् ॥ ५ ॥
चतुःकालेऽपि चाश्नीयात्कालेऽप्युत तथाष्टमे ।
षष्ठाह्नकाले ह्यथवा अथवा वायुभक्षकः ॥ ६ ॥

गृहस्थ पुरुष जब यह देख ले कि मेरे पुत्र-पौत्र हो गये हैं तथा बाल भी पक गये हैं, तब वह अपनी भार्याको पुत्रोंकी देख-रेखमें सौंपकर स्वयं अपने शिष्योंके साथ वनमें प्रवेश करे। जटा, चीर (वल्कल) वस्त्र, नख, लोम आदि धारण किये हुए ही यथोक्त विधिसे अग्निमें हवन करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पत्तोंवाले साग आदिसे या धरतीसे स्वयं उत्पन्न हुए नीवार आदिसे अथवा कंद-मूल-फल आदिसे प्रतिदिन आहारक्रियाका निर्वाह करे। प्रातः, मध्याह्न और सायं— तीनों कालोंमें स्नान करके सदा कठोर तपस्या करे। 'पराक' आदि व्रतोंका पालन करता हुआ वानप्रस्थ पुरुष एक पक्ष या एक मासके बाद भोजन करे अथवा दिन-रातके चौथे या आठवें भागमें एक बार भोजन करे। अथवा छठे दिन कुछ भोजन करे या वायु पीकर ही रहे ॥ २—६ ॥

घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो धारावर्षासु वै नयेत् ।
हैमन्तिके जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७ ॥
एवं स्वकर्मभोगेन कृत्वा शुद्धिमथात्मनः ।
अग्निं चात्मनि वै कृत्वा व्रजेद्वाथोत्तरां दिशम् ॥ ८ ॥
आदेहपाताद्वनगो मौनमास्थाय तापसः ।
स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥
तपो हि यः सेवति काननस्थो
वसेन्महत्सत्त्वसमाधियुक्तः ।
विमुक्तपापो हि मनःप्रशान्तः
प्रयाति विष्णोः सदनं द्विजेन्द्रः ॥ १० ॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे वानप्रस्थधर्मो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥*

ग्रीष्म-कालमें पञ्चाग्निके मध्य बैठे, वर्षाकालमें धारावृष्टि होनेपर बाहर आकाशके ही नीचे समय व्यतीत करे और हेमन्त ऋतुमें तप करते हुए वह जलमें खड़ा रहकर समय बिताये। इस प्रकार कर्मभोगद्वारा आत्मशुद्धि करके, अग्निको भावनाद्वारा अन्तःकरणमें स्थापितकर उत्तर दिशाको चला जाय। वह तपस्वी देहपात होनेतक वनमें मौन रहकर इन्द्रियातीत ब्रह्मका स्मरण करता हुआ देहत्यागकर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जो द्विजश्रेष्ठ वनवासी (वानप्रस्थ) होकर महान् सत्त्वगुण और समाधिसे युक्त हो तपका अनुष्ठान करता है, वह पाप-रहित और प्रशान्तचित्त होकर विष्णुधामको प्राप्त होता है ॥ ७—१० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वानप्रस्थधर्म' नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

# साठवाँ अध्याय

## यतिधर्म

हारीत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतिधर्ममनुत्तमम् ।
श्रद्धया यदनुष्ठाय यतिर्मुच्येत बन्धनात् ॥ १ ॥
एवं वनाश्रमे तिष्ठंस्तपसा दग्धकिल्बिषः ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यस्य विधिना द्विजः ॥ २ ॥
दिव्यं ऋषिभ्यो देवेभ्यः स्वपितृभ्यश्च यत्नतः ।
दत्त्वा श्राद्धमृषिभ्यश्च मनुजेभ्यस्तथाऽऽत्मने ॥ ३ ॥
इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राजापत्यमथापि वा ।
अग्निं स्वात्मनि संस्थाप्य मन्त्रवत्प्रव्रजेत् पुनः ॥ ४ ॥
ततः प्रभृति पुत्रादौ सुखलोभादि वर्जयेत् ।
दद्याच्च भूमावुदकं सर्वभूताभयंकरम् ॥ ५ ॥
त्रिदण्डं वैणवं सौम्यं सत्वचं समपर्वकम् ।

वेष्टितं कृष्णगोवालरज्ज्वा च चतुरङ्गुलम् ॥ ६ ॥
ग्रन्थिभिर्वा त्रिभिर्युक्तं जलपूतं च धारयेत् ।
गृह्णीयाद्दक्षिणे हस्ते मन्त्रेणैव तु मन्त्रवित् ॥ ७ ॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—इसके बाद अब मैं संन्यासियोंका सर्वोत्तम धर्म बताऊँगा, जिसका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करके संन्यासी भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। द्विजको चाहिये कि पूर्वोक्त रीतिसे वानप्रस्थ आश्रममें रहते हुए तपस्याद्वारा पापोंको भस्म करके, विधिपूर्वक संन्यास ले चौथे आश्रममें प्रवेश करे। पहले यत्नपूर्वक देवताओं, ऋषियों और अपने पितरोंके लिये दिव्य श्राद्ध-सामग्रीका दान करे; इसी प्रकार ऋषियों, मनुष्यों तथा अपने लिये भी श्राद्धीय वस्तुका दान करे। फिर वैश्वानर अथवा प्राजापत्य याग करके, मन्त्र-पाठपूर्वक अपने अन्तःकरणमें अग्निस्थापन करके, संन्यासी हो, वहाँसे चला जाय। उस दिनसे पुत्र आदिके प्रति आसक्तिको और सुख-लोभ आदिको त्याग दे। पृथ्वीपर समस्त प्राणियोंको अभय देनेके निमित्त जलकी अञ्जलि दे। वेणु ( बाँस ) का बना हुआ त्रिदण्ड धारण करे, जो सुन्दर और त्वचायुक्त हो, उसके पोर बराबर हों, काली गौके बालोंकी रस्सीसे वह चार अंगुलतक लपेटा गया हो। अथवा वह दण्ड तीन गाँठोंसे युक्त हो, उसे जलसे पवित्र करके धारण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह मन्त्रपाठ-पूर्वक ही उस दण्डको दायें हाथमें ग्रहण करे ॥ १–७ ॥

कौपीनाच्छादनं वासः कुथां शीतनिवारिणीम् ।
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ ८ ॥
एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि धर्मतः ।
संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्नात्वा ह्याचम्य विधिवज्जलयुक्तांशुकेन वै ।
वारिणा तर्पयित्वा तु मन्त्रवद्भास्करं नमेत् ॥ १० ॥
आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ।
गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥ ११ ॥
स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ।
सायाह्नकाले विप्राणां गृहाणि विचरेद्यतिः ॥ १२ ॥

कौपीन ( लँगोटी ), चादर, जाड़ा दूर करनेवाली एक गुदड़ी तथा खड़ाऊँ—इन्हीं वस्तुओंको अपने पास रक्खे, अन्य वस्तुओंका संग्रह न करे। संन्यासीके ये ही चिह्न बताये गये हैं। इन वस्तुओंका धर्मतः संग्रह करके संन्यासी पुरुष उत्तम तीर्थमें जा, स्नान करके विधिवत् आचमन करे। स्नानके बाद भीगे वस्त्रके जलसे सूर्यदेवका मन्त्रपाठपूर्वक तर्पण करके उन्हें प्रणाम करे। फिर पूर्वाभिमुख बैठकर, मौन हो, तीन प्राणायाम—पूरक, कुम्भक और रेचक करे तथा यथाशक्ति गायत्रीका जप करके परब्रह्मका ध्यान करे। शरीरकी स्थिति ( रक्षा ) के लिये प्रतिदिन भिक्षाटन करे। यतिको चाहिये कि संध्याके समय ब्राह्मणोंके घरोंपर भिक्षाके लिये भ्रमण करे ॥ ८–१२ ॥

स्यादर्थी यावतान्नेन तावद्भैक्षं समाचरेत् ।
ततो निवृत्त्य तत्पात्रमभ्युक्ष्याचम्य संयमी ॥ १३ ॥
सूर्यादिदैवतेभ्यो हि दत्त्वान्नं प्रोक्ष्य वारिणा ।
भुञ्जीत पर्णपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥ १४ ॥
वटकाश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः ।
कोविदारकरञ्जेषु न भुञ्जीत कदाचन ॥ १५ ॥
भुक्त्वाऽऽचम्य निरुद्धासुरुपतिष्ठेत भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैस्तु दिनशेषं नयेद्यतिः ॥ १६ ॥
पलाशाः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ।
कांस्यस्यैव तु यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्यभोजी यतिः सर्वं प्राप्नुयात्किल्बिषं पुनः ।
भुक्तपात्रे यतिर्नित्यं भक्षयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
न दुष्येत्तस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ।
कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायन्नारायणं हरिम् ।
तत्पदं समवाप्नोति यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ १७ ॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे यतिधर्मो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥*

जितने अन्नकी उसे उस समय आवश्यकता हो, उतनी ही भिक्षा माँगे। फिर लौटकर उस भिक्षापात्रपर जलके छींटे देकर संयमी यति स्वयं भी आचमन करे। इसके बाद उस अन्नपर भी जलके छींटे देकर, उसे सूर्य आदि देवताओंको निवेदन कर, पत्तेके दोने या पत्तलमें रखकर, वह संन्यासी पुरुष मौनभावसे भोजन करे। वट, पीपल, जलकुम्भी और तिन्दुकके पत्तोंपर तथा कोविदार और करंजके पत्तोंपर भी कभी भोजन न करे। भोजन समाप्त करके मुँह-हाथ धो, आचमन करके, प्राणवायुको रोक, सूर्यदेवको प्रणाम करे। नैत्यिक नियमोंके बाद जितना

दिन शेष रहे, उसे संन्यासी पुरुष जप, ध्यान और इतिहास-पाठ आदिके द्वारा व्यतीत करे। काँसेके पात्रमें भोजन करनेवाले सभी यति 'पलाश' कहलाते हैं। यदि संन्यासी काँसेका पात्र रखे तो वह गृहस्थके ही समान है; क्योंकि गृहस्थका भी तो वैसा ही पात्र होता है। काँसेके पात्रमें भोजन करनेवाला यति समस्त पापोंका भागी होता है। यति जिस काष्ठ या मिट्टी आदिके पात्रमें एक बार भोजन कर चुका है, उसे धोकर पुनः उसमें [illegible] भोजन कर सकता है। उसका वह पात्र यज्ञ-पात्रोंके समान कभी दूषित नहीं होता। इसके बाद यथासमय संध्याकालिक नियमोंका पालन करके देवमन्दिर आदिमें रात्रि व्यतीत करे और अपने हृदय-कमलके आसनपर भगवान् नारायणका ध्यान करे। यों करनेसे वह यति उस परमपदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर पुनः लौटना नहीं पड़ता ॥ १३–१७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'यतिधर्मका वर्णन' नामक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

# इकसठवाँ अध्याय

## योगसार

हारीत उवाच

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम् ।
यतः स्वर्गापवर्गौ तु प्राप्नुयुस्ते द्विजादयः ॥ १ ॥
योगशास्त्रस्य वक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम् ।
यस्याभ्यासबलाद्यान्ति मोक्षं चेह मुमुक्षवः ॥ २ ॥

**श्रीहारीत मुनि** कहते हैं—मुनियो! मैंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके धर्मका स्वरूप बतलाया, जिसके पालनसे उपर्युक्त ब्राह्मणादि वर्णके लोग स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। अब मैं संक्षेपमें योगशास्त्रका उत्तम सारांश वर्णन करूँगा, जिसके अभ्याससे मुमुक्षु पुरुष इसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

योगाभ्यासरतस्येह नश्येयुः पातकानि च ।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियान्तरे ॥ ३ ॥
प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।
धारणाभिर्वशीकृत्य पुनर्दुर्धर्षणं मनः ॥ ४ ॥
एकं कारणमानन्दबोधं च तमनामयम् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५ ॥
आत्मानमरविन्दस्थं तप्तचामीकरप्रभम् ।
रहस्येकान्तमासीत ध्यायेदात्महृदि स्थितम् ॥ ६ ॥
यः सर्वप्राणचित्तज्ञो यः सर्वेषां हृदि स्थितः ।
यश्च सर्वजनैर्ज्ञेयः सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ॥ ७ ॥
आत्मलाभसुखं यावत्तावद्ध्यानमुदाहृतम् ।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तत्तदूर्ध्वं समाचरेत् ॥ ८ ॥

योगाभ्यासपरायण पुरुषके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः कर्तव्य कर्मोंसे अवकाश मिलनेपर प्रतिदिन योगनिष्ठ होकर ध्यान करना चाहिये। पहले प्राणायामके द्वारा वाणीको, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको और धारणाके द्वारा दुर्धर्ष मनको वशमें करे। तत्पश्चात् जो सबके एकमात्र कारण, ज्ञानानन्दस्वरूप, अनामय और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तत्त्व हैं, उन जगदाधार अच्युतका ध्यान करे। एकान्त स्थानमें अकेले बैठकर अपने हृदयमें कमलके आसनपर विराजमान, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् अपने आत्मस्वरूप भगवान्का चिन्तन करे। जो सबके प्राणों और चित्तकी चेष्टाओंको जानता है, सभीके हृदयमें विराजमान है तथा समस्त प्राणियोंद्वारा जाननेयोग्य है—वह परमात्मा मैं ही हूँ, ऐसी भावना करे। जबतक आत्मसाक्षात्कारजन्य सुखकी प्रतीति हो, तभीतक ध्यान करना आवश्यक बताया गया है। उसके उपरान्त श्रौत और स्मार्त कर्मोंका आचरण सुचारुरूपसे करे ॥ ३–८ ॥

यथाश्वा रथहीनाश्च रथाश्चाश्वैर्विना यथा ।
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विनः ॥ ९ ॥
यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन संयुतम् ।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्ते भेषजं महत् ॥ १० ॥
द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः ।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ११ ॥

विद्यातपोभ्यां सम्पन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ।
देहद्वन्द्वं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ॥१२॥
न देवयानमार्गेण यावत्प्राप्तं परं पदम् ।
न तावद्देहलिङ्गस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१३॥
मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥१४॥

जैसे रथके बिना घोड़े और घोड़ोंके बिना रथ उपयोगी नहीं हो सकते, उसी प्रकार तपस्वीके तप और विद्याकी सिद्धि भी एक-दूसरेके आश्रित हैं । जिस प्रकार अन्न मधु ( चीनी आदि ) से युक्त होनेपर मीठा होता है और मधु भी अन्नके साथ ही सुस्वादु प्रतीत होता है, उसी प्रकार तप और विद्या—दोनों साथ रहकर ही भवरोगके महान् औषध होते हैं । जिस प्रकार पक्षी दोनों पंखोंसे ही उड़ सकते हैं, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म—दोनोंसे ही सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति हो सकती है । विद्या और तपसे सम्पन्न योगतत्पर ब्राह्मण दैहिक द्वन्द्वोंको शीघ्र ही त्यागकर भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है । जबतक देवयानमार्गसे जाकर जीवको परमपदकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक लिङ्गशरीरका विनाश कभी हो नहीं सकता । द्विजवरो ! इस प्रकार वर्णों और आश्रमोंके विभागपूर्वक मैंने उन आश्रमोंके सम्पूर्ण सनातन धर्मका संक्षेपसे वर्णन कर दिया ॥ ९—१४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वैवमृषयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदितास्ते स्वमालयम् ॥१५॥
धर्मशास्त्रमिदं यस्तु हारीतमुखनिस्सृतम् ।
श्रुत्वा च कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१६॥
मुखजस्य तु यत्कर्म कर्म यद्बाहुजस्य तु ।
ऊरुजस्य तु यत्कर्म पादजस्य तथा नृप ॥१७॥
स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वाणा विप्राद्या यान्ति सद्गतिम् ।
अन्यथा वर्तमानो हि सद्यः पतति यात्यधः ॥१८॥
यस्य येऽभिहिता धर्माः स तु तैस्तैः प्रतिष्ठितः ।
तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत नित्यमेवमनापदि ॥१९॥
चतुर्वर्णाश्च राजेन्द्र चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥२०॥
स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रतुष्यति ।
वर्णधर्मानुसारेण नरसिंहं तथार्चयेत् ॥२१॥

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगाद्
ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ।
सत्यात्मकं चित्सुखरूपमाद्यं
विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥२२॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे योगाध्यायो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥*

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—इस प्रकार हारीत मुनिके मुखसे स्वर्ग और मोक्षरूप फलको देनेवाले धर्मका वर्णन सुनकर वे ऋषिगण उन मुनीश्वरको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये । जो भी हारीत मुनिके मुखसे निर्गत इस धर्मशास्त्रका श्रवण करके इसके अनुसार आचरण करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है । नरेश्वर ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके जो-जो कर्म बताये गये हैं, उन-उन अपने-अपने वर्णोचित कर्मोंका पालन करनेवाले ब्राह्मण आदि सद्गतिको प्राप्त होते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेवाला पुरुष तत्काल नीचे गिर जाता है । जिसके लिये जो धर्म बताये गये हैं, वह पुरुष उन्हीं धर्मोंसे प्रतिष्ठित होता है । इसलिये आपत्तिकालके अतिरिक्त सदा ही अपने धर्मका पालन करना चाहिये । राजेन्द्र ! चार ही वर्ण और चार ही आश्रम हैं । जो लोग अपने वर्ण एवं आश्रमके उचित धर्मका पूर्णतया पालन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं । भगवान् नरसिंह जिस प्रकार स्वधर्मका आचरण करनेसे मनुष्यपर प्रसन्न होते हैं, वैसे दूसरे प्रकारसे नहीं; इसलिये वर्णधर्मके अनुसार भगवान् नरसिंहका पूजन करना चाहिये । जो पुरुष स्वकर्ममें तत्पर रहकर उत्पन्न हुए वैराग्यके बलसे योगाभ्यासपूर्वक सदा सच्चिदानन्दस्वरूप अनादि ब्रह्मका ध्यान करता है, वह देह त्यागकर साक्षात् श्रीविष्णुपदको प्राप्त होता है ॥ १५—२२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'योगाध्याय' नामक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

# बासठवाँ अध्याय

## श्रीविष्णुपूजनके वैदिक मन्त्र और स्थान

श्रीमार्कण्डेय उवाच

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं लक्षणं तव ।
भूयः कथय राजेन्द्र शुश्रूषा तव का नृप ॥ १ ॥

**श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं**—राजन् ! मैंने तुम्हें वर्णों और आश्रमोंका स्वरूप बताया । राजेन्द्र ! अब कहो, तुम्हारे मनमें क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥

सहस्रानीक उवाच

स्नात्वा वेश्मनि देवेशमर्चयेदच्युतं त्विति ।
त्वयोक्तं मम विप्रेन्द्र तत्कथं पूजनं भवेत् ॥ २ ॥
यैर्मन्त्रैरर्च्यते विष्णुर्येषु स्थानेषु वै मुने ।
तानि स्थानानि तान्मन्त्रांस्त्वमाचक्ष्व महामुने ॥ ३ ॥

**सहस्रानीक बोले**—विप्रेन्द्र ! आपने बताया कि प्रतिदिन स्नान करके अपने घरमें भगवान् अच्युतका पूजन करना चाहिये । अतः वह पूजन किस प्रकार होना चाहिये ? महामुने ! जिन मन्त्रोंद्वारा और जिन आधारोंमें भगवान् विष्णुकी पूजा होती है, वे आधार और वे मन्त्र आप मुझे बताइये ॥ २-३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अर्चनं सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः ।
यत्कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥ ४ ॥
अग्नौ क्रियावतां देवो हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥ ५ ॥
अतोऽग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ।
एतेषु च हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ॥ ६ ॥
तस्य सर्वमयत्वाच्च स्थण्डिले प्रतिमासु च ।

**श्रीमार्कण्डेयजीने कहा**—अच्छा, मैं अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके पूजनकी विधि बता रहा हूँ, जिसके अनुसार पूजन करके सभी मुनिगण परम निर्वाण ( मोक्ष ) पदको प्राप्त हुए हैं । अग्निमें हवन करनेवालेके लिये भगवान्का वास अग्निमें है । ज्ञानियों और योगियोंके लिये अपने-अपने हृदयमें ही भगवान्की स्थिति है तथा जो थोड़ी बुद्धिवाले हैं, उनके लिये प्रतिमामें भगवान्का निवास है । इसलिये अग्नि, सूर्य, हृदय, स्थण्डिल ( वेदी ) और प्रतिमा—इन सभी आधारोंमें भगवान्का विधिपूर्वक पूजन मुनियोंद्वारा बताया गया है । भगवान् सर्वमय हैं, अतः स्थण्डिल और प्रतिमाओंमें भी भगवत्पूजन उत्तम है ॥ ४-६½ ॥

आनुष्टुभस्य सूक्तस्य विष्णुस्तस्य च देवता ॥ ७ ॥
पुरुषो यो जगद्बीजं ऋषिर्नारायणः स्मृतः ।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च ॥ ८ ॥
अर्चितं स्याज्जगत्सर्वं तेन वै सचराचरम् ।
आद्ययाऽऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥
द्वितीययाऽऽसनं दद्यात्पाद्यं दद्यात्तृतीयया ।
चतुर्थ्यार्घ्यः प्रदातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनीयकम् ॥ १० ॥
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रमेव च ।
यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ॥ ११ ॥
दशम्या पुष्पदानं स्यादेकादश्या च धूपकम् ।
द्वादश्या च तथा दीपं त्रयोदश्यार्चनं तथा ॥ १२ ॥
चतुर्दश्या स्तुतिं कृत्वा पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ।
षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेषकर्माणि पूर्ववत् ॥ १३ ॥
स्नानं वस्त्रं च नैवेद्यं दद्यादाचमनीयकम् ।
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति देवदेवं समर्चयन् ॥ १४ ॥
संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति ।

अब पूजनका मन्त्र बताते हैं । शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायीमें जो पुरुषसूक्त है, उसका उच्चारण करते हुए भगवान्का पूजन करना चाहिये । पुरुषसूक्तका अनुष्टुप् छन्द है, जगत्के कारणभूत परम पुरुष भगवान् विष्णु देवता हैं, नारायण ऋषि हैं और भगवत्पूजनमें उसका विनियोग है । जो पुरुषसूक्तसे भगवान्को फूल और जल अर्पण करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् पूजित हो जाता है । पुरुषसूक्तकी पहली ऋचासे भगवान् पुरुषोत्तमका आवाहन करना चाहिये । दूसरी ऋचासे आसन और तीसरीसे पाद्य अर्पण करे । चौथी ऋचासे अर्घ्य और पाँचवींसे आचमनीय निवेदित करे । छठी ऋचासे स्नान कराये और सातवींसे वस्त्र अर्पण करे । आठवींसे यज्ञोपवीत और नवमी ऋचासे गन्ध निवेदन करे ।

दसवींसे फूल चढ़ाये और ग्यारहवीं ऋचासे धूप दे। बारहवींसे दीप और तेरहवीं ऋचासे नैवेद्य, फल, दक्षिणा आदि अन्य पूजन-सामग्री निवेदित करे। चौदहवीं ऋचासे स्तुति करके पंद्रहवींसे प्रदक्षिणा करे। अन्तमें सोलहवीं ऋचासे विसर्जन करे। पूजनके बाद शेष कर्म पहले बताये अनुसार ही पूर्ण करे। भगवान्के लिये स्नान, वस्त्र, नैवेद्य और आचमनीय आदि निवेदन करे। इस प्रकार देवदेव परमात्माका पूजन करनेवाला पुरुष छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इसी क्रमसे यदि एक वर्षतक पूजन करे तो वह भक्त सायुज्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है ॥ ७–१४½ ॥

**हविषाग्नौ जले पुष्पैर्ध्यानेन हृदये हरिम् ॥१५॥**
**अर्चन्ति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले।**
**आदित्यमण्डले दिव्यं देवदेवमनामयम्।**
**शङ्खचक्रगदापाणिं ध्यात्वा विष्णुमुपासते ॥१६॥**
**ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती**
**नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।**
**केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी**
**हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥१७॥**
**एतत्पठन् केवलमेव सूक्तं**
**दिने दिने भावितविष्णुबुद्धिः।**
**स सर्वपापं प्रविहाय वैष्णवं**
**पदं प्रयात्यच्युततुष्टिकृन्नरः ॥१८॥**
**पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये-**
**ष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु।**
**भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे**
**मुक्त्यै किमर्थं क्रियते न यत्नः ॥१९॥**

विद्वान् पुरुष अग्निमें आहुतिके द्वारा, जलमें पुष्पके द्वारा, हृदयमें ध्यानद्वारा और सूर्यमण्डलमें जपके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। वे भक्तजन सूर्यमण्डलमें दिव्य, अनामय, देवदेव शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी उपासना करते हैं। जो केयूर, मकराकृति कुण्डल, किरीट, हार आदि आभूषणोंसे भूषित हो, हाथमें शङ्ख-चक्र धारण किये कमलासनपर विराजमान हैं तथा जिनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान देदीप्यमान है, सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान उन भगवान् नारायणका सदा ध्यान करे। जो प्रतिदिन बुद्धिमें भगवान् विष्णुकी भावना करके केवल इस 'ध्येयः सदा०' इत्यादि सूक्तका पाठ-मात्र ही कर लेता है, वह भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुधामको पहुँच जाता है। बिना मूल्यके ही मिलनेवाले पूजनोपचार—पत्र, पुष्प, फल और जलके सदा रहते हुए तथा एकमात्र भक्तिसे ही सुलभ होनेवाले भगवान् पुराण-पुरुषके होते हुए मनुष्यद्वारा मुक्तिके लिये प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता? अर्थात् उक्त सुलभ उपचारोंसे भगवान्का पूजन करके लोग मोक्ष पानेके लिये यत्न क्यों नहीं करते? ॥ १५–१९ ॥

**इत्येवमुक्तः पुरुषस्य विष्णो-**
**रर्चाविधिस्तेऽद्य मया नृपेन्द्र।**
**अनेन नित्यं कुरु विष्णुपूजां**
**प्राप्तुं तदिष्टं यदि वैष्णवं पदम् ॥२०॥**

*इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोरर्चाविधिर्नाम*
*द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥*

नृपवर! इस प्रकार यह परमपुरुष भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि आज मैंने तुम्हें बतायी है। यदि तुम्हें वैष्णव-पद प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो इस विधिके द्वारा सदा भगवान् विष्णुकी पूजा करो ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि' नामक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

* * *

## तिरसठवाँ अध्याय

### अष्टाक्षर मन्त्रके प्रभावसे इन्द्रका स्त्रीयोनिसे उद्धार

सहस्रानीक उवाच

**सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् वैदिकः परमो विधिः।**
**विष्णोर्देवातिदेवस्य पूजनं प्रति मेऽधुना ॥ १ ॥**
**अनेन विधिना ब्रह्मन् पूज्यते मधुसूदनः।**
**वैदिकैरेव नान्यैस्तु तस्मात्सर्वहितं वद ॥ २ ॥**

सहस्रानीक बोले—ब्रह्मन्! इस समय आपने

देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके पूजनकी यह उत्तम वैदिक विधि बतायी, वह बिल्कुल ठीक है; परंतु भगवन् ! इस विधिसे तो केवल वेदज्ञ पुरुष ही मधुसूदनकी पूजा कर सकते हैं, दूसरे लोग नहीं; इसलिये आप ऐसी कोई विधि बताइये, जो सबके लिये उपयोगी हो ॥ १-२ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्चयेदच्युतं नरः ॥ ३ ॥
राजन्नष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः ।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः ॥ ४ ॥
ॐ नमो नारायणाय ।
गन्धपुष्पादिसकलमनेनैव निवेदयेत् ।
अनेनाभ्यर्चितो देवः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥ ५ ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ।
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ६ ॥
इमं मन्त्रं जपेद्यस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥

**श्रीमार्कण्डेयजी बोले**—मनुष्यको चाहिये कि वह अष्टाक्षर मन्त्रसे निरामय देवेश्वर भगवान् नरसिंहका गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंद्वारा प्रतिदिन पूजन करे । राजन् ! यह अष्टाक्षर मन्त्र समस्त पापोंको हर लेनेवाला, समस्त यज्ञोंका फल देनेवाला, सब प्रकारकी शान्ति प्रदान करनेवाला एवं परम शुभ है । मन्त्र यों है—'ॐ नमो नारायणाय ।' इसी मन्त्रसे गन्ध आदि समस्त सामग्रियोंको अर्पित करे । इस मन्त्रसे पूजा करनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं । मनुष्यके लिये अन्य बहुत-से मन्त्रों और व्रतोंकी क्या आवश्यकता है । केवल 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मन्त्र ही समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है । जो स्नानादिसे पवित्र होकर एकाग्रचित्तसे इस मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है ॥ ३-७ ॥

सर्वतीर्थफलं ह्येतत् सर्वतीर्थवरं नृप ।
हरेरर्चनमव्यग्रं सर्वयज्ञफलं नृप ॥ ८ ॥
तस्मात्कुरु नृपश्रेष्ठ प्रतिमादिषु चार्चनम् ।
दानानि विप्रमुख्येभ्यः प्रयच्छ विधिना नृप ।
एवं कृते नृपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः ।
प्राप्नोति वैष्णवं तेजो यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥ ९ ॥
पुरा पुरंदरो राजन् स्त्रीत्वं प्राप्तोऽपधर्मतः ।
तृणबिन्दुमुनेः शापान्मुक्तो ह्यष्टाक्षराज्जपात् ॥१०॥

नरेश्वर ! शान्तभावसे भगवान् विष्णुका पूजन करना ही सब तीर्थों और यज्ञोंका फल है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंसे बढ़कर पवित्र है । अतः नरेश्वर ! तुम प्रतिमा आदिमें विधिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करो और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दो । नृपश्रेष्ठ ! यों करनेसे भक्त पुरुष उस तेजोमय वैष्णवधामको प्राप्त होते हैं, जिसकी मुमुक्षुलोग सदा अभिलाषा किया करते हैं । राजन् ! पूर्वकालमें इन्द्र धर्मके विपरीत आचरण करके तृणबिन्दुमुनिके शापसे स्त्री-योनिको प्राप्त हो गये थे; परंतु इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करनेसे वे पुनः उस योनिसे मुक्त हो गये ॥ ८-१० ॥

सहस्रानीक उवाच

एतत्कथय भूदेव देवेन्द्रस्याघमोचनम् ।
कोऽपधर्मः कथं स्त्रीत्वं प्राप्तो मे वद कारणम् ॥११॥

**सहस्रानीक बोले**—भूमिदेव ! देवराज इन्द्रको जो पाप एवं शापसे छुटकारा मिला, उस प्रसङ्गका वर्णन कीजिये । उन्होंने कौन-सा अधर्म किया था, और किस कारण स्त्री-योनिको प्राप्त हुए—यह सब भी बताइये ॥ ११ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

राजेन्द्र महदाख्यानं शृणु कौतूहलान्वितम् ।
विष्णुभक्तिप्रजननं शृण्वतां पठतामिदम् ॥१२॥

**श्रीमार्कण्डेयजीने कहा**—राजेन्द्र ! सुनो, यह उपाख्यान बहुत बड़ा तथा कौतूहलसे भरा हुआ है । जो लोग इसे सुनते और पढ़ते हैं, उनके हृदयमें यह आख्यान विष्णु-भक्ति उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

पुरा पुरंदरस्यैव देवराज्यं प्रकुर्वतः ।
वैराग्यस्यापि जननं सम्भूतं बाह्यवस्तुषु ॥१३॥
इन्द्रस्तदाभूद्विषमस्वभावो
राज्येषु भोगेष्वपि सोऽप्यचिन्तयत् ।
ध्रुवं विरागीकृतमानसानां
स्वर्गस्य राज्यं न च किंचिदेव ॥१४॥
राज्यस्य सारं विषयेषु भोगो
भोगस्य शान्ते न च किंचिदस्ति ।

विमृश्य चैतन्मुनयोऽप्यजस्रं
मोक्षाधिकारं परिचिन्तयन्ति ॥१५॥
सदैव भोगाय तपःप्रवृत्ति-
र्भोगावसाने हि तपो विनष्टम् ।
मैत्र्यादिसंयोगपराङ्मुखानां
विमुक्तिभाजां न तपो न भोगः ॥१६॥
विमृश्य चैतत् स सुराधिनाथो
विमानमारुह्य सकिङ्किणीकम् ।
नूनं हराराधनकारणेन
कैलासमभ्येति विमुक्तिकामः ॥१७॥

पूर्वकालकी बात है, एक समय देवलोकका राज्य भोगते हुए इन्द्रके लिये उनका वह राज्य ही बाह्य वस्तुओंमें वैराग्यका कारण बन गया। उस समय इन्द्रका स्वभाव राज्य-कार्यों और भोगोंके प्रति विषम ( वैराग्यपूर्ण ) हो गया। वे सोचने लगे—'यह निश्चित है कि विरक्त हृदयवाले पुरुषोंकी दृष्टिमें स्वर्गका राज्य कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। राज्यका सार है—विषयोंका भोग तथा भोगके अन्तमें कुछ भी नहीं रह जाता। यही सोचकर मुनिगण सदा ही मोक्षाधिकारके विषयमें ही विचार करते हैं। लोगोंकी सदा भोगके लिये ही तपमें प्रवृत्ति हुआ करती है और भोगके अन्तमें तप नष्ट हो जाता है। परंतु जो लोग मैत्री आदिके द्वारा विषय-सम्पर्कसे विमुख हो गये हैं, उन मोक्षभागी पुरुषोंको न तपकी आवश्यकता होती है न योगकी।' इन सब बातोंका विचार करके देवराज इन्द्र क्षुद्रघण्टिकाओंकी ध्वनिसे युक्त विमानपर आरूढ़ हो भगवान् शंकरकी आराधनाके लिये कैलासपर्वतपर चले आये। उस समय उनके मनमें एकमात्र मोक्षकी कामना रह गयी थी ॥ १५-१७ ॥

स एकदा मानसमागतः सन्
संवीक्ष्य तां यक्षपतेश्च कान्ताम् ।
समर्चयन्तीं गिरिजाङ्घ्रियुग्मं
ध्वजामिवानङ्गमहारथस्य ॥१८॥
प्रधानजाम्बूनदशुद्धवर्णां
कर्णान्तसंलग्नमनोज्ञनेत्राम् ।
सूक्ष्मवस्त्रान्तरदृश्यगात्रां
नीहारमध्यादिव चन्द्रलेखाम् ॥१९॥
तां वीक्ष्य वीक्षणसहस्रभरेण कामं
कामाङ्गमोहितमतिर्न ययौ तदानीम् ।
दूराध्वगं स्वगृहमेत्य सुसंचितार्थ-
स्तस्थौ तदा सुरपतिर्विषयाभिलाषी ॥२०॥
पूर्वं वरं स्यात् सुकुलेऽपि जन्म
ततो हि सर्वाङ्गशरीररूपम् ।
ततो धनं दुर्लभमेव पश्चा-
द्धनाधिपत्यं सुकृतेन लभ्यम् ॥२१॥
स्वर्गाधिपत्यं च मया प्रलब्धं
तथापि भोगाय न चास्ति भाग्यम् ।
यः स्वं परित्यज्य विमुक्तिकाम-
स्तिष्ठामि मे दुर्मतिरस्ति चित्ते ॥२२॥
मोक्षोऽमुना यद्यपि मोहनीयो
मोक्षेऽपि किं कारणमस्ति राज्ये ।
क्षेत्रं सुपक्वं परिहृत्य द्वारे
किं नाम चारण्यकृषिं करोति ॥२३॥
संसारदुःखोपहता नरा ये
कर्तुं समर्था न च किंचिदेव ।
अकर्मिणो भाग्यविवर्जिताश्च
वाञ्छन्ति ते मोक्षपथं विमूढाः ॥२४॥

कैलासपर रहते समय इन्द्र एक दिन घूमते हुए मानससरोवरके तटपर आये। वहाँ उन्होंने पार्वतीजीके युगल-चरणारविन्दोंका पूजन करती हुई यक्षराज कुबेरकी प्राणवल्लभा चित्रसेनाको देखा, जो कामदेवके महान् रथकी ध्वजा-सी जान पड़ती थी। उत्तम 'जाम्बूनद' नामक सुवर्णके समान उसके अङ्गोंकी दिव्य कान्ति थी। आँखें बड़ी-बड़ी और मनोहर थीं, जो कानके पासतक पहुँच गयी थीं। महीन साड़ीके भीतरसे उसके मनोहर अङ्ग इस प्रकार झलक रहे थे, मानो कुहासेके भीतरसे चन्द्रलेखा दृष्टिगोचर हो रही हो। अपने हजार नेत्रोंसे उस देवीको इच्छानुसार निहारते ही इन्द्रका हृदय कामसे मोहित हो गया। उस समय वे दूरके रास्तेपर स्थित अपने आश्रमपर नहीं गये और सम्पूर्ण मनोरथोंको मनमें लिये देवराज इन्द्र विषयाभिलाषी हो लौट गये। वे सोचने लगे—'पहले तो उत्तम कुलमें जन्म पा जाना ही बहुत बड़ी

बात है, उसके बाद सर्वाङ्ग-सौन्दर्य और उसपर भी धन तो सर्वथा ही दुर्लभ है। इन सबके बाद धनाधिप ( कुबेर ) होना तो पुण्यसे ही सम्भव है। मैंने इन सबसे बड़े स्वर्गके आधिपत्यको प्राप्त किया है, फिर भी मेरे भाग्यमें भोग भोगना नहीं बदा है। मेरे चित्तमें ऐसी दुर्बुद्धि आ गयी है कि मैं स्वर्गका सुखभोग छोड़कर यहाँ मुक्तिकी इच्छासे आ पड़ा हूँ। मोक्ष-सुख तो इस राज्य-भोगद्वारा मोल लिया जा सकता है, परंतु क्या मोक्ष भी राज्य-प्राप्तिका कारण हो सकता है? भला, अपने द्वारपर पके अन्नसे युक्त खेतको छोड़कर कोई जंगलमें खेती करने क्यों जायगा? जो सांसारिक दुःखसे मारे-मारे फिरते हैं और कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखते, वे ही अकर्मण्य, भाग्यहीन एवं मूढजन मोक्षमार्गकी इच्छा करते हैं' ॥ १८—२४ ॥

एतद्विमृश्य बहुधा मतिमान् प्रवीरो
रूपेण मोहितमना धनदाङ्गनायाः ।
सर्वाधिराकुलमतिः परिमुक्तधैर्यः
ससार मारममराधिपचक्रवर्ती ॥२५॥
समागतोऽसौ परिमन्दमन्दं
कामोऽतिकामाकुलचित्तवृत्तिः ।
पुरा महेशेन कृताङ्गनाशो
धैर्याल्लयं गच्छति को विशङ्कः ॥२६॥
आदिश्यतां नाथ यदस्ति कार्यं
को नाम ते सम्प्रति शत्रुभूतः ।
शीघ्रं समादेशय मा विलम्बं
तस्यापदं सम्प्रति भो दिशामि ॥२७॥

इन सब बातोंपर बारंबार विचार करके देवेश्वरोंके चक्रवर्ती सम्राट् बुद्धिमान् वीरवर इन्द्र कुबेर-पत्नी चित्रसेनाके रूपपर मोहित हो गये। समस्त मानसिक वेदनाओंसे व्याकुल हो, धैर्य खोकर वे कामदेवका स्मरण करने लगे। इन्द्रके स्मरण करनेपर अत्यन्त कामनाओंसे व्याप्त चित्तवृत्तिवाला कामदेव बहुत धीरे-धीरे डरता हुआ वहाँ आया; क्योंकि वहीं पूर्वकालमें शंकरजीने उसके शरीरको जलाकर भस्म कर दिया था। क्यों न हो, प्राणसंकटके स्थानपर धीरतापूर्वक और निर्भय होकर कौन जा सकता है? कामदेवने आकर कहा—'नाथ! मुझसे जो कार्य लेना हो, आज्ञा कीजिये; बताइये तो सही, इस समय कौन आपका शत्रु बना हुआ है? शीघ्र बताइये, विलम्ब न कीजिये; मैं अभी उसे आपत्तिमें डालता हूँ' ॥ २५—२७ ॥

श्रुत्वा तदा तस्य वचोऽभिरामं
मनोगतं तत्परमं तुतोष ।
निष्पन्नमर्थं सहसैव मत्वा
जगाद वाक्यं स विहस्य वीरः ॥२८॥
रुद्रोऽपि येनार्धशरीरमात्र-
श्चक्रेऽप्यनङ्गत्वमुपागतेन ।
सोढुं समर्थोऽथ परोऽपि लोके
को नाम ते मार शराभिघातम् ॥२९॥
एकाग्रचित्ता गिरिजार्चनेऽपि
या मोहयत्येव ममात्र चित्तम् ।
एतामनङ्गायतलोचनाख्यां
मदङ्गसङ्गैकरसां विधेहि ॥३०॥

उस समय कामदेवके उस मनोभिराम वचनको सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करके इन्द्र बहुत संतुष्ट हुए। अपने मनोरथको सहसा सिद्ध होते जान वीरवर इन्द्रने हँसकर कहा—'कामदेव! अनङ्ग बन जानेपर भी तुमने जब शंकरजीको भी आधे शरीरका बना दिया, तब संसारमें दूसरा कौन तुम्हारे उस शराघातको सह सकता है? अनङ्ग! जो गिरिजा-पूजनमें एकाग्रचित्त होनेपर भी मेरे मनको निश्चय ही मोहे लेती है, उस विशाल नयनोंवाली सुन्दरीको तुम एकमात्र मेरे अङ्ग-सङ्गकी सरस भावनासे युक्त कर दो' ॥ २८—३० ॥

स एवमुक्तः सुरवल्लभेन
स्वकार्यभावाधिकगौरवेण ।
संधाय बाणं कुसुमायुधोऽपि
ससार मारः परिमोहनं सुधीः ॥३१॥
सम्मोहिता पुष्पशरेण बाला
कामेन कामं मदविह्वलाङ्गी ।
विहाय पूजां हसते सुरेशं
कः कामकोदण्डरवं सहेत ॥३२॥

अपने कार्यको अधिक महत्त्व देनेवाले सुरराज इन्द्रके यों कहनेपर उत्तम बुद्धिवाले कामदेवने भी अपने पुष्पमय धनुषपर बाण रखकर मोहन-मन्त्रका स्मरण किया। तब

कामदेवद्वारा पुष्पबाणसे मोहित की हुई वह बाला अपने सम्पूर्ण अङ्गमें मदके उद्रेकसे विह्वल हो गयी और पूजा छोड़ इन्द्रकी ओर देखकर मुस्काने लगी। भला, कामदेवके धनुषकी टंकार कौन सह सकता है ॥ ३१-३२ ॥

विलोलनेत्रे अयि कासि बाले
सुराधिपो वाक्यमिदं जगाद।
सम्मोहयन्तीव मनांसि पुंसां
कस्येह कान्ता वद पुण्यभाजः ॥३३॥
उक्तापि बाला मदविह्वलाङ्गी
रोमाञ्चसंस्वेदसकम्पगात्रा।
कृताकुला कामशिलीमुखेन
सगद्गदं वाक्यमुवाच मन्दम् ॥३४॥
कान्ता धनेशस्य च यक्षकन्या
प्राप्ता च गौरीचरणार्चनाय।
प्रब्रूहि कार्यं च तवास्ति नाथ
कस्त्वं वदेस्तिष्ठसि कामरूपः ॥३५॥

इन्द्र उसको अपनी ओर निहारते देखकर यह वचन बोले—'चञ्चल नेत्रोंवाली बाले! तुम कौन हो, जो पुरुषोंके मनको इस प्रकार मोहे लेती हो? बताओ तो, तुम किस पुण्यात्माकी पत्नी हो?' इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर उसके अङ्ग मदसे विह्वल हो उठे। शरीरमें रोमाञ्च, स्वेद और कम्प होने लगे। वह कामबाणसे व्याकुल हो गद्गद कण्ठसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोली—'नाथ! मैं धनाधिप कुबेरकी पत्नी एक यक्ष-कन्या हूँ। पार्वतीजीके चरणोंकी पूजा करनेके लिये यहाँ आयी थी। आप अपना कार्य बताइये; आप कौन हैं, जो साक्षात् कामदेवके समान रूप धारण किये यहाँ खड़े हैं?' ॥ ३३—३५ ॥

इन्द्र उवाच

सा त्वं समागच्छ भजस्व मां चिरा-
न्मदङ्गसङ्गोत्सुकतां व्रजाशु।
त्वया विना जीवितमप्यनल्पं
स्वर्गस्य राज्यं मम निष्फलं स्यात् ॥३६॥

इन्द्र बोले—प्रिये! मैं स्वर्गका राजा इन्द्र हूँ। तुम मेरे पास आओ और मुझे अपनाओ तथा चिरकालतक मेरे अङ्ग-सङ्गके लिये शीघ्र ही उत्सुकता धारण करो। देखो, तुम्हारे बिना मेरा यह जीवन और स्वर्गका विशाल राज्य भी व्यर्थ हो जायगा ॥ ३६ ॥

उक्ता च सैवं मधुरं च तेन
कंदर्पसंतापितचारुदेहा।
विमानमारुह्य चलत्पताकं
सुरेशकण्ठग्रहणं चकार ॥३७॥
जगाम शीघ्रं स हि नाकनाथः
साकं तया मन्दरकन्दरासु।
अदृष्टदेवासुरसंचरासु
विचित्ररत्नाङ्कुरभासुरासु ॥३८॥
रेमे तया साकमुदारवीर्य-
श्चित्रं सुरैश्वर्यगतादरोऽपि।
स्वयं च यस्या लघुपुष्पशय्यां
चकार चातुर्यनिधिः सकामः ॥३९॥
जातः कृतार्थोऽमरवृन्दनाथः
सकामभोगेषु सदा विदग्धः।
मोक्षाधिकं स्नेहरसातिमृष्टं
पराङ्गनालिङ्गनसङ्गसौख्यम् ॥४०॥

इन्द्रने मधुर वाणीमें जब इस प्रकार कहा, तब उसका सुन्दर शरीर कामवेदनासे पीडित होने लगा और वह फहराती हुई पताकाओंसे सुशोभित विमानपर आरूढ हो देवराजके कण्ठसे लग गयी। तब स्वर्गके राजा इन्द्र शीघ्र ही उसके साथ मन्दराचलकी उन कन्दराओंमें चले गये, जहाँका मार्ग देवता और असुर—दोनोंकी ही दृष्टिमें नहीं आया था और जो विचित्र रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशित थीं। आश्चर्य है कि देवताओंके राज्यके प्रति आदर न रखते हुए भी वे उदारपराक्रमी इन्द्र उस सुन्दरी यक्ष-बालाके साथ वहाँ रमण करने लगे तथा कामके वशीभूत हो परम चतुर इन्द्रने अपने हाथों चित्रसेनाके लिये शीघ्रतापूर्वक छोटी-सी पुष्पशय्या तैयार की। कामोपभोगमें परम चतुर देवराज इन्द्र चित्रसेनाके समागमसे कृतार्थताका अनुभव करने लगे। स्नेहरससे अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाला वह परस्त्रीके आलिङ्गन और समागमका सुख उन्हें मोक्षसे भी बढ़कर जान पड़ा ॥ ३७—४० ॥

अथागता यक्षपतेः समीपं
नार्योऽनुवर्ज्यैव च चित्रसेनाम् ।
ससम्भ्रमाः सम्भ्रमखिन्नगात्राः
सगद्गदं प्रोचुरसाहसज्ञाः ॥४१॥
नूनं समाकर्णय यक्षनाथ
विमानमारोप्य जगाम कश्चित् ।
संवीक्षमाणः ककुभोऽपि कान्तां
विगृह्य वेगादिह सोऽपि तस्करः ॥४२॥

इधर, इन्द्र जब चित्रसेनाको लेकर मन्दराचलपर चले आये, तब उसकी सङ्गिनी स्त्रियाँ उसे साथ लिये बिना ही यक्षराज कुबेरके समीप वेगपूर्वक आयीं । वे दुस्साहससे अनभिज्ञ थीं, अतः घबराहटके कारण उनके सारे शरीरमें व्यथा हो रही थी । वे गद्गद कण्ठसे बोलीं—'यक्षपते ! निश्चय ही आप हमारी यह बात सुनें—आपकी भार्या चित्रसेनाको किसी अज्ञात पुरुषने पकड़कर विमानपर बिठा लिया और चारों ओर सशङ्कदृष्टिसे देखता हुआ वह चोर बड़े वेगसे कहीं चला गया है' ॥ ४१-४२ ॥

वचो निशम्याथ धनाधिनाथो
विषोपमं जातमषीनिभाननः ।
जगाद भूयो न च किंचिदेव
बभूव वै वृक्ष इवाग्निदग्धः ॥४३॥
विज्ञापितार्थो वरकन्यकाभि-
र्यैश्चित्रसेनासहचारिणीभिः
मोहापनोदाय मतिं दधानः
स कण्ठकुब्जोऽपि समाजगाम ॥४४॥
श्रुत्वाऽऽगतं वीक्ष्य स राजराज
उन्मीलिताक्षो वचनं जगाद ।
विनिःश्वसन् गाढसकम्पगात्रः
स्वस्थं मनोऽप्याशु विधाय दीनः ॥४५॥

विषके समान दुस्सह प्रतीत होनेवाली इस बातको सुननेसे धनाधिप कुबेरका मुँह काला पड़ गया । वे अग्निसे जले हुए वृक्षके समान हो गये । उस समय उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली । इसी समय चित्रसेनाकी सहचरी श्रेष्ठ यक्ष-कन्याओंसे यह समाचार जानकर कुबेरका मन्त्री कण्ठकुब्ज भी अपने स्वामीका मोह दूर करनेके विचारसे वहाँ आया । उसका आगमन सुन राजराज कुबेरने आँखें खोलकर उसकी ओर देखा और लंबी साँस खींचते हुए अपने चित्तको यथासम्भव शीघ्र सँभालकर वे दीनभावसे बोले । उस समय उनका शरीर अत्यन्त कम्पित हो रहा था ॥ ४३—४५ ॥

तद्यौवनं यद्युवतीविनोदो
धनं तु नैतत्स्वजनोपयोगि ।
तज्जीवितं यत्क्रियते सुधर्म-
स्तदाधिपत्यं यदि नष्टविग्रहम् ॥४६॥
धिङ्मे धनं जीवितमत्यनल्पं
राज्यं बृहत्सम्प्रति गुह्यकानाम् ।
विशामि चाग्निं न च वेद कश्चित्
पराभवोऽस्तीति च को मृतानाम् ॥४७॥
पार्श्वे स्थितस्यापि च जीवतो मे
गता तडागं गिरिजार्चनाय ।
हृता च केनापि वयं न विद्मो
ध्रुवं न तस्यास्ति भयं च मृत्योः ॥४८॥

वे कहने लगे—'वही यौवन सफल है, जिससे युवतीका मनोरञ्जन हो सके; धन भी वही सार्थक है, जो आत्मीय जनोंके उपयोगमें आ सके । जीवन वह सफल है, जिससे सत्कर्म किया जाय और प्रभुत्व वही सार्थक है, जिसमें युद्ध और कलहके मूल नष्ट हो गये हों । इस समय मेरे इस विपुल धनको, गुह्यकोंके इस विशाल राज्यको और मेरे इस जीवनको भी धिक्कार है ! अभीतक मेरे इस अपमानको कोई नहीं जानता; अतः इसी समय अग्निमें जल मरूँगा । पीछे यदि इस समाचारको लोग जान भी लें तो क्या ! मृतपुरुषोंका क्या अपमान होगा ! हा ! वह मानससरोवरके तटपर गिरिजा-पूजनके लिये गयी थी । यहाँ निकट ही था और जीवित भी रहा; तो भी किसीने उसे हर लिया । हम नहीं जानते वह कौन है । मैं समझता हूँ, अवश्य ही उस दुष्टको मृत्युका भय नहीं है' ॥ ४६—४८ ॥

जगाद वाक्यं स च कण्ठकुब्जो
मोहापनोदाय विभोः स मन्त्री ।
आकर्ण्यतां नाथ न चास्ति योग्यः
कान्तावियोगे निजदेहघातः ॥४९॥

एका पुरा रामवधूर्हृता च
निशाचरेणापि मृतो न सोऽपि ।
अनेकशः सन्ति तवात्र नार्यः
को नाम चित्ते क्रियते विषादः ॥५०॥
विमुच्य शोकं कुरु विक्रमे मतिं
धैर्यं समालम्बय यक्षराज ।
भृशं न जल्पन्ति रुदन्ति साधवः
पराभवं बाह्यकृतं सहन्ते ॥५१॥
कृतं हि कार्यं गुरु दर्शयन्ति
सहायवान् वित्तप कातरोऽसि किम् ।
सहायकार्यं कुरुते हि सम्प्रति
स्वयं हि यस्यावरजो विभीषणः ॥५२॥

स्वामीकी यह बात सुनकर उनका मोह दूर करनेके लिये कुबेरके उस मन्त्री कण्ठकुब्जने यह वचन कहा—'नाथ ! सुनिये, स्त्रीके वियोगमें शरीर-त्याग करना आपके लिये उचित नहीं है । पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी एकमात्र पत्नी सीताको भी निशाचर रावणने हर लिया था, परंतु श्रीरामचन्द्रजीने प्राण नहीं त्यागा । आपके यहाँ तो अनेक स्त्रियाँ हैं, फिर आप मनमें यह कैसा विषाद ला रहे हैं ? यक्षराज ! शोक त्यागकर पराक्रममें मन लगाइये; धैर्य धारण कीजिये । साधु पुरुष बहुत बातें नहीं बनाते और न बैठकर रोते ही हैं; वे दूसरोंके द्वारा परोक्षमें किये हुए अपने अपमानको उस समय चुपचाप सह लेते हैं । वित्तपते ! महापुरुष समय आनेपर महान् कार्य कर दिखाते हैं । आपके तो अनेक सहायक हैं, आप क्यों कातर हो रहे हैं ! इस समय तो आपके छोटे भाई विभीषण स्वयं ही आपकी सहायता कर रहे हैं ॥ ४९—५२ ॥

धनद उवाच

विभीषणो मे प्रतिपक्षभूतो
दायादभावं न विमुञ्चतीति ।
ध्रुवं प्रसन्ना न भवन्ति दुर्जनाः
कृतोपकारा हरिवज्रनिष्ठुराः ॥५३॥
न चोपकारैर्न गुणैर्न सौहृदैः
प्रसादमायाति मनो हि गोत्रिणः ।

**कुबेर बोले**—विभीषण तो मेरे विपक्षी ही बने हुए हैं, वे अब भी मेरे साथ कौटुम्बिक विरोधका त्याग नहीं करते । यह निश्चित बात है कि दुर्जन पुरुष उपकार करनेपर भी प्रसन्न नहीं होते, वे इन्द्रके वज्रके सदृश कठोर होते हैं । सगोत्रका मन उपकारोंसे, गुणोंसे अथवा मैत्रीसे भी प्रायः प्रसन्न नहीं होता ॥ ५३½ ॥

उवाच वाक्यं स च कण्ठकुब्जो
युक्तं त्वयोक्तं च धनाधिनाथ ॥५४॥
परस्परं घ्नन्ति च ते विरुद्धा-
स्तथापि लोके न पराभवोऽस्ति ।
पराभवं नान्यकृतं सहन्ते
नोष्णं जलं ज्वालयते तृणानि ॥५५॥
तस्मात्समागच्छ धनाधिनाथ
पार्श्वं च वेगेन विभीषणस्य ।
स्वबाहुवीर्यार्जितवित्तभोगिनां
स्वबन्धुवर्गेषु हि को विरोधः ॥५६॥

यह सुनकर कण्ठकुब्जने कहा—"धनाधिनाथ ! आपने ठीक कहा है । विरोध होनेपर सगोत्र पुरुष अवश्य ही परस्पर घात-प्रतिघात करते हैं, तथापि लोकमें उनका पराभव नहीं देखा जाता; क्योंकि कुटुम्बीजन दूसरेके द्वारा किये हुए अपने बन्धुजनके अपमानको नहीं सह सकते । जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे तप्त हुआ जल अपने भीतरके तृणोंको नहीं जलाता, उसी प्रकार दूसरोंसे अपमानित कुटुम्बी जन अपने पार्श्ववर्ती बन्धुओंको नहीं सताते । इसलिये धनाधिप ! आप बहुत शीघ्र विभीषणके पास चलिये । जो लोग अपने बाहुबलसे उपार्जित धनका उपभोग करते हैं, उन्हें भाई-बन्धुओंके साथ क्या विरोध हो सकता है" ॥ ५४—५६ ॥

इत्युक्तः स तदा तेन कण्ठकुब्जेन मन्त्रिणा ।
विभीषणस्य सामीप्यं जगामाशु विचारयन् ॥५७॥
ततो लङ्काधिपः श्रुत्वा बान्धवं पूर्वजं तदा ।
प्राप्तं प्रत्याजगामाशु विनयेन समन्वितः ॥५८॥
ततो विभीषणो दृष्ट्वा तदा दीनं च बान्धवम् ।
संतप्तमानसो भूप जगादेदं वचो महत् ॥५९॥

अपने मन्त्री कण्ठकुब्जके इस प्रकार कहनेपर कुबेर मन-ही-मन उसपर विचार करते हुए शीघ्र ही विभीषणके पास गये। लङ्कापति विभीषणने जब अपने ज्येष्ठ भ्राताका आगमन सुना, तब उन्होंने बड़ी विनयके साथ उनकी अगवानी की। राजन्! फिर विभीषणने अपने भाईको जब दीनदशामें देखा, तब उन्होंने मन-ही-मन दुखी होकर उनसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही ॥ ५७-५९ ॥

विभीषण उवाच

**कथं दीनोऽसि यक्षेश किं कष्टं तव चेतसि।**
**निवेदयाधुनास्माकं निश्चयान्मार्जयामि तत् ॥६०॥**
**तदैकान्तं समासाद्य कथयामास वेदनाम्।**

विभीषण बोले—'यक्षराज! आप दीन क्यों हो रहे हैं? आपके मनमें क्या कष्ट है? इस समय आप उस कष्टको मुझे बताइये। मैं निश्चय ही उसका मार्जन करूँगा' तब कुबेरने एकान्तमें जाकर विभीषणसे अपनी मनोवेदना बतलायी ॥ ६०½ ॥

धनद उवाच

**गृहीता किं स्वयं याता निहता केनचिद्द्विषा ॥६१॥**
**भ्रातः कान्तां न पश्यामि चित्रसेनां मनोरमाम्।**
**एतद्बन्धो महत्कष्टं मम नारीसमुद्भवम् ॥६२॥**
**प्राणान् वै घातयिष्यामि अनासाद्य च वल्लभाम्।**

कुबेर बोले—भाई! कुछ दिनोंसे मैं अपनी मनोरमा भार्या चित्रसेनाको नहीं देख रहा हूँ। न जाने उसे किसीने पकड़ लिया या वह स्वयं किसीके साथ चली गयी अथवा किसी शत्रुने उसे मार डाला। बन्धो! मुझे अपनी स्त्रीके वियोगका महान् कष्ट हो रहा है। यदि वह प्राणवल्लभा न मिली तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा ॥ ६१-६२½ ॥

विभीषण उवाच

**आनयिष्यामि ते कान्तां यत्र तत्र स्थितां विभो ॥६३॥**
**कः समर्थोऽधुनास्माकं हर्तुं नाथ तृणस्य च।**
**ततो विभीषणस्तत्र नाडीजङ्घां निशाचरीम् ॥६४॥**
**भृशं संजल्पयामास नानामायागरीयसीम्।**
**धनदस्य च या कान्ता चित्रसेनाभिधानतः ॥६५॥**
**सा च केन हृता लोके मानसे सरसि स्थिता।**
**तां च जानीहि संवीक्ष्य देवराजादिवेश्मसु ॥६६॥**

**विभीषण बोले**—'प्रभो! आपकी भार्या जहाँ-कहीं भी होगी, मैं उसे ला दूँगा। नाथ! इस समय संसारमें किसकी सामर्थ्य है, जो हमारा तृण भी चुरा सके।' यह कहकर विभीषणने नाना प्रकारकी मायाके ज्ञानमें बढ़ी-चढ़ी 'नाडीजङ्घा' नामकी निशाचरीसे बहुत कुछ कहा और बताया—"कुबेरकी जो 'चित्रसेना' नामकी पत्नी है, वह एक दिन जब मानससरोवरके तटपर थी, तभी वहाँसे किसीने उसे हर लिया। तुम इन्द्र आदि लोकपालोंके भवनोंमें देखकर उसका पता लगाओ" ॥ ६३-६६ ॥

**ततो निशाचरी भूप कृत्वा मायामयं वपुः।**
**जगाम त्रिदिवं शीघ्रं देवराजादिवेश्मसु ॥६७॥**
**यया दृष्ट्या क्षणं दृष्टो मोहं यास्यति चोपलः।**
**यस्याः समं ध्रुवं रूपं विद्यते न चराचरे ॥६८॥**
**एतस्मिन्नेव काले च देवराजोऽपि भूपते।**
**सम्प्राप्तो मन्दराच्छीघ्रं प्रेरितश्चित्रसेनया ॥६९॥**
**ग्रहीतुं दिव्यपुष्पाणि नन्दनप्रभवाणि च।**
**तत्र पश्यन् स तां तन्वीं निजस्थाने समागताम् ॥७०॥**
**अतीवरूपसम्पन्नां गीतगानपरायणाम्।**
**तां वीक्ष्य देवराजोऽपि स कामवशगोऽभवत् ॥७१॥**
**ततः सम्प्रेरयामास देववैद्यौ सुराधिपः।**
**तस्याः पार्श्वे समानेतुं ध्रुवं चान्तःपुरे तदा ॥७२॥**
**देववैद्यौ तदाऽऽगत्य जल्पतश्चाग्रतः स्थितौ।**
**आगच्छ भव तन्वङ्गि देवराजसमीपगा ॥७३॥**
**इत्युक्ता सा तदा ताभ्यां जगाद मधुराक्षरम्।**

भूप! तब वह निशाचरी मायामय शरीर धारणकर इन्द्रादि देवताओंके भवनोंमें खोज करनेके लिये शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गयी। उस निशाचरीने ऐसा सुन्दर रूप बनाया था, जिसकी एक ही दृष्टि पड़नेसे पत्थर भी मोहित हो सकता था। अवश्य ही उस समय वैसा मोहन रूप चराचर जगत्में कहीं नहीं था। भूपते! इसी समय देवराज इन्द्र भी चित्रसेनाके भेजनेसे उतावलीके साथ नन्दनवनके दिव्य पुष्प लेनेके लिये मन्दराचलसे स्वर्गलोकमें आये थे। वहाँ अपने स्थानपर आयी हुई उस अत्यन्त रूपवती रमणीको, जो मधुर गान गा रही थी, देख देवराज भी

कामके वशीभूत हो गये। तब देवेन्द्रने उसे जैसे भी हो, अपने अन्तः-पुरमें बुला लानेके लिये देववैद्य अश्विनीकुमारोंको उसके पास भेजा। दोनों अश्विनीकुमार उसके सामने जाकर खड़े हुए और कहने लगे—"कृशाङ्गि! आओ, देवराज इन्द्रके निकट चलो।" उन दोनोंके द्वारा यों कही जानेपर उस सुन्दरीने मधुर वाणीमें उत्तर दिया ॥६७-७३½॥

नाडीजङ्घोवाच

देवराजः स्वयं यन्मे पार्श्वं चात्रागमिष्यति ॥७४॥
तस्य वाक्यं च कर्तव्यं नान्यथा सर्वथा मया।

**नाडीजङ्घा बोली**—यदि देवराज इन्द्र स्वयं ही मेरे पास आयेंगे तो मैं उनकी बात मान सकती हूँ; अन्यथा बिल्कुल नहीं ॥ ७४½ ॥

तौ तदा वासवं गत्वा ऊचतुर्वचनं शुभम् ॥७५॥

तब अश्विनीकुमारोंने इन्द्रके पास जाकर उसका शुभ संदेश कहा ॥ ७५ ॥

वासव उवाच

समादेशय तन्वङ्गि किं कर्तव्यं मयाधुना।
सर्वदा दासभूतस्ते याचसे तद्ददाम्यहम् ॥७६॥

तब इन्द्र स्वयं आकर बोले—कृशाङ्गि! आज्ञा दो, मैं इस समय तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ? मैं सदाके लिये तुम्हारा दास हो गया हूँ; तुम जो कुछ माँगोगी, वह सब दूँगा ॥ ७६ ॥

तन्वङ्ग्युवाच

याचितं यदि मे नाथ दास्यसीति न संशयः।
ततोऽहं वशगा देव भविष्यामि न संशयः ॥७७॥
अद्य त्वं दर्शयास्माकं सर्वः कान्तापरिग्रहः।
मम रूपसमा रामा कान्ता ते चास्ति वा न वा ॥७८॥

कृशाङ्गीने कहा—नाथ! यदि आप मेरी माँगी हुई वस्तु अवश्य दे देंगे तो निस्संदेह मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी। आज आप अपनी समस्त भार्याओंको मुझे दिखाइये; देखूँ, आपकी कोई भी स्त्री मेरे रूपके सदृश है या नहीं? ॥ ७७-७८ ॥

तया चोक्ते च वचने स भूयो वासवोऽब्रवीत्।
दर्शयिष्यामि सर्वं ते देवि कान्तापरिग्रहम् ॥७९॥
स सर्वं दर्शयामास वासवोऽन्तःपुरं तदा।
ततो जगाद भूयः स किंचिद्गूढं मम स्थितम् ॥८०॥
विमुच्यैकां च युवतीं सर्वं ते दर्शितं मया।

उसके यों कहनेपर इन्द्रने पुनः कहा—"देवि! चलो, मैं तुम्हें अपनी समस्त भार्याओंको दिखाऊँगा।" यह कहकर इन्द्रने उसी समय उसे अपना सारा अन्तःपुर दिखाया। तब उस सुन्दरीने पुनः कहा—'अभी मुझसे कुछ छिपाया गया है। केवल एक युवतीको छोड़कर और सब कुछ आपने दिखा दिया' ॥ ७९-८०½ ॥

इन्द्र उवाच

सा रामा मन्दरे चास्ति अविज्ञाता सुरासुरैः ॥८१॥
तां च ते दर्शयिष्यामि नाख्येयं कस्यचित्त्वया।
ततः स देवराजोऽपि तया सार्धं च भूपते ॥८२॥
गच्छन्नेवाम्बरे भूप मन्दरं प्रति भूधरम्।
तस्य वै गच्छमानस्य विमानेनार्कवर्चसा ॥८३॥
दर्शनं नारदस्यापि तस्य जातं तदाम्बरे।
तं वीक्ष्य नारदं वीरो लज्जमानोऽपि वासवः ॥८४॥
नमस्कृत्य जगादोच्चैः क्व यास्यसि महामुने।

इन्द्रने कहा—"वह रमणी मन्दराचलपर है। देवता और असुर—किसीको भी उसका पता नहीं है। मैं उसे भी तुम्हें दिखा दूँगा, परंतु यह रहस्य किसीपर प्रकट न करना।" भूपाल! यह कहकर देवराज इन्द्र उसके साथ आकाशमार्गसे मन्दराचलकी ओर चले। जिस समय वे सूर्यके समान कान्तिमान् विमानसे चले जा रहे थे, उसी समय उन्हें आकाशमें देवर्षि नारदका दर्शन हुआ। नारदजीको देखकर वीरवर इन्द्र यद्यपि लज्जित हुए, तथापि उन्हें नमस्कार करके पूछा—"महामुने! आप कहाँ जायँगे?" ॥ ८१-८४½ ॥

ततः कृताशीः स मुनिरवदत्त्रिदिवेश्वरम् ॥८५॥
गच्छामि मानसे स्नातुं देवराज सुखी भव।
नाडीजङ्घेऽस्ति कुशलं राक्षसानां महात्मनाम् ॥८६॥
विभीषणोऽपि ते भ्राता सुखी तिष्ठति सर्वदा।
एवमुक्ता च मुनिना सा कृष्णवदनाभवत् ॥८७॥

**विस्मितो देवराजोऽपि छलितो दुष्टयानया ।**
**नारदोऽपि गतः स्नातुं कैलासे मानसं सरः ॥८८॥**
**इन्द्रस्तां हन्तुकामोऽपि आगच्छन्मन्दराचलम् ।**
**यत्राश्रमोऽस्ति वै नूनं तृणबिन्दोर्महात्मनः ॥८९॥**
**क्षणं विश्रम्य तत्रैव धृत्वा केशेषु राक्षसीम् ।**
**हन्तुमिच्छति देवेशो नाडीजङ्घां निशाचरीम् ॥९०॥**
**तावत्तत्र समायातस्तृणबिन्दुर्निजाश्रमात् ।**

तब मुनिवर नारदजीने आशीर्वाद देते हुए स्वर्गाधिपति इन्द्रसे कहा—'देवराज ! आप सुखी हों, मैं इस समय मानससरोवरपर स्नान करने जा रहा हूँ ।' [ फिर उन्होंने नाडीजङ्घाको पहचानकर कहा—] 'नाडीजङ्घे ! कहो तो, महात्मा राक्षसोंका कुशल तो है न ? तुम्हारे भाई विभीषण तो सुखपूर्वक हैं न ?' नारदजीकी यह बात सुनते ही उसका मुख भयसे काला पड़ गया । देवराज इन्द्र भी बहुत आश्चर्यमें पड़े और मन-ही-मन कहने लगे—'इस दुष्टने मुझे छल लिया ।' नारदजी भी वहाँसे कैलास पर्वतके निकट मानससरोवरमें स्नान करनेके लिये चले गये । तब इन्द्र भी उस राक्षसीका वध करनेके लिये मन्दराचलपर, जहाँ महात्मा तृणबिन्दुका आश्रम था, आये और वहाँ थोड़ी देरतक विश्राम करके वे उस नाडीजङ्घा राक्षसीके केश पकड़कर उसे मारना ही चाहते थे कि इतनेमें महात्मा तृणबिन्दु अपने आश्रमसे निकलकर वहाँ आ गये ॥ ८५-९०½ ॥

**धृता क्रन्दति सा राजन्निन्द्रेणापि निशाचरी ॥९१॥**
**मा मां रक्षति पुण्यात्मा हन्यमानां च साम्प्रतम् ।**

राजन् ! इधर इन्द्रके द्वारा पकड़ी जानेपर वह राक्षसी भी करुण विलाप करने लगी—'हा ! मैं मारी जा रही हूँ; इस समय कोई भी पुण्यात्मा पुरुष मुझ दीनाको नहीं बचा रहा है' ॥ ९१½ ॥

**तदाऽऽगत्य मुनिश्रेष्ठस्तृणबिन्दुर्महातपाः ॥९२॥**
**जगाद पुरतः स्थित्वा मुञ्चेमां महिलां वने ।**

उसी समय महातपस्वी तृणबिन्दु मुनि वहाँ आ पहुँचे और इन्द्रके सामने खड़े हो बोले—'हमारे तपोवनमें इस महिलाको न मारो, छोड़ दो' ॥ ९२½ ॥

**जल्पत्येवं मुनौ तस्मिन् महेन्द्रेण निशाचरी ॥९३॥**
**वज्रेण निहता भूयः कोपयुक्तेन चेतसा ।**
**स चुकोप मुनिश्रेष्ठः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥९४॥**
**यदेषा युवती दुष्ट निहता मे तपोवने ।**
**ततस्त्वं मम शापेन निश्चयात्स्त्री भविष्यसि ॥९५॥**

भूप ! तृणबिन्दु मुनि यों कह ही रहे थे कि महेन्द्रने क्रुद्ध होकर वज्रसे उस राक्षसीको मार ही तो डाला । तब वे मुनिवर इन्द्रकी ओर बार-बार देखते हुए बहुत ही कुपित हुए और बोले—'अरे दुष्ट ! तूने मेरे तपोवनमें इस युवतीका वध किया है, इसलिये तू मेरे शापसे निश्चय ही स्त्री हो जायगा' ॥ ९३-९५ ॥

इन्द्र उवाच

**एषा नाथ महादुष्टा राक्षसी निहता मया ।**
**अहं स्वामी सुराणां च शापं मा देहि मेऽधुना ॥९६॥**

**इन्द्र बोले**—नाथ ! मैं देवताओंका स्वामी इन्द्र हूँ और यह स्त्री महादुष्टा राक्षसी थी; इसलिये मैंने इसका वध किया है । आप इस समय मुझे शाप न दें ॥९६॥

मुनिरुवाच

**नूनं तपोवनेऽस्माकं दुष्टास्तिष्ठन्ति साधवः ।**
**ममात्र तपसो भावान्न निघ्नन्ति परस्परम् ॥९७॥**

**मुनि बोले**—अवश्य ही मेरे तपोवनमें भी दुष्ट और साधु पुरुष भी रहते हैं, परंतु वे मेरी तपस्याके प्रभावसे परस्पर किसीका वध नहीं करते । ( तूने मेरे तपोवनकी मर्यादा भङ्ग की है, अतः तू शापके ही योग्य है ! ) ॥ ९७ ॥

**इत्युक्तो हि तदा चेन्द्रः प्राप्तः स्त्रीत्वं न संशयः ।**
**जगाम त्रिदिवं भूप हतशक्तिपराक्रमः ॥९८॥**
**नासीनो हि भवत्येव सर्वदा देवसंसदि ।**
**देवा दुःखं समापन्ना दृष्ट्वा स्त्रीत्वं गतं हरिम् ॥९९॥**
**ततो देवगणाः सर्वे वासवेन समन्विताः ।**
**जग्मुश्च ब्रह्मसदनं तथा दीना शची तदा ॥१००॥**
**ब्रह्मा भग्नसमाधिश्च तावत्तत्रैव संस्थिताः ।**
**देवा ऊचुश्च ते सर्वे वासवेन समन्विताः ॥१०१॥**

भूप ! मुनिके यों कहनेपर इन्द्र निस्संदेह स्त्री-योनिको प्राप्त हो गये और पराक्रम तथा शक्ति खोकर स्वर्गको लौट आये । उन्होंने सदा ही लज्जा और दुःखसे खिन्न

रहनेके कारण देवताओंकी सभामें बैठना ही छोड़ दिया। इधर देवता भी इन्द्रको स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हुआ देखकर बहुत दुखी हुए। तत्पश्चात् सभी देवता और दीना शची इन्द्रको साथ लेकर ब्रह्माजीके धामको गये। जबतक ब्रह्माजी समाधिसे विरत हुए, तबतक वे सभी वहीं ठहरे रहे और इन्द्रके साथ ही सब देवता ब्रह्माजीसे बोले ॥९८–१०१॥

तृणबिन्दोर्मुनेः शापाद्यातः स्त्रीत्वं सुराधिपः ।
स मुनिः कोपवान् ब्रह्मन्नैव गच्छत्यनुग्रहम् ॥१०२॥

'ब्रह्मन्! सुरराज इन्द्र तृणबिन्दु मुनिके शापसे स्त्रीयोनिको प्राप्त हो गये हैं; वे मुनि बड़े क्रोधी हैं, किसी प्रकार अनुग्रह नहीं करते' ॥ १०२ ॥

पितामह उवाच

न मुनेरपराधः स्यात्तृणबिन्दोर्महात्मनः ।
स्वकर्मणोपयातोऽसौ स्त्रीत्वं स्त्रीवधकारणात् ॥१०३॥
चकार दुर्नयं देवा देवराजोऽपि दुर्मदः ।
जहार चित्रसेनां च सुगुप्तां धनदाङ्गनाम् ॥१०४॥
तथा जघान युवतीं तृणबिन्दोस्तपोवने ।
तेन कर्मविपाकेन स्त्रीभावं वासवो गतः ॥१०५॥

**ब्रह्माजी बोले**—इसमें उन महात्मा तृणबिन्दु मुनिका कोई अपराध नहीं है। इन्द्र स्त्रीवधरूपी अपने ही कर्मसे स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं। देवताओ! देवराज इन्द्रने भी मदमत्त होकर बड़ा ही अन्याय किया है, जो कुबेरकी पत्नी चित्रसेनाका गुप्तरूपसे अपहरण कर लिया। यही नहीं, इन्होंने तृणबिन्दुके तपोवनमें एक युवतीका वध किया है; अतः अपने इस निन्द्य कर्मके परिणामस्वरूप ही ये इन्द्र स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं ॥ १०३–१०५ ॥

देवा ऊचुः

यदसौ कृतवान्ब्रह्मन्दुर्नयं नाथ दुर्मतिः ।
तत्सर्वं साधयिष्यामो वयं शच्या समन्विताः ॥१०६॥
कान्ता धनाधिनाथस्य गूढा तिष्ठति या विभो ।
तां च तस्मै प्रदास्यामः सर्वे कृत्वा परां मतिम् ॥१०७॥
त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां देवराजः शचीयुतः ।
नन्दने चार्चनं कर्ता सर्वदा यक्षरक्षसाम् ॥१०८॥

**देवगण बोले**—न इन्होंने दुर्बुद्धिसे प्रेरित होकर जो शंकर-प्रिय कुबेरका अपमान किया है, उसके लिये हम सब लोग शचीके साथ कुबेरको प्रसन्न करनेका यत्न करेंगे। विभो! कुबेरकी पत्नी चित्रसेना मन्दराचलपर गुप्तरूपसे रहती है, हम सभी लोग सम्मति करके उसे कुबेरको अर्पित कर देंगे। देवराज इन्द्र भी प्रति त्रयोदशी और चतुर्दशीको नन्दनवनमें शचीको साथ लेकर यक्ष और राक्षसोंकी पूजा करेंगे ॥ १०६–१०८ ॥

ततः शची तदा गूढं चित्रसेनां विगृह्य च ।
मुमोच यक्षभवनं प्रियकष्टानुवर्तिनीम् ॥१०९॥
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽकाले लङ्कां समागतः ।
धनेशं कथयामास चित्रसेनासमागमम् ॥११०॥
शच्या सार्कं समायाता तव कान्ता धनाधिप ।
सखीं स्वामतुलां प्राप्य चरितार्था बभूव सा ॥१११॥
धनेशोऽपि कृतार्थोऽभूज्जगाम निजवेश्मनि ।

तत्पश्चात् शची अपने प्रियतमको कष्टमें डालनेवाली चित्रसेनाको गुप्तरूपसे ले जाकर यक्षराज कुबेरके भवनमें छोड़ आयीं। इसी समय कुबेरका दूत असमयमें ही लङ्कामें पहुँचा और कुबेरसे चित्रसेनाके लौट आनेका समाचार सुनाया—'हे धनाधिप! आपकी प्रियपत्नी चित्रसेना शचीके साथ घर लौट आयी है। वह शची-जैसी अनुपम सखीको पाकर कृतार्थ हो चुकी है।' तब कुबेर भी कृतकृत्य होकर अपने घरको लौट आये। इसके बाद देवगण पुनः ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे ॥ १०९–१११½ ॥

देवा ऊचुः

सर्वमेतत्कृतं ब्रह्मन् प्रसादात्ते न संशयः ॥११२॥
पतिहीना यथा नारी नाथहीनं यथा बलम् ।
गोकुलं कृष्णहीनं तु तथेन्द्रेणामरावती ॥११३॥
जपः क्रिया तपो दानं ज्ञानं तीर्थं च वै प्रभो ।
वासवस्य समाख्याहि यतः स्त्रीत्वाद्विमुच्यते ॥११४॥

**देवगण बोले**—ब्रह्मन्! आपकी कृपासे यह सारा काम तो हो गया—इसमें संदेह नहीं। परंतु अब जैसे पतिके बिना नारी, सेनापतिके बिना सेना और श्रीकृष्णके बिना व्रजकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार इन्द्रके बिना अमरावती सुशोभित नहीं होती। प्रभो! अब इन्द्रके लिये कोई जप, क्रिया, तप, दान, ज्ञान और तीर्थ-सेवन आदि

उपाय बताइये, जिससे स्त्रीभावसे इनका उद्धार हो सके ॥ ११२–११४ ॥

ब्रह्मोवाच

निहन्तुं न मुनेः शापं समर्थोऽहं न शंकरः ।
तीर्थं चान्यन्न पश्यामि मुक्त्वैकं विष्णुपूजनम् ॥११५॥
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण पूजनं च तथा जपम् ।
करोतु विधिवच्छक्रः स्त्रीत्वाद्येन च मुच्यते ॥११६॥
एकाग्रमनसा शक्र स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ।
ॐ नमो नारायणायेति जप त्वमात्मशुद्धये ॥११७॥
लक्षद्वये कृते जाप्ये स्त्रीभावान्मुच्यसे हरे ।
इति श्रुत्वा तथाकार्षीद्ब्रह्मोक्तं वचनं हरिः ।
स्त्रीभावाच्च विनिर्मुक्तस्तदा विष्णोः प्रसादतः॥११८॥

**ब्रह्माजी बोले**—उस मुनिके शापको अन्यथा करनेमें न तो मैं समर्थ हूँ और न भगवान् शंकर ही । इसके लिये एकमात्र भगवान् विष्णुके पूजनको छोड़कर दूसरा कोई उपाय भी सफल नहीं दीख पड़ता । बस, इन्द्र अष्टाक्षर मन्त्रके द्वारा भगवान् विष्णुका विधि पूर्वक पूजन करें और उस मन्त्रका जप करते रहें; इससे वे स्त्रीभावसे मुक्त हो सकते हैं । इन्द्र ! स्नान करके, श्रद्धायुक्त हो, आत्मशुद्धिके लिये एकाग्रचित्तसे 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका जप करो । देवेन्द्र ! इस मन्त्रका दो लाख जप हो जानेपर तुम स्त्री-योनिसे मुक्त हो सकते हो । यह सुनकर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञाका यथावत् पालन किया; तब वे भगवान् विष्णुकी कृपासे स्त्रीभावसे छुटकारा पा गये ॥ ११५–११८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते कथितं सर्वं विष्णुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
मया भृगुनियुक्तेन कुरु सर्वमतन्द्रितः ॥११९॥
शृण्वन्ति ये विष्णुकथामकल्मषा
वीर्यं हि विष्णोऽखिलकारणस्य ।
ते मुक्तपापाः परदारगामिनो
विशन्ति विष्णोः परमं पदं ध्रुवम् ॥१२०॥

**मार्कण्डेयजी कहते हैं**—राजन् ! इस प्रकार मैंने भृगुजीकी आज्ञासे तुम्हारे समक्ष परम उत्तम भगवान् विष्णुके माहात्म्यको पूर्णरूपसे सुना दिया । अब तुम आलस्य त्यागकर भगवान् विष्णुकी आराधना करो । जो लोग अखिल जगत्के कारणभूत भगवान् विष्णुके पराक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी कथाको सुनते हैं, वे यदि परस्त्रीगामी रहे हों तो भी पापहीन एवं कल्मषरहित होकर निश्चय ही भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं ॥ ११९-१२० ॥

सूत उवाच

इति सम्बोधितस्तेन मार्कण्डेयेन पार्थिवः ।
नरसिंहं समाराध्य प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥१२१॥
एतत्ते कथितं सर्वं भरद्वाज मुने मया ।
सहस्रानीकचरितं किमन्यत् कथयामि ते ॥१२२॥

**सूतजी कहते हैं**—मुनिवर मार्कण्डेयजीके द्वारा इस तरह सम्यक् प्रकारसे उपदिष्ट होकर राजा सहस्रानीक भगवान् नृसिंहकी आराधना करके विष्णुके अविनाशी पदको प्राप्त हो गये । भरद्वाज मुने ! इस प्रकार मैंने आपको सम्पूर्ण यह सहस्रानीकचरित्र सुनाया; इसके बाद आपसे और क्या कहूँ ? ॥ १२१-१२२ ॥

कथामिमां यस्तु शृणोति मानवः
पुरातनीं सर्वविमुक्तिदां च ।
सम्प्राप्य स ज्ञानमतीव निर्मलं
तेनैव विष्णुं प्रतिपद्यते जनः ॥१२३॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरितेऽष्टाक्षरमन्त्रकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥*

जो मानव सब प्रकारसे मोक्ष देनेवाली इस प्राचीन कथाका श्रवण करता है, वह अत्यन्त निर्मल ज्ञान प्राप्त करके उसीके द्वारा भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत श्रीसहस्रानीक-चरित्रके अन्तर्गत 'अष्टाक्षर मन्त्रकी महिमाका कथन' नामक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

# चौसठवाँ अध्याय

## भगवद्भजनकी श्रेष्ठता और भक्त पुण्डरीकका उपाख्यान

श्रीभरद्वाज उवाच

सत्यं केचित्प्रशंसन्ति तपः शौचं तथापरे ।
सांख्यं केचित्प्रशंसन्ति योगमन्ये प्रचक्षते ॥ १ ॥
ज्ञानं केचिन्प्रशंसन्ति समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ।
क्षमां केचित्प्रशंसन्ति तथैव च दयार्जवम् ॥ २ ॥
केचिद्दानं प्रशंसन्ति केचिदाहुः परं शुभम् ।
सम्यग्ज्ञानं परं केचित्केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥
अग्निष्टोमादिकर्माणि तथा केचित्परं विदुः ।
आत्मध्यानं परं केचित्सांख्यतत्त्वार्थवेदिनः ॥ ४ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामिह केवलम् ।
उपायः पदभेदेन बहुधैवं प्रचक्ष्यते ॥ ५ ॥
एवं चावस्थिते लोके कृत्याकृत्यविधौ नराः ।
व्यामोहमेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः ॥ ६ ॥
यदेतेषु परं कृत्यमनुष्ठेयं महात्मभिः ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मम सर्वार्थसाधकम् ॥ ७ ॥

**श्रीभरद्वाजजी बोले**—सूतजी ! कुछ लोग 'सत्य' को ही पुरुषार्थका साधक बताकर उसकी प्रशंसा करते हैं, दूसरे लोग 'तपस्या' और 'पवित्रता'को उत्तम बताते हैं । कुछ लोग 'सांख्य' और कुछ लोग 'योग' की प्रशंसा करते हैं । ढेले, पत्थर और सोनेको समान समझनेवाले कुछ अन्य लोग 'ज्ञान' को ही पुरुषार्थ-साधनके लिये उत्तम मानते हैं । कुछ लोग 'क्षमा' की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग 'दया' और 'सरलता' की । कुछ लोग ऐसे हैं, जो 'दान'को उत्तम बताते हैं, कुछ लोग और ही किसी उपायको शुभ कहते हैं । दूसरे लोग 'सम्यक् ज्ञान'को उत्तम मानते हैं और अन्य जन 'वैराग्य'को श्रेष्ठ बताते हैं । कुछ याज्ञिक लोग 'अग्निष्टोम' आदि यज्ञोंको ही सबसे बढ़कर मानते हैं । सांख्यतत्त्वका मर्म जाननेवाले कुछ लोग 'आत्माके ध्यान'को श्रेष्ठ मानते हैं । इस प्रकार यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका उपाय ही नाम-भेदसे नाना प्रकारका बताया जाता है । ऐसी स्थितिमें जगत्में पापकर्मसे विमुक्त पुरुष भी कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें कुछ निश्चय न हो सकनेके कारण मोहमें ही पड़े रहते हैं । सर्वज्ञ ! इन उपर्युक्त 'सत्य' आदि उपायोंमें जो सबसे उत्तम उपाय हो और महात्माओंद्वारा अवश्यकर्तव्य हो, सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले उस उपायका आप हमसे वर्णन करें ॥ १–७ ॥

सूत उवाच

श्रूयतामिदमत्यन्तं गूढं संसारमोचनम् ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ ८ ॥
पुण्डरीकस्य संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ।

**सूतजी कहते हैं**—संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाले इस अत्यन्त गूढ उपायको लोग सुनें । इस विषयमें महात्माजन देवर्षि नारद और भक्तवर पुण्डरीकके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं ॥ ८½ ॥

ब्राह्मणः श्रुतसम्पन्नः पुण्डरीको महामतिः ॥ ९ ॥
आश्रमे प्रथमे तिष्ठन् गुरूणां वशगः सदा ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधः संध्योपासनधिष्ठितः ॥१०॥
वेदवेदाङ्गनिपुणः शास्त्रेषु च विचक्षणः ।
समिद्भिः साधुयत्नेन सायं प्रातर्हुताशनम् ॥११॥
ध्यात्वा यज्ञपतिं विष्णुं सम्यगाराधयन् विभुम् ।
तपस्स्वाध्यायनिरतः साक्षाद्ब्रह्मसुतो यथा ॥१२॥
उदकेन्धनपुष्पार्थैरसकृत्तर्पयन् गुरून् ।
मातापितृभ्यां शुश्रूषुर्भिक्षाहारी जनप्रियः ॥१३॥
ब्रह्मविद्यामधीयानः प्राणायामपरायणः ।
तस्य सर्वार्थभूतस्य संसारेऽत्यन्तनिःस्पृहा ॥१४॥
बुद्धिरासीन्महाराज संसारार्णवतारणी ।

महामति पुण्डरीकजी एक विद्वान् ब्राह्मण थे । वे सदा गुरुजनोंके वशमें रहते हुए ब्रह्मचर्य आश्रमके नियमोंका पालन करते थे । उन्होंने अपनी इन्द्रियों और क्रोधको जीत लिया था तथा वे नियमानुसार संध्योपासन किया करते थे । वेद और वेदाङ्गोंमें वे निष्णात थे तथा अन्य शास्त्रोंके भी पण्डित थे । वे प्रतिदिन समिधा एकत्रकर सायं और प्रातःकाल अत्यन्त यत्नपूर्वक अग्निकी उपासना किया करते

थे । साक्षात् ब्रह्मपुत्र नारदजीके समान वे सर्वव्यापी यज्ञपति भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक आराधना करते हुए उनका ध्यान किया करते थे और सदा तपस्या तथा स्वाध्यायमें ही लगे रहते थे । जल, ईंधन और फूल आदि आवश्यक सामान लाकर वे सदा ही गुरुजनोंको संतुष्ट रखते और उनकी अपने माता-पिताके समान शुश्रूषा किया करते थे । भिक्षा माँगकर भोजन करते थे और अपने सद्व्यवहारोंके कारण लोगोंके परम प्रिय हो गये थे । वे सदा ब्रह्मविद्याका अध्ययन और प्राणायामका अभ्यास करते रहते थे । महाराज ! समस्त पदार्थोंको वे अपना स्वरूप ही समझते थे; अतः संसारके विषयोंमें उनकी बुद्धि अत्यन्त निःस्पृह हो भवसागरसे पार उतारनेवाली हो गयी थी ॥ ९—१४½ ॥

पितरं मातरं चैव भ्रातॄनथ पितामहान् ॥१५॥
पितृव्यान्मातुलांश्चैव सखीन् सम्बन्धिबान्धवान् ।
परित्यज्य महोदारस्तृणानीव यथासुखम् ॥१६॥
विचचार महीमेतां शाकमूलफलाशनः ।
अनित्यं यौवनं रूपमायुष्यं द्रव्यसंचयम् ॥१७॥
इति संचिन्तयानेन त्रैलोक्यं लोष्ठवत्स्मृतम् ।
पुराणोदितमार्गेण सर्वतीर्थानि वै मुने ॥१८॥
गमिष्यामि यथाकालमिति निश्चितमानसः ।
गङ्गां च यमुनां चैव गोमतीमथ गण्डकीम् ॥१९॥
शतद्रूं च पयोष्णीं च सरयूं च सरस्वतीम् ।
प्रयागं नर्मदां चैव महानद्यो नदानपि ॥२०॥
गयां च विन्ध्यतीर्थानि हिमवत्प्रभवाणि च ।
अन्यानि च महातेजास्तीर्थानि स महाव्रतः ॥२१॥
संचचार महाबाहुर्यथाकालं यथाविधि ।
कदाचित्प्राप्तवान् वीरः शालग्रामं तपोधनः ॥२२॥
पुण्डरीको महाभागः पुण्यकर्मवशानुगः ।

भरद्वाजजी ! उनका वैराग्य यहाँतक बढ़ गया कि वे महान् उदार पुण्डरीकजी पिता, माता, भाई, पितामह, चाचा, मामा, मित्र, सम्बन्धी तथा बान्धवजनोंको तृणके समान त्यागकर, शाक और मूल-फलादिका आहार करते हुए इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विचरने लगे । उन्होंने यौवन, रूप, आयु और धन-संग्रहकी अनित्यताका विचार करके समस्त त्रिभुवनको मट्टीके ढेलेके समान तुच्छ समझ लिया था और अपने मनमें यह निश्चय करके कि 'मैं पुराणोक्त मार्गसे यथासमय सभी तीर्थोंकी यात्रा करूँगा', वे महाबाहु, महातेजस्वी और महाव्रती पुण्डरीकजी गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डकी, शतद्रू, पयोष्णी, सरयू और सरस्वतीके तटपर, प्रयागमें, नर्मदा आदि महानदियों तथा नदोंके तटपर, गयामें तथा विन्ध्याचल और हिमालयके तीर्थोंमें एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य तीर्थोंमें भी यथासमय विधिपूर्वक भ्रमण करते रहे । इसी तरह घूमते हुए, पुण्यकर्मोंके अधीन हो वे तपस्वी वीर महाभाग पुण्डरीक शालग्रामक्षेत्रमें जा पहुँचे ॥ १५—२२½ ॥

आसेव्यमानमृषिभिस्तत्त्वविद्भिस्तपोधनैः ॥२३॥
मुनीनामाश्रमं रम्यं पुराणेषु च विश्रुतम् ।
भूषितं चक्रनद्या च चक्राङ्कितशिलातलम् ॥२४॥
रम्यं विविक्तं विस्तीर्णं सदा चित्तप्रसादकम् ।
केचिच्चक्राङ्कितास्तस्मिन् प्राणिनः पुण्यदर्शनाः॥२५॥
विचरन्ति यथाकामं पुण्यतीर्थप्रसङ्गिनः ।
तस्मिन् क्षेत्रे महापुण्ये शालग्रामे महामतिः ॥२६॥
पुण्डरीकः प्रसन्नात्मा तीर्थानि समसेवत ।
स्नात्वा देवह्रदे तीर्थे सरस्वत्यां च सुव्रतः ॥२७॥
जातिस्मर्यां चक्रकुण्डे चक्रनद्यामृतेष्वपि ।
तथान्यान्यपि तीर्थानि तस्मिन्नेव चचार सः ॥२८॥

वह तीर्थ तत्त्वज्ञानी तपस्वी ऋषियोंद्वारा सेवित था । वहाँ मुनियोंके सुरम्य आश्रम थे, जो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं । वह तीर्थ चक्रनदीसे भूषित है और वहाँके शिलाखण्ड भगवान्‌के चक्रसे चिह्नित हैं । वह तीर्थ जितना ही सुरम्य था, उतना ही एकान्त । उसका विस्तार बड़ा था और वहाँ चित्त स्वतः प्रसन्न रहता था । वहाँपर कुछ चक्रसे चिह्नित प्राणी रहते थे, जिनका दर्शन बहुत ही पावन था । वहाँ पुण्यतीर्थके यात्री यथेष्ट विचरते रहते थे । उस महापवित्र शालग्राम-क्षेत्रमें महामति पुण्डरीकजी प्रसन्नचित्त हो तीर्थ-सेवन करने लगे । वे नियमपूर्वक वहाँ देवह्रद तीर्थमें, पूर्वजन्मकी स्मृति दिलानेवाली सरस्वतीके जलमें, चक्र-कुण्डमें और चक्र-नदी ( नारायणी ) के जलमें भी स्नान करके उसी क्षेत्रके अन्तर्गत अन्यान्य तीर्थोंमें भ्रमण करते रहते थे ॥२३—२८॥

ततः क्षेत्रप्रभावेण तीर्थानां चैव तेजसा ।
मनः प्रसादमगमत्तस्य तस्मिन्महात्मनः ॥२९॥

सोऽपि तीर्थे विशुद्धात्मा ध्यानयोगपरायणः ।
तत्रैव सिद्धिमाकाङ्क्षन् समाराध्य जगत्पतिम् ॥३०॥
शास्त्रोक्तेन विधानेन भक्त्या परमया युतः ।
उवास चिरमेकाकी निर्द्वन्द्वः संयतेन्द्रियः ॥३१॥
शाकमूलफलाहारः संतुष्टः समदर्शनः ।
यमैश्च नियमैश्चैव तथा चासनबन्धनैः ॥३२॥
प्राणायामैः सुतीक्ष्णैश्च प्रत्याहारैश्च संततैः ।
धारणाभिस्तथा ध्यानैः समाधिभिरतन्द्रितः ॥३३॥
योगाभ्यासं तदा सम्यक् चक्रे विगतकल्मषः ।
आराध्य देवदेवेशं तद्गतेनान्तरात्मना ॥३४॥
पुण्डरीको महाभागः पुरुषार्थविशारदः ।
प्रसादं परमाकाङ्क्षन् विष्णोस्तद्गतमानसः ॥३५॥

तदनन्तर उस क्षेत्रके प्रभावसे और वहाँके तीर्थोंके तेजसे उन महात्माका चित्त वहाँ बहुत ही शुद्ध एवं प्रसन्न हो गया । इस प्रकार शुद्धचित्त एवं ध्यानयोगमें तत्पर हो, वहाँ ही सिद्धिकी इच्छासे परमभक्तियुक्त हो, वे शास्त्रोक्त विधिसे जगत्पति भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे । अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके निर्द्वन्द्व रहते हुए उन्होंने अकेले ही बहुत दिनोंतक वहाँ निवास किया । वे शाक और मूल-फलादिका आहार करते और सदा संतुष्ट रहते थे। उनकी सर्वत्र समान दृष्टि थी । वे यम, नियम, आसन-बन्ध, तीव्र प्राणायाम, निरन्तर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधिके द्वारा निरालस्यभावसे भलीभाँति योगाभ्यास करते रहे । इस प्रकार समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता निष्पाप महामना पुण्डरीकजीने देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुमें चित्त लगाकर उनकी आराधना की और उन्हींमें मन लगाये हुए वे उनके परम अनुग्रहकी आकाङ्क्षासे भजन करने लगे ॥ २९—३५ ॥

तस्य तस्मिन्निवसतः शालग्रामे महात्मनः ।
पुण्डरीकस्य राजेन्द्र कालोऽगच्छन्महांस्ततः ॥३६॥
मुने कदाचित्तं देशं नारदः परमार्थवित् ।
जगाम सुमहातेजाः साक्षादादित्यसंनिभः ॥३७॥
तं द्रष्टुकामो देवर्षिः पुण्डरीकं तपोनिधिम् ।
विष्णुभक्तिपरीतात्मा वैष्णवानां हिते रतः ॥३८॥
स दृष्ट्वा नारदं प्राप्तं सर्वतेजःप्रभान्वितम् ।
महामतिं महाप्राज्ञं सर्वागमविशारदम् ॥३९॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
अर्घ्यं दत्त्वा यथायोग्यं प्रणाममकरोत्ततः ॥४०॥
कोऽयमत्यद्भुताकारस्तेजस्वी हृद्यवेषधृक् ।
आतोद्यहस्तः सुमुखो जटामण्डलभूषणः ॥४१॥
विवस्वानथ वा वह्निरिन्द्रो वरुण एव वा ।
इति संचिन्तयन् विप्रः पप्रच्छ परमद्युतिः ॥४२॥

राजेन्द्र ! महात्मा पुण्डरीकको उस शालग्रामक्षेत्रमें निवास करते बहुत समय बीत गया । तब एक दिन साक्षात् सूर्यके समान महातेजस्वी, वैष्णवहितकारी, परमार्थवेत्ता एवं विष्णुभक्तिपरायण देवर्षि नारदजी तपोनिधि पुण्डरीकमुनिको देखनेकी इच्छासे उक्त क्षेत्रमें गये । समस्त आगमोंके ज्ञाता, महाबुद्धिमान्, महाप्राज्ञ, पूर्णतेजस्वी एवं प्रभापुञ्जसे उपलक्षित नारदजीको वहाँ आया देख पुण्डरीकके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने विनीतभावसे हाथ जोड़कर उन्हें अर्घ्य निवेदन किया, फिर यथोचित रूपसे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् परम कान्तिमान् विप्रवर पुण्डरीकजी मन-ही-मन यह सोचने लगे कि 'ये अद्भुत दिव्य शरीरवाले, मनोरमवेषधारी, तेजस्वी महापुरुष कौन हैं ? अहो ! इनका मुखमण्डल कितना प्रसन्न है ! इनके मस्तकपर जटा-जूट सुशोभित हो रहा है। इन्होंने हाथमें वीणा ले रखी है । इस रूपमें ये साक्षात् सूर्य ही तो नहीं हैं ? अथवा अग्निदेव, इन्द्र और वरुणमेंसे तो कोई नहीं हैं ?' यों सोचते हुए किसी निश्चयपर न पहुँचनेके कारण उन्होंने पूछा ॥ ३६—४२ ॥

पुण्डरीक उवाच

को भवानिह सम्प्राप्तः कुतो वा परमद्युते ।
त्वद्दर्शनं ह्यपुण्यानां प्रायेण भुवि दुर्लभम् ॥४३॥

पुण्डरीकजी बोले—परम कान्तिमान् दिव्य पुरुष ! आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं ? इस पृथ्वीपर जिन्होंने कभी पुण्य नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये आपका दर्शन प्रायः दुर्लभ ही है ॥ ४३ ॥

नारद उवाच

नारदोऽहमनुप्राप्तस्त्वद्दर्शनकुतूहलात् ।
पुण्डरीक हरेर्भक्तस्त्वादृशः सततं द्विज ॥४४॥
स्मृतः सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम ।

पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया ॥४५॥
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।

**नारदजी बोले**—पुण्डरीक ! मैं नारद हूँ। तुम्हारे दर्शनकी उत्कण्ठासे ही यहाँ आया हूँ। तुम-जैसा निरन्तर भगवद्भक्तिपरायण पुरुष दुर्लभ है। द्विजोत्तम ! भगवद्भक्त पुरुष यदि जातिका चण्डाल हो तो भी वह स्मरणमात्रसे, वार्तालापसे अथवा सम्मानित होकर, अथवा स्वेच्छासे ही लोगोंको पवित्र कर देता है; फिर तुम्हारे-जैसे भक्त ब्राह्मणके सत्सङ्गकी पावनताके विषयमें तो कहना ही क्या है। द्विज ! मैं शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले देवदेव भगवान् वासुदेवका दास हूँ ॥ ४४-४५½ ॥

इत्युक्तो नारदेनासौ भक्तिपर्याकुलात्मना ॥४६॥
प्रोवाच मधुरं विप्रस्तद्दर्शनसुविस्मितः ।

नारदजीके इस प्रकार अपना परिचय देनेपर उनके दर्शनसे अत्यन्त विस्मित हुए विप्रवर पुण्डरीकजी प्रेम-भक्तिसे विह्वलचित्त होकर मधुर वाणीमें बोले ॥ ४६½ ॥

पुण्डरीक उवाच

धन्योऽहं देहिनामद्य सुपूज्योऽहं सुरैरपि ॥४७॥
कृतार्थाः पितरो मेऽद्य सम्प्राप्तं जन्मनः फलम् ।
अनुगृह्णीष्व देवर्षे त्वद्भक्तस्य विशेषतः ॥४८॥
किं किं करोम्यहं विद्वन् भ्राम्यमाणः स्वकर्मभिः ।
कर्तव्यं परमं गुह्यमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥४९॥
त्वं गतिः सर्वलोकानां वैष्णवानां विशेषतः ।

**पुण्डरीकजीने कहा**—आज मैं समस्त देहधारियोंमें धन्य हूँ, देवताओंद्वारा भी सम्माननीय हूँ। आज मेरे पितर कृतार्थ हो गये। मेरा जन्म सफल हो गया। देवर्षे ! मैं आपका भक्त हूँ; आप मुझपर अब विशेषरूपसे अनुग्रह करें। विद्वन् ! मैं अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंसे प्रेरित हो संसारमें भटक रहा हूँ। बताइये, इससे छुटकारा पानेके लिये मैं क्या-क्या करूँ ? मेरे लिये जो परम कर्तव्य हो, वह गोपनीय हो तो भी आप मुझे उसका उपदेश कीजिये। मुने ! यों तो आप समस्त लोकोंको ही सहारा देनेवाले हैं, परंतु वैष्णवोंके लिये तो आप विशेषरूपसे शरणदाता हैं ॥ ४७-४९½ ॥

नारद उवाच

अनेकानीह शास्त्राणि कर्माणि च तथा द्विज ॥५०॥
धर्ममार्गाश्च बहवस्तथैव प्राणिनः स्मृताः ।
वैलक्षण्यं च जगतस्तस्मादेव द्विजोत्तम ॥५१॥

**नारदजी बोले**—द्विज ! इस जगत्में अनेक शास्त्र और अनेक प्रकारके कर्म हैं। इसी तरह यहाँ अनेकों प्राणी हैं और उनके लिये धर्मके मार्ग भी बहुत हैं। द्विजोत्तम ! इसीसे इस जगत्में विचित्रता दिखायी देती है ॥ ५०-५१ ॥

अव्यक्ताज्जायते सर्वं सर्वात्मकमिदं जगत् ।
इत्येवं प्राहुरपरे तत्रैव लयमेव च ॥५२॥
आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ।
अन्यैर्मतिमतां श्रेष्ठ तत्त्वालोकनतत्परैः ॥५३॥
एवमाद्यनुसंचिन्त्य यथामति यथाश्रुतम् ।
वदन्ति ऋषयः सर्वे नानामतविशारदाः ॥५४॥
शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् कथयामि तवानघ ।
परमार्थमिदं गुह्यं घोरसंसारमोचनम् ॥५५॥
अनागतमतीतं च विप्रकृष्टमतीव यत् ।
न गृह्णाति नृणां दृष्टिर्वर्तमानार्थनिश्चिता ॥५६॥
शृणुष्वावहितं तात कथयामि तवानघ ।
यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम सुव्रत ॥५७॥
कदाचिद्ब्रह्मलोकस्य पद्मयोनिं पितामहम् ।
प्रणिपत्य यथान्यायं पृष्टवानहमव्ययम् ॥५८॥

कुछ लोगोंका मत है कि यह सम्पूर्ण जगत् सर्वथा अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और समय आनेपर उसीमें लीन भी हो जाता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! कुछ अन्य तत्त्वदर्शी पुरुष आत्माको अनेक, नित्य एवं सर्वत्र व्यापक मानते हैं। अनघ ! ब्रह्मन् ! इन सब बातोंपर विचार करके नाना मतोंका ज्ञान रखनेवाले समस्त ऋषिगण अपनी बुद्धि और विद्याके अनुसार जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं, उसे सावधान होकर सुनो; वह सब मैं तुमसे बतलाता हूँ। यह बताया जानेवाला गोप्य परमार्थतत्त्व इस घोरतर संसारसे मुक्ति दिलानेवाला है। मनुष्योंकी दृष्टि प्रायः वर्तमान विषयोंको ही निश्चितरूपसे ग्रहण करती है; वह सुदूरवर्ती भूत और भविष्यको नहीं ग्रहण कर सकती। उत्तम व्रतके पालक एवं पापशून्य तात पुण्डरीक ! इस विषयमें श्रीब्रह्माजीने पहले मेरे प्रश्न करनेपर मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें

बता रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो। एक समयकी बात है, ब्रह्मलोकमें विराजमान अविनाशी कमलयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके मैंने उनसे यथोचित रूपसे प्रश्न किया ॥ ५२–५८ ॥

नारद उवाच

किं तज्ज्ञानं परं देव कश्च योगः परस्तथा ।
एतन्मे तत्त्वतः सर्वं त्वमाचक्ष्व पितामह ॥५९॥

**नारदजी बोले**—देव ! लोकपितामह ! सबसे उत्तम ज्ञान और सबसे उत्कृष्ट योग कौन-सा है ? इस विषयमें सारी बातें आप मुझे ठीक-ठीक बतायें ॥ ५९ ॥

ब्रह्मोवाच

यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः ।
स एव सर्वभूतानां नर इत्यभिधीयते ॥६०॥
नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति ततो विदुः ।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥६१॥
नारायणाज्जगत्सर्वं सर्गकाले प्रजायते ।
तस्मिन्नेव पुनस्तच्च प्रलये सम्प्रलीयते ॥६२॥
नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम् ।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥६३॥
परादपि परश्चासौ तस्मान्नातिपरं मुने ।
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥६४॥
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
एवं विदित्वा तं देवाः साकारं व्याहरन्मुहुः ॥६५॥
नमो नारायणायेति ध्यात्वा चानन्यमानसाः ।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ।६६।
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ।
एतज्ज्ञानं वरं नातो योगश्चैव परस्तथा ॥६७॥
परस्परविरुद्धार्थैः किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
बहवोऽपि यथा मार्गा विशन्त्येकं महत्पुरम् ॥६८॥
तथा ज्ञानानि सर्वाणि प्रविशन्ति तमीश्वरम् ।

**ब्रह्माजी बोले**—जो तेईस विकारोंके कारणभूत चौबीसवें तत्त्व प्रकृतिसे भिन्न पचीसवाँ तत्त्व है, वही सम्पूर्ण प्राणिशरीरोंमें 'नर' ( पुरुष या आत्मा ) कहलाता है। सम्पूर्ण तत्त्व नरसे उत्पन्न हैं, इसलिये 'नार' कहलाते हैं। ये नार जिनके अयन ( आश्रय ) हैं, अर्थात् जो इनमें व्यापक हैं, वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं। सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायणसे ही प्रकट होता है और प्रलयके समय फिर उन्हींमें लीन हो जाता है। नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तत्त्व हैं, नारायण ही परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा हैं। मुने ! वे भगवान् नारायण परसे भी पर हैं। उनसे बढ़कर या उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इस जगत्में जो कुछ देखा या सुना जाता है, सबको बाहर और भीतरसे व्याप्त करके भगवान् नारायण स्थित हैं। इस प्रकार उन्हें साकार वस्तुओंमें व्यापक जानकर ही देवताओंने बार-बार उनको 'साकार' कहा है तथा 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका ध्यान ( मानसिक जप ) करते हुए अनन्यभावसे उनमें मन लगाया है। जो अनन्यचित्त हो सदा भगवान् नारायणका ध्यान करता है, उसको दान, तीर्थसेवन, तपस्या और यज्ञोंसे क्या काम है ? भगवान् नारायणका ध्यान ही सर्वोत्तम ज्ञान है तथा इससे बढ़कर दूसरा कोई योग भी नहीं है। परस्परविरुद्ध अर्थको व्यक्त करनेवाले दूसरे-दूसरे शास्त्रोंके विस्तारसे क्या लाभ ? जिस प्रकार एक ही बड़े नगरमें बहुत-से मार्गोंका प्रवेश होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके सम्पूर्ण ज्ञान उन परमेश्वर नारायणमें प्रवेश करते हैं ॥ ६०–६८½ ॥

स हि सर्वगतो देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥६९॥
जगदादिरनाद्यन्तः स्वयम्भूर्भूतभावनः ।
विष्णुर्विभुरचिन्त्यात्मा नित्यः सदसदात्मकः ॥७०॥
वासुदेवो जगद्वासः पुराणः कविरव्ययः ।
यस्मात्प्राप्तं स्थितिं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥७१॥
तस्मात्स भगवान्देवो विष्णुरित्यभिधीयते ।
यस्माद्वा सर्वभूतानां तत्त्वाद्यानां युगक्षये ॥७२॥
तस्मिन्निवासः संसर्गे वासुदेवस्ततस्तु सः ।
तमाहुः पुरुषं केचित्केचिदीश्वरमव्ययम् ॥७३॥
विज्ञानमात्रं केचिच्च केचिद्ब्रह्म परं तथा ।
केचित्कालमनाद्यन्तं केचिज्जीवं सनातनम् ॥७४॥
केचिच्च परमात्मानं केचिच्चैवमनामयम् ।
केचित्क्षेत्रज्ञमित्याहुः केचित्षड्विंशकं तथा ॥७५॥
अङ्गुष्ठमात्रं केचिच्च केचित्पद्मरजोपमम् ।
एते चान्ये च मुनिभिः संज्ञाभेदाः पृथग्विधाः ॥७६॥

**शास्त्रेषु कथिता विष्णोर्लोकव्यामोहकारकाः ।**
**एकं यदि भवेच्छास्त्रं ज्ञानं निस्संशयं भवेत् ॥७७॥**
**बहुत्वादिह शास्त्राणां ज्ञानतत्त्वं सुदुर्लभम् ।**
**आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥७८॥**
**इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।**
**त्यक्त्वा व्यामोहकान् सर्वान् तस्माच्छास्त्रार्थविस्तरान्॥**
**अनन्यचेता ध्यायस्व नारायणमतन्द्रितः ।**
**एवं ज्ञात्वा तु सततं देवदेवं तमव्ययम् ॥८०॥**
**क्षिप्रं यास्यसि तत्रैव सायुज्यं नात्र संशयः ।**

वे भगवान् विष्णु अव्यक्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्म तत्त्व हैं, सदा रहनेवाले सनातन पुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत्के आदिकारण हैं; परंतु उनका न तो आदि है न अन्त ही । स्वयं वे किसी दूसरेसे उत्पन्न नहीं हैं, अतएव 'स्वयम्भू' हैं, किंतु इस सम्पूर्ण भूतप्राणियोंको स्वयं ही प्रकट करते हैं । वे विभु, अचिन्त्य, नित्य और कार्य-कारणस्वरूप हैं । सम्पूर्ण जगत्का उनमें ही निवास है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं । वे पुराणपुरुष, त्रिकालदर्शी और अविकारी हैं । यह सम्पूर्ण चराचरमय त्रिभुवन उन्हीं भगवान्के द्वारा व्याप्त होनेसे स्थित है, इसलिये वे 'विष्णु' कहलाते हैं । अथवा युगका क्षय होनेपर महत्तत्त्व आदि समस्त भूतोंका उन्हीं सृष्टिके आश्रयभूत परमात्मामें निवास होता है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं । कुछ लोग उनको पुरुष ( आत्मा ) कहते हैं और कुछ लोग अविनाशी ईश्वर बताते हैं । कुछ अन्य लोग उन्हें केवल 'विज्ञानस्वरूप' मानते हैं, कितने ही उन्हें परब्रह्म कहते हैं। कुछ विचारक उन्हें आदि-अन्तरहित 'काल' कहते हैं और कुछ मनुष्य उनको 'सनातन जीव' मानते हैं । कुछ लोग 'परमात्मा' कहते हैं, कुछ उन्हें एक 'निरामय तत्त्व' मानते हैं, कुछ विद्वान् उन्हें 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं और कुछ उन्हें तेईस विकारोंके कारण चौबीसवें तत्त्व प्रकृति और पचीसवें तत्त्वरूप पुरुषसे भिन्न 'छब्बीसवाँ तत्त्व' (पुरुषोत्तम) मानते हैं । कुछ लोग आत्माको अँगूठेके बराबर बताते हैं और कुछ विद्वान् कमल-पुष्पकी धूलिके एक कणके बराबर 'अणु' मानते हैं । ऊपर भगवान् विष्णुके जिन नामोंका उल्लेख किया गया है, ये तथा अन्य भी बहुत-से भिन्न-भिन्न नाम मुनियों-द्वारा शास्त्रोंमें कहे गये हैं, जो साधारण लोगोंमें भेद-भ्रमका उत्पादन कर उन्हें मोहमें डालनेवाले हैं । यदि एक ही शास्त्र होता तो सबको संदेहरहित निश्चयात्मक ज्ञान होता । किंतु यहाँ तो बहुतेरे शास्त्र हैं और सबका अलग-अलग सिद्धान्त है; अतः ज्ञानका तत्त्व बड़ा ही दुर्ज्ञेय हो गया है । परन्तु मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका मथन करके विचार किया तो एक यही बात सब सिद्धान्तोंके साररूपसे ज्ञात हुई कि सदा 'भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये ।' इसलिये मोहमें डालनेवाले सम्पूर्ण शास्त्र-विस्तारोंका त्याग करके एकचित्त होकर उत्साहपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करो । इस प्रकार सतत चिन्तनके द्वारा उन अविनाशी देवदेव नारायणका तत्त्व जानकर तुम शीघ्र ही उनमें सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर लोगे; इसमें संदेह नहीं है ॥ ६१—८०½ ॥

**श्रुत्वेदं ब्रह्मणा प्रोक्तं ज्ञानयोगं सुदुर्लभम् ॥८१॥**
**ततोऽहमासं विप्रेन्द्र नारायणपरायणः ।**
**नमो नारायणायेति ये विदुर्ब्रह्म शाश्वतम् ॥८२॥**
**अन्तकाले जपन्तस्ते यान्ति विष्णोः परं पदम्।**
**तस्मान्नारायणस्तात परमात्मा सनातनः ॥८३॥**
**अनन्यमनसा नित्यं ध्येयस्तत्त्वविचिन्तकैः ।**
**नारायणो जगद्व्यापी परमात्मा सनातनः ॥८४॥**
**जगतां सृष्टिसंहारपरिपालनतत्परः ।**
**श्रवणात्पठनाच्चैव निदिध्यासनतत्परैः ॥८५॥**
**आराध्यः सर्वथा ब्रह्मन् पुरुषेण हितैषिणा ।**
**निःस्पृहा नित्यसंतुष्टा ज्ञानिनः संयतेन्द्रियाः ॥८६॥**
**निर्ममा निरहंकारा रागद्वेषविवर्जिताः ।**
**अपक्षपतिताः शान्ताः सर्वसंकल्पवर्जिताः ॥८७॥**
**ध्यानयोगपरा ब्रह्मन् ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।**
**त्यक्तत्रया महात्मानो वासुदेवं हरिं गुरुम् ॥८८॥**
**कीर्तयन्ति जगन्नाथं ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।**
**तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र नारायणपरो भव ॥८९॥**

विप्रेन्द्र ! इस प्रकार ब्रह्माजीके कहे हुए इस परम दुर्लभ ज्ञानयोगको सुनकर मैं तभीसे भगवान् नारायणकी परिचर्यामें लग गया । जो लोग '**ॐ नमो नारायणाय**'— इस सनातन ब्रह्मस्वरूप मन्त्रको जानते हैं, वे अन्तकालमें इसका जप करते हुए विष्णुके परमधामको प्राप्त कर लेते हैं । अतः तात ! तत्त्व-विचार करनेवाले पुरुषोंको सदा ही सनातन परमात्मा नारायणका अनन्यचित्तसे ध्यान करना चाहिये ।

भगवान् नारायण जगद्व्यापी सनातन परमेश्वर हैं । वे भिन्न-भिन्न रूपसे सम्पूर्ण लोकोंके सृष्टि, पालन तथा संहार-कार्यमें लगे रहते हैं । इनके नाम, गुण एवं लीलाओंका श्रवण और कीर्तन करते हुए उनके ध्यानमें संलग्न हो उनकी आराधना करनी चाहिये । ब्रह्मन् ! अपना हित चाहनेवाले पुरुषके लिये सर्वथा भगवान् नारायणकी आराधना ही कर्तव्य है । विप्रवर ! जो लोग निःस्पृह, नित्य-संतुष्ट, ज्ञानी, जितेन्द्रिय और ममता-अहंता, राग-द्वेष आदि विकारोंसे रहित हैं तथा जो पक्षपातशून्य, शान्त एवं सब प्रकारके संकल्पोंसे वर्जित हैं, वे भगवान्के ध्यानयोगमें तत्पर हो उन जगदीश्वरका साक्षात्कार कर लेते हैं । जो महात्मा त्रिभुवनसे नाता तोड़कर जगद्गुरु जगन्नाथ भगवान् वासुदेवका कीर्तन करते हैं, वे उन जगत्पतिका दर्शन पा जाते हैं । इसलिये विप्रवर ! तुम भी भगवान् नारायणकी समाराधनामें तत्पर हो जाओ ॥८१–८९॥

**तदन्यः को महोदारः प्रार्थितं दातुमीश्वरः ।**
**हेलया कीर्तितो यो वै स्वं पदं दिशति द्विज ॥९०॥**
**अपि कार्यस्त्वया चैव जपः स्वाध्याय एव च ।**
**तमेवोद्दिश्य देवेशं कुरु नित्यमतन्द्रितः ॥९१॥**
**किं तत्र बहुभिर्मन्त्रैः किं तत्र बहुभिर्व्रतैः ।**
**नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥९२॥**
**चीरवासा जटाधारी त्रिदण्डी मुण्ड एव वा ।**
**भूषितो वा द्विजश्रेष्ठ न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥९३॥**
**ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररताः सदा ।**
**तेऽपि यान्ति परं स्थानं नरा नारायणाश्रयाः ॥९४॥**
**जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्याद्बुद्धिरीदृशी ।**
**दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥९५॥**
**प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः ।**
**किं पुनस्तद्गतप्राणः पुरुषः संयतेन्द्रियः ॥९६॥**

द्विज ! जो अवहेलनापूर्वक नाम लेनेपर भी भक्तको अपना परमधाम दे देते हैं, उन भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कौन ऐसा महान् उदार है, जो माँगी हुई वस्तुको देनेमें समर्थ हो ? तुम्हें जप अथवा स्वाध्याय—जो कुछ भी करना हो, उसे उन देवेश्वर भगवान् नारायणके उद्देश्यसे ही सदा आलस्य त्यागकर करते रहो । बहुत-से मन्त्र और व्रतोंसे क्या काम ? 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मन्त्र ही सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है । द्विजश्रेष्ठ ! कोई चीर वस्त्र पहननेवाला, जटा धारण करनेवाला, त्रिदण्डी, सदा माथा मुँड़ाये रहनेवाला अथवा तरह-तरहके उपकरणोंसे विभूषित ही क्यों न हो, उसके ये बाह्य चिह्न धर्मके कारण नहीं हो सकते; किंतु जो मनुष्य भगवान् नारायणकी शरणमें जा चुके हैं, वे पहले निर्दयी, दुष्ट और सदा पापरत रहे हों तो भी भगवान्के परमधामको पधारते हैं । हजारों जन्मोंमें भी जिसकी ऐसी बुद्धि हो जाय कि 'मैं देवदेव, शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् वासुदेवका दास हूँ', वह मनुष्य निस्संदेह भगवान् विष्णुके सालोक्यको प्राप्त होता है; फिर जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर सदा भगवान्में ही अपने प्राणोंको लगाये रहता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ९०–९६ ॥

सूत उवाच

**इत्युक्त्वा देवदेवर्षिस्तत्रैवान्तरधीयत ।**
**परोपकारनिरतस्त्रैलोक्यस्यैकभूषणः ॥९७॥**
**पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा नारायणपरायणः ।**
**नमोऽस्तु केशवायेति पुनः पुनरुदीरयन् ॥९८॥**
**प्रसीदस्व महायोगिन्निदमुच्चार्य सर्वदा ।**
**हृत्पुण्डरीके गोविन्दं प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥९९॥**
**तपस्सिद्धिकरेऽरण्ये शालग्रामे तपोधनः ।**
**उवास चिरमेकाकी पुरुषार्थविचक्षणः ॥१००॥**
**स्वप्नेऽपि केशवादन्यन्न पश्यति महातपाः ।**
**निद्रापि तस्य नैवासीत्पुरुषार्थविरोधिनी ॥१०१॥**
**तपसा ब्रह्मचर्येण शौचेन च विशेषतः ।**
**जन्मजन्मान्तरारूढसंस्कारेण च स द्विजः ॥१०२॥**
**प्रसादाद्देवदेवस्य सर्वलोकैकसाक्षिणः ।**
**अवाप परमां सिद्धिं वैष्णवीं वीतकल्मषः ॥१०३॥**
**सिंहव्याघ्रास्तथान्येऽपि मृगाः प्राणिविहिंसकाः ।**
**विरोधं सहजं हित्वा समेतास्तस्य संनिधौ ।**
**निवसन्ति द्विजश्रेष्ठ प्रशान्तेन्द्रियवृत्तयः ॥१०४॥**

**सूतजी कहते हैं**—सदा दूसरोंके ही उपकारमें लगे रहनेवाले त्रिभुवनभूषण देवर्षि नारदजी उपर्युक्त बातें बताकर वहाँपर अन्तर्धान हो गये । अब धर्मात्मा पुण्डरीक भी एकमात्र भगवान् नारायणके भजनमें तत्पर हो बार-बार इस प्रकार

उच्चारण करने लगे—'भगवान् केशवको नमस्कार है; हे महायोगिन्! आप मुझपर प्रसन्न हों।' निरन्तर यों कहते हुए पुरुषार्थ-साधनमें कुशल वे तपस्वी पुण्डरीकजी अपने हृदय-कमलके आसनपर जनार्दन भगवान् गोविन्दको स्थापित-कर तपस्याकी सिद्धि करनेवाले उस 'शालग्राम' नामक तपोवनमें बहुत कालतक अकेले ही रहे। महातपस्वी पुण्डरीक स्वप्नमें भी भगवान् केशवके सिवा दूसरा कुछ नहीं देखते थे। उनकी नींद भी उन्हें पुरुषार्थ-साधनमें बाधा नहीं देती थी। उन पापरहित द्विजवर पुण्डरीकने तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा विशेषतः शौचाचारके पालनसे और जन्म-जन्मान्तरोंकी साधनासे सुदृढ़ हुए भगवद्भक्तिसाधक संस्कारसे सम्पूर्ण लोकों-के एकमात्र साक्षी देवदेव भगवान् विष्णुकी कृपाद्वारा परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली। उनके निकट सिंह, व्याघ्र तथा दूसरे-दूसरे हिंसक जीव आपसके स्वाभाविक वैर-विरोधको त्याग एक साथ मिलकर रहते थे। द्विजवर भरद्वाजजी! उनके समीप उन हिंसक जन्तुओंकी इन्द्रिय-वृत्तियाँ अत्यन्त शान्त रहती थीं ॥ ९७—१०४ ॥

**ततः कदाचिद्भगवान् पुण्डरीकस्य धीमतः ।**
**प्रादुरासीज्जगन्नाथः पुण्डरीकायतेक्षणः ॥१०५॥**
**शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः स्रगुज्ज्वलः ।**
**श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः कौस्तुभेन विभूषितः ॥१०६॥**
**आरुह्य गरुडं श्रीमानञ्जनाचलसंनिभः ।**
**मेरुशृङ्गमिवारूढः कालमेघस्तडिद्द्युतिः ॥१०७॥**
**राजतेनातपत्रेण मुक्तादामविलम्बिना ।**
**विराजमानो देवेशश्चामरव्यजनादिभिः ॥१०८॥**

तत्पश्चात् एक दिन बुद्धिमान् पुण्डरीकजीके समक्ष जगदीश्वर भगवान् नारायण प्रकट हुए। उनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित थी। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रक्खा था। दिव्य पुष्पोंकी माला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्स-चिह्न और लक्ष्मीका निवास था। वे कौस्तुभमणिसे विभूषित थे। कज्जलगिरिके समान श्यामवर्ण एवं पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु सुनहली कान्तिवाले गरुड-पर आरूढ़ हो इस प्रकार सुशोभित होते थे, मानो मेरुगिरिके शिखरपर बिजलीकी कान्तिसे युक्त श्याममेघ शोभा पा रहा हो। भगवान्के ऊपर रजतमय श्वेत छत्र तना था, जिसमें मोतियोंकी झालरें लगी थीं। उस समय उस छत्रसे तथा चँवर-व्यजन आदिसे उन देवेश्वरकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १०५—१०८ ॥

**तं दृष्ट्वा देवदेवेशं पुण्डरीकः कृताञ्जलिः ।**
**पपात शिरसा भूमौ साध्वसावनतो द्विजः ॥१०९॥**
**पिबन्निव हृषीकेशं नयनाभ्यां समाकुलः ।**
**जगाम महतीं तृप्तिं पुण्डरीकस्तदानघः ॥११०॥**
**तमेवालोकयन् वीरश्चिरप्रार्थितदर्शनः ।**
**ततस्तमाह भगवान् पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ॥१११॥**

उन देवदेवेश्वर भगवान् नारायणका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर पुण्डरीकने दोनों हाथ जोड़ लिये। आदरमिश्रित भयसे उनका मस्तक झुक गया। उन्होंने धरतीपर माथा टेक दिया—साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे विह्वल होकर उन भगवान् हृषीकेशकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर इस प्रकार देखने लगे, मानो उन्हें पी जायँगे। जिनके दर्शनके लिये वे चिरकालसे प्रार्थना कर रहे थे, उन भगवान्को आज सामने पाकर उन्हींकी ओर निर्निमेष नयनोंसे देखते हुए पापरहित धीरचित्त पुण्डरीकजी-को आज बड़ी ही तृप्ति हुई। तब तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाप लेनेवाले भगवान् पद्म-नाभने पुण्डरीकसे कहा—॥१०९-१११॥

**प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पुण्डरीक महामते ।**
**वरं वृणीष्व दास्यामि यत्ते मनसि वर्तते ॥११२॥**

'वत्स पुण्डरीक! तुम्हारा कल्याण हो। महामते! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसीको वरके रूपमें माँग लो; उसे मैं अवश्य दूँगा' ॥ ११२ ॥

सूत उवाच

**एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदेवेन भाषितम् ।**
**इदं विज्ञापयामास पुण्डरीको महामतिः ॥११३॥**

**सूतजी कहते हैं**—देवदेव नारायणके कहे हुए इस वचनको सुनकर महामति पुण्डरीकने उनसे यों निवेदन किया ॥ ११३ ॥

पुण्डरीक उवाच

**क्वाहमत्यन्तदुर्बुद्धिः क्व चात्महितवीक्षणम् ।**
**यद्धितं मम देवेश तदाज्ञापय माधव ॥११४॥**

**पुण्डरीक बोले**—देवेश्वर ! कहाँ मुझ-जैसा अत्यन्त दुर्बुद्धि पुरुष और कहाँ अपने वास्तविक हितको देखनेका कार्य ? अतः माधव ! मेरे लिये जो हितकर हो, उसके लिये आप ही कृपापूर्वक आज्ञा करें ॥ ११४ ॥

एवमुक्तोऽथ भगवान् सुप्रीतः पुनरब्रवीत् ।
पुण्डरीकं महाभागं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥११५॥

उनके यों कहनेपर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए महाभाग पुण्डरीकसे बोले ॥ ११५ ॥

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं तेऽस्तु मयैव सह सुव्रत ।
मद्रूपधारी नित्यात्मा ममैव पार्षदो भव ॥११६॥

**श्रीभगवान्ने कहा**—सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम मेरे साथ ही आ जाओ और मेरे ही समान रूप धारण-कर मेरे नित्य-पार्षद हो जाओ ॥ ११६ ॥

सूत उवाच

एवमुक्तवति प्रीत्या श्रीधरे भक्तवत्सले ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च ॥११७॥
देवाः सेन्द्रास्तथा सिद्धाः साधु साध्वित्यथाब्रुवन्।
जगुश्च सिद्धगन्धर्वाः किंनराश्च विशेषतः ॥११८॥
अथैनं समुपादाय वासुदेवो जगत्पतिः ।
जगाम गरुडारूढः सर्वदेवनमस्कृतः ॥११९॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र विष्णुभक्तिसमन्वितः ।
तच्चित्तस्तद्गतप्राणस्तद्भक्तानां हिते रतः ॥१२०॥
अर्चयित्वा यथायोगं भजस्व पुरुषोत्तमम् ।
शृणुष्व तत्कथाः पुण्याः सर्वपापप्रणाशिनीः॥१२१॥
येनोपायेन विप्रेन्द्र विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा तत्कुरुष्व सुविस्तरम् ॥१२२॥
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैरपि ।
नाप्नुवन्ति गतिं पुण्यां नारायणपराङ्मुखाः॥१२३॥

**सूतजी कहते हैं**—भक्तवत्सल भगवान् श्रीधरके प्रेम-पूर्वक यों कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उस समय इन्द्र आदि सभी देवता और सिद्धगण 'यह बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ'—इस प्रकार कहकर साधुवाद देने लगे। सिद्ध, गन्धर्व और किंनरगण विशेषरूपसे यशोगान करने लगे। इधर सर्वदेववन्दित जगदीश्वर भगवान् वासुदेव पुण्डरीकको साथ ले, गरुडपर आरूढ़ हो, वैकुण्ठधामको चले गये। इसलिये विप्रवर भरद्वाज ! आप भी विष्णुभक्तिसे युक्त हो, अपने मन और प्राणोंको भगवान्में ही लगाकर उनके भक्तोंके हित-साधनमें तत्पर रहिये और यथाशक्ति भगवान्का पूजन करते हुए उन पुरुषोत्तमका भजन कीजिये। समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान्की कथाएँ सदा सुनते रहिये। विप्रवर ! अधिक क्या कहूँ, सर्वेश्वरेश्वर विश्वात्मा भगवान् विष्णु जिस उपायसे प्रसन्न हों, उसीको आप विस्तारपूर्वक करें। भगवान् नारायणसे विमुख हुए पुरुष हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय करनेसे भी पावन गतिको नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ११७–१२३ ॥

अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणविगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ।
निरुपममुपमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो ।१२४।

*इति श्रीनरसिंहपुराणे पुण्डरीकनारदसंवादे चतुःषष्टि-तमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥*

( भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)'भगवन्, विष्णो ! आप अजर, अमर, अद्वितीय, सबके ध्यान करने-योग्य, आदि-अन्तसे रहित, सगुण-निर्गुण, स्थूल-सूक्ष्म और अनुपम होकर भी उपमेय हैं। योगियोंको ज्ञानके द्वारा आपके स्वरूपका अनुभव होता है तथा आप इस त्रिभुवनके गुरु और परमेश्वर हैं; अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पुण्डरीक-नारद-संवाद' विषयक चौसठवाँ **अध्याय** पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

# पैंसठवाँ अध्याय

## भगवत्सम्बन्धी तीर्थ और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के नाम

भरद्वाज उवाच

त्वत्तो हि श्रोतुमिच्छामि गुह्यक्षेत्राणि वै हरेः ।
नामानि च सुगुह्यानि वद पापहराणि च ॥ १ ॥

**भरद्वाजजी बोले**—सूतजी ! अब मैं आपसे भगवान् विष्णुके गुप्त तीर्थोंका और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के गुप्त नामोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ; कृपया आप उन पापनाशक नामोंका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

मन्दरस्थं हरिं देवं ब्रह्मा पृच्छति केशवम् ।
भगवन्तं देवदेवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २ ॥

**सूतजी बोले**—एक समय मन्दराचलपर विराजमान शङ्ख-चक्र-गदाधारी देवदेव भगवान् विष्णुसे श्रीब्रह्माजीने पूछा ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

केषु केषु च क्षेत्रेषु द्रष्टव्योऽसि मया हरे ।
भक्तैरन्यैः सुरश्रेष्ठ मुक्तिकामैर्विशेषतः ॥ ३ ॥
यानि ते गुह्यनामानि क्षेत्राणि च जगत्पते ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः पद्मायतेक्षण ॥ ४ ॥
किं जपन् सुगतिं याति नरो नित्यमतन्द्रितः ।
त्वद्भक्तानां हितार्थाय तन्मे वद सुरेश्वर ॥ ५ ॥

**ब्रह्माजी बोले**—सुरश्रेष्ठ ! हरे ! मुझे तथा मुक्ति चाहनेवाले अन्यान्य भक्तोंको किन-किन क्षेत्रोंमें जाकर आपका विशेषरूपसे दर्शन करना चाहिये । जगत्पते ! कमललोचन ! आपके जो-जो गुप्त तीर्थ और नाम हैं, उन्हें मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ । सुरेश्वर ! मनुष्य आलस्य त्यागकर प्रतिदिन किसका जप करनेसे सद्गतिको प्राप्त हो सकता है ? अपने भक्तोंका हित-साधन करनेके लिये यह बात आप हमें बताइये ॥ ३—५ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् गुह्यनामानि मेऽधुना ।
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि तव वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥

**श्रीभगवान् बोले**—ब्रह्मन् ! तुम सावधान होकर सुनो; मेरे जो गुह्य नाम और क्षेत्र हैं, उन्हें मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ ॥ ६ ॥

कोकामुखे तु वाराहं मन्दरे मधुसूदनम् ।
अनन्तं कपिलद्वीपे प्रभासे रविनन्दनम् ॥ ७ ॥
माल्योदपाने वैकुण्ठं महेन्द्रे तु नृपात्मजम् ।
ऋषभे तु महाविष्णुं द्वारकायां तु भूपतिम् ॥ ८ ॥
पाण्डुसह्ये तु देवेशं वसुरूढे जगत्पतिम् ।
वल्लीवटे महायोगं चित्रकूटे नराधिपम् ॥ ९ ॥
निमिषे पीतवासं च गवां निष्क्रमणे हरिम् ।
शालग्रामे तपोवासमचिन्त्यं गन्धमादने ॥ १० ॥
कुब्जागारे हृषीकेशं गन्धद्वारे पयोधरम् ।
गरुडध्वजं तु सकले गोविन्दं नाम सायके ॥ ११ ॥
वृन्दावने तु गोपालं मथुरायां स्वयम्भुवम् ।
केदारे माधवं विन्द्याद्वाराणस्यां तु केशवम् ॥ १२ ॥
पुष्करे पुष्कराक्षं तु धृष्टद्युम्ने जयध्वजम् ।
तृणबिन्दुवने वीरमशोकं सिन्धुसागरे ॥ १३ ॥
कसेरटे महाबाहुममृतं तैजसे वने ।
विश्वासयूपे विश्वेशं नरसिंहं महावने ॥ १४ ॥
हलाङ्गरे रिपुहरं देवशालां त्रिविक्रमम् ।
पुरुषोत्तमं दशपुरे कुब्जके वामनं विदुः ॥ १५ ॥
विद्याधरं वितस्तायां वाराहे धरणीधरम् ।
देवदारुवने गुह्यं कावेर्यां नागशायिनम् ॥ १६ ॥
प्रयागे योगमूर्तिं च पयोष्ण्यां च सुदर्शनम् ।
कुमारतीर्थे कौमारं लोहिते हयशीर्षकम् ॥ १७ ॥
उज्जयिन्यां त्रिविक्रमं लिङ्गकूटे चतुर्भुजम् ।
हरिहरं तु भद्रायां दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

कोकामुख-क्षेत्रमें मेरे वाराहस्वरूपका, मन्दराचलपर मधुसूदनका, कपिलद्वीपमें अनन्तका, प्रभासक्षेत्रमें सूर्यनन्दनका, माल्योदपानतीर्थमें भगवान् वैकुण्ठका, महेन्द्रपर्वतपर

राजकुमारका, ऋषभतीर्थमें महाविष्णुका, द्वारकामें भूपाल श्रीकृष्णका, पाण्डुसह्य पर्वतपर देवेशका, वसुरूढ तीर्थमें जगत्पतिका, वल्लीवटमें महायोगका, चित्रकूटमें राजा रामका, नैमिषारण्यमें पीताम्बरका, गौओंके विचरनेके स्थान व्रजमें हरिका, शालग्राम तीर्थमें तपोवासका, गन्धमादन पर्वतपर अचिन्त्य परमेश्वरका, कुब्जागारमें हृषीकेशका, गन्धद्वारमें पयोधरका, सकलतीर्थमें गरुडध्वजका, सायकमें गोविन्दका, वृन्दावनमें गोपालका, मथुरामें स्वयम्भू भगवान्‌का, केदारतीर्थमें माधवका, वाराणसी ( काशी ) में केशवका, पुष्कर तीर्थमें पुष्कराक्षका, धृष्टद्युम्न-क्षेत्रमें जयध्वजका, तृणविन्दु वनमें वीरका, सिन्धुसागरमें अशोकका, कसेरटमें महाबाहुका, तैजस वनमें भगवान् अमृतका, विश्वासयूप ( या विशाखयूप ) क्षेत्रमें विश्वेशका, महावनमें नरसिंहका, हलाङ्गरमें रिपुहरका, देवशालामें भगवान् त्रिविक्रमका, दशपुरमें पुरुषोत्तमका, कुब्जक तीर्थमें वामनका, वितस्तामें विद्याधरका, वाराह तीर्थमें धरणीधरका, देवदारुवनमें गुह्यका, कावेरीतटपर नागशायीका, प्रयागमें योगमूर्तिका, पयोष्णीतटपर सुदर्शनका, कुमारतीर्थमें कौमारका, लोहितमें हयग्रीवका, उज्जयिनीमें त्रिविक्रमका, लिङ्गकूटपर चतुर्भुजका आर भद्राके तटपर भगवान् हरिहरका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७–१८ ॥

विश्वरूपं कुरुक्षेत्रे मणिकुण्डे हलायुधम् ।
लोकनाथमयोध्यायां कुण्डिने कुण्डिनेश्वरम् ॥१९॥
भाण्डारे वासुदेवं तु चक्रतीर्थे सुदर्शनम् ।
आढ्ये विष्णुपदं विद्याच्छूकरे शूकरं विदुः ॥२०॥
ब्रह्मेशं मानसे तीर्थे दण्डके श्यामलं विदुः ।
त्रिकूटे नागमोक्षं च मेरुपृष्ठे च भास्करम् ॥२१॥
विरजं पुष्पभद्रायां बालं केरलके विदुः ।
यशस्करं विपाशायां माहिष्मत्यां हुताशनम् ॥२२॥
क्षीराब्धौ पद्मनाभं तु विमले तु सनातनम् ।
शिवनद्यां शिवकरं गयायां च गदाधरम् ॥२३॥
सर्वत्र परमात्मानं यः पश्यति स मुच्यते ।

इसी प्रकार कुरुक्षेत्रमें विश्वरूपका, मणिकुण्डमें हलायुधका, अयोध्यामें लोकनाथका, कुण्डिनपुरमें कुण्डिनेश्वरका, भाण्डारमें वासुदेवका, चक्रतीर्थमें सुदर्शनका, आढ्यतीर्थमें विष्णुपदका, शूकर-क्षेत्रमें भगवान् शूकरका, मानसतीर्थमें ब्रह्मेशका, दण्डकतीर्थमें श्यामलका, त्रिकूटपर्वतपर नागमोक्षका, मेरुके शिखरपर भास्करका, पुष्पभद्राके तटपर विरजका, केरल-तीर्थमें बालरूप भगवान्‌का, विपाशाके तटपर भगवान् यशस्करका, माहिष्मतीपुरीमें हुताशनका, क्षीरसागरमें भगवान् पद्मनाभका, विमलतीर्थमें सनातनका, शिवनदीके तटपर भगवान् शिवका, गयामें गदाधरका और सर्वत्र ही परमात्माका जो दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ १९–२३½ ॥

अष्टषष्टिश्च नामानि कथितानि मया तव ॥२४॥
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि कथितानि विशेषतः ।
एतानि मम नामानि रहस्यानि प्रजापते ॥२५॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय शृणुयाद्वापि नित्यशः ।
गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥२६॥
दिने दिने शुचिर्भूत्वा नामान्येतानि यः पठेत् ।
दुःस्वप्नं न भवेत्तस्य मत्प्रसादान्न संशयः ॥२७॥
अष्टषष्टिस्तु नामानि त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मम लोके स मोदते ॥२८॥
द्रष्टव्यानि यथाशक्त्या क्षेत्राण्येतानि मानवैः ।
वैष्णवैस्तु विशेषेण तेषां मुक्तिं ददाम्यहम् ॥२९॥

ब्रह्माजी ! ये अड़सठ नाम हमने तुम्हें बताये तथा विशेषतः गुप्त तीर्थोंका भी वर्णन किया । प्रजापते ! जो पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मेरे इन गुह्यनामोंका पाठ या श्रवण करेगा, वह नित्य एक लाख गोदानका फल पायेगा । नित्यप्रति पवित्र होकर जो इन नामोंका पाठ करता है, उसको मेरी कृपासे कभी दुःस्वप्नका दर्शन नहीं होता, इसमें संदेह नहीं है । जो पुरुष इन अड़सठ नामोंका प्रतिदिन तीनों काल, अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकमें आनन्द भोगता है । सभी मनुष्यों और विशेषतः वैष्णवोंको चाहिये कि यथाशक्ति पूर्वोक्त तीर्थोंका दर्शन करें । जो लोग ऐसा करते हैं, उन्हें मैं मुक्ति देता हूँ ॥ २४–२९ ॥

सूत उवाच

हरिं समभ्यर्च्य तदग्रसंस्थितो
हरिं स्मरन् विष्णुदिने विशेषतः ।

इमं स्तवं यः पठते स मानवः
प्राप्नोति विष्णोरमृतात्मकं पदम् ॥३०॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे आद्ये धर्मार्थमोक्षदायिनि विष्णुवल्लभे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥*

**सूतजी कहते हैं**—जो पुरुष सदा और विशेषतः हरिवासर (एकादशी या द्वादशीको) भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनके सामने खड़ा हो भगवत्स्मरणपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह विष्णुके अमृतपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'आदि धर्मार्थमोक्षदायक विष्णुवल्लभस्तोत्र' विषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

# छाछठवाँ अध्याय

## अन्यान्य तीर्थों तथा सह्य और आमलक ग्रामके तीर्थोंका माहात्म्य

सूत उवाच

**उक्तः पुण्यः स्तवो ब्रह्मन् हरेरेभिश्च नामभिः ।**
**पुनरन्यानि नामानि यानि तानि निबोध मे ॥ १ ॥**

**सूतजी कहते हैं**—भगवान् विष्णु पुनः बोले—ब्रह्मन्! उपर्युक्त अड़सठ नामोंसे भगवान् विष्णुकी पावन स्तुतिका वर्णन किया गया। अब जो दूसरे-दूसरे पावन तीर्थ और नाम हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनिये ॥ १ ॥

**गङ्गा तु प्रथमं पुण्या यमुना गोमती पुनः ।**
**सरयूः सरस्वती च चन्द्रभागा चर्मण्वती ॥ २ ॥**
**कुरुक्षेत्रं गया चैव पुष्कराणि तथार्बुदम् ।**
**नर्मदा च महापुण्या तीर्थान्येतानि चोत्तरे ॥ ३ ॥**
**तापी पयोष्णी पुण्ये द्वे तत्सङ्गात्तीर्थमुत्तमम् ।**
**तथा ब्रह्मगिरेश्चापि मेखलाभिः समन्विताः ॥ ४ ॥**
**विरजं च तथा तीर्थं सर्वपापक्षयंकरम् ।**
**गोदावरी महापुण्या सर्वत्र चतुरानन ॥ ५ ॥**
**तुङ्गभद्रा महापुण्या यत्राहं कमलोद्भव ।**
**हरेण सार्धं प्रीत्या तु वसामि मुनिपूजितः ॥ ६ ॥**
**दक्षिणगङ्गा कृष्णा तु कावेरी च विशेषतः ।**
**सह्ये त्वामलकग्रामे स्थितोऽहं कमलोद्भव ॥ ७ ॥**
**देवदेवस्य नाम्ना तु त्वया ब्रह्मन् सदार्चितः ।**
**तत्र तीर्थान्यनेकानि सर्वपापहराणि वै ॥**
**येषु स्नात्वा च पीत्वा च पापान्मुच्यति मानवः ॥८॥**

सर्वप्रथम गङ्गा पवित्र है; फिर यमुना, गोमती, सरयू, सरस्वती, चन्द्रभागा और चर्मण्वती—ये नदियाँ पावन हैं। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र, गया, तीनों पुष्कर और अर्बुद-क्षेत्र तथा परम पावन नर्मदा नदी—ये उत्तरमें परम पावन तीर्थ हैं। तापी, पयोष्णी—ये दो पावन नदियाँ हैं। इनके संगमसे एक बहुत उत्तम तीर्थ हो गया है तथा ब्रह्मगिरिकी मेखलाओंसे मिले हुए भी बहुत-से उत्तम तीर्थ हैं। विरज-तीर्थ भी समस्त पापोंको क्षीण करनेवाला है तथा चतुरानन! गोदावरी नदी सर्वत्र परमपावन हैं। कमलोद्भव! तुङ्गभद्रा नदी भी अत्यन्त पवित्र करनेवाली है, जिसके तटपर मैं मुनियोंद्वारा पूजित हो भगवान् शंकरके साथ स्वयं निवास करता हूँ। दक्षिण गङ्गा, कृष्णा और विशेषतः कावेरी—ये पुण्य नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त, कमलोद्भव! मैं सह्यपर्वतपर आमलक ग्राममें स्वयं निवास करता हूँ। वहाँ 'देवदेव' नामसे प्रसिद्ध मेरे श्रीविग्रहका तुम स्वयं ही सदा पूजन करते हो। वहाँ समस्त पापोंको हर लेनेवाले अनेक तीर्थ हैं, जिनमें स्नान और आचमन करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥२–८॥

सूत उवाच

**इत्येवं कथयित्वा तु तीर्थानि मधुसूदनः ।**
**ब्रह्मणे गतवान् ब्रह्मन् ब्रह्मापि स्वपुरं गतः ॥ ९ ॥**

**सूतजी कहते हैं**—भरद्वाज! ब्रह्माजीसे इन तीर्थोंका वर्णन करके भगवान् मधुसूदन अपने धामको चले गये और ब्रह्मा भी ब्रह्मलोक सिधारे ॥ ९ ॥

भरद्वाज उवाच

**तस्मिन्नामलकग्रामे पुण्यतीर्थानि यानि वै ।**
**तानि मे वद धर्मज्ञ विस्तरेण यथार्थतः ॥१०॥**
**क्षेत्रोत्पत्तिं च माहात्म्यं यात्रापर्व च यत्र तत् ।**
**तत्रासौ देवदेवेशः पूज्यते ब्रह्मणा स्वयम् ॥११॥**

**भरद्वाजजी बोले**—धर्मज्ञ ! उस आमलक ग्राममें जो-जो पुण्यतीर्थ हैं, उनका आप विस्तारके साथ यथार्थरूपमें वर्णन करें । जहाँ देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ब्रह्माजीके द्वारा पूजित होते हैं, उस क्षेत्रकी उत्पत्ति-कथा, माहात्म्य और यात्रापर्वका विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिये ॥ १०-११ ॥

सूत उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
सह्यामलकतीर्थस्य उत्पत्त्यादि महामुने ॥१२॥

**सूतजी कहते हैं**—विप्र ! महामुने ! सह्यपर्वतपर स्थित 'आमलक'तीर्थके आविर्भाव आदिकी पवित्र एवं पापनाशक कथा मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनें ॥ १२ ॥

पुरा सह्यवनोद्देशे तरुरामलको महान् ।
आसीद्ब्रह्मन् महोग्रोऽयं नाम्नायं चोच्यते बुधैः।१३।
फलानि तस्य वृक्षस्य महान्ति सुरसानि च ।
दर्शनीयानि दिव्यानि दुर्लभानि महामुने ॥१४॥
परेषां ब्राह्मणानां तु परेण ब्रह्मणा पुरा ।
स दृष्टस्तु महावृक्षो महाफलसमन्वितः ॥१५॥
किमेतदिति विप्रेन्द्र ध्यानदृष्टिपरोऽभवत् ।
ध्यानेन दृष्टवांस्तत्र पुनरामलकं तरुम् ॥१६॥
तस्योपरि तु देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
उत्थाय च पुनः पश्येत्प्रतिमामेव केवलाम् ॥१७॥
तत्पादं भूतले देवः प्रविवेश महातरुः ।
ततस्त्वाराधयामास देवदेवेशमव्ययम् ॥१८॥
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
द्वादशभिः सप्तभिस्तु संख्याभिः पूजितो हरिः ॥१९॥

ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें सह्य पर्वतके वनमें एक बहुत बड़ा आँवलेका वृक्ष था । उसे बुद्धिमान् लोगोंने 'महोग्र' नाम दे रक्खा था । महामुने ! उस वृक्षके फल बड़े रसीले, दर्शनीय, दिव्य एवं दुर्लभ होते थे । समस्त उत्तम ब्राह्मणोंमें उत्कृष्ट श्रीब्रह्माजीने पूर्वकालमें महान् फलोंसे युक्त उस महावृक्षको देखा था । विप्रेन्द्र ! उसे देखकर, यह क्या है—यह जाननेके लिये ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो गये । उन्होंने ध्यानमें उस स्थानपर महान् आँवलेके वृक्षको देखा और उसके ऊपर शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले देवेश्वर भगवान् विष्णुको विराजमान देखा । फिर उन्होंने जब ध्यानसे निवृत्त हो खड़े होकर दृष्टिपात किया, तब वहाँ वृक्षके स्थानमें केवल भगवान् विष्णुकी एक प्रतिमा दिखायी दी । उसका आधारभूत वह दिव्य महावृक्ष भूतलमें धँस गया ! तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी गन्ध-पुष्प आदिसे नित्य ही उन अविनाशी देवदेवेश्वरकी आराधना करने लगे । उस समय उनके द्वारा बारह और सात बार भगवान्की पूजा सम्पन्न हुई ॥१३—१९॥

तस्मिन् क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठ माहात्म्यं तस्य को वदेत् ।
श्रीसह्यामलकग्रामे देवदेवेशमव्ययम् ॥२०॥
आराध्य तीर्थे सम्प्राप्ता द्वादश प्रति चतुर्मुखम् ।
तस्य पादतले तीर्थं निस्सृतं पश्चिमामुखम् ॥२१॥
तच्चक्रतीर्थमभवत्पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२॥
बहुवर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ।
शङ्खतीर्थे नरः स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥२३॥
पौषे मासे तु पुष्यार्के तद्यात्रादिवसं मुने ।
ब्रह्मणः कुण्डिका पूर्वं गङ्गातोयप्रपूरिता ॥२४॥
तस्याद्रौ पतिता ब्रह्मंस्तत्र तीर्थेऽशुभं हरेत् ।
नाम्ना तत्कुण्डिकातीर्थं शिलागृहसमन्वितम् ॥२५॥
तत्तीर्थे मनुजः स्नात्वा तदानीं सिद्धिमाप्नुयात् ।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा यस्तत्र स्नाति मानवः ॥२६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।
कुण्डिकातीर्थादुत्तरे पिण्डस्थानाच्च दक्षिणे ॥२७॥
ऋणमोचनतीर्थं हि तीर्थानां गुह्यमुत्तमम् ।
त्रिरात्रमुषितो यस्तु तत्र स्नानं समाचरेत् ॥२८॥
ऋणैस्त्रिभिरसौ ब्रह्मन् मुच्यते नात्र संशयः ।
श्राद्धं कृत्वा पितृभ्यश्च पिण्डस्थानेषु यो नरः ॥२९॥
पितॄनुद्दिश्य विधिवत्पिण्डान्निर्वापयिष्यति ।
सुतृप्ताः पितरो यान्ति पितृलोकं न संशयः ॥३०॥

मुनिश्रेष्ठ ! उस आमलकक्षेत्रमें विराजमान भगवान्के माहात्म्यका कौन वर्णन कर सकता है। श्रीसह्यपर्वतस्थ आमलक ग्राममें इस प्रकार अविनाशी देवेश्वर भगवान्की आराधना करनेके पश्चात् ब्रह्माजीको वहाँ बारह तीर्थ और प्राप्त हुए ।

भगवान्‌के चरणके नीचे पश्चिमाभिमुख एक तीर्थ प्रकट हुआ। वह 'चक्रतीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ। वह पावन तीर्थ पापोंको नष्ट करनेवाला है। मनुष्य चक्रतीर्थमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और हजारों वर्षोंतक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इसके बाद 'शङ्खतीर्थ' है। उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। मुने! पौष मासमें जब सूर्य पुष्य नक्षत्रपर स्थित हों, उसी समय वहाँकी यात्राका पर्व है। पूर्वकालमें एक समय सह्यपर्वतपर गङ्गाजलसे भरा हुआ ब्रह्माजीका कमण्डलु गिर पड़ा था, तबसे वह स्थान 'कुण्डिका' तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह तीर्थ सारे अशुभोंको हर लेता है। वहाँ एक शिलामय गृह भी है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य तत्काल सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य उस तीर्थमें तीन राततक उपवास करके स्नान करता है, वह सब पापोंसे सर्वथा मुक्त हो ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कुण्डिका-तीर्थसे उत्तर और 'पिण्डस्थान' नामक तीर्थसे दक्षिण 'ऋणमोचन' नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम और गुह्य है। ब्रह्मन्! वहाँ तीन राततक निवास करके जो स्नान करता है, वह निस्संदेह तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य पिण्डस्थानमें श्राद्ध करके वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे विधिपूर्वक पिण्डदान करेगा, उसके पितर पूर्ण तृप्त होकर अवश्य ही पितृलोकको प्राप्त होंगे॥ २०–३०॥

पञ्चरात्रोषितस्नायी तीर्थे वै पापमोचने।
सर्वपापक्षयं प्राप्य विष्णुलोके स मोदते॥३१॥
तत्रैव महतीं धारां शिरसा यस्तु धारयेत्।
सर्वक्रतुफलं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥३२॥

इसके बाद 'पाप-मोचन' तीर्थ है। उस तीर्थमें पाँच राततक निवास करते हुए जो नित्य स्नान करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके विष्णुलोकमें आनन्दका भागी होता है। वहीं एक बहुत बड़ी धारा बहती है। उसके जलको जो अपने सिरपर धारण करता है, वह समस्त यज्ञोंके फलको प्राप्त करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३१-३२॥

धनुःपाते महातीर्थे भक्त्या यः स्नानमाचरेत्।
आयुर्भोगफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते॥३३॥
शरबिन्दौ नरः स्नात्वा शतक्रतुपुरं व्रजेत्।
वाराहतीर्थे विप्रेन्द्र सह्ये यः स्नानमाचरेत्॥३४॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा विष्णुलोके महीयते।
आकाशगङ्गानाम्ना च सह्याग्रे तीर्थमुत्तमम्॥३५॥
शिलातलात्ततो ब्रह्मन्निर्गता श्वेतमृत्तिका।
तस्यां भक्त्या तु यः स्नाति नरो द्विजवरोत्तम॥३६॥
सर्वक्रतुफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।

इसके बाद 'धनुःपात' नामक एक महान् तीर्थ है। उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह पूर्ण आयुका भोग करके अन्तमें स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। 'शरबिन्दु' तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य मृत्युके बाद इन्द्रपुरीमें जाता है तथा जो सह्यपर्वतपर 'वाराहतीर्थ'में स्नान करता और वहाँ एक दिन-रात निवास करता है, वह विष्णुलोकमें पूजित होता है। इसके बाद सह्यके शिखरपर 'आकाशगङ्गा' नामक एक उत्तम तीर्थ है। वहाँकी शिलाओंके नीचेसे सफेद मिट्टी निकलती है। विप्रवर! उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें पूजित होता है॥ ३३–३६½॥

ब्रह्मन्नमलसह्याद्रेर्यद्यत्तोयविनिर्गमः॥३७॥
तत्र तीर्थं विजानीहि स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते।
सह्याद्रिं गतवान्नित्यं स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते॥३८॥
एतेषु तीर्थेषु नरो द्विजेन्द्र
पुण्येषु सह्याद्रिसमुद्भवेषु।
दत्त्वा सुपुष्पाणि हरिं स भक्त्या
विहाय पापं प्रविशेत्स विष्णुम्॥३९॥
सकृत्तीर्थाद्रितोयेषु गङ्गायां तु पुनः पुनः।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः॥४०॥
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वधर्मो दयापरः।

ब्रह्मन्! उस निर्मल सह्यगिरिसे जहाँ-जहाँ जलके झरने गिरते हैं, वहाँ-वहाँ सब जगह तीर्थ समझना चाहिये। उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो नित्य ही सह्यपर्वतकी यात्रा करके वहाँ स्नान करता है, वह निष्पाप हो जाता है। द्विजेन्द्र! जो मनुष्य सह्यपर्वतके

इन पावन तीर्थोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको पुष्प चढ़ाता है, वह पापोंसे रहित हो भगवान् विष्णुमें ही लीन हो जाता है । अन्य सभी तीर्थोंके पर्वतोंसे बहनेवाले जलमें यथासम्भव एक बार स्नान कर लेना चाहिये, परंतु गङ्गामें बार-बार स्नान करे; क्योंकि गङ्गामें सम्पूर्ण तीर्थ हैं, भगवान् विष्णुमें सभी देवता वर्तमान हैं, गीता सर्वशास्त्रमयी है और सभी धर्मोंमें जीवदया श्रेष्ठ है ॥ ३७—४०½ ॥

एवं ते कथितं विप्र क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥४१॥
श्रीसह्यामलकग्रामे तीर्थ स्नात्वा फलानि च ।
तीर्थानामपि यत्तीर्थं तत्तीर्थं द्विजसत्तम ।
देवदेवस्य पादस्य तलाद्भुवि विनिस्सृतम् ॥४२॥
अम्भोयुगं तुरगमेधसहस्रतुल्यं
तच्चक्रतीर्थमिति वेदविदो वदन्ति ।
स्नानाच्च तत्र मनुजा न पुनर्भवन्ति
पादौ प्रणम्य शिरसा मधुसूदनस्य ॥४३॥
गङ्गाप्रयागगमनैमिषपुष्कराणि
पुण्यायुतानि कुरुजाङ्गलयामुनानि ।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापात्
पादोदकं भगवतस्तु पुनाति सद्यः ॥४४॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे तीर्थप्रशंसायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥*

विप्र ! इस प्रकार मैंने आपसे इस क्षेत्रके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया । साथ ही, सह्य और आमलक ग्रामके तीर्थोंमें स्नान करनेके फल भी बताये । द्विजश्रेष्ठ ! वही उत्तम तीर्थ है, जो तीर्थोंका भी तीर्थ हो । यह आमलकग्राम तीर्थ देवदेव भगवान् विष्णुके चरण-तलसे प्रकट हुआ है, अतः यह सर्वोत्तम तीर्थ है । यहाँपर जो जल है, उसमें स्नान करना हजार अश्वमेध यज्ञ करनेके बराबर है । उसीको वेदवेत्ता पुरुष 'चक्रतीर्थ' कहते हैं । वहाँ स्नान करके भगवान् मधुसूदनके चरणोंमें मस्तक झुकानेसे मनुष्यका इस संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता । गङ्गा, प्रयाग, नैमिषारण्य, पुष्कर, कुरुजाङ्गल प्रदेश और यमुना-तटवर्ती तीर्थ—ये सभी पुण्यतीर्थ हैं । इन तीर्थोंके जलमें स्नान करनेपर वे कुछ समयके बाद पवित्र करते हैं; किंतु भगवान् विष्णुका चरणोदकरूप यह 'चक्रतीर्थ' तत्काल पवित्र कर देता है ॥ ४१—४४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें तीर्थप्रशंसाविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

# सड़सठवाँ अध्याय

## मानस-तीर्थ, व्रत तथा इस पुराणका माहात्म्य

सूत उवाच

तीर्थानि कथितान्येवं भौमानि द्विजसत्तम ।
मानसानि हि तीर्थानि फलदानि विशेषतः ॥ १ ॥
मनोनिर्मलता तीर्थं रागादिभिरनाकुला ।
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ २ ॥
गुरुशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा ।
स्वधर्माचरणं तीर्थं तीर्थमग्नेरुपासनम् ॥ ३ ॥
एतानि पुण्यतीर्थानि व्रतानि शृणु मेऽधुना ।

**सूतजी कहते हैं**—द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार अबतक मैंने भूतलके प्रसिद्ध तीर्थोंका वर्णन किया; किंतु इन तीर्थोंकी अपेक्षा मानसतीर्थ विशेष फल देनेवाले हैं । वास्तवमें राग-द्वेषादिसे रहित मनकी स्वच्छता ही उत्तम तीर्थ है । सत्य, दया, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, माता-पिताकी सेवा, स्वधर्मपालन और अग्निकी उपासना—ये परम उत्तम तीर्थ हैं । यह तो पावन तीर्थोंका वर्णन हुआ, अब व्रतोंका वर्णन सुनिये ॥ १—३½ ॥

एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासं च वै मुने ॥ ४ ॥

पूर्णमास्याममावास्यामेकभुक्तं समाचरेत् ।
तत्रैकभुक्तं कुर्वाणः पुण्यां गतिमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥
चतुर्थ्यां तु चतुर्दश्यां सप्तम्यां नक्तमाचरेत् ।
अष्टम्यां तु त्रयोदश्यां स प्राप्नोत्यभिवाञ्छितम्॥ ६ ॥

मुने ! दिन-रातमें एक बार भोजन करके रहना और विशेषतः रातमें भोजन न करना—यह व्रत है । पूर्णिमा और अमावास्याको एक ही बार भोजन करके रहना चाहिये । इन तिथियोंमें एक बार भोजन करके रहनेवाला मनुष्य पावन गतिको प्राप्त करता है । जो चतुर्थी, चतुर्दशी, सप्तमी, अष्टमी और त्रयोदशीको रातमें उपवास करता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥ ४–६ ॥

उपवासो मुनिश्रेष्ठ एकादश्यां विधीयते ।
नरसिंहं समभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७ ॥
हस्तयुक्तेऽर्कदिवसे सौरनक्तं समाचरेत् ।
स्नात्वार्कमध्ये विष्णुं च ध्यात्वा रोगात्प्रमुच्यते॥८॥
आत्मनो द्विगुणां छायां यदा संतिष्ठते रविः ।
सौरनक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥ ९ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! एकादशीको दिन-रात उपवास करनेका विधान है । उस दिन भगवान् विष्णुका पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । यदि हस्त नक्षत्रसे युक्त रविवार हो तो उस दिन रात्रिमें उपवास करके सौरनक्त-व्रतका पालन करना चाहिये । उस दिन स्नानके पश्चात् सूर्यमण्डलमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है । जब सूर्य अपनी दुगुनी छायामें स्थित हों, उस दिन सौर नक्तव्रतका समय है । उस समयसे लेकर राततक भोजन न करे ॥ ७–९ ॥

गुरुवारे त्रयोदश्यामपराह्णे जले ततः ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानृषींश्च तिलतन्दुलैः ॥१०॥
नरसिंहं समभ्यर्च्य यः करोत्युपवासकम् ।
सर्वपापबिनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥११॥

जो पुरुष बृहस्पतिवारको त्रयोदशी तिथि होनेपर अपराह्णकालमें जलमें स्नान करके तिल और तण्डुलोंद्वारा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करता है तथा भगवान् नरसिंहका पूजन करके उपवास करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १०-११ ॥

यदागस्त्योदये प्राप्ते तदा सप्तसु रात्रिषु ।
अर्घ्यं दद्यात् समभ्यर्च्य अगस्त्याय महामुने ॥१२॥
शङ्खे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम् ।
मन्त्रेणानेन वै दद्याच्छितपुष्पादिनार्चिते ॥१३॥
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥१४॥
आतापी भक्षितो येन वातापी च महासुरः ।
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः प्रीयतां मम ॥१५॥
एवं तु दद्याद्यो सर्वमगस्त्ये वै दिशं प्रति ।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तमस्तरति दुस्तरम् ॥१६॥

महामुने ! जब अगस्त्य तारेका उदय हो, उस समयसे लगातार सात रात्रियोंतक अगस्त्यमुनिकी पूजा करके उन्हें अर्घ्य देना चाहिये । शङ्खमें श्वेत पुष्प और अक्षतसहित जल रखकर श्वेत पुष्प आदिसे पूजित हुए अगस्त्यजीके प्रति निम्नाङ्कित मन्त्र-वाक्य पढ़कर अर्घ्य निवेदन करे—'अग्नि और वायु देवतासे प्रकट हुए अगस्त्यजी ! काश पुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले कुम्भज मुने ! मित्र और वरुणके पुत्र भगवान् कुम्भयोने ! आपको नमस्कार है । जिन्होंने महान् असुर आतापी और वातापीको भक्षण कर लिया और समुद्रको भी सोख डाला, वे अगस्त्यजी मुझपर प्रसन्न हों ।' इस प्रकार कहकर जो पुरुष अगस्त्यकी दिशा ( दक्षिण )के प्रति अर्घ्य अर्पण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो, दुस्तर मोहान्धकारसे पार हो जाता है ॥ १२–१६ ॥

एवं ते कथितं सर्वं भरद्वाज महामुने ।
पुराणं नारसिंहं च मुनीनां संनिधौ मया ॥१७॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव सर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥१८॥
ब्रह्मणैव पुरा प्रोक्तं मरीच्यादिषु वै मुने ।
तेभ्यश्च भृगुणा प्रोक्तं मार्कण्डेयाय वै ततः ॥१९॥

मार्कण्डेयेन वै प्रोक्तं राज्ञो नागकुलस्य ह ।
प्रसादान्नरसिंहस्य प्राप्तं व्यासेन धीमता ॥२०॥
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं सर्वपापप्रणाशनम् ।
पुराणं नरसिंहस्य मया च कथितं तव ॥२१॥
मुनीनां संनिधौ पुण्यं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।

महामुने ! भरद्वाजजी ! इस प्रकार मैंने मुनियोंके निकट यह पूरा 'नरसिंहपुराण' आपको सुनाया । इसमें मैंने सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—सभीका वर्णन किया है । मुने ! इस पुराणको सर्वप्रथम ब्रह्माजीने मरीचि आदि मुनियोंके प्रति कहा था । उन मुनियोंमेंसे भृगुजीने मार्कण्डेयजीके प्रति इसे कहा और मार्कण्डेयजीने नागकुलोत्पन्न राजा सहस्रानीकको इसका श्रवण कराया । फिर भगवान् नरसिंहकी कृपासे इस पुराणको बुद्धिमान् श्रीव्यासजीने प्राप्त किया । उनकी अनुकम्पासे मैंने इस सर्वपापनाशक पवित्र पुराणका ज्ञान प्राप्त किया और इस समय मैंने यह नरसिंहपुराण इन मुनियोंके निकट आपसे कहा । अब आपका कल्याण हो, मैं जा रहा हूँ ॥ १७–२१½ ॥

यः शृणोति शुचिर्भूत्वा पुराणं ह्येतदुत्तमम् ॥२२॥
माघे मासि प्रयागे तु स स्नानफलमाप्नुयात् ।
यो भक्त्या श्रावयेद्भक्तान्नित्यं नरहरेरिदम् ॥२३॥
सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।

जो मनुष्य पवित्र होकर इस उत्तम पुराणका श्रवण करता है, वह माघ मासमें प्रयागतीर्थमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है । जो मनुष्य इस नरसिंहपुराणको भगवान्‌के भक्तोंके प्रति नित्य सुनाता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २२-२३½ ॥

श्रुत्वैवं स्नातकैः सार्धं भरद्वाजो महामतिः ॥२४॥
सूतमभ्यर्च्य तत्रैव स्थितवान् मुनयो गताः ।

इस प्रकार स्नातकोंके साथ इस पुराणको सुन महामति भरद्वाजजीने सूतजीका पूजन-सत्कार किया और स्वयं वहीं रह गये । अन्य सब मुनि अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ २४½ ॥

सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं नृसिंहात्मकम् ॥२५॥
पठतां शृण्वतां नृणां नरसिंहः प्रसीदति ।
प्रसन्ने देवदेवेशे सर्वपापक्षयो भवेत् ॥२६॥
प्रक्षीणपापबन्धास्ते मुक्तिं यान्ति नरा इति ॥२७॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे मानसतीर्थव्रतं नाम*
*सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥*

यह नरसिंहपुराण समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यमय है । जो इसको पढ़ते और सुनते हैं, उन मनुष्योंपर भगवान् नरसिंह प्रसन्न होते हैं । देवदेवेश्वर नरसिंहके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है और जिनके पाप-बन्धन सर्वथा नष्ट हो गये हैं, वे मानव मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २५–२७॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मानसतीर्थ-**व्रत**' नामक सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

# अड़सठवाँ अध्याय

## नरसिंहपुराणके पठन और श्रवणका फल

सूत उवाच

इत्येतत् सर्वमाख्यातं पुराणं नारसिंहकम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १ ॥
समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम् ।
ये पठन्त्यपि शृण्वन्ति श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ॥ २ ॥
न तेषां पापबन्धस्तु कदाचिदपि जायते ।
विष्ण्वर्पितमिदं पुण्यं पुराणं सर्वकामदम् ॥ ३ ॥
भक्त्या च वदतामेतच्छृण्वतां च फलं शृणु ।

शतजन्मार्जितैः पापैः सद्य एव विमोचिताः ॥ ४ ॥
सहस्रकुलसंयुक्ताः प्रयान्ति परमं पदम् ।
किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा तपोभिर्वा किमध्वरैः ॥ ५ ॥
अहन्यहनि गोविन्दं तत्परत्वेन शृण्वताम् ।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय यदस्य श्लोकविंशतिम् ॥ ६ ॥
ज्योतिष्टोमफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।

**सूतजी कहते हैं**—इस प्रकार मैंने यह सम्पूर्ण नरसिंहपुराण कह सुनाया। यह सब पापोंको हरनेवाला और सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। समस्त पुण्यों तथा सभी यज्ञोंका फल देनेवाला है। जो लोग इसके एक श्लोक या आधे श्लोकका श्रवण अथवा पाठ करते हैं, उन्हें कभी भी पापोंसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। भगवान् विष्णुको अर्पण किया हुआ यह पावन पुराण समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है। भरद्वाजजी! जो लोग भक्तिपूर्वक इस पुराणका पाठ अथवा श्रवण करते हैं, उनको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनिये। वे सौ जन्मोंके पापसे तत्काल ही मुक्त हो जाते हैं तथा अपनी सहस्र पीढ़ियोंके साथ ही परमपदको प्राप्त होते हैं। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्तसे गोविन्दगुण-गान सुनते रहते हैं, उनको अनेक बार तीर्थ-सेवन, गोदान, तपस्या और यज्ञानुष्ठान करनेसे क्या लेना है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इस पुराणके बीस श्लोकोंका पाठ करता है, वह ज्योतिष्टोम यज्ञका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १—६½ ॥

एतत्पवित्रं पूज्यं च न वाच्यमकृतात्मनाम् ॥ ७ ॥
द्विजानां विष्णुभक्तानां श्राव्यमेतन्न संशयः ।
एतत्पुराणश्रवणमिहामुत्र सुखप्रदम् ॥ ८ ॥
वदतां शृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रणाशनम् ।
बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो मुनीश्वराः ॥ ९ ॥
श्रद्धयाश्रद्धया वापि श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ।
भारद्वाजमुखाः सर्वे कृतकृत्या द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥
सूतं हृष्टाः प्रपूज्याथ सर्वे स्वस्वाश्रमं ययुः ॥ ११ ॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे सूतभरद्वाजादिसंवादे सर्वदुःखोपहरं श्रीनरसिंहपुराणस्य माहात्म्यं समाप्तम् ।*

शुभम्भवतु

यह पुराण परम पवित्र और आदरणीय है। इसे अजितेन्द्रिय पुरुषोंको तो कभी नहीं सुनाना चाहिये, परंतु विष्णुभक्त द्विजोंको निस्संदेह इसका श्रवण कराना चाहिये। इस पुराणका श्रवण इस लोक और परलोकमें भी सुख देनेवाला है। यह वक्ताओं और श्रोताओंके पापको तत्काल नष्ट कर देता है। मुनीश्वरगण! इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता है। श्रद्धासे हो या अश्रद्धासे, इस उत्तम पुराणका श्रवण करना ही चाहिये। इस पुराणको सुनकर भरद्वाज आदि द्विजश्रेष्ठगण कृतार्थ हो गये। उन्होंने हर्षपूर्वक सूतजीका समादर किया। फिर सब लोग अपने-अपने आश्रमको चले गये॥ ७—११ ॥

इस प्रकार सूत-भरद्वाजादि-संवादरूप श्रीनरसिंहपुराणमें इसके 'सर्वदुःखहारी माहात्म्यका वर्णन' नामक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६८ ॥

* * *

५६२३

0५१.१|228

### श्रीहरिः

# ‘कल्याण’के नियम

**उद्देश्य**—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

## नियम

( १ ) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

( २ ) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें १०.०० रुपये और भारतवर्षसे बाहरके लिये रु० १६.०० ( १८ शिलिंग ) नियत है। सजिल्द विशेषाङ्कका भारतमें रु० ११.५० तथा विदेशके लिये सजिल्दका २० शिलिंग ( १७.८० पैसे ) है।

( ३ ) ‘कल्याण’का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं; किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। ‘कल्याण’के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

**( ४ ) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

( ५ ) कार्यालयसे ‘कल्याण’ दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

( ६ ) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनेके लिये पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

( ७ ) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क ( चालू वर्षका विशेषाङ्क ) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर दिसम्बरतक प्रतिमास ११ अङ्क मिला करेंगे। सबका मूल्य रु० १०.०० मात्र है। किसी अनिवार्य कारणवश ‘कल्याण’ बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही वर्षका चंदा समाप्त समझना चाहिये; क्योंकि केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य १०.०० रुपये है।

( ८ ) ६० पैसे एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है। ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ६० पैसे बाद दिये जा सकते हैं।

## आवश्यक सूचनाएँ

( ९ ) ‘कल्याण’में किसी प्रकारका कमीशन या ‘कल्याण’की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

( १० ) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

( ११ ) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

( १२ ) **ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये।** वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

( १३ ) प्रेस-विभाग तथा **कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये।** ‘कल्याण’के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १.०० रु०से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

( १४ ) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

( १५ ) **मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी संख्या, रुपये भेजनेका उद्देश्य, ग्राहक-नम्बर ( नये ग्राहक हों तो ‘नया’ लिखें ), पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।**

( १६ ) प्रबन्धसम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक “कल्याण”, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक “कल्याण”, पो० गीतावाटिका ( गोरखपुर )** के नामसे भेजने चाहिये।

( १७ ) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम नहीं लिया जाता।

( १८ ) ‘कल्याण’के आजीवन ग्राहकका चंदा अजिल्द विशेषाङ्कका रु० १२५.०० तथा सजिल्दका रु० १५०.०० है। ग्राहकके दिवंगत होनेपर यदि ‘कल्याण’का प्रकाशन जारी रहा तो सूचना मिलनेपर उसके उत्तराधिकारीको अङ्क जाते रहेंगे।